स्नेहशील आदर्श श्री आरु कुमारजी
को सादर

[illegible]

७।२।५८

बापूकी कलमसे

[गांधीजीके मूल हिन्दी लेखोंका संग्रह]

सम्पादक

काकासाहब कालेलकर

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद
१९५७

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

प्रथम आवृत्ति १०,००० : सन् १९५७

रु० २.५० दिसम्बर, १९५७

गांधी-शैलीकी हिन्दी

(१)

अुत्तर भारतकी सर्व-सामान्य भाषा हिन्दीको राष्ट्रभाषाकी अुच्च पदवी दिलानेकी महात्मा गांधीकी अुत्कट कोशिश सब जानते ही हैं। आजकलके बुरे दिनोंमें गांधीजीकी अिस सेवाका स्मरण विशेष रूपसे हो रहा है, जब कि हिन्दी भाषाके चन्द अभिमानी लोग भारतीय परिवारकी सब भाषाओंको संतुष्ट करके अुनका सहयोग प्राप्त करनेकी आवश्यकताको भूलकर, हिन्दीको कमजोर कर रहे हैं, कहीं कहीं हिन्दीके प्रति अरुचि भी पैदा कर रहे हैं; और अिस गृह-कलहसे बल पाकर विदेशी भाषा स्वतंत्र भारतमें अपनी जड़ें मजबूत कर रही है।

गांधीजीके विचार गुजरातीमें और अंग्रेजीमें ही प्रकट होते देखकर स्वर्गस्थ श्री जमनालालजी बजाजने गुजराती 'नवजीवन'की हिन्दी आवृत्ति निकालनेकी सलाह गांधीजीको दी, और 'हिन्दी-नवजीवन'के द्वारा गांधीजीके गुजराती और अंग्रेजी लेखोंका अनुवाद प्रकट होने लगा।

श्री हरिभाअू अुपाध्याय, श्री काशीनाथ त्रिवेदी और श्री बैजनाथ महोदय आदि हिन्दीभक्तोंने अनुवादका यह काम बड़ी श्रद्धासे और लगनसे किया, और हिन्दी-जगतको गांधीजीके विचारोंका सीधा परिचय होने लगा।

जो काम 'हिन्दी-नवजीवन' ने किया, वही आगे जाकर 'हरिजन-सेवक' द्वारा आखिर तक होता रहा। गांधीजीके आग्रहके कारण अुनके अिन लेखोंका प्रकाशन अुर्दू लिपिमें भी होने लगा। अिस अुर्दू आवृत्तिका प्रचलन कम होते हुअे भी गांधीजीने अुसका प्रकाशन आखिर तक जारी रखा।

गांधी-साहित्यका आस्वाद पानेवाले लोगोंको स्वाभाविक अिच्छा हुअी कि गांधीजीकी कलमसे निकली हुअी, अुनकी निजी हिन्दीका भी आस्वाद लोगोंको मिले। अपने विचार देशवासियोंको समझानेकी

आतुरताके कारण गांधीजीने गुजराती और अंग्रेजी भाषाओं पर अच्छा प्रभुत्व पाया था। हिन्दी भाषाके बारेमें वैसा वे न कर सके। लेकिन देशप्रेम और हिन्दीके आग्रहके कारण अुन्होंने, जहां तक हो सका, हिन्दीमें बोलनेका और खत-पत्र लिखनेका नियम चलाया।

शुरू शुरूमें, सत्याग्रह आश्रममें हम सब लोग आश्रमका व्यवहार गुजरातीमें ही चलाते थे। आश्रम गुजरातकी प्रजाधानी अहमदाबादके निकट होनेसे और अधिकांश आश्रमवासी भी गुजराती होनेसे, हम अन्यभाषी सदस्योंने आश्रमका कामकाज, प्रार्थना-प्रवचन तक, गुजरातीमें चलाना ही पसंद किया। यही स्वाभाविक और योग्य था।

लेकिन जब सारा भारत सत्याग्रह आश्रमसे प्रेरणा पाने लगा और सब प्रान्तोंके लोग आश्रममें आकर रहने लगे, तब जमनालालजीने फिरसे हिन्दीकी ताअीद शुरू की। अुसका स्वीकार करके गांधीजी आश्रमके व्यवहारमें और प्रार्थनामें भी हिन्दीमें बोलने लगे। हिन्दीभाषी लोगोंसे बोलते, अुनके पत्र पढ़ते और अुनके भाषण सुनते-सुनते गांधीजीका हिन्दीका मुहावरा बढ़ा। हिन्दीका ज्ञान कच्चा होते हुअे भी, गांधीजीकी अपनी अेक मौलिक, सीधी और असरकारक शैली बन गअी। जब कोअी लेखक अेक भाषामें अपने विचार अच्छी तरह प्रकट करनेका सामर्थ्य प्राप्त करता है, तब दूसरी भाषाका ज्ञान कच्चा होने पर भी नयी भाषाके भाषण-लेखनमें शैलीकी संस्कारिता, रचना-माधुर्य और विचार प्रकट करनेका ओजस् आ ही जाता है। यही कारण है कि गांधीजीकी हिन्दीकी मौलिक शैलीमें अुनके विचार पढ़नेके लिअे लोग लालायित रहते थे।

गांधीजी स्वयं जानते थे कि अपने विचार हिन्दी-जगतके सामने किसीसे अनुवाद करवाकर प्रकट करना काफी नहीं है। अुन्हें स्वयं कुछ न कुछ हिन्दीमें लिखना ही चाहिये। अिसलिअे पाठकोंके और साथियोंके आग्रहका अभिनंदन करके वे समय-समय पर कुछ लिखने लगे।

अुनके अैसे मौलिक लेखोंका संग्रह करके स्वतंत्र रूपसे अुनको प्रकाशित करना बहुत ही जरूरी था। अैसे प्रकाशनकी कल्पना करके

अुसे कार्यान्वित करनेका सारा श्रेय अिन्दौरके श्री पन्नालाल जैनको ही है। सन् १९२९ से अुन्होंने गांधीजीके मौलिक हिन्दी लेखोंका संग्रह करना शुरू किया, और अुन्हें प्रकाशित करनेकी कोशिश भी की। सन् १९३० में जब सरकारने गांधीजीको जेलमें भेजा तब अुनके लेखोंका सिलसिला टूट गया। अिसी अवसरको स्वाभाविक समझकर श्री पन्नालालजीने सन् १९३० तकके संग्रहको प्रकाशित करनेके लिअे यरवडा जेलमें खत लिखकर गांधीजीकी अनुमति मांगी।

गांधीजीकी ओरसे महादेवभाअीने अैसी अिजाजत भेजकर सूचना दी कि श्री हरिभाअू अुपाध्यायकी सलाहसे आप संग्रह प्रकाशित कर सकते हैं।

अैसा संग्रह प्रकाशित करनेके पहले यह ढूंढ़ना जरूरी था कि गांधीजीके कौनसे लेख मौलिक हैं और कौनसे अनूदित हैं। अिस बारेमें श्री पन्नालालजी काफी सतर्क थे ही। तो भी अुन्होंने श्री काशीनाथ त्रिवेदीको सारा संग्रह दिखाकर अपने संग्रहके बारेमें प्रमाणपत्र हासिल किया।

अितनी मेहनत करने पर भी श्री पन्नालालजीका किया हुआ संग्रह, देशकी राजनीतिक अस्वस्थताके कारण, प्रकाशित न हो सका।

जब मैं सन् १९४९ में राअूके सर्वोदय सम्मेलनमें गया, तब श्री पन्नालालजीने अपना संग्रह मुझे दिखाया और अुसके प्रकाशनके लिअे कोशिश करनेका भार मुझ पर डाला। मैंने वह सारा संग्रह देखकर नवजीवनको सौंप दिया। पन्नालालजी समय समय पर प्रकाशनका तकाजा करने लगे और मैं अुसे नवजीवन तक पहुंचाता रहा।

अिस तरह काफी समय व्यतीत होनेके बाद गांधीजीके मौलिक हिन्दी लेखोंका यह संग्रह प्रकाशित हो रहा है। हिन्दी पाठक तो अिसे पाकर प्रसन्न होंगे ही। लेकिन सबसे अधिक प्रसन्नता होगी श्री पन्नालालजी जैनको। अिसलिअे मैं अुन्हींका यहां अभिनंदन करता हूं।

अेक बात यहां पर स्पष्ट करनी चाहिये। अपने अखबारके लिअे गाधीजी जो कुछ भी लिखते थे, अुसकी भाषा किसी न किसी

हिन्दीभाषी सज्जनसे दुरुस्त करवाते थे। अिसलिअे यहां पर जो कुछ भी संग्रह हिन्दी-जगतके सामने रखा जा रहा है अुसके बारेमें हम यह नहीं कह सकते कि "अिसमें हरअेक शब्द और वाक्य-रचना गांधीजीकी ही है। औरोंका अिसमें कुछ भी नहीं है।" तो भी गांधीजीके खास खास शब्द और अुनकी लाक्षणिक शब्दावली और वाक्य-रचना भी अिस संग्रहमें पाअी जाती है। शुरू शुरूमें जो शैलीका कच्चापन दीख पड़ता है, वह आगे जाकर स्वाभाविक रूपमें कम हुआ है। अिसके दो कारण हो सकते हैं। या तो गांधीजीकी हिन्दी शैली सुधर गअी अथवा प्रकाशनके पहले अुनके लेखोंमें सुधार करनेका काम हिन्दी साथियोंने ज्यादा अुदारतासे किया। दोनों बातें सही हैं। और आज अिसकी पूरी जांच हो भी नहीं सकती। लेखोंकी तारीख देखकर अुसी समयके गांधीजीके खत-पत्रोंकी भाषाके साथ मुकाबला करके थोड़ी-बहुत जांच हो सकती है। लेकिन अुसकी अुतनी जरूरत नहीं है। गांधीजीके लेखोंमें औरोंके सुधार दाखिल होनेके बावजूद अुनकी शैली, और शब्दोंकी पसन्दगी भी, अिस संग्रहमें प्रकट होती ही है।

मुझे डर है कि जहां तक हो सका श्री पन्नालालजीकी ओरसे और नवजीवन प्रकाशन मंदिरकी ओरसे पूरी पूरी कोशिश होने पर भी अिधर-अुधर अेकाध या अधिक अनूदित लेख अिस संग्रहमें आ गये होंगे। जिन लेखोंके नीचे स्पष्ट लिखा नहीं है कि यह अनूदित है अथवा जिन हिन्दी लेखोंके प्रकाशनके पहले वही चीज गुजरातीमें या अंग्रेजीमें अुसी रूपमें नहीं आअी है, वे सब मौलिक माने जायें — यही दंडक हम लोगोंने मान्य किया है। अिसके सिवा और कोअी चारा नहीं था। मैं मानता हूं कि यह कसौटी काफी कड़ी होने पर भी पूर्ण रूपसे निर्दोष तो नहीं है। पाठकोंको अितना संतोष जरूर रहेगा कि अनुवाद करनेवाले लोगोंको गांधीजीकी गुजराती और अंग्रेजी शैलीका अच्छा परिचय था, अिसलिअे अनुवादोंमें भी गांधीजीकी शैलीका कुछ न कुछ असर होगा ही।

अूपर जो दंडक हमने लगाया या कसौटी चलाअी, वह भी हमेशा अेकसी नहीं चल पायी। अिसका मुझे दुःख है। नहीं तो मैं

अधिक विश्वाससे कह सकता कि यहां दिये हुअे गांधीजीके लेख करीब सबके सब अुन्हींकी कलमके हैं।

आज जब अिस संग्रहकी ओर हम देखते हैं तब आश्चर्य होता है कि अितने कार्यव्यस्त जीवनमें भी गांधीजी गुजराती और अंग्रेजीके अलावा हिन्दीमें भी कितना कितना लिख सके।

(२)

गांधीजीकी शैलीके बारेमें अेक विचार यहां पेश करना जरूरी है, जो गांधीजीके जीवन-कालमें प्रकट करनेकी शायद हमें अुनसे अिजाजत नहीं मिलती।

दुनिया जानती है कि संस्कृत भाषा पाणिनिके व्याकरणसे बंधी हुअी है। हमारे पुरखोंका भाषाशुद्धिका आग्रह अितना अुग्र था कि तनिक भी व्याकरण-दोष वे बरदाश्त नहीं कर सकते थे। लेकिन पाणिनिके पूर्वकालीन संस्कृत-स्वामियोंकी भाषा पर पाणिनिका अधिकार कैसे चल सकता? वे तो स्वतंत्र रूपसे लिख गये थे। पाणिनिके समकालीन और अुनके परवर्ती लेखकोंमें भी अैसे समर्थ समाज-नायक, धर्मकार और साहित्यकार हो गये, जिनकी भाषा पर पाणिनिकी मात्रा नहीं चल सकी। अुन्होंने जो लिखा वह पाणिनिके व्याकरणके अनुसार हो या न हो, अुसे अशुद्ध कहनेका किसीको भी अधिकार नहीं है। अैसे पाणिनि-बाह्य प्रयोगोंको संस्कृतके अभिमानी और संस्कृतके सेवक आर्ष प्रयोग कह कर अुनके सामने सिर झुकाते आये हैं। महामुनि व्यासके महाभारतमें अैसे आर्ष प्रयोग भूरि भूरि पाये जाते हैं। अिसलिअे अेक व्यासभक्तने अेक श्लोक बनाकर अपना अभिप्राय और अपनी भक्ति विश्वासके साथ व्यक्त की है:

यानि अुज्जहार माहेशात् व्यासो व्याकरणार्णवात्।
तानि किं पदरत्नानि भान्ति पाणिनि-गोष्पदे॥

भवभूतिने भी लिखा है:

लौकिकानां हि साधूनां अर्थं वाक् अनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचं अर्थोऽनुधावति॥

वाचा-संयम और विचार-संयमके ब्रह्मचर्यका पालन जिन्होंने किया है और अुत्कट सेवाके द्वारा जिनकी वाणीमें तेज आया है और जिनकी वाणी आत्मशक्तिकी तेजस्वी वाहक बनी है, अुनकी लेखन-शैली, अुनके बनाये हुअे मुहावरे और कहावतें समाजमें सर्व-सामान्य होते हैं और टकसाली बन जाते हैं।

गांधीजीने जो राष्ट्रसेवा की है, राष्ट्रभाषाको जो प्रतिष्ठा प्रदान की है और जो सत्य-अहिंसा-मूलक मानव-हितका चिंतन किया है, अुसके कारण गांधीजीकी भाषामें और शैलीमें आर्ष तेज आ गया है। अुनकी शैलीका अनुकरण और अुनके मुहावरोंका स्वीकार हिन्दी-जगत धीरे धीरे किन्तु अवश्य करेगा, खास करके अुनके लेखोंमें सत्यका जो सीधापन है अुसका अनुकरण तो नया जमाना अवश्य ही करेगा। गांधीजीके वाक्य क्या हैं, बल्लमकी फेंक ही है।

अिंग्लैंडके राजाने बाअिबलका अनुवाद मूल हिब्रू और ग्रीक भाषासे कअी विद्वान धर्माचार्योंके द्वारा अंग्रेजीमें करवाया। अिंग्लैंडके चर्चने अुसे बाअिबलका केवल अनुवाद न मानकर अुस अनुवादको ही अपना प्रमाण-ग्रंथ मान लिया। धर्मकी दृष्टिसे अंतिम आधार हिब्रू और ग्रीक बाअिबलको नहीं, किन्तु अंग्रेजीमें लायी गअी संहिताको ही प्रमाण मान लिया और घोषित किया कि अनुवादक धर्माचार्य जब अनुवाद करते थे तब अीश्वरसे प्रेरित थे। अिसीलिअे अुनका अनुवाद स्वतंत्र रूपसे प्रमाण-ग्रंथ है।

अितना होने पर ब्रिटिश प्रजाने बाअिबलका अनुवाद श्रद्धाभक्तिसे पढ़ना शुरू किया। अितना ही नहीं, अुस अंग्रेजी मान्य अनुवादकी शब्दावली और शैली अंग्रेजी भाषाके लिअे सुन्दरतम और आदर्श मान ली गअी।

हमारे यहां अुत्तर भारतकी प्रजाने तुलसी रामायणको वाल्मीकि रामायणसे भी अधिक ग्राह्य और आदरणीय माना। और तुलसीदासकी भाषाशैलीने हिन्दी भाषा पर अपना प्रभुत्व जमाया।

अगर गांधीजीके विचारोंमें और विचार-शैलीमें सत्यकी सरलता है, युगदृष्टिको साफ करनेकी क्षमता है और मानव-कल्याणकी भावुकता है, तो अुनकी शब्दावली, अुनकी वाक्य-रचना और अुनके बनाये हुअे मुहावरे परिचित होने पर किसीको बेढंगे नहीं लगेंगे, बल्कि अनुकरणीय और आदरणीय लगेंगे। भाषा अैसे ही बनती है। समर्थ समाज-सेवक, तेजस्वी लोकनेता और जनता-प्रिय साहित्य-स्वामी जो भाषा लिखते हैं, वही प्रचलन पाती है और सर्वमान्य होती है।

गांधीजीके विचारोंने अुनके जीते-जी भारत पर प्रभाव डाला ही। अुसके बाद अुनके विचारोंसे भिन्न विचारधारामें भी भारतने स्नान करके देखा। लेकिन अनुभव यह हो रहा है कि गांधीजीके विचार अल्पकालिक नहीं हैं। वे मानवी युग-संस्कृतिके लिअे पोषक हैं। अुनकी जीवन-दृष्टि धीरे धीरे बहुजन-ग्राह्य होगी और अुनके साहित्यका प्रत्यक्ष या परोक्ष अध्ययन अवश्य होगा।

तब लोग अुनकी विचार-पद्धति और लेखन-शैलीका अध्ययन करनेके लिअे जो लेख 'बापूकी कलमसे' अुतरे अुनका प्रेमसे आदर करेंगे और तब गांधी-शैलीका हिन्दी पर कुछ न कुछ असर अवश्य होगा।

क्या दक्षिण अफ्रीकामें, और क्या भारतमें, गांधीजी बड़ी ही साव-धानतासे लिखते थे। बहुतसी बातें अुन्होंने गुजराती, अंग्रेजी, हिन्दी तीनों भाषाओंमें अेकसी लिखी हैं। लेकिन समाज-सुधारकी कअी बातें अुन्होंने अंग्रेजीमें न लिखकर गुजरातीमें या हिन्दीमें ही लिखी हैं। जिस समाजकी सेवा करनी है, अुसीकी भाषामें लिखनेसे प्रभाव तो अच्छा पड़ता ही है; और अगर आत्मीयतासे समाजको अुसीकी भाषामें नसीहत दी जाय तो औरोंके सामने दोष प्रकट करनेके दोषसे हम मुक्त रहते हैं।

यहां गांधीजीके दक्षिण अफ्रीकाके जीवनका अेक किस्सा याद आता है :

गांधीजी और जनरल स्मट्सके बीच कुछ बातें किसी समय हुअीं। *अुनका सारांश गांधीजीने अपने 'अिंडियन ओपीनियन' में प्रकाशित* किया। अिस पर जनरल स्मट्स बिगड़े। कहने लगे कि हमारे बीच जो खानगी बातें हुअीं अुन्हें सारी दुनियाके सामने प्रकट करनेमें आपने औचित्यका भंग किया। गांधीजीने कहा, "मुझसे औचित्य-भंग होता तो मैं जरूर आपसे माफी मांग लेता। आप जानते हैं कि मेरे 'अिंडियन ओपीनियन' के दो हिस्से हैं। चंद लेख अंग्रेजीमें प्रकट होते हैं और चंद भारतीय भाषाओंमें। अंग्रेजी लेख दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके अलावा अंग्रेज और पढ़े-लिखे नीग्रो भी पढ़ सकते हैं, यह जानकर अति-प्रकाशन (Over-publication) को टालनेके हेतुसे मैंने आपकी और मेरी जो गुफ्तगू हुअी अुसका सार तो दूर रहा, जिक्र तक अंग्रेजी विभागमें नहीं आने दिया।

"मैं आपसे मिला था सो भारतीयोंका प्रतिनिधि बनकर मिला था। वकीलका और प्रतिनिधिका धर्म है कि वह सरकारके साथ किये हुअे मशविरेका सार अपने असीलोंको दे। अिसीलिअे मैंने अपना कर्तव्य और धर्म समझकर हमारे वार्तालापका सार सिर्फ भारतीय भाषामें दिया।"

गांधीजीका यह सूक्ष्म विवेक ध्यानमें आते ही जनरल स्मट्स शांत हो गये और अुन्होंने अपनी शिकायत वापस खींच ली।

भारतके जगह जगहके लोक-सेवक और समाज-सुधारक गांधीजीको खत लिखकर समाजकी कअी कुप्रथाओंकी चर्चा करते थे और गांधीजीसे दिशा-दर्शनकी अपेक्षा रखते थे। अैसी बातोंकी चर्चा गांधीजीने अंग्रेजीमें कम की है, गुजरातीमें और हिन्दीमें अधिक की है। गांधीजीका यह सूक्ष्म विवेक समझने लायक है। गांधी-विचारको समझनेकी तीव्र अिच्छा रखनेवालोंसे मैं कहता आया हूं कि गांधीजीके विचार और लेख केवल अंग्रेजीमें पढ़नेसे आपको गांधीजीका संपूर्ण दर्शन नहीं हो सकेगा। अैसी कअी बातें हैं, जिन्हें अुन्होंने गुजरातीमें और हिन्दीमें ही लिखना पसन्द किया था। भारतीय जीवन-दर्शनमें गांधीजीकी देनको पूर्णतया

समझना हो, तो अुनके हिन्दी और गुजराती लेख पढ़े बिना चारा नहीं। कअी लोगोंने मेरी अिस सूचनाका महत्त्व समझकर गुजराती और हिन्दी सीखना शुरू किया है।

अिस दृष्टिसे भी अिस पुस्तकका महत्त्व असाधारण है। मेरा तो विश्वास है कि गांधीजीके मौलिक हिन्दी लेखोंका बहुविध महत्त्व पहचानकर भारतकी अन्यान्य सरकारें अिस ग्रंथकी शिक्षानुकूल कअी आवृत्तियां तैयार करवायेंगी और अुससे लाभ अुठाते समय मेरे साथ वे भी श्री पन्नालाल जैनको और नवजीवन प्रकाशन मंदिरको धन्यवाद देंगी।

काका कालेलकर

अनुक्रमणिका

बापूकी कलमसे

१

हिन्दी नवजीवन

यद्यपि मुझे मालूम है कि 'नवजीवन' को हिन्दीमें प्रकाशित करना कठिन काम है तथापि मित्रोंके आग्रहवश होकर और साथियोंके अुत्साहसे 'नवजीवन' का हिन्दी अनुवाद निकालनेकी धृष्टता मैं करता हूं। मेरे विचारों पर मेरा प्रेम है। मेरा विश्वास है कि अुनके अनुकरणसे जनताको लाभ है। अिसलिअे अुनको हिन्दीमें प्रकट करनेकी अिच्छा मुझे बहुत समयसे थी। परंतु आज तक परमात्माने अुसे सफल नहीं किया था। हिन्दुस्तानीको भारतवर्षकी राष्ट्रीय भाषा बनानेका प्रयत्न मैं हमेशासे करता आया हूं। हिन्दुस्तानीके सिवा दूसरी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती, अिसमें कुछ भी शक नहीं। जिस भाषाको करोड़ों हिन्दू-मुसलमान बोल सकते हैं, वही अखिल भारतवर्षकी सामान्य भाषा हो सकती है, और अुसमें जब तक 'नवजीवन' न निकाला गया तब तक मुझे दुःख था।

हिन्दुस्तानी-भाषानुरागी 'हिन्दी-नवजीवन' में अुत्तम प्रकारकी हिन्दीकी आशा न रखें। 'नवजीवन' और 'यंग अिडिया' का अनुवाद ही अुसमें देना संभवनीय है। मुझे न तो अितना समय है कि हमेशा हिन्दुस्तानीमें लेख आदि लिख कर दे सकूं और न बहुत हिन्दुस्तानी लिखनेकी शक्ति ही मुझमें है।

'हिन्दुस्तानी भाषाका प्रचार' अिस साहसका मुख्य हेतु नहीं है। 'शांतिमय असहयोगका प्रचार' ही अिसका अुद्देश्य समझना चाहिये। हिन्दुस्तानी भाषा जाननेवाले जब तक असहयोग और शांतिके सिद्धान्त भलीभांति न समझ लेंगे, तब तक शांतिमय असहयोगकी सफलता असंभव-सी है। अिसलिअे 'हिन्दी-नवजीवन' की आवश्यकता थी। परमात्मासे प्रार्थना है कि जो लोग केवल हिन्दुस्तानी ही समझते हैं, अुन्हें 'हिन्दी-नवजीवन' मददगार हो।

हिन्दी-नवजीवन, १९-८-'२१

२

मारवाड़ी भाअियों और बहनोंके प्रति

प्रिय भाअी-बहनो,

आपके प्रेमवश होकर मैंने 'हिन्दी-नवजीवन' निकालनेका साहस किया है। जबसे मैं भारतवर्षमें आया हूं, तबसे मेरा संबंध आपसे निकट होता जा रहा है। आपने मेरी प्रवृत्तिको प्रेमभावसे देखा है और मुझे सहायता दी है। आपने हिन्दी-प्रचारमें खूब मदद की है। आपकी ही सहायतासे आज द्राविड़ प्रांतोंमें हिन्दीका प्रचार अच्छी तरह हो रहा है। आप भाअी और बहनें असहयोगी हैं। आप राष्ट्रीय जीवनमें रस लेते हैं। आपने देख लिया है कि धनी पुरुष और स्त्रियां राष्ट्रीय जीवनसे बहिर्मुख नहीं रह सकतीं।

आप धर्मप्रेमी हैं। धर्मके लिअे आप लाखों रुपये देते हैं। आपमें साहस भी है। द्रव्योपार्जनमें आपका प्रधान स्थान है। धनिक वर्गके अलग रहते हुअे अिस धर्म युद्धमें, जो आज भारतवर्षमें छिड़ रहा है, सफलता मिलना मुझे बहुत ही कठिन दिखाअी देता है।

अखिल भारतकी राष्ट्रीय समितिने स्वराज्य प्राप्तिके लिअे अब जो कदम अुठाया है, अुसमें आप लोगोंकी ओरसे सहायता मिलने पर ही संपूर्ण सफलता मिल सकती है। अुक्त समितिने निश्चय कर लिया है कि आगामी ३० सितम्बर तक परदेशी कपड़ोंका पूरा बहिष्कार कर दिया जाय। मैंने आप ही के विश्वास पर सितम्बर मासकी अवधि रखनेकी सलाह दी। अतअेव अिस स्वदेशी आन्दोलनको प्रबल बनानेके समयमें 'हिन्दी-नवजीवन' का प्रकाशित होना अुचित ही है।

राष्ट्रीय जीवनमें आजकल तो व्यापार-वृत्ति और दास-वृत्ति देखी जाती है। ज्ञान और शौर्य्यका अभाव मालूम होता है। अब हमारे व्यापारी-समाज तथा दासवर्गको ज्ञान और शौर्य्य प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। हमें अिस बातका ज्ञान होना चाहिये कि विदेशी

कपड़ेके व्यापारसे हमारा देश मटियामेट हो गया है। और अुस व्यापारका त्याग करनेका शौर्य्य भी हमें होना चाहिये। यदि हममें अितना भी बलिदान करनेका शौर्य्य नहीं है जितना कि विदेशी कपड़ेके व्यापारके त्यागके लिअे आवश्यक है, तो हम अपने धर्मका पालन नहीं कर सकते; अपने ही भाअी-बहनोंको नुकसान पहुंचाकर हमने करोड़ों रुपये अिकट्ठा किये और अुसमें से लाखोंका दान किया, तो यह पुण्य नहीं है। अिसलिअे आप भाअी और बहनोंसे मेरी प्रार्थना है कि आप परदेशी कपड़ेका बहिष्कार करनेमें और खद्दर (गाढ़ा) तैयार करनेमें पूरा साहस दिखाकर अपनी पिछली देश-सेवाकी वृद्धि करें।

हिन्दी-नवजीवन, १९–८–'२१ आपका,

मोहनदास करमचंद गांधी

३

बिहार-निवासियोंके प्रति

बिहारकी श्रद्धा और भक्ति अवर्णनीय है। गो-माताके प्रति आपके प्रेमको मैं अच्छी तरह जानता हूं। आप भक्तशिरोमणि तुलसीदासके पुजारी हैं। आप दयाधर्मके पालक हैं। गो-माताको बचानेका सुवर्ण-मार्ग अेक ही है। आप मुसलमान भाअियोंकी खिलाफत-रूपी गायको बचानेमें सहायता करें। मुसलमान-भाअी प्रेमके वश होकर गायको बचा सकते हैं। हमारा धर्म नहीं सिखाता है कि हम अेक प्राणीको बचानेके लिअे मनुष्यका जी लें। जिसको हम बचाना चाहते हैं, अुसके लिअे हम अपना ही प्राण दें। अिसको हमारा धर्म तपश्चर्या कहता है। तपश्चर्यासे ही हम धर्मका पालन कर सकते हैं। तपश्चर्या दयामूलक है, और दयामें ही धर्म है।

जबतक हम पापरहित नहीं बने हैं, तबतक हम कैसे दूसरोंको कुछ भी कह सकते हैं? हमारे ही हाथोंसे क्या गो-हत्या नहीं होती है? हम गो-माताके वंशके प्रति कैसा बरताव करते हैं? बैलों पर

हम कितना बोझ डालते हैं? बैलोंको तो ठीक, पर गायको भी हम पूरा खाना देते हैं? गायके बछड़ेके लिअे कितना दूध रखते हैं? गायको कौन बेचते हैं? थोड़े पैसेके लिअे जो हिन्दू गायको बेचते हैं, अुनको हम क्या कहते हैं? क्या करते हैं?

अंग्रेज सिपाहियोंके लिअे हमेशा गायें काटी जाती हैं। अिसके लिअे हमने क्या किया है? अिन सब बातोंको समझते हुअे हम क्यों अपने मुसलमान भाअियों पर, जो अपना धर्म समझकर गो-कुशी करते हैं, क्रोध करें? कमसे कम हमारे हाथोंका मैल तो हमें अवश्य निकालना ही चाहिये।

अीश्वरका बड़ा अनुग्रह है कि हमारे मुसलमान भाअियोंने बकर-अीदके दिन बड़ी खामोशी रखी, हमारी मुरव्वत की और जहां तक हो सका अुन्होंने गो-कुशी न की। अिसलिअे हम अुनके अेहसानमंद हुअे हैं।

लेकिन भविष्यमें भी अैसा ही हो, अिसका खयाल रखना आवश्यक है। अिसलिअे हम बकरे अित्यादिके मांसका त्याग करें। अैसा करनेसे अिन चीजोंका दाम कम होगा और गायका दाम बढ़ेगा। गायका सौदा ही हमें असंभव कर देना चाहिये। यह सब कार्य हमसे तभी हो सकेगा, जब हम अपने प्रत्येक कार्यमें विवेक, दया, बुद्धि और त्यागका प्रयोग करेंगे।

आपमें धर्म पर बड़ी श्रद्धा है। जिस देशमें जनक, बुद्ध और महावीरने जन्म लिया है अैसे पवित्र स्थानमें रहकर आप धीरज और धर्मको साथ रखते हुअे बड़ा कार्य कर सकते हैं, और गो-माताकी रक्षा करनेका धर्म-मार्ग सारे भारतवर्षको बता सकते हैं।

तेजपुर, आसाम, भाद्रपद कृष्ण ४
हिन्दी-नवजीवन, २–९–'२१

४

महात्मा गांधीका आखिरी संदेश

अदालतसे बिदा होते समय महात्माजीने कहा :

"मुझे अब संदेशा देनेकी आवश्यकता नहीं। मेरा संदेश तो लोग जानते ही हैं। लोगोंसे कहिये कि हरअेक हिन्दुस्तानी शांति रखे। हर प्रयत्नसे शांतिकी रक्षा करे। केवल खादी पहने और चरखा काते। लोग यदि मुझे छुड़ाना चाहते हों तो शांतिके ही द्वारा छुड़ावें। यदि लोग शांति छोड़ देंगे, तो याद रखिये मैं जेलमें ही रहना पसन्द करूंगा।"

हिन्दी-नवजीवन, १९–३–'२२

५

'हिन्दी नवजीवन' के पाठकगण !

मुझे हमेशा अिस बातका दुःख रहा है कि मैं 'हिन्दी नवजीवन' का संपादक रहते हुअे भी अुसमें कुछ लिखता नहीं हूं। अिसी कारण मैं अपनेको अुसका संपादक होनेके लायक भी नहीं मानता हूं।

मैंने संपादकका पद केवल श्री जमनालालजी बजाजके प्रेमके वश होकर ही ग्रहण किया है। जबतक अुसमें केवल गुजराती और अंग्रेजीका अनुवाद ही आता है, मुझे संतोष नहीं हो सकता। समय मिलने पर अब 'हिन्दी नवजीवन' में भी कुछ न कुछ लिखनेकी कोशिश करूंगा।

पर अिस लेखके लिखनेका कारण दूसरा है। मैं देखता हूं कि 'हिन्दी नवजीवन' में नुकसान रहता है। अेक समय अुसके ग्राहक कोअी १२,००० थे, आज १,४०० हैं। 'हिन्दी नवजीवन' के स्वावलंबी होनेके लिअे ४,००० ग्राहकोंकी आवश्यकता है। यदि अितने

ग्राहक थोड़े समयमें न होंगे, तो मेरा अिरादा है कि 'हिन्दी नवजीवन' बंद कर दिया जाय। मेरा हमेशा यह विचार रहा है, और *जेलमें वह अधिक दृढ़ हो गया है, कि जो अखबार स्वावलंबी नहीं है और जिसको अिश्तहारोंका सहारा लेना पड़ता है अुसको बंद कर* देना चाहिये। अिसी नियमके मुताबिक यदि 'हिन्दी नवजीवन' स्वावलंबी न हो सके, तो मैं अुसे बंद कर देना मुनासिब समझता हूं। यदि आप अिसकी आवश्यकता समझते हों, तो ग्राहक-संख्या बढ़ानेका अेक अच्छा अुपाय यह है कि आप अपने मित्रोंको अिसके ग्राहक बनानेकी कोशिश करें। आपको यह जानना अुचित है कि मैंने 'यंग अिंडिया' के लिअे भी अैसा ही अिरादा जाहिर किया है। मेरे अिस निश्चयका सबब आप केवल नैतिक या आध्यात्मिक समझें।

गुजराती 'नवजीवन' में 'हिन्दी नवजीवन' और 'यंग अिंडिया' के नुकसानका बोझ अुठाने पर भी फायदा रहा है। पांच सालकी अुम्रमें ५०,००० बचे हैं। वे सार्वजनिक कामोंमें सूतचक्र—चरखा और खादी-प्रचारमें खर्च किये जायंगे। अिसका ब्यौरा आपको गुजरातीके अनुवादमें मिलेगा। यदि 'हिन्दी नवजीवन' में लाभ होगा, तो वह दक्षिण प्रान्तोंमें हिन्दी-भाषाका प्रचार करनेमें व्यय किया जायगा। मेरा विश्वास है कि अैसी सादी हिन्दीका प्रचार, जिसे हिन्दू व मुसलमान भाअी-बहन समझ सकें, दक्षिणमें होनेकी बड़ी आवश्यकता है। आप यदि अिस खयालको पसंद करें तो 'हिन्दी नवजीवन' का प्रचार करनेमें यथाशक्ति परिश्रम करें।

फाल्गुन कृष्ण १४, बृहस्पतिवार
हिन्दी-नवजीवन, ६–४–'२४

६

प्रिय पाठकगण!

आजकल अुत्तर-हिन्दुस्तानके कअी अखबारोंमें हिन्दू-मुसलमानोंके दिल बिगाड़नेकी कोशिश हो रही है। अुन अखबारोंमें द्वेष, अत्युक्ति अित्यादि झूठके लक्षण दिखाअी देते हैं। अिसलिअे अैसे मौके पर आपका और मेरा कर्तव्य है कि हम अिस बढ़ती हुअी ज्वालाको बुझानेकी पूरी पूरी कोशिश करें। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमारे बीचमें अंतराय — तफरका — पड़नेका कोअी कारण नहीं है। हम सब अपने अपने धर्म-कर्म पर कायम रहते हुअे अेक-दूसरेके साथ भाअीके मुआफिक बरताव कर सकते हैं। अिसी तरह रहना हमारा धर्म है। अिसलिअे मैं अुम्मीद रखता हूं कि आप सब लोग दोनों कौमोंमें भाअी-चारा बढ़ानेकी निरंतर कोशिश करेंगे। हिन्दू या मुसलमानोंके खिलाफ जो कुछ कहा या लिखा जाय, अुसे आप बगैर जांचे और छान-बीन किये हरगिज न मानें।

जुहू, चैत्र शुक्ल ६
हिन्दी-नवजीवन, १३–४–'२४

७

झरियामें वचन-भंग

मौलाना महम्मदअलीके साथ जब मैं झरिया गया था, तब वहांके लोगोंने बहुतेरी रकम तिलक-स्वराज्य-कोषमें दी थी। यह देखकर कि बिहारमें रहनेवाले मारवाड़ी और गुजराती भाअियोंने बिहारकी तरफसे अेक बड़ी रकम दी, हमें बड़ी खुशी हुअी थी। अुनका वादा यह था कि रकम तुरत अदा कर देंगे। अिस वादेको आज तीन साल हो गये। अब झरियासे अैसा पत्र आया है कि कितने ही कच्छी भाअियोंने जो रकम खुद लिखाअी थी, वह अदा नहीं की। अिसे सुनकर हर शख्सको दुःख हुअे बिना न रहेगा। दिये हुअे

वचनका पालन करनेकी महिमा शास्त्र-प्रसिद्ध है। जहां लगातार वचन-भंग होते रहते हों, वहां प्रगति कैसे हो सकती है? वचन-भंगसे कुटुंबका और राष्ट्रका भी नाश हुआ है। नीतिशास्त्रके अनुसार अकतरफा वचनकी कीमत दो-तरफा वचनसे अधिक है, और वचनकी कीमत लेखसे अधिक है। अिन भाअियोंका वचन अकतरफा था और अुनके पालनका आधार केवल अुनकी सत्यनिष्ठा है। मैं अुनसे निवेदन करता हूं कि वे अपने वचनका पालन करें। यदि वे वचनका महत्त्व समझते हों तो प्रायश्चित्तके तौर पर अुसका दुगुना ब्याज भी दें।

हिन्दी-नवजीवन, २७–४–'२४

८

मिलकी पूनियां

कितनी ही जगह अभी मिलकी पूनियां काममें लाअी जाती हैं। चरखेकी शुरुआतके जमानेमें लोग यह नहीं जानते थे कि पूनियां किस तरह बनानी चाहिये। अुस समय मिलकी पूनियोंका अिस्तेमाल मजबूरन करना पड़ता था। पर आज तो मिलकी पूनियोंका अुपयोग असह्य समझना चाहिये। जो चरखेका रहस्य न समझता हो, वही मिलकी पूनी अिस्तेमाल करेगा। हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तानके गांव गांव और घर घरमें चरखा पहुंच जाय। हिन्दुस्तानमें सात लाख गांव हैं। कितने ही तो रेलसे बहुत ही दूर हैं। वहां मिलकी पूनियां पहुंचाना असंभव है। फिर जिस गांवमें कपास पैदा होती है, वहांसे वह दूसरी जगह जाकर लुढ़े, फिर मिलमें जाय, वहां धुनकी जाय और वहांसे फिर पूनीके रूपमें अुसी गांवको पहुंचे और वहां सूत काता जाय — यह तो अैसा ही हुआ कि बंबअीमें आटा साना जाय और किसी दूर देहातमें अुसकी रोटियां पकाअी जायं। रूअी वहीं धुनकी जाय जहां वह काती जाय और जहां अुगे वहीं लोढ़ी जाय। वर्तमान अस्वाभाविक पद्धतिका समूल नाश होना ही चाहिये। चरखा-प्रचारके मूलमें ही अुसके पहलेकी तमाम क्रियायें समाअी हुअी हैं।

हिन्दी-नवजीवन, २७-४-'२४

९

चरखेके प्रति अुदासीनता

अेक सज्जन काशीजीसे लिखते हैं कि बोर्ड अित्यादिमें हमारे लोगोंके जानेसे कुछ लाभ नहीं हुआ; बल्कि रचनात्मक काम थम गया है। वे यह भी लिखते हैं कि अिन लोगोंकी चरखेके प्रति अुदासीनता है। बहुतेरे लोगोंका विश्वास भी चरखेमें नहीं है। जब अिन सज्जनोंसे कुछ कहा जाता है तो वे अुत्तर देते हैं — हम गांधीजीके कहने पर बोर्डमें गये हैं।

प्रथम बात तो यह है कि मैं नहीं चाहता कि कोअी शख्स मेरे कहनेसे कुछ भी करे। जो कुछ करे अपनी ही रायके मुताबिक करे। हम स्वतंत्र बनना चाहते हैं। किसी व्यक्तिके — फिर वह कैसा ही प्रभावशाली हो — गुलाम बनना नहीं चाहते। मेरी राय तो अैसी है कि लोकल बोर्ड अित्यादिमें जानेकी खास आवश्यकता नहीं है। यदि हम जायं तो सिर्फ रचनात्मक काम करनेके अिरादेसे। अिसलिअे यदि यह काम भली-भांति न हो सके, तो हमें अैसी संस्थाका त्याग करना चाहिये।

मैं जानता हूं कि चरखेकी शक्तिमें बहुतसे असहयोगियोंका अविश्वास है। अुनको विश्वास दिलानेका अेक ही अुपाय है कि जिनको विश्वास है वे अधिक अुत्साहसे खुद चरखा चलावें और दूसरोंको प्रोत्साहित करें। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि चरखेके बिना स्वराज्य मिलना और कायम रखना असंभव है। हां, अेक बात है। संभव है कि स्वराज्यके मानी हम सबके दिलमें अेक न हों। मैं अेक ही अर्थ करता हूं — **हिन्दुस्तानकी कंगालीका मिटना और प्रत्येक स्त्री-पुरुषका आजाद होना**। पूछो हिन्दुस्तानके भूखसे पीड़ित भाअी-बहनोंसे। वे कहते हैं कि हमारा स्वराज्य **हमारी रोटी** है। सिर्फ काश्तकारीसे हिन्दुस्तानके करोड़ों किसान अपना पेट नहीं भर सकते। अुन्हें किसी

न किसी दूसरे अुद्यमकी सहायता आवश्यक है। अैसा सार्वजनिक अुद्यम चरखेके ही द्वारा मिल सकता है। "भूखे भगति न होअि गोपाला।"

दूसरे सज्जन लिखते हैं कि जिन्होंने असहयोग-आंदोलनके कारण अपना धंधा छोड़ दिया है, अुनके निर्वाहका कुछ न कुछ प्रबंध होना चाहिये। अिस प्रश्नका जल्दीसे हल होना मुश्किल है और न भी है। यदि सब लोग रचनात्मक-कार्यका मर्म समझ लें, तो भूखका प्रश्न अुठ ही नहीं सकता। यदि रचनात्मक-कार्यमें श्रद्धा न हो, तो भूखका प्रश्न सदाके लिअे रह जायगा। मेरा दृढ़ मन्तव्य है कि जिसको चरखे और करघेमें विश्वास है, अुसे आजीविका मिल सकती है। देशमें मध्यम वर्गकी जो कठिनाअियां हैं, अुनका अिलाज अुद्यमसे ही हो सकता है। हमारे अंदर कितने ही बुरे रिवाज हैं। अुन्हें हमको छोड़ना होगा। अेक आदमी यदि मजदूरी करे और दूसरे दस कुछ न करें तो बुनाअीके द्वारा हमें आजीविका नहीं मिल सकती। और अैसा भी न होना चाहिये कि सब लोग महासभाका ही मुंह देखते रहें। स्वराज्यमें यह भी तो होना चाहिये कि हम सब स्वावलंबी बनें। अुसीका नाम आत्मविश्वास है। भक्तवत्सल गोपालने अपनी गीतामें प्रत्येक मनुष्यके लिअे आजीविकाकी अेक शर्त रखी है। जो भूख मिटाना चाहता है अुसे यही करना चाहिये। यज्ञके कअी अर्थ हैं। अेक आवश्यक अर्थ मजदूरी है। जो मनुष्य मजदूरी नहीं करता है और खाता है, अुसको भगवान्‌ने चोर कहा है।

हिन्दी-नवजीवन, ४–५–'२४

१०

कांगड़ी गुरुकुलमें

अिस गुरुकुलके विद्यार्थियोंको मैंने अुनके अुत्सवके समय अेक खत भेजा था। अुसके अुत्तरमें अेक खत कअी दिन हुअे मिला है। गुरुकुलके बालकोंका प्रेम चरखे पर कैसा है यह जाहिर करनेके लिअे मैं खतका थोड़ा हिस्सा पाठकोंके सामने पेश करता हूं:

"यद्यपि आपके संदेशके लिअे यह अुत्तर बहुत ही अपूर्ण है, यह हम अच्छी तरह समझते हैं; फिर भी हम अपने काते हुअे अिस थोड़ेसे सूतकी श्रद्धापूर्ण भेंट आपके पूज्य चरणोंमें रखना चाहते हैं। यह सूत अिसी राष्ट्रीय सप्ताहमें (७ अप्रैलसे १३ अप्रैल तक) सात दिन तक चौबीस घंटे अखण्ड सूतचक्र चलाकर हमने अिसी प्रयोजनके लिअे कातकर तैयार किया है कि हमारी तुच्छ भेंट स्वीकार हो। अिसमें (चतुर्थ श्रेणीके) हममें से छोटे बालकोंका काता हुआ भी कुछ सूत अलग रखा है। यद्यपि यह अखंड चरखा चलाकर नहीं काता गया है तथापि हम समझते हैं कि आपमें प्रेम रखनेवाले ये छोटे बालक अवश्य ही आपके प्रेमपात्र हैं। अतः अिनका प्रेमपूर्वक काता हुआ यह राष्ट्रीय सप्ताहका सूत भी आपके चरणार्पित होनेके योग्य ही है।"

हिन्दी-नवजीवन, १–६–'२४

११

क्या सिक्ख हिन्दू हैं?

पंजाबसे अेक मित्र लिखते हैं:

"वायकोमवाली टिप्पणीमें आपने सिक्खोंको भी मुसलमानों और ओीसाअियोंके साथ अहिन्दुओंमें गिना है। अिस बात पर अकाली लोग थोड़े बहुत बिगड़े हैं। बहुतसे लोगोंको मैंने यह शिकायत करते सुना है कि सिक्खोंने बाजाब्ता अपनेको हिन्दू धर्मसे कभी अलहदा नहीं किया है। हां, कुछ अपनेको हिन्दू नहीं कहते हैं। सो अिस पर वे कहते हैं कि यों तो स्वामी श्रद्धानन्द भी कुछ समय पहले अपनेको हिन्दू कहलवाने पर बड़ी आपत्ति किया करते थे। शि० गु० प्र० कमेटीके कितने ही सदस्य हिन्दू-सभाके सदस्य हैं; और यद्यपि कुछ अकालियोंके दिलमें यह भाव है कि हिन्दू-धर्मसे अपना ताल्लुक तोड़ देना बेहतर है, तो भी अेक बड़ी जमात अैसी भी है जो अैसा नहीं चाहती। हां, अपने मंदिरोंको वे आम हिन्दू मंदिरोंसे अलहदा और अपने कब्जेमें रखना जरूर चाहते हैं। पर हिन्दुओंके प्रत्येक सम्प्रदायका यही हाल है। जहां तक मुझे पता है, जैन लोगोंको अैसा हक हासिल है और मुझे बताया गया है कि आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी तथा दूसरे लोग, जो कट्टर या सनातनी हिन्दू नहीं हैं, जो दावा करते हैं अुससे अधिक दावा सिक्ख लोग नहीं कर रहे हैं। यहांके सिक्ख नेताओंसे घनिष्ठ परिचय होने और सिक्ख-आन्दोलनके कुछ अध्ययन-मननके बाद मैं खुद भी यह महसूस करता हूं कि अकालियोंको अहिन्दू कहना अुनके साथ पूरा पूरा न्याय नहीं करना है।"

मुझे यह जानकर बहुत खुशी होती है कि सिक्ख मित्रोंको अुन्हें अहिन्दू मानने पर बुरा मालूम हुआ है। मैं अुन्हें यकीन दिलाता

हूं कि मेरा अिरादा मुतलक अैसा नहीं है। जब मैं पंजाब यात्रा कर रहा था, सिक्खोंके बारेमें अेक जगह मैंने कहा था कि मैं सिक्खोंको हिन्दू जातिका अेक अंग मानता हूं। मेरे अैसा कहनेका कारण यह था कि लाखों हिन्दू गुरु नानकको मानते हैं; और ग्रंथ साहबमें हिन्दू भाव और हिन्दू कथायें भरी पड़ी हैं। लेकिन अुस सभामें अेक सिक्ख मित्र थे। मुझे अलहदा ले जाकर अुन्होंने बड़ी संजीदगीके साथ कहा कि आपके सिक्खोंको हिन्दू जातिमें शामिल करनेसे लोगोंको बुरा मालूम हुआ है। और अुन्होंने सलाह दी कि आगे हिन्दुओंके साथ साथ सिक्खोंका नाम हरगिज न लेना। पंजाबके दौरेमें मैंने देखा कि मेरे मित्रने जो चेतावनी दी थी वह ठीक थी। क्योंकि मैंने देखा कि बहुतेरे सिक्ख अपने धर्मको हिन्दू धर्मसे पृथक् मानते थे। मैंने अुन मित्रसे कहा कि अब मैं कभी सिक्खोंको हिन्दू न कहूंगा। अैसी हालतमें मुझे अिस बातसे बढ़कर खुशी नहीं हो सकती कि सिक्ख आम तौर पर अपनेको हिन्दू मानते हैं और अलहदा माननेवाले लोग बहुत ही थोड़े हैं। आर्यसमाजियोंके यहां भी मुझे अैसा ही अनुभव हुआ। वे भी मेरे सहज भावसे हिन्दू कहने पर बिगड़ अुठे थे। अेक सज्जनको मैंने हिन्दू कहा। मेरा अिरादा अुनका दिल दुखानेका न था। पर अुन्होंने अिस बातमें अपना अपमान समझा था। मैंने अुसी दम माफी मांग ली, तब अुन्हें तसल्ली हुअी। कुछ जैन लोगोंका भी अनुभव मुझे अिससे अच्छा नहीं हुआ। मेरे महाराष्ट्रके दौरे में कुछ जैनोंने मुझसे कहा था कि हमारी जाति हिन्दुओंसे जुदी है। जैनोंका यह मत मेरी समझमें आज तक नहीं आया। क्योंकि जैनधर्म, बौद्धधर्म और हिन्दू धर्ममें बहुतसी बातें सर्व-सामान्य हैं। हां, आर्यसमाजियोंका अेतराज कुछ समझमें आ सकता है; क्योंकि वे वेदों और अुपनिषदोंको छोड़कर किसीकी बातको नहीं मानते — वे मूर्ति-पूजा और पुराणोंके बुरी तरह खिलाफ हैं। लेकिन जैनधर्म और बौद्ध धर्मका अैसा कोअी झगड़ा, जहां तक मैं जानता हूं, हिन्दू धर्मके साथ नहीं है। हां, जैनधर्म और बौद्धधर्मने हिन्दूधर्ममें जबरदस्त सुधार करना चाहा है। बौद्धधर्मने आभ्यंतर शुद्धता पर ज्यादा जोर दिया है; और वह अुचित भी है।

वह सीधे हृदयको जाग्रत करता है। अुसने अुच्चता और श्रेष्ठताकी अुद्धत भावनाको छिन्न भिन्न कर डाला। जैनधर्ममें तर्कशक्ति चरम सीमा तक पहुंच गअी है। अुसने किसी बातको गृहीत करके विचार नहीं किया है। और बुद्धिबलके द्वारा आध्यात्मिक तथ्योंका निर्णय किया है। मेरी रायमें अिन दो सुधारक धर्मोंने जो साहित्य अुत्पन्न कर रखा है, अुसका बहुत थोड़ा ज्ञान हमें है।

मेरे विचार अिस किस्मके हैं। अिसलिअे मैं आशा करता हूं कि मेरे सिक्ख मित्र अिस बातको मानेंगे कि मैंने अुन्हें जो अहिन्दू लिखा है, वह केवल अुनके भावोंका खयाल करके और अपनी अिच्छाके खिलाफ लिखा है।

हिन्दी-नवजीवन, ८–६–'२४

१२

परिषदोंके नियोजकोंको अिशारा

लोग कहते हैं: "बड़ी बड़ी सभाओं, जलसों और व्याख्यानोंके दिन चले गये। अब मुंह बंद करके काम करनेके दिन आ गये हैं।" लेकिन परिषदों अथवा जलसोंके संचालक हमेशा चाहते हैं कि खूब धूमधाम हो। अिस मोहमें वे कअी बार सत्यको भूल जाते हैं और भोली-भाली जनताको धोखा देकर परिषदकी तैयारी करते हैं। अेक परिषद्की विज्ञप्तिमें लिखा है:

> "बहुत हर्षकी बात है कि अधिवेशन बहुत बड़ी धूमधामसे होना निश्चित हुआ है। महात्मा गांधी, अली-बंधु, पंडित जवाहरलाल नेहरू, डॉक्टर किचलू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, देवदास गांधी, शंकरलाल बैंकर, राजगोपालाचारी, सेठ जमनालाल बजाज, मौलाना अ० जबारखां, श्रीमती गांधी, बीअम्मा साहिबा, तपस्वी सुन्दरलाल, माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीमती सुभद्राकुमारी आदि आदि प्रमुख नेताओंके पधारनेकी संभावना है।"

संभव है कि स्वागत-कारिणी सभाने अैसे नेताओंको निमंत्रण पत्र भेजा हो, लेकिन जब तक कमसे कम अुनकी तरफसे अिस आशयका जवाब न मिले कि 'आनेकी कोशिश करूंगा' तबतक अैसा लिखना कि अुनके पधारनेकी संभावना है, अयथार्थ है। लोगोंके मनमें भ्रम पैदा करनेकी अिच्छा कितनी ही अच्छी हो तो भी यह कार्य अनुचित ही है। लोग अेक-दो दफे धोखेमें आ जा सकते हैं, लेकिन थोड़े ही समयमें कार्यकर्तागण अपनी प्रतिष्ठा और लोगोंका विश्वास खो बैठते हैं। अब्राहम लिंकनने ठीक ही कहा है: "हम थोड़े लोगोंको हमेशा धोखा दे सकते हैं और सब लोगोंको कुछ समय धोखा दे सकते हैं, लेकिन सब लोगोंको हमेशा धोखा देना अशक्य है।"

हिन्दी-नवजीवन, १–६–'२४

१३

तीन प्रश्न

अेक सज्जन लिखते हैं:

(१) क्या कताओी-बुनाओी करनेसे मनुष्य शूद्र नहीं बनता है?

(२) क्या जो मनुष्य अपनी बुद्धिके बलसे ज्यादा कमाओी करता है, अुसका भी कताओी-बुनाओी करके आजीविका पैदा करना अर्थशास्त्रके प्रतिकूल नहीं है?

(३) क्या सबका कताओी-बुनाओी करना श्रम-विभागके सिद्धांतको नष्ट नहीं करता है?

मेरे खयालसे शूद्र वह है जो नौकरी या दूसरोंकी मजदूरी करके आजीविका प्राप्त करता है। अिस हिसाबसे जितने आदमी नौकरी करते हैं, सब शूद्र होते हैं। जो मनुष्य स्वतंत्र धंधा करता है, अुसको शूद्र कैसे माना जाय? अिसमें मैं वर्णाश्रमकी कुछ भी हानि नहीं देखता हूं।

अब दूसरा प्रश्न। मेरी मति मुझे यह बताती है कि ओीश्वरने हमें बुद्धि आत्म-दर्शनके लिअे दी है। आजीविका तो कृषि अित्यादिसे प्राप्त

करनी चाहिये। जगतमें जो अनीति होती है, अुसका बड़ा सबब बुद्धिका दुरुपयोग है। बुद्धिके ही दुरुपयोगसे जगतमें बड़ी असमानता फैल गअी है। करोड़ों भीख मांगते हैं और सौ दो सौ करोड़पति बनते हैं। सच्चा अर्थशास्त्र वह है जिससे प्रत्येक स्त्री-पुरुषको शारीरिक अुद्यमसे आजीविका मिले। प्राचीन कालमें हमारे ऋषि लोग कृषि करते थे, गोशाला रखते थे, विद्यार्थी जंगलोंमें जाकर लकड़ियां लाते थे, अित्यादि।

अब रहा तीसरा प्रश्न। श्रम-विभागकी कुछ भी हानि नहीं होती है। क्योंकि बढ़अी, सुनार अित्यादिको बुनाअी करनेकी सलाह नहीं दी जाती है। जो नौकरी करते हैं, वकालत करते हैं, जिनके कुछ भी धंधा नहीं है, अुनको बुनाअीसे आजीविका पैदा करनेकी सलाह दी जाती है। कताअीको तो मैं आधुनिक कालमें और अिस क्षेत्रमें यज्ञ समझता हूं। बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष, धनिक, गरीब सबके लिअे कताअी आवश्यक यज्ञ है। भले जो लोग भूखों मरते हैं वे कताअी करके पेट भरें। परंतु दूसरे सब अुनके निमित्त प्रतिदिन अीश्वरके नामका स्मरण करते हुअे कातें।

हिन्दी-नवजीवन, २२–६–'२४

१४

क्या तू भी?

अेक प्रतिष्ठित मित्र लिखते हैं:

"यदि हम अवसर रहते कारगर प्रयत्न न करेंगे, तो आज जो कुछ पंजाब पर गुजर रही है कल वही संयुक्त प्रांत पर भी गुजरेगी। अवधमें हिन्दू-मुसलमानोंका तनाजा बढ़ रहा है। नमूनेके तौर पर मैं बारहबंकीके संबंधमें नीचे कुछ सच्ची बातें लिखता हूं। अुस शहरके म्युनिसिपल बोर्ड पर गहरे अिल्जाम लगाये गये हैं। अुसके मुस्लिम सदस्य, जो कि पहले पक्के असहयोगी थे और अब भी हैं, अिस्तीफा दे चुके हैं। अिसलिअे म्युनिसिपल बोर्डमें अब हिन्दू सदस्य ही रह गये हैं। अुन अिल-

जामोंके बारेमें विस्तारपूर्वक जांच करनेका समय मुझे नहीं मिला, किन्तु अेक बात बहुत कुछ साबित है और अुससे मुसलमानोंके दिलमें कटुता पैदा हो रही है। अिन हिन्दू राज्जनोंने कानून बना दिया है कि बोर्डको जितनी दरख्वास्तें दी जायं, वे सब हिन्दी लिपिमें होनी चाहियें। किसी अन्य लिपिमें लिखी दरख्वास्तें न ली जावेंगी।"

यह समाचार पाकर मुझे आश्चर्य और दुःख हुआ। क्योंकि बारहबंकी, यदि मुझे ठीक याद है तो, मौलाना शौकतअलीके गर्वकी वस्तु थी। वे बारहबंकीके हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी बड़ी तारीफ किया करते थे। मैं अब भी अुम्मीद करता हूं कि मेरे संवाददाताको गलत खबर लगी होगी। मैं विश्वास नहीं करता कि जैसा अुनके बारेमें कहा जाता है, अुन्होंने वैसी कोअी विचारहीन कार्रवाअी की होगी। हिन्दी-लिपिको मुसलमानोंसे स्वीकार करानेके लिअे जबरदस्ती करके वे हिन्दीको हानि ही पहुंचायेंगे। हिन्दुस्तानमें जहां कहीं भी हिन्दुस्तानी प्रान्तीय भाषा है वहां लोगोंको अिस बातकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वे अपनी दरख्वास्तें देवनागरीमें लिखें या अुर्दूमें। आखिरमें कौनसी लिपि मंजूर होगी, यह तो दोनों लिपियोंके आन्तरिक गुणों पर ही अवलंबित है।

यह जानना भी कठिन है कि मुसलमानोंने अिस्तीफा क्यों दिया। मैं आशा करता हूं कि बारहबंकीसे कोअी सज्जन पूरी बातें लिख भेजेंगे।

हिन्दी-नवजीवन, २९-६-'२४

१५

पाठ्य-पुस्तकोंकी जब्ती

गत १५ जुलाओको संयुक्त प्रान्तकी सरकारने नीचे लिखा सूचनापत्र जारी किया है:

> "दफा ९९ अ (१८९८ के पांचवें) में दिये अधिकारोंके अनुसार, अपनी सभाके सहित लाटसाहब यह जाहिर करते हैं कि पंडित रामदास गौड़ लिखित और बैजनाथ केड़िया, हिन्दी पुस्तक अेजेंसी, १२६ हरिसन रोड, कलकत्ताके द्वारा प्रकाशित और वणिक प्रेस कलकत्तामें मुद्रित हिंदी रीडर नं० ३, ४, ५, ६ की तमाम कापियां सरकारने जब्त कर ली हैं। अिसके सिवाय अिन रीडरोंकी दूसरी तमाम प्रतियां या अुनके अंश भी, फिर वे कहीं भी छपे हों, जब्त समझे जायें; क्योंकि रीडरोंमें स्थानिक सरकारकी रायमें राजद्रोहात्मक पाठ हैं, जिनका कि प्रकाशित करना दफा १२४ अ ताजीरात हिन्दके अनुसार दण्डनीय है।"

कोअी तीन सालसे ये रीडरें हिन्दी संसारके सामने हैं। राष्ट्रीय पाठशालाओंमें अिनका बहुत प्रचार है। म्युनिसिपल पाठशालाओंमें भी वे चलती हैं। अिसलिअे संयुक्त प्रान्तकी महासभा समितिने ठीक किया जो अध्यापक रामदास गौड़को अिस पर बधाअी दी है, अुन्हें निर्दोष बताया है और अिस सरकारी हुक्मके होते हुअे भी अुनको जारी रखनेकी सिफारिश की है। अिधर कुछ लोग शायद समझने लगे हों कि अब सरकारने असहयोगियोंके खिलाफ मनमानी कार्रवाअियां करनेकी नीतिको छोड़ दिया है। सरकारका कथन है कि अिन पुस्तकोंमें अैसे पाठ हैं जो ताजीरात हिन्दकी १२४ अ धाराके अनुसार काबिल सजा हैं। अैसी अवस्थामें वह लेखक पर मुकदमा चलाकर अुन्हें सजा दिला सकती थी। तभी अुसका यह पुस्तकें जब्त करना न्यायोचित हो सकता

था। अिन रीडरोंकी तमाम जिल्दोंकी पाठ-सूची में पढ़ गया हूं; मुझे तो वे सरकारकी दृष्टिसे बिलकुल हानिकारक नहीं मालूम होतीं। लोगोंके प्रति सरकारका कमसे कम अितना कर्तव्य अवश्य था कि वह यह बताती कि अिन पुस्तकोंका कौन कौनसा अंश आपत्ति-योग्य है, जिसमे कि लोग, यह मान लेने पर भी कि अैसे मौके पर सरकारको मनचाहा करनेका अख्तियार है, अिस बात पर विचार कर सकें कि सरकारका यह हुक्म जा है या बेजा। पर मौजूदा हालतमें तो अिस नतीजे पर पहुंचे बिना नहीं रहा जा सकता कि सरकार अिन रीडरोंकी बढ़ती हुअी लोकप्रियताको पसंद नहीं करती और अपने अुन प्रतिपालित लोगोंको फायदा पहुंचाना चाहती है, सो भी अैसे बेजा तरीकेसे, जिनकी पाठ्य-पुस्तकोंका प्रचार अध्यापक गौड़की रीडरोंके बदौलत कम हो गया है। यदि पुस्तकें सचमुच राजद्रोही पाठोंसे युक्त होतीं, तो अुसके मेहनती खुफिया विभागकी ओरसे यह बात जरूर पेश की गअी होगी। और अितने दिनोंके बाद पुस्तकोंका जब्त होना मेरे अिस अनुमानको पुष्ट करता है। मैं संयुक्त प्रान्तकी सरकारको दावत देता हूं कि वह अपने अिस फैसलेके तमाम कारण सर्वसाधारणके सामने पेश करे। मुझे यह जानकर बड़ी खुशी होगी कि मेरा अनुमान ठीक नहीं है। मैं प्रान्तीय समितिके सभापतिको सलाह देता हूं कि वे सरकारसे अिसका कारण पूछें और यदि समितिको सरकारका फैसला ठीक दिखाअी दे तो वह अध्यापक रामदास गौड़को सलाह दे कि वे अुन पुस्तकोंमें आवश्यक संशोधन कर दें या अुनका प्रचार रोक दें।

हिन्दी-नवजीवन, ३–८–'२८

१६

हिन्दू-मुस्लिम अेकता

देहलीके हालके फसादों पर प्रकाशित हकीम अजमलखां साहबका वक्तव्य जिस किसीने पढ़ा होगा वह अुसमें छिपे गहरे संतापको महसूस किये बिना न रहा होगा। कमसे कम अुसका अेक अंश यहां दिये बिना मैं नहीं रह सकता :

> "देहलीके फसादोंके वक्त जो कुछ वाकयात हुअे अुनमें सबसे ज्यादा शर्मनाक और दिल दहलानेवाले वाकयात हैं औरतों पर दुष्टतापूर्ण और नामर्दाना हमले होना। जहां तक मुझे मालूम हुआ है अेक ही मुसलमान महिलाके साथ हिन्दुओंने दुर्व्यवहार किया; परन्तु अिससे ज्यादा बुरी बात तो यह है कि १५ तारीखके फसादके वक्त कुछ अैसे लोग, जो दीने-अिस्लामके पुजारी होनेका दावा रखते हैं, सिर्फ हिन्दू मंदिर पर हमला करके और मूर्तियोंको तोड़-फोड़ कर ही संतुष्ट नहीं हुअे, बल्कि औरतों और बच्चों पर भी नामर्दाना हमले करनेमें न सकुचाये। स्त्री-जातिकी पवित्रता और अिज्जत तथा हुर्मतके प्रति अपने हम-दीन लोगोंके अिस दुष्ट भावके खयाल-मात्रसे मुझे घोर मनस्ताप होता है और मेरी रूह कांप अुठती है। अैसे गुनहगारोंकी जितनी ही निन्दा की जाय, थोड़ी है और मैं तमाम सच्चे मुसलमानोंसे अपील करता हूं कि वे मुक्तकण्ठसे बिना आगा-पीछा सोचे अिस नीचताकी निंदा करें। मैं जमैयत-अुल्-अुलेमा और खिलाफत-कमेटियोंको दावत देता हूं कि वे अुठ खड़ी हों और अिस्लामकी सारी श्रेष्ठताको अैसी जंगली निरंकुशताकी निन्दा करने और आयंदा अैसा न होने देनेमें लगावें। सच्चे मुसलमानकी हैसियतसे अैसी करतूतोंको बिलकुल नामुमकिन कर देना हमारा नैतिक फर्ज है और अगर हम अिसमें कामयाब

न हों, तो हम अिस कौमी आजादी और स्वराज्यकी कोशिशोंमें हारे ही हुअे हैं।"

अेक सज्जन मुझे अुलहना देते हैं कि हकीमजीने जिन हमलोंका जिक्र किया है अुन पर आपने अपने वक्तव्यमें कुछ नहीं कहा। फसादकी बिलकुल पहली खबरोंके आधार पर मैंने अपनी टिप्पणी लिखी थी। अुनमें अिन हमलोंका कोअी जिक्र न था। अुसके बाद हालतने बुरा रंग पलटा। यह खबर अितनी गंभीर थी कि महज डरावने तारोंके आधार पर सर्व-साधारणके सामने टीका-टिप्पणी नहीं की जा सकती थी। अिसलिअे मैंने देहलीके मित्रोंसे चिट्ठी-पत्री शुरू की; पर अब तक मैं किसी काबिल टीका-टिप्पणी करनेकी हालतमें नहीं पहुंचा हूं। खुशकिस्मतीसे मौलाना महम्मदअली अब देहली पहुंच गये हैं। वे तहकीकात कर रहे हैं और अुन्हें मैंने सुझाया है कि यदि किसी तरह मुमकिन हो तो वे महासभाके सभापतिके नाते अपनी आरंभिक तहकीकातकी रिपोर्ट प्रकाशित करें। अिस मामलेमें मुझे अपने कर्तव्यका पूरा खयाल है। फिलहाल मेरा स्थान वहीं, मौलाना साहबके साथ है। लेकिन डाक्टरोंकी सलाहके कारण अभी रुक रहा हूं। अब तक जो कुछ पथ्य-परहेज करना पड़ता है, वह सब शायद जरूरी न हो, क्योंकि यद्यपि मैं बाहर आता-जाता नहीं हूं, तो भी काम बहुत कुछ कर सकता हूं। लेकिन जहां तक मुमकिन हो मैं खतरेको बचाना चाहता हूं। जो मित्र मुझे अिस अवसर पर मेरे कर्तव्यकी याद दिलाते हैं, अुन्हें मैं यकीन दिलाता हूं कि मैंने बिलाशर्त अपनेको मौलाना महम्मदअलीके विचार पर छोड़ दिया है और मैंने अुनसे यह कह दिया है कि मेरी जरूरत आपको देहलीमें तुरंत मालूम हो, तो मेरी तन्दुरुस्तीका खयाल न करना। और यों भी हर हालतमें मैं देहली जल्दी ही जानेकी तैयारी कर रहा हूं। पर अगर मौलाना महम्मदअली मेरा वहां जल्द जाना जरूरी न समझते हों, तो मैं अगस्तके अंत-तक सफर करना नहीं चाहता। अहम-दाबादमें मेरी तन्दुरुस्ती कुछ बिगड़ गअी है और अिसलिअे श्री विट्ठलभाअी पटेलसे अनुरोध किया गया है कि आप बम्बअी

कारपोरेशनकी ओरसे मुझे दिया जानेवाला अभिनंदन-पत्र अगस्तके अंतमें देनेकी तजवीज करें। परंतु यदि देहली जानेकी जरूरत होगी, तो मैं बम्बअी जानेके पहले वहां जानेमें आगा-पीछा न करूंगा।

हिन्दी-नवजीवन, ३–८–'२४

१७

दानियोंसे प्रार्थना

गुजराती 'नवजीवन' में मैंने मलाबारके प्रलयके विषयमें लिखा है। वह तो सब पाठक पढ़ेंगे ही। परन्तु मैं जानता हूं कि हिन्दी 'नवजीवन' के पढ़नेवालोंमें कअी दानवीर भी हैं। अुनसे मेरी प्रार्थना है कि जितना धन वे दे सकें अुतना भेज दें।

हिन्दी-नवजीवन, १०–८–'२४

१८

क्षमा-प्रार्थना

'हिन्दी-नवजीवन' का तीसरा वर्ष आज पूरा होता है। मुझे कहते हुअे रंज होता है कि मैं 'हिन्दी नवजीवन' के लिअे स्वतंत्र लेख बहुत न लिख सका। पाठक अिस बातको मानें कि अिसका कारण अनिच्छा नहीं, बल्कि समयका अभाव है। और अिसके लिअे मुझे क्षमा करें।

'हिन्दी-नवजीवन' अब तक स्वावलंबी नहीं हुआ है। मैंने अेक समय जाहिर किया है कि किसी अखबारको नुकसान अुठाकर चलाना प्रजाकी दृष्टिसे अच्छा नहीं है। 'हिन्दी-नवजीवन' केवल सेवा-भावसे ही निकलता है। अिसीलिअे प्रत्येक पाठक अुस पर अपनी मालिकी समझे और अुसे स्वावलंबी बनानेकी कोशिश करे। अब २,७०० प्रतियां बिकती हैं। स्वावलंबी बननेके लिअे कमसे कम

३,००० प्रतियां बिकनी चाहिये। मैं आशा करता हूं कि पाठकगण कोशिश करके अिस घटीको दूर करेंगे।

हिन्दी-नवजीवन, १७–८–'२४

१९

गांधीजीके लिअे या देशके लिअे ?

अेक मित्र कहते हैं कि आजकल गांधीजीके नामसे विद्यार्थियोंको कातनेके लिअे जोर देकर कहनेका अेक रिवाज-सा पड़ गया है। वे पूछते हैं कि क्या यह ठीक है ?

जबतक मैं देशके लिअे और देश ही के लिअे कार्य करता रहूं, तब तक अिस प्रकारकी अपील खास परिस्थितिमें और कुछ हद तक अनुचित नहीं है। मेरे लिअे कातनेकी अपील देशके लिअे कातनेकी अपीलसे अधिक सीधी असर पहुंचा सकती है। फिर भी अिसमें कोअी शक नहीं कि सबको देशके लिअे कातना ही अुचित है। अपने लिअे अुसके आदर्श अर्थमें कातना और भी अच्छा है। क्योंकि हरअेक कार्यकर्ता जो देशके लिअे कार्य करता है, वह अपने लिअे भी कार्य करता है। जो सिर्फ अपने लिअे काम करता है, वह अपना ही नुकसान करता है। हमारा लाभ देशके लाभके अनुकूल होना चाहिये। वह अुससे जुदा न हो जाना चाहिये। वे लोग, जो केवल दिखानेके लिअे कभी कभी कातते हैं और फिर बन्द कर देते हैं, आंखोंमें धूल झोंकनेका ही प्रयत्न करते हैं।

हिन्दी-नवजीवन, १७–८–'२४

२०

पूर्णाहुतिका सन्देश

[सितम्बर १९२४ के अुपवासकी पूर्णाहुतिके अुपलक्ष्यमें देशके चारों कोनोंसे सब धर्मों और सब वर्णोंके लोगोंने गांधीजीके अभिनंदनमें जो तार और संदेश भेजे हैं, अुनके जवाबमें गांधीजीने नीचे लिखा संदेश अखबारोंमें प्रकाशित कराया था।]

अीश्वरकी महिमा अगाध है। अुसकी महिमा और करुणाका अनुभव मैं अिस समय कर रहा हूं। अुसने मुझे अग्निपरीक्षासे अुत्तीर्ण किया है। डाक और तार द्वारा मेरे नाम आये अनेक संदेशोंको पढ़ने या सुननेकी अिजाजत अभी मुझे नहीं मिली है। फिर भी जो कुछ थोड़े संदेश मुझे दिखाये गये हैं, अुनसे मेरा हृदय भर आता है। अिन संदेशोंके द्वारा देशके असंख्य भाअी-बहनोंने मुझ पर जो प्रेम-वृष्टि की है वह अीश्वरकी दयाकी गवाही देती है। अिन तमाम भाअी-बहनोंके प्रेमके लिअे मैं अुनका कृतज्ञ हूं। पर साथ ही मैं यह भी आशा रखता हूं कि अिसके बादका जो काम अब मेरे सिर पर आ पड़ा है और जिसके लिअे मेरी अंतरात्मा कहती है कि यह अीश्वरका काम है, अुसमें आप सच्चे दिलसे मेरी सहायता करें। अिस संबंधमें तीन सप्ताहके पहले जो जिम्मेवारी मेरी थी अुससे आजकी जिम्मेवारी स्पष्टतः अनेक गुना अधिक है। मेरे अुपवाससे मेरा कार्य पूरा नहीं होता है, बल्कि शुरू ही होता है। मैं अिस बातको जानता हूं और अिसीलिअे अिसमें भारतवर्षके प्रत्येक भाअी-बहनके आशीर्वाद और प्रत्यक्ष सहयोगकी आशा रख रहा हूं।

हिन्दी-नवजीवन, १२–१०–'२४

२१

असहयोगीका कर्तव्य

आगामी महासभामें शायद असहयोग मुल्तवी हो जाय। पर अिससे यह न समझना चाहिये कि असहयोगी मुल्तवी हो गया। सच पूछा जाय तो मुल्तवी हुआ है असहयोगका आभास-मात्र। जहां प्रेम है वहां सहयोग और असहयोग दोनों वस्तुत: अेक हैं। बेटा बापके साथ अथवा बाप बेटेके साथ चाहे असहयोग करे चाहे सहयोग करे, दोनों प्रेमके फल होने चाहिये। स्वार्थके वशीभूत होकर किया सहयोग, सहयोग नहीं घूस है। द्वेष-भावसे किया असहयोग महापाप है। ये दोनों त्याज्य हैं।

जो असहयोग १९२० में शुरू किया गया, अुसके मूलमें प्रेम-भाव था — भले ही लोग अुसे न जानते हों, भले ही लोग द्वेषसे प्रेरित होकर अुसमें शरीक हुअे हों। फिर भी तमाम नेता यदि अुसके मूल स्वरूपको समझे होते और अुसके अनुसार चले होते, तो जो कटु परिणाम निकले हैं वे न निकलते।

हम शांत असहयोगका रहस्य समझे नहीं। अिसीसे वैर-भाव बढ़ा और अब करनीका फल भोग रहे हैं। जिस वैर-भावसे हमने अंग्रेजोंके साथ असहयोग अंगीकार किया, वही अब हमारे आपसमें फैल गया है।

यह वैर-भाव अकेले हिन्दू-मुसलमानोंमें नहीं, बल्कि सहयोगियों और असहयोगियोंमें भी व्याप्त हो गया है।

अिस कारण, असहयोगके अिस कुफलको रोकनेके लिअे, हमें असहयोग मुल्तवी रखना पड़ता है। असहयोग मुल्तवी रखनेका अर्थ यह नहीं है कि वकील यदि फिरसे वकालत करना चाहें और विद्यार्थी सरकारी मदरसोंमें जाना चाहें, तो बिला शर्मके वकील वकालत कर सकें और विद्यार्थी सरकारी मदरसोंमें जा सकें। सच पूछिये तो जो वकील और विद्यार्थी असहयोगके सिद्धान्तको समझ गये होंगे, वे न तो फिरसे वकालत करना चाहेंगे और न फिर सरकारी मदरसोंमें भरती होंगे। बल्कि असहयोगके मुल्तवी करनेका फल तो यह दिखाओ

देना चाहिये कि हमें पश्चात्ताप हो, असहयोगी सहयोगीके गले मिलें, अुन्हें प्रेमसे जीतें, अुनका द्वेष न करें। वे खुशीसे सरकारकी सहायता लेते रहें, अदालतोंमें वकालत करते रहें, सरकारी नौकर हों या धारासभामें जाते हों। अुन सबके साथ असहयोगी मिलें-जुलें। अुन सबकी मदद हिन्दू-मुसलिम झगड़े निपटानेमें, अस्पृश्यता दूर करनेमें, विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करानेमें, शराबखोरी मिटानेमें, अफीमका दुर्व्यसन दूर करनेमें तथा अैसे अनेक कामोंमें लें और दें।

अैसे कामोंमें असहयोगीको पहले कदम बढ़ाना होगा। अुसमें असहयोगीकी कला, विवेक, सौजन्य, शांति और नम्रताकी परीक्षा होनेवाली है। सहयोगीको प्रेमसे जीतनेमें असहयोगीकी योग्यताकी कसौटी है। अेक तरफसे झूठी खुशामदसे बचें और दूसरी तरफसे जहालतसे बचें। अिन दोनों बातोंको साधनेके लिअे पहला पाठ है, हम सबका अेक होना। अीश्वर हमारी सहायता करे।

कार्तिक ब० ३, बुधवार
हिन्दी-नवजीवन, १९-१०-'२४

२२

सरकारी अराजकताकी दवा

[निम्न लिखित संदेश गांधीजीने युक्तप्रान्तीय राजनैतिक परिषद्, गोरखपुरके लिअे भेजा था। —सं०]

बंगालमें सरकारने जो राजनीति अब ग्रहण की है, अुससे सबको दुःख हो रहा है। होना ही चाहिये। परन्तु वह दुःख राजनीतिकी अराजकताके कारण नहीं है, बल्कि अुसका अुत्तर शीघ्र देनेकी हमारी अशक्तिके लिअे है। मुझे आशा है और मैं चाहता हूं कि हम अिस संकटके समय धैर्यका त्याग न करें। क्रोध और अधैर्यके वश होकर हम सच्चे अुपायकी खोज न कर सकेंगे, अैसा मेरा दृढ़ मंतव्य है। अमली कार्यका अुत्तर अमली कार्य ही हो सकता है। हम दावा करते

हैं कि सरकारकी अशांत नीतिका अुत्तर हम शांत नीतिसे ही दे सकते हैं। अशांत कार्यका अुत्तर शांत कार्यसे ही दे सकते हैं। यदि यह बात सत्य है, तो हमें सोचना चाहिये कि हम किस तरह शांत कार्यको कर सकते हैं। थोड़ा ही खयाल करनेसे हम देख सकते हैं कि हमारे अमली कार्यमें बाधा डालनेवाली सबसे बड़ी वस्तु है, हिन्दू-मुसलमानके बीच अंतर पड़ जाना। सर्वसाधारणको अेकत्र करनेमें बाधा डालनेवाली वस्तु चरखा और खद्दरके प्रति हमारी अुदासीनता है और हिन्दू जातिको नष्ट करनेवाली वस्तु अस्पृश्यता है। अिस त्रिदोषको जबतक हमने नहीं मिटाया है तब तक मेरी अल्पमति मुझको यह कहती है कि हमारे भाग्यमें सरकारी अराजकता, हमारी परतंत्रता और हमारी कंगाली बदी ही हुअी है। अिसलिअे में दूसरी कोअी सलाह कौमको नहीं दे सकता। अगर हम अिन तीन कार्योंमें सफलता प्राप्त करें, तो जो शक्ति हमने सन् १९२०-२१ में बताअी थी, अुससे भी प्रचण्ड शक्ति आज बता सकते हैं। और बंगाल ही की क्या, सारे भारतवर्षकी आपत्तिको हम दूर कर सकते हैं।

दिल्ली, ३०-१०-'२४

हिन्दी-नवजीवन, २-११-'२४

२३

२५,००० नहीं

मौलाना जफरअली खांने नीचे लिखा तार मुझे भेजा है :

"मेरे लाहौर पहुंचने पर मैंने यहांके अखबारोंमें 'यंग अिंडिया' के आधार पर यह खबर पढ़ी कि मैंने आपसे अिस सालके भीतर २५,००० मुसलमान सूत कातनेवाले कार्यकर्ता देनेका वादा किया है। सो मुझे अंदेशा है कि अिसमें कोअी गलतफहमी हुअी है। शायद मेरी बात ठीक-ठीक न समझी गअी हो। मैंने तो सिर्फ अितना ही वादा किया था कि मैं १०,००० मुस्लिम स्वयंसेवक आपकी खिदमतमें पेश करनेके लिअे हर तरहसे कोशिश करूंगा, और मैं अिस वादेपर कायम हूं।"

अिस तारको मैं बड़ी खुशीके साथ छापता हूं। जहां तक मुझसे ताल्लुक है किसी किस्मकी गलतफहमी न हुअी थी। मौलाना साहबकी प्रतिज्ञा पर मुझे अितना ताज्जुब हुआ था कि मैंने मौलाना साहबको अति अुत्साहित न होनेके लिअे चेताया था। और यह अभिवचन था भी अैसा कि जो सर्वसाधारणसे छिपा न रखा जा सकता था। यह वादा तो अेक तोहफा था। और कोअी भी दूरन्देश आदमी धर्मकी गायके दांत नहीं देखता। खैर। अब १०,००० स्वयंसेवक भी अच्छी और अुत्साह दिलानेवाली तादाद है। पर मैं मौलाना साहबको याद दिलाये देता हूं कि स्वयंसेवक वही हो सकता है जो सूत कातता हो। यह पुराना देहलीका प्रस्ताव है —जिसकी ताअीद १९२१ में अहमदाबादमें हो चुकी है। अिसलिअे मैं १०,००० मुसलमान स्वयंसेवक पर ही सब्र कर लूंगा, जो कि घड़ीके कांटेकी तरह नियमके साथ हर मास दो हजार गज अच्छा सूत कातते हों। अगर मौलाना साहब १०,००० स्वयंसेवक भी जमा कर पाये तो मुझे कोअी शक नहीं कि अुन्हें २५,००० मिलनेमें भी कोअी दिक्कत न होगी। क्योंकि अेक बार जहां चरखेके आन्दोलनका रंग जमा नहीं कि बर्फके ढेलोंकी तरह अुसका फैलाव हुआ नहीं।

हिन्दी-नवजीवन, २२–१–'२५

२४

कोहाटकी जांच

कोहाटकी दुर्घटनाके संबंधमें मैं अपना और मौलाना शौकत-अलीका वक्तव्य अब प्रकाशित कर सका हूं। अिससे पहले अुसे प्रकाशित करना संभव न था, क्योंकि मैं और मौलाना दोनों सफरमें रहते थे और हमेशा दोनों अेक जगह नहीं ठहरते थे। मैं यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकता कि अिस अवसर पर अिन वक्तव्योंको प्रकाशित करनेसे कोअी बड़ा लाभ होगा, सिवा अिसके कि अिससे मेरा वादा पूरा होगा, जो मुझे किसी न किसी तरह पूरा करना चाहिये था। लेकिन अिनके प्रकाशित हो जानेसे प्रकारांतरसे अेक फायदा जरूर होगा। हम लोगोंने वही प्रमाणों परसे जो अनुमान निकाले हैं, अुनमें बड़ा वास्तविक भेद है। गवाहोंकी गवाही पर विश्वास रखनेके हमारे परिमाणमें भी भेद है। जब हमने अिस मतभेदको महसूस किया तो हमें बड़ा दुःख हुआ, और अिस मतभेदको जितना भी हो सके दूर करनेकी कोशिश की। हमारे अिस मतभेदको हमने हकीम साहब और डॉ० अंसारीके सामने पेश किया और अुनसे मदद मांगी। सद्भाग्यसे अुस समय जब हम अिस पर विचार करते थे, पंडित मोतीलालजी भी वहां मौजूद थे। अिस वादविवादमें हमें कोअी बात अैसी न मिली जो हमारी दृष्टिमें वास्तविक परिवर्तन कर दे। यह बहस देहलीमें हुअी थी। हमने फिर यह निश्चय किया कि कुछ घंटे हम दोनों साथ साथ सफर करें और अपने हृदयकी अिस दृष्टिसे परीक्षा करें कि हम अपने वक्तव्योंको फिर बदल सकते हैं या नहीं। कुछ बातोंको बदल देनेके सिवा हमारा मतभेद दूर नहीं हो सका है। हम लोगोंने हकीम साहबकी अिस सूचना पर भी विचार किया कि हमारा वक्तव्य प्रकाशित ही न किया जाय। कुछ अंश तक पंडित मोतीलालजीने भी अिसका समर्थन किया था। लेकिन हम, कमसे कम मैं तो अिस नतीजे पर पहुंचा हूं कि जनता, जो मुझे और अली भाअियोंको कुछ सार्वजनिक प्रश्नों पर हमेशा अेक मानती थी, अुसे

यह भी जान लेना चाहिये कि कुछ प्रश्नों पर हममें भी मतभेद हो सकता है। लेकिन हमें अेक-दूसरेके प्रति यह शंका नहीं हो सकती कि हममें से कोअी जानकर पक्षपात करता है या सत्य प्रमाणोंको तोड़-मरोड़कर अुससे अपना मतलब निकाल लेता है। और हमारे परस्परके प्रेममें भी कोअी बाधा नहीं आ सकती है। हम यदि खुले तौरसे अपने मतभेदोंको स्वीकार कर लेंगे, तो अुससे जनताको आपसमें सहनशील बननेका सबक भी मिलेगा। जन-समाजसे में यह कह देना चाहता हूं कि अिस मतभेदको दूर करनेके प्रयत्नमें मैंने या मौलाना साहबने कोअी बात अुठा नहीं रखी है। लेकिन अपनी रायको छिपानेका भी कोअी प्रयत्न नहीं किया गया था। हमारे असल वक्तव्यमें हमने कुछ रद्दोबदल की है, लेकिन दोमें से अेकने भी किसी बातमें अपने निश्चित मतका त्याग नहीं किया है। हम दोनोंने कुछ जगहोंमें किसीको बुरा न मालूम हो अिसलिअे भाषाको कुछ मुलायम बनाया है। लेकिन अिसके सिवा असल वक्तव्योंका कुछ भी वास्तविक रूपांतर नहीं किया गया है।

हिन्दी-नवजीवन, २६-३-'२५

२५

शंका-निवारण

आजकल मुझे देशबन्धु-स्मारकके लिअे द्रव्य अिकट्ठा करने कअी सज्जनोंके यहां जाना पड़ता है। अैसे धनिक महाशयोंमें श्री साधुराम तुलारामजी हैं। अुनके यहांसे चंदा तो अच्छा मिला ही; परन्तु वहां कुछ धर्मकी चर्चा भी हुअी। चर्चामें अस्पृश्यताका विषय भी था। किसी महाशयने मुझसे कहा कि अखबारोंमें अैसी खबर छपी है कि में कहता हूं कि जिनको हम अस्पृश्य मानते हैं, अुनसे रोटी-बेटी-व्यवहार भी होना चाहिये। अिस शंकाका निवारण अुन भाअियोंको, जिन्होंने प्रश्न किया था, आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। और अुन्होंने मुझसे कहा कि जो बात आपने यहां कही है, अुसका सारांश आप

हिन्दी नवजीवनमें दे दीजिये। मैंने अुनकी सलाहको मान लिया। अुसका सारांश मैं यहां देता हूं।

प्रथम तो जनताको मालूम होना चाहिये कि मैं अखबार नहीं पढ़ता हूं; और यदि पढ़ भी लेता हूं तो जितनी भी गलतियां मेरे नाम पर छपती हैं, सबको दुरुस्त करना मैं असंभव समझता हूं। अिसलिअे प्रत्येक मनुष्य जिसको कुछ भी शंका हो मुझे पूछ ले कि मैंने क्या कहा था?

अिसी अस्पृश्यताके विषयमें यदि किसीने अैसा छाप दिया है कि मैं अस्पृश्य भाअियोंके साथ रोटी-बेटी-व्यवहार चाहता हूं, या मैं अुसको अुत्तेजना देता हूं, तो वह भूल करता है। मैंने हजारों बार स्पष्टतया कह दिया है कि अस्पृश्यता-नाशका यह अर्थ कभी नहीं है कि रोटी-बेटी-व्यवहारकी मर्यादा तोड़ दी जाय। रोटी-बेटी-व्यवहार किसके साथ किया जाय और किसके साथ नहीं, यह अेक अलग बात है। अुसका निर्णय करनेकी कोअी आवश्यकता मुझे अिस समय प्रतीत नहीं होती।*

मेरा तो यह भी विश्वास है कि दोनों प्रश्नोंको साथ मिलानेसे जिस सुधारको हम आवश्यक मानते हैं, वह भी रुक जायगा। अस्पृश्यताको दूर करना प्रत्येक हिन्दू-धर्मावलंबीका कर्तव्य है। अिसके साथ किसी भी दूसरे विषयको मिलाकर हम अुसे हानि पहुंचावेंगे।

हां, जल-ग्रहण करनेके विषयमें मुझे कुछ कहना है। यदि हम शूद्रके हाथसे स्वच्छ जल ग्रहण करें और करते हैं और करना चाहिये, तो हम अस्पृश्यके हाथसे भी स्वीकार करें। मेरे नजदीक चार वर्ण हैं। अस्पृश्य जैसा कोअी पांचवां वर्ण नहीं। अिसलिअे हम अस्पृश्यताको मिटाकर अस्पृश्य माने जानेवाले हिन्दुओंका दुःख दूर करें, हिन्दू-धर्मकी शुद्धि करें, और हम शुद्ध बनें। दूसरे शब्दोंमें अिसी बातको कहूं तो किसी धर्ममें निन्दा और घृणाके लिअे स्थान नहीं है। अस्पृश्यताके अन्दर घृणा-भाव है। अिस घृणा-भावको हम मिटा दें। हिन्दू-धर्म सेवा-धर्म है। अस्पृश्य कहे जानेवाले लोगोंको हम सेवासे क्यों वंचित रखें?

हिन्दी-नवजीवन, १६-७-'२५

---

* रोटी-बेटी व्यवहारके बारेमें गांधीजीके विचार आगे जाकर धीरे धीरे कैसे स्पष्ट होते गये यह पाठक जानते ही है। — संपादक

२६

अखिल भारत देशबन्धु-स्मारक

अिस स्मारककी चंदेकी अपील पर अभी दस्तखत आ ही रहे हैं। कविवर रवीन्द्रनाथके दस्तखत मिलनेसे मुझे स्वभावतः आनन्द हुआ है। पाठकोंको भी होगा। मैंने अुन्हें खास तौर पर कहलवाया था कि अपीलमें निर्दिशित मर्यादित श्रद्धा यदि चरखे पर आपकी हो, तो ही दस्तखत कीजियेगा। जब मेरे मनमें यह बात स्पष्ट रूपसे जमी कि अखिल भारत स्मारक चरखा और खादी-संबंधी ही होना चाहिये, तब यह विचार मैंने पहले-पहल कविवर पर ही प्रकट किया था। अिस अपीलमें अुन लोगोंकी सही लेनेका अिरादा किया ही नहीं गया है, जिन्हें चरखा और खादी पर श्रद्धा न हो या जो स्मारकके संबंधमें अुसकी योग्यताके कायल न हों। अपील पर केवल खादी और चरखे पर श्रद्धा रखनेवालोंकी सही लेनेका निश्चय किया गया था — केवल यही नहीं, बल्कि यह भी निश्चय था कि यदि देशबन्धुके खास अनुयायी अिस तरहके स्मारकको नापसंद करें, तो अिस स्मारकको चरखा-खादीका रूप न दिया जाय। जिन जिन लोगोंके अिस अपील पर सही करनेकी संभावना थी, वे यदि बिना संकोचके सही न करें, तो भी अिस प्रकारका स्मारक बनानेका आग्रह न रखा गया था। मैं जानता हूं कि चरखे और खादीकी अुपयोगिताके संबंधमें मतभेद है। और बहुतेरे लोग अिस बातको भी अेकाअेक स्वीकार न करेंगे कि देशबंधु जैसे महान् नेताके स्मारकको अैकान्तिक स्थान दिया जाय। परन्तु मुझे तो देशबन्धुके प्रति अुनके मित्र और साथीकी हैसियतसे अपने धर्मका पालन करना था और यदि अखिल-बंगाल-स्मारकके संबंधमें मैं स्वतंत्र रूपसे विचार कर सकता होता, तो मैं अवश्य अस्पतालको पसंद न करता। मैंने कभी बहुतेरे अस्पतालोंकी आवश्यकताको स्वीकार नहीं किया है। पर मैंने अिस बातका खयाल तक अपने दिमागमें न आने दिया कि मैं स्वतंत्र होअूं तो क्या करूं? देशबंधुका बनाया ट्रस्ट मेरे सामने था। वह मेरे लिअे सब तरह मार्गदर्शक था और मुझे

यह अपना धर्म दिखाअी दिया कि यदि अुनके अनुयायी पसंद करें, तो वही अुनके स्मारकका हेतु बनाया जाय, और अुसीके लिअे दस लाख रुपये अेकत्र करनेको अब मैं बंगालमें ठहरा हुआ हूं। ट्रस्ट तो अेक साल पहले हो गया था, हालांकि मैं यह जानता हूं कि अुसमें प्रदर्शित विचार देशबन्धुके मरण तक कायम थे। क्योंकि मकान पर जो कर्ज था अुसके लिअे रुपया अेकत्र करनेमें अुन्होंने मेरी सहायता चाही थी। चरखे और खादी-संबंधी अुनके अंतकालके विचारोंको जितना मैं जानता हूं अुतना अुनकी धर्मपत्नीके सिवा शायद और कोअी न जानता होगा, यह कह सकते हैं। अपील प्रकाशित करनेसे पहले मैंने श्रीमती वासंती देवीके विचारोंको जान लिया था। अुसी प्रकार देशबन्धुके परम सखा और अुनके साथी पंडित मोतीलालजीके भी विचार मैंने जान लिये थे। और फिर देशबन्धुके बंगालके अनुयायियोंके विचार भी जान लिये थे। अितनोंके विचार जान लेनेके बाद ही अपील तैयार करनेका निश्चय किया। हां, मैं यह जरूर कबूल करता हूं कि अिस स्मारकका कार्य मुझे खास तौर पर अनुकूल है। परन्तु पाठक कदाचित् मुश्किलसे मानेंगे कि यद्यपि यह स्मारक-कार्य मुझे विशेषरूपसे अनुकूल है तथापि अिसकी सफलताके संबंधमें मैं तटस्थ हो रहा हूं। हां, अखिल-बंगाल-स्मारकके विषयमें यह नहीं कह सकते। अुसे सफल बनानेके लिअे मैं अथाह परिश्रम कर रहा हूं। यह भेदभाव सकारण है। चरखेकी शक्तिके संबंधमें मतभेद हैं। पर अुसके प्रति मेरी श्रद्धा अनन्त है। अैसा स्मारक खींचातानीसे नहीं हो सकता। यदि चरखेमें शक्ति हो और सचमुच चरखे पर भारतवर्षकी श्रद्धा हो, तभी मैं देशबन्धुके नाम पर अक्षय्य द्रव्यकी अिच्छा करता हूं। अिस कारण जितना संतोष मुझे कविवरकी सहीसे हुआ है, अुतना ही भारत-भूषण पंडित मालवीयजीकी सहीसे हुआ है। मैंने श्री जवाहरलाल नेहरूको सूचित किया है कि वे और सहियां मंगवायें।

आशा है कि 'हिन्दी-नवजीवन' के पाठक और खादी-प्रेमी किसीके वसूल करनेकी राह देखे बिना अपना हिस्सा भेज देंगे।

हिन्दी-नवजीवन, ६-८-'२५

२७

दो प्रश्न

'अेक रियासती' पूछते हैं :

"जिन राज्योंमें सफेद किश्तीनुमा टोपी (गांधी कैप) लगाना मना है, और जहांके अधिकारीवर्ग सफेद टोपी लगानेवालोंको कुछ-न-कुछ बात पर तंग करना ही अपना धर्म समझते हैं, अुन राज्योंमें अैसे लोगोंको क्या रंगी हुअी खद्दरकी टोपी पहनना अनुचित है?"

मैं अुन राज्योंका नाम जानना चाहता हूं जहां सचमुच सफेद टोपी पहनना मना हो। मेरे नजदीक अब अैसा होना असंभव-सा है। परन्तु यदि अैसे राज्य हों तो वहां वीर पुरुष तो अेकाकी होते हुअे भी सफेद टोपी विनयसे पहनकर जेल चला जायगा। प्रह्लादने अैसा ही किया था। परन्तु अितना साहस करनेकी शक्ति जिसमें न हो, वह रंगीन टोपी पहनेगा। खादीका त्याग कभी न करेगा।

'अेक रियासती' का दूसरा प्रश्न यह है :

"जिन लोगोंने हाथके कते-बुने वस्त्रोंको धारण करनेकी प्रतिज्ञा ले ली थी, अुन्हें अिस समय वैसे वस्त्र नहीं मिलते हैं। यदि मिलते हैं तो बेचनेवाले शुद्ध खद्दर बताकर मिलके सूतका कपड़ा दे देते हैं। साथ ही महंगा भी अितना देते हैं कि गरीब मनुष्य अुसे खरीदनेमें घबरा जाता है। जिसने प्रतिज्ञा ली है, अुसे स्वयं कातने-बुननेका अवकाश नहीं है। यदि हाथका कता सूत तैयार कर दिया जावे, तो चरखेके सूतका कपड़ा जुलाहे नहीं बनाते। अैसी आपत्तियोंके पड़ने पर क्या करना चाहिये? क्या मिलके सूतका हाथसे बना कपड़ा पहननेकी आप आज्ञा देंगे? खास करके धोतियोंके लिअे बड़ी ही कठिनाअियां पड़ती हैं। क्या कहीं टिकाअू, बारीक, शुद्ध धोतियां प्राप्त हो सकती हैं? कृपा कर शीघ्र अुत्तर प्रदान करनेका कष्ट कीजिये।"

आरंभ-कालमें प्रत्येक सुधारकको आपत्तियां सहन करनी पड़ती हैं। अैसा ही खादी-प्रेमियोंके लिअे समझना चाहिये। खादी पहननेकी चेष्टामें साहस है, कष्ट है, व्यय है, संगठन है, विवेक है, प्रेमभाव है।

अिसीलिअे तो मैंने कहा है कि चरखेमें स्वराज्य है, स्वधर्म है। थोड़े कष्टको सहन करने पर मनुष्य आज खादी पैदा कर सकता है। बम्बअी जैसे शहरमें तो जैसी चाहिये और जितनी चाहिये खादी मिल सकती है। महीन भी मिलती है। परन्तु अच्छा तो यही है कि खादी-प्रेमी अपने ही देहातमें पहुंच सकें, तो कमसे कम अपने ही प्रान्तमें नयी खादी पैदा करावें। स्वयं अच्छा और पक्का सूत कातें, दूसरोंसे कतवायें। जुलाहा लोगोंको अच्छा हाथका सूत मिले तो वे बुनते हैं। बाजारकी खादी आज अवश्य महंगी है। गरीबोंके लिअे दो अिलाज हैं — या तो स्वयं कातें या आवश्यक कपड़े पहनें और अनावश्यक कपड़ोंका त्याग करें। त्याग और बलिदानके सिवा आत्म-शुद्धि होना कठिन बात है, बल्कि असंभव है।

हिन्दी-नवजीवन, २७-८-'२५

२८

नकली खादी

अेक महाशय नागपुरसे किसी कपड़ेके ताके परसे अेक तस्वीर निकालकर भेजते हैं और लिखते हैं कि भोले लोगोंको वह कपड़ा शुद्ध खादीके नामसे दिया जाता है और लोग अुसे अच्छी खादी समझकर खरीद लेते हैं। और अुस पर मेरेसे मिलती-जुलती अेक भोंडी तस्वीर और चरखेको देखकर अुनका यह विश्वास और भी दृढ़ हो जाता है। अिस प्रकारके कामोंको न पवित्र कह सकते हैं और न स्वदेशाभिमान-युक्त। और अिससे मिलोंके खिलाफ बुरे भाव अुत्पन्न होते हैं। क्या मिल-मालिकोंका मंडल अैसे कार्योंके सम्बन्धमें, जिनका कि मुझे बार-बार जिक्र करना पड़ा है, कोअी अिन्तजाम न करेगा?

हिन्दी-नवजीवन, ३-१२-'२५

२९

केनियाके हिन्दुस्तानी

गुरुकुल कांगड़ीके आचार्य श्री रामदेव पूर्वीय अफ्रीकामें कोअी छः महीने रहे। वे वहां रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंके जीवनका बड़ा दुःखमय चित्र खींचते हैं। अुन्होंने मुझसे कहा है कि बहुतसे हिन्दू-मुसलमानोंने शराब पीना शुरू किया है और वे अुन बहुतेरी विदेशी चीजोंका अिस्तेमाल करते हैं, जिनका कि अुपयोग करना अुनके लिअे आवश्यक नहीं है। स्थानिक कांग्रेसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। और यह कहनेसे अुनका मतलब यह है कि नेतागण अपना काम अच्छी तरहसे नहीं कर रहे हैं। वे और भी दूसरे आक्षेप करते हैं और अुन्हें प्रकाशित करनेके लिअे मुझे अधिकार भी देते हैं। लेकिन अभी मैं अुन्हें प्रकाशित नहीं करता हूं। मैं चाहता हूं कि मैं अुनकी सूचनाके अनुसार किसीको पूर्वीय अफ्रीकामें भेजकर अुनके आक्षेपोंके बारेमें जांच-पड़ताल कर सकूं। लेकिन मुझे अफसोस है कि कमसे कम अभी यह करना मेरे लिअे संभव नहीं है। लेकिन मैं केनियाके हिन्दुस्तानियोंसे यह प्रार्थना अवश्य करूंगा कि वे अपना आंतरशोध करें। जो बातें अिस टिप्पणीमें नहीं लिखी गअी हैं, अुन्हें भी मालूम कर लें और अपनेको व्यवस्थित करें। जिन लोगोंने शराब पीना आरंभ किया है, अुन्हें अिस आदतको छोड़ देना चाहिये और जो अिस आदतसे बचे हुअे हैं अुन्हें अपने दूसरे वहां रहनेवाले भाअियोंको अिस बुराअीको दूर करनेके लिअे मदद करनी चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन, १७-१२-'२५

३०

वाचकवृंदको

मुझे हमेशा दुःख रहा है कि मैं 'हिन्दी नवजीवन' में कुछ नहीं लिख सकता हूं, न अुसे देख सकता हूं। श्री हरिभाअू अुपाध्यायके खादी कार्यमें नियंत्रित होनेके पश्चात् 'हिन्दी नवजीवन' की भाषाके बारेमें मेरे पास बहुत फरियादें आअी हैं। कोअी कहता है कि 'भाषा बिगड़ गअी है, व्याकरणदोष बहुतसे आते हैं और अुसमें परभाषाकी ध्वनि रहती है।' कोअी कहते हैं कि 'अर्थका अनर्थ भी होता है।' ये सब बातें संभवित हैं। अनुवादक अपना कार्य बड़े प्रेमसे और अुद्यमसे करते हैं, तदपि गुजराती होनेके कारण अुनकी भाषामें त्रुटियां होनेका पूरा संभव है। मैं कोअी हिन्दी-प्रेमी सज्जनकी खोजमें रहता हूं। अैसा सज्जन मिलनेसे त्रुटियां दूर होनेकी आशा रखता हूं। परन्तु साथ साथ यह भी कहना अनुचित नहीं होगा कि 'हिन्दी नवजीवन' आखिर अनुवादके रूपमें ही प्रगट होता है। अर्थ-हानि कहीं भी न होने पाये, अैसी कोशिश मैं अवश्य करूंगा। किन्तु सच तो यही है कि हिन्दीमें 'नवजीवन' प्रगट करनेकी योग्यता मैं नहीं रखता हूं, न मुझे निरीक्षण करनेका समय है, न मुझमें हिन्दीका आवश्यक ज्ञान है। केवल मित्रोंके प्रेमके वश होकर और मेरे विचारोंसे हिन्दी भाषा जाननेवाले भी अनजान न रहें, अैसे मोहके कारण मैंने 'हिन्दी नवजीवन' प्रगट करना स्वीकार किया है। वाचकवृंदकी सहायतासे ही यह काम चल सकता है। दो प्रकारकी मदद वे दे सकते हैं। अेक तो त्रुटियोंको बताकर और दूसरी जब त्रुटियां असह्य हो जायं तब 'नवजीवन' लेना बन्द करके। नवजीवन अर्थ-लाभकी दृष्टिसे नहीं निकलता है। प्रगट करनेमें केवल पारमार्थिक दृष्टि ही सामने रखी गअी है। यदि भाषाके या किसी दोषके कारण 'नवजीवन' से सेवा न हो सके, तब अुसको बन्द करना कर्तव्य हो जायगा।

अिस अंकमें जो अनुवाद छापे गये हैं, सब अुन्हीं अनुवादकोंसे हुअे हैं, जिनकी हिन्दी मातृभाषा है।

नवजीवन प्रेमी अिस अंकके दोषोंको बताकर मुझे कृतार्थ करें।

हिन्दी-नवजीवन, २४-६-'२६

३१
प्रतिज्ञाका रहस्य

अेक विद्यार्थी लिखते हैं :

"हम किसी कामको कर सकते हैं और करनेकी अिच्छा भी रखते हैं, परंतु फिर भी कर नहीं पाते और जब अुस कार्यके करनेका समय आता है तो मनकी कमजोरीसे या तो हमें अपनी प्रतिज्ञा स्मरण ही नहीं रहती या स्मरण रहने पर भी हम अुसकी अवहेलना कर देते हैं। अैसा अुपाय बताअिये कि हम अुस कार्यको करनेके लिअे बाधित हो जायं और अवश्य करें।"

अैसा प्रश्न किसके मनमें न अुत्पन्न होता होगा? परन्तु प्रश्नमें गलतफहमी भी है। प्रतिज्ञा मनुष्यकी अुन्नति करती है। अिसका केवल अेकमात्र कारण यह है कि प्रतिज्ञा करते हुअे भी अुसके भंग होनेकी गुंजाअिश होती है। प्रतिज्ञा कर चुकनेके बाद अगर अुसके भंग होनेकी गुंजाअिश न हो, तो पुरुषार्थके लिअे कोअी स्थान न रहे। संकल्प तो संकल्पकर्ता रूपी नाविकके लिअे दीपरूप है। दीपकी ओर लक्ष्य रखें तो अनेक तूफानोंमें से गुजरते हुअे भी मनुष्य अुबर सकता है। परन्तु जिस प्रकार वह दीपक यद्यपि तूफानको शांत नहीं कर सकता है — तो भी वह अुस तूफानके बीचसे अुसके सुरक्षित रूपसे निकल जानेकी शक्ति प्रदान करता है, अुसी प्रकार मनुष्यका संकल्प हृदयरूपी समुद्रमें अुछाल मारती हुअी तरंगोंसे बचानेवाली प्रचंड शक्ति है। अैसी हालतमें संकल्पकर्ताका पतन कभी न हो — अिसका अुपाय न आज तक ढूंढ़े मिला है और न वह मिलनेवाला ही है। यही बात

अुचित भी है। यदि अैसा न हो तो सत्य और यमनियमादिकी जो महत्ता है वह जाती रहेगी। सामान्य ज्ञान प्राप्त करनेमें अथवा लाख दस लाख रुपया अेकत्रित करनेमें मनुष्य भारी प्रयत्न करता है, अुत्तर-ध्रुव जैसी साधारण वस्तुका दर्शन करनेके लिअे अनेक मनुष्य अपनी जानमालको जोखममें डालनेमें भय नहीं खाते हैं, तो राग-द्वेष अित्यादि रूपी महाशत्रुओंको जीतनेके लिअे अुपर्युक्त प्रयत्नोंकी अपेक्षा सहस्र-गुना प्रयत्न करना पड़े, तो अुसमें आश्चर्य और क्षोभ क्यों हो? अिस प्रकारकी अमर विजय प्राप्त करनेके प्रयत्नमें ही सफलता है। प्रयत्न ही विजय है। यदि अुत्तर ध्रुवका दर्शन न हुआ, तो सब प्रयत्न व्यर्थ ही माना जाता है। किन्तु जब तक शरीरमें प्राण रहें तब तक राग, द्वेष अित्यादिको जीतनेमें जितना प्रयत्न किया जाय, अुतना हमारी प्रगतिका ही सूचक है। अैसी वस्तुके लिअे स्वल्प प्रयत्न भी निष्फल नहीं होता है—अैसा भगवानका वचन है।

अिसलिअे मैं अिस विद्यार्थीको तो अितना ही आश्वासन दे सकता हूं कि अुनको प्रयत्न करते हुअे हरगिज निराश न होना चाहिये। और न संकल्पको छोड़ना चाहिये—बल्कि 'अशक्य' शब्दको अपने शब्द-कोशसे पृथक् कर देना चाहिये। संकल्पका स्मरण यदि भूल जाय तो प्रायश्चित्त करना चाहिये, अिसका पूरा खयाल रखना चाहिये कि जहां भूले वहींसे फिर चले या मनमें दृढ़ विश्वास रखे कि अंतमें जीत तो अुसीकी होगी। आज तक किसी भी ज्ञानीने अिस प्रकारका अनुभव नहीं बतलाया है कि असत्यकी कभी विजय हुअी है! वरन् सबने अेकमत होकर अपना यह अनुभव पुकार पुकारकर बतलाया है कि अंतमें सत्यकी ही विजय होती है। अुस अनुभवका स्मरण करते हुअे तथा शुभ काम करते हुअे जरा भी संकोच न करना चाहिये। और शुभ संकल्प करते हुअे किसीको डरना भी न चाहिये। पंडित रामभजदत्त चौधरी अेक कविता लिखकर छोड़ गये हैं। अुसका अेक पद यह है:

"कदि नहीं हारना, भांवे साडी जान जावे।"

हिन्दी-नवजीवन, ५-८-'२६

३२

नवजीवन-प्रेमियोंको

'हिन्दी-नवजीवन' आज छठे वर्षमें प्रवेश करता है। मित्रोंके प्रेमके वश होकर यह पत्र नुकसान होते हुअे भी निकल रहा है। जमनालालजीने जो कुछ लिखा है मैंने पढ़ लिया है। यदि 'हिन्दी-नवजीवन' से किसीको सहायता मिलती है, तो अुसका प्रकट होना आवश्यक है, परन्तु वैसे ही अुसका स्वाश्रयी होना भी आवश्यक है। 'नवजीवन' प्रेमी मित्रोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे अैसी चेष्टा करें जिससे 'नवजीवन' को मित्रोंकी सहायता पर निर्भर न रहना पड़े।

'हिन्दी-नवजीवन' में भाषाकी त्रुटियां थीं। वह अब दूर हुअी समझता हूं। अुत्तर हिन्दके दो हिन्दी-प्रेमी 'नवजीवन' के लिअे अनुवाद करते हैं। अिसलिअे अब भाषा-दोषका भय कम हुआ है। बाकी रहा है, 'नवजीवन' प्रेमी मित्रोंका कर्तव्य। क्या अिस वर्षमें वे अुसका पालन करेंगे?

हिन्दी-नवजीवन, १९–८–'२६

३३

अन्त्यजोंका पूजाधिकार

नीमच छावनीसे अेक भाअी प्रश्न करते हैं:

"(१) अछूत जिनको अुच्च वर्ण के हिन्दू अतिशूद्र भी कहते हैं, विष्णु भगवानका मंदिर बनाने, विष्णुकी मूर्तिकी पूजा करने और मूर्तिको विमानमें विठाकर सरे बाजार निकालनेके अधिकारी हैं या नहीं?

"(२) क्या अतिशूद्र-पूजित विष्णुकी मूर्तिके दर्शन करनेसे वैष्णव नरकगामी होते हैं?"

अैसे प्रश्न अब तक पूछने पड़ते हैं, यही दुःखकी बात है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अन्त्यज भाअियोंको विष्णु भगवानकी मूर्ति

बाजारमें निकालनेका और विमानमें बिठानेका पूरा अधिकार है, जितना अन्य जातियोंको है। अिसी तरह जो वैष्णव अतिशूद्र-पूजित मूर्तिकी पूजा करता है या दर्शन करता है, वह पाप नहीं परन्तु पुण्य करता है। जो वैष्णव जानबूझकर अैसी मूर्तिकी पूजासे डरेगा, वह वैष्णव धर्मकी निंदा करता है।

हिन्दी-नवजीवन, ४-११-'२६

३४

लगन क्या न करेगी ?

पश्चिमी देशोंमें कअी बार 'क्लब स्विंगिंग' अर्थात् मुद्गर चलानेका काम चौबीस चौबीस घंटे अेक ही आदमी करता है। ये तमाशे यह देखनेके लिअे होते हैं कि मनुष्यकी सहन-शक्ति किस हद तक जा सकती है? अिसे देखनेके लिअे हजारों प्रेक्षक जाते हैं, और रंगभूमियां भर जाती हैं। मुझे संदेह है कि अैसे खेलोंसे कहां तक लाभ होता है।

परन्तु पाठकोंको याद होगा कि कुछ कुछ अिसी ढंगका प्रयोग किन्तु भिन्न हेतुसे, अर्थात् धार्मिक हेतुसे, सत्याग्रहाश्रममें राष्ट्रीय सप्ताहके समारोहके समय किया गया था। कअी युवकोंने अकेले ही चौबीस घंटे तक जागरण करके आग्रहपूर्वक चरखा चलाया था। अुनमें से सबसे अधिक तार कातनेवाले युवकका पत्र पढ़ने योग्य है, अिसलिअे नीचे देता हूं:

> "अिस बार चौबीस घंटे चरखा चलानेके विचारको तो मैंने मुल्तवी ही कर दिया था। परन्तु आखिरी दिन मैंने और कृष्णदासने सोचा कि चौबीसों घंटे चरखा चलाना ही चाहिये। चरखा शुरू करनेका समय आया अुस समय तक तो अिस विचारके याद आते ही हाथ ढीले पड़ जाते थे कि आज चौबीस

घंटे चरखा चलाना है। शामकी प्रार्थनाका घंटा बजते ही हमारे चरखे गूंजने लग गये। पांच मिनट तक तो असी विचारका असर रहा। परन्तु असके बाद २४ घंटेकी बात खयालसे अुतर गअी, और यह धुन सवार हुअी कि अिस घंटेमें पूरे ५०० तार कर देना चाहिये। मुझे याद है कि अिस निश्चयके अनुसार पहले घंटेमें पूरे पांचसौ तार हो भी गये थे। दूसरे घंटेमें ५१६ हुअे। यह क्रम ३,००० तार तक कायम रहा। फिर माल पुरानी होनेके कारण टूट गअी, और अधिक कते हुअे तार भी बराबर हो गये। नींद भी अपनी शक्तिभर कोशिश करती जा रही थी। सुबह ७ बजे अेक घंटेके लिअे अुठे, तब ६,४४५ तार हुअे थे। आठ बजे फिर बैठा। आरामके बाद थकावटका पूरा-पूरा असर मालूम हो रहा था। ९ बजे तक ४६० तार हुअे। ४० तार पूरे करने रहे। दूसरे घंटेमें दस तार पूरे किये। तीसरे घंटेमें भी अितने ही। चौथे घंटेमें अिन्जिन खूब तेज कर दिया और अुन बीसों तारोंको पूरा करके ५० तार अूपर बढ़ा दिये। अर्थात् फी घंटे ५७० तार हुअे। मैंने सोचा, अब अिसी वेगको कायम रखना चाहिये, और २३ घंटेमें ११,५०० के बदले पूरे १२,००० कर देना चाहिये। पर ठीक अिसी समय अच्छी पूनियां खतम हो गअीं। ८,००० तक तो पहलेके ज्यादा तारोंको मिलाकर काम चलाया, पर अिसके बाद और भी खराब पूनियां आने लगीं। वेग ४८० से भी कम हो गया। मुझे तो यही चिन्ता होने लग गअी कि ११,००० भी पूरे होंगे कि नहीं? २ बजे ७,८८० तार हुअे थे। चार बजे तक तो १०,००० हो जाना चाहिये थे, परन्तु वे ४-४५ को हुअे थे। अितनेमें कांति अच्छी पूनियां बनाकर ले आया। फिर वेग ५०० से अूपर बढ़ गया। आखिरी तीन घंटेमें तो तार पूरे होंगे कि नहीं, अिस चिंता और थकावटके कारण मानो मैं स्वप्नमें ही चरखा चला रहा था। मालूम होता था कि मैं कभीसे चरखा छोड़ करके अुठ गया था, और

अभी फिर कातनेके लिअे आकर बैठ गया हूं अिसीलिअे अितने कम तार हुअे हैं। २४ घंटे कैसे बीत गये खबर भी नहीं पड़ी। हां, अुठते समय वह सब मालूम हो गया। बदन अिस तरह जकड़ गया था कि दो तीन बार अुठनेका प्रयत्न करने पर भी लाचार हो फिर बैठ जाना पड़ा।"

विद्यार्थियोंकी पवित्र लगन सराहनेवालों तथा चरखा-यज्ञमें श्रद्धा रखनेवाले पुरुषोंको यह पत्र पढ़कर जरूर हर्ष होगा। जो विद्यार्थी अिस पत्रको पढ़ें, वे अिससे बोध लें। खेलमें प्रेम होना अच्छी बात है। किन्तु वही प्रेम और लगन परोपकारी कार्यमें होना और भी अच्छा है। वे यह भी देखें कि जो अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करते हैं, और ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, अुनके लिअे अूपर लिखे अनुसार चौबीस चौबीस घंटे अविश्रान्त परिश्रम भी साध्य है। धन कमानेके लिअे विद्याका अुपयोग करना अुसके दुरुपयोगके समान है। विद्या तो तभी सार्थक होती है, जब अुसका अुपयोग सेवाके लिअे होता है। फिर विद्यार्थीके लिअे श्रद्धाकी भी भारी जरूरत है। यह समझ लेनेके लिअे तो जरूर कुछ बुद्धिकी आवश्यकता है कि भारतका दारिद्र्य चरखे जैसी चीजसे ही नष्ट हो सकता है। परन्तु अुस प्रेमको टिकाये रखना आखिर श्रद्धाका ही काम है। मैं तो विद्यार्थियोंके विषयमें अिस बातको प्रत्यक्ष देख रहा हूं कि श्रद्धाके अभावमें अुनकी विद्या निरर्थक हो रही है।

हिन्दी-नवजीवन, १२-५-'२७

३५

नागपुरका सत्याग्रह

अखबारोंमें मैं अेसोशियेटेड प्रेसके अेक तारको देख रहा हूं। वह खबर करता है कि श्री मंचरशा अवारीका कहना है कि बंगालके कैदियोंके छुटकारेके लिअे शस्त्र-कानून और स्फोटक द्रव्योंके कानूनका सविनय-भंग करनेकी अुनकी हलचलमें अुनके साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति और आज्ञा है। यदि मुझे ठीक स्मरण है तो या तो अेसोशियेटेड प्रेसके प्रतिनिधिने श्री अवारीका मतलब समझनेमें गलती की है, या स्वयं श्री अवारीने ही मुझे समझनेमें भूल की है। मुझे तो याद नहीं होता कि मैंने श्री अवारीको किसी भी बातको लेकर सविनय-भंग छेड़नेके पक्षमें पहले ही से अपनी संमति दे दी हो। सचमुच, अिस तरह पहलेसे संमति दे देना मेरे स्वभावके विपरीत है। श्री अवारीकी देशभक्ति और स्वार्थत्यागके लिअे मेरे दिलमें बड़ा अूंचा स्थान है। और मैंने अुनके साथ सविनय-भंगके सिद्धांत पर चर्चा भी की थी। मैंने सविनय-भंगकी गंभीर मर्यादाओंकी ओर अुनका ध्यान आकर्षित किया। अुन्होंने भी बंगालके कैदियोंके विषयमें बड़ा प्रेम और चिंताशीलता जाहिर की। और वह ठीक भी था। मुझे याद है कि मैंने अुन्हें यह कहा था कि सविनय-भंग जैसे किसी आन्दोलन पर विचार करके अुसे छेड़ा जाय, तो वह अेक भारी बात होगी। अब भी मेरा यही मत है। क्योंकि मैं मानता हूं कि बंगालके देशभक्तोंको बिना किसी प्रकारकी भी जांच वगैरह के अनिश्चित समय तक जेलोंमें डाल रखना अेक गहरा अन्याय तो जरूर है। और यदि अभी तक मैं चुप रहा हूं तो अुसका कारण यह नहीं है कि मेरे दिलमें अुन देशभक्तोंके प्रति अुनके घनिष्ठ मित्रोंका-सा प्रेम नहीं है, बल्कि अिसीलिअे कि मैं अपनी लाचारीका निष्फल प्रदर्शन करना नहीं चाहता। अेक सार्वजनिक कार्यकर्ताको धीरजपूर्वक यह भी सीखना पड़ता है कि वह क्या क्या नहीं कर सकता। और आज बिस्तर पर कैद होते हुअे भी, यदि मैं अुन बंगाली देशभक्तोंको अुस कैदसे छुड़ानेके किसी व्यवहार्य और

शांतियुक्त विचारको खोज सकता, तो मैं बिना किसी हिचकिचाहटके जरूर अुस पर अेकदम अमल करने लग जाता। पर मैं कबूल करता हूं कि मेरे सामने अभी अैसी कोअी योजना नहीं है। मेरा व्यक्तिगत मत तो यही है कि अभी देशमें सविनय-भंगके अनुकूल वायुमंडल ही नहीं है। आजकल तो बड़े बुरे दिन हैं। आज तो अहिंसात्मक सविनय-भंगके योग्य नहीं, बल्कि बहुत भारी हिंसात्मक और आत्मघातक कानूनभंगके अनुकूल वायुमंडल देशमें फैला हुआ है।

मुझे बिलकुल पता नहीं कि नागपुरमें क्या क्या हो रहा है। मैं श्री अवारीके आन्दोलन पर कोअी मत नहीं दे सकता और मैंने अुनके अिस आन्दोलनको अपनी संमति नहीं दी है। मैं तो अुसके विषयमें अेक भी शब्द कहना नहीं चाहता था। अच्छा होता यदि श्री अवारी मेरे नामको व्यर्थ ही बीचमें न घसीटते। यदि वे सोचते थे कि अुनके आन्दोलनके लिअे मेरी संमति आवश्यक थी, तो अुन्हें चाहिये था कि वे अपनी हलचलकी सारी योजना स्पष्ट रूपसे मेरे सामने रख देते, और मेरी लेखी संमति प्राप्त कर लेते। यदि मैं अुसे पसंद करता किन्तु स्वयं भाग न ले सकता, तो कमसे कम अिन स्तंभोंमें मैं अपनी पूरी शक्तिके साथ अुसका समर्थन तो जरूर करता। खैर, अब यदि मेरी अिस अस्वीकृतिके प्रकाशनसे अुनकी हलचलको कोअी हानि पहुंचे, तो अिसके लिअे वे अपने आप ही को धन्यवाद दें। अबसे मेरे नामका अुपयोग करनेकी अिच्छा रखनेवाले सभी कार्यकर्ताओंको अिससे नसीहत अुठानी चाहिये। बिना मेरी लिखित संमति लिये वे किसी आन्दोलनके साथ मेरा नाम न खींचें। निःसंदेह अब तो कार्यकर्ताओंको स्वावलंबी और साहसी हो जाना चाहिये। अुन्हें अब बड़े और प्रभावशाली समझे जानेवाले लोगोंके मुंहकी ओर अिस आशासे देखनेकी कोअी जरूरत नहीं कि वे अुन्हें अपने नामोंका अुपयोग करनेकी अिजाजत दें। बल्कि यदि वे किसी बातको ठीक समझें, तो अुन्हें स्वयं ही निर्भयतापूर्वक अपनी योजनाओं पर अमल करना शुरू कर देना चाहिये। अुन्हें अपने विश्वासके बल और कार्य पर ही निर्भर रहना चाहिये। गलतियां तो होंगी। कष्ट भी होगा, अैसा कष्ट जो टाला जा सकता है।

पर राष्ट्र यों आसानीसे नहीं बन जाते। किसी बड़ी बातको हासिल करनेके पहले कठोर और कड़े अनुशासनकी जरूरत होती है। और यह अनुशासन निरे तर्क, दलीलों और वादविवादसे प्राप्त नहीं होता। अनुशासनका पाठ तो विपत्तिकी पाठशालामें सीखा जाता है। और जब युवक बिना किसी ढालके काम करना सीखेंगे, तो वे जिम्मेदारी और अनुशासनको भी अच्छी तरह जानने लग जावेंगे। और अिस अुम्मीदवार नेताओंकी फौजमें से अेक अैसा सच्चा नेता पैदा होगा, जिसे अनुशासन और आज्ञाधारिताके लिअे पुकार नहीं मचानी होगी, बल्कि अुसे वे अपने-आप स्वभावतः प्राप्त होंगे। क्योंकि वह कअी जगह रगड़ें खाकर, कअी परीक्षाओंमें अुतीर्ण होकर, निश्चित नेतृत्वके लिअे अपना अधिकार सिद्ध कर देगा।

हिन्दी-नवजीवन, १९–५–'२७

३६

अत्यंत असंतोषजनक

मैं चाहता हूं कि मैं श्रीयुत सुभाषचंद्र बोसकी रिहाअी पर बंगालकी सरकारको धन्यवाद दे सकता। पर रिहाअीकी मंजूरी अिसलिअे नहीं दी गअी कि लोकमतने अुसकी मांग की थी, अिसलिअे भी नहीं कि कलकत्ता कारपोरेशनके चीफ ऑफीसरको सरकारने निर्दोष समझ लिया, और न अिसलिअे भी कि सुभाष बाबू अुस जुर्मके लिअे सरकारकी अिच्छानुसार काफी सजा भुगत चुके हैं जिसका न तो स्वयं सुभाषबाबूको और न जनताको ज्ञान है। बल्कि रिहाअीकी मंजूरी तो अिसलिअे दी गअी कि स्वयं सरकारके मेडिकल ऑफीसरकी रायमें वह महान कैदी बहुत बीमार समझा गया — अितना बीमार कि अुसके जीनेके विषयमें अुसे भय होने लग गया। अगर सुभाषचंद्र बोस समाज अथवा किसी खास शख्सकी जानके लिअे अेक खतरनाक आदमी हैं, और वे अगर निश्चयके दृढ़ भी हैं, जैसा कि लोगोंका खयाल है और स्वयं सरकारका भी विश्वास है, तो वे अितने अधिक

बीमार होने पर आज भी किसी प्रकार कम खतरनाक नहीं हो गये हैं! फिर सरकार अुनको जेलमें मरने देनेसे क्यों डर गअी? सचमुच अुसकी यह कोअी आदत तो है नहीं जो वह हरअेक ज्यादा बीमार हो जानेवाले कैदीको छोड़ देती हो। और अगर अुन्हें अुनकी बीमारीके कारण ही छोड़ना ठीक समझा गया है, तो अुन्हें अुसी समय क्यों नहीं छोड़ दिया गया, जब अुनके शरीरमें पहले-पहल ही क्षयरोगके चिह्न दिखाअी दिये थे? अखबारोंमें अुनकी चिंताजनक बीमारीकी खबरें तो कअी दिनसे छपती आ रही हैं। स्वयं कैदीके भाअीने भी सरकारको बार बार सुभाष बाबूकी बीमारीके विषयमें चेतावनी दी है।

मैं तो यह कहनेका साहस करता हूं कि अिस तरह अेक मरणोन्मुख आदमीको अुसके रिश्तेदारोंको किसी तरह लौटा देना और अुसकी मृत्युके अपराधसे हाथ धो लेना कायरता है। यह रिहाअी हमें बंगालके अुन कैदियोंके प्रश्नको हल करनेमें जरा भी सहायता नहीं करती, जो बिना जांचके कैद कर लिये गये थे और जिन्हें सरकारने ख्वाहमख्वाह अिसलिअे अनियमित समयके लिअे जेलमें पटक रखा है कि वह अुन पर संदेह करना चाहती है। बंगाल रेग्यूलेशन भी अभी ज्योंका त्यों सुरक्षित है। अब अुन कैदियोंको भी जेलमें सड़ते रहना पड़ेगा, जिनकी तबियतें भी कम-ज्यादा बिगड़ी हुअी हैं। बल्कि अब तो वे अुनकी रिहाअीके आन्दोलनकी शक्तिसे भी वंचित हो गये जो काफी जोरदार था। क्योंकि अब तक अुनके साथ अेक शक्तिशाली पुरुष था। यों तो निस्संदेह किसी न किसी प्रकारका आन्दोलन अुनकी रिहाअीके लिअे अब भी होता ही रहेगा। परंतु मुझे डर है कि वह काफी शक्तिशाली न होगा। बात यह है कि भारतीय स्वभाव छोटीसे छोटी दयासे भी कृतज्ञ हो जाता है। वह झटसे संतुष्ट हो जाता है। सुभाष बाबूकी रिहाअीमें प्रकृतिका हाथ था। पर लोग संभवतः अिसके मानी यह समझ लेंगे कि सरकार झुक गअी, और सुभाष बाबूकी रिहाअीका स्वागत करते हुअे वे सरकारको दूसरे कैदियोंको कैद रखनेके अपराधके लिअे क्षमा कर देंगे।

संभव है, लोग अिसे निर्दयता कहें, परंतु मैं तो अैसी रिहाअीके बनिस्बत यही ज्यादा पसंद करूंगा कि रिहाअी न होना ही अच्छा है। अिससे तो समस्या और भी ज्यादा अुलझ जाती है और तब अुसे सुलझाना बड़ा मुश्किल हो जाता है। क्योंकि अिन कैदियोंकी रिहाअीके प्रश्नकी जड़में नागरिकोंकी स्वाधीनताके साथ साथ महज गैरजिम्मेदार सरकारों द्वारा जनताके जीवन पर असाधारण अधिकार धारण कर लेनेका जटिल सवाल भी तो मिला हुआ है। अिस दुःखद बुराअीमें भी अगर जनता कोअी भलाअी ढूंढ़ना चाहे, तो अुसे अेक अच्छी बात जरूर मिल जायगी। और वह यही कि अुनकी रिहाअीके लिअे सरकार द्वारा बार बार जो अपमानभरी शर्तें रखी गअीं, सुभाष बाबू आखिर तक अुन सबको माननेसे बराबर अिनकार करते रहे। अब हमें आशा और प्रार्थना करनी चाहिये कि परमात्मा अुन्हें शीघ्र ही नीरोग करके चिर काल तक अपने देशकी सेवा करनेका मौका दें।

हिन्दी-नवजीवन, २६–५–'२७

३७

अनुकरणीय

जावरा राज्य रंगाअी और छपाअीके लिअे मशहूर है। मुझे मालूम हुआ है कि जावराके नवाब साहब खादीके आन्दोलनमें दिलचस्पी रखते हैं। और अब तो छपाअी-रंगाअी द्वारा खादीको अधिक आकर्षक बनाकर खादी हलचलको अुत्साहित करनेकी गरजसे अुन्होंने खादीको सब प्रकारके करोंसे मुक्त कर दिया है। अिस प्रशंसनीय कार्यके लिअे मैं जावरा राज्यको धन्यवाद देता हूं; और आशा करता हूं कि अन्य राज्य भी अिस महान और दिन-ब-दिन बढ़नेवाले राष्ट्रीय अुद्यमके साथ प्रेमभरा व्यवहार करेंगे, जो भारतके करोड़ों भूखों मरनेवाले गरीबोंके लिअे असीम फायदेमंद हो सकता है।

हिन्दी-नवजीवन, २६–५–'२७

३८

गाय और भैंस

अेक अहिंसाके अुपासक लिखते हैं:

" 'गाय बनाम भैंस' वाले लेखमें आपने यह लिखा है — 'मेरे लिखनेका अुद्देश्य भैंसको छोड़ देनेसे नहीं है। परंतु यदि हम भैंसका बचाव करना चाहें, तो अुसकी संख्याको नहीं बढ़ाने बल्कि अुसे स्वराज्य दे देनेसे है। गायको हमने अपने अुपयोगके लिअे घरवासिनी बनाया है। और अिसीलिअे अुसका रक्षण करना हमारा धर्म हो जाता है।'

"अिसमें 'छोड़ देना' और 'स्वराज्य देना' अिन दो बातोंका अर्थ स्पष्ट रूपसे समझमें नहीं आया। स्वराज्य देनेके मानी क्या हैं? क्या अुसे जंगलमें छोड़ देनेसे है? अथवा अुसके पालनकी आज तक हमने जो जिम्मेदारी धारण की है अुसका अिनकार करनेसे है?

"यह सवाल बिलकुल जुदा है कि गायका दूध भैंसके दूधकी अपेक्षा अधिक सात्त्विक है या नहीं? जब तक हम भैंसके पाड़ेका अुपयोग करनेकी कोअी युक्ति नहीं खोज लेते, तब तक अुसे बचाकर भैंसके दूधका अुपयोग करना सस्ता नहीं होता। पाड़ेको मारकर अथवा अुसे मरने देकर भैंसके दूधका अुपयोग करना घातकता है। अिसलिअे यह तो साफ है कि हमें भैंससे कोअी सेवा नहीं लेनी चाहिये। और अिसीलिअे यह भी समझमें आ सकता है कि अुसकी संख्याको हमें नहीं बढ़ाना चाहिये।

"परंतु जहां पर गाय और बैल दोनोंका निर्वाह और अुपयोग करना कठिन है, और साथ ही जहां पर भैंस और पाड़े दोनों काम दे सकते हों, तहां गायके पालनका आग्रह

नहीं होना चाहिये और भैंस-पाड़के पालनमें आपत्ति भी नहीं की जानी चाहिये। आज जहां तहांसे भैंसको निकाल दें यह नहीं हो सकता। गोपालनमें बैलोंका अुपयोग होनेके कारण गाय अहिंसाकी पोषक है। और भैंसके पालनेसे पाड़ेकी हत्या होती है। अिसलिअे वह अहिंसा धर्मको हानि पहुंचाती है। भारतवर्षमें अैसे स्थान बहुतसे नहीं हैं, जहां गोपालन तो कठिन हो और भैंसका पालन शक्य और आसान हो। अिसलिअे भैंसको पालनेका सवाल राष्ट्रीय नहीं हो सकता, यह भी स्पष्ट है। परंतु जहां भैंस-पाड़े ही काम दे सकते हैं, वहां यदि सारे देशके भैंस-पाड़े अेकत्र कर दिये जायं तो वह अिष्ट ही होगा। अैसे स्थानोंको निश्चित करके यदि वहां पर भैंस और पाड़ोंको भेजनेकी सुविधा कर दी जाय तथा अैसा नियम कर दिया जाय कि अुस टापूमें से भैंस बाहर नहीं भेजी जा सके, तो भैंस और पाड़ेको अपना स्वाभाविक स्थान मिल जाय। फिर, वहां पर जितने जानवरोंकी जरूरत हो, अुतना ही वहां अिनका विस्तार बढ़ने दिया जाय अिससे अधिक नहीं।

"यह सत्य है कि जब तक भारतकी जनता यह नहीं समझ लेती कि पशुओंके प्रति हमारा क्या धर्म है, तब तक यह होना मुश्किल है। परंतु यह तो स्पष्ट हो जाना जरूरी है कि गाय और भैंसकी समस्या किस तरह हल हो सकती है।

"अिसके साथ ही अेक और सवाल भी पूछ लूं? आप वर्तमान पश्चिमी सभ्यताको आसुरी मानते हैं। आप भारतके ग्रामीण जीवनको भी पसंद करते हैं। परंतु आज तो अिस ग्रामीण जीवनमें भी अनेकों फेरफार करने होंगे, जो सामान्य जन-समाजको पश्चिमी सभ्यताके समान ही मालूम होंगे। जब आप आदर्श दुग्धालय और चर्मालयकी बात करते हैं, तब ये बातें लोगोंकी समझमें जल्दी नहीं आतीं। अिसका कारण यह है कि अभी लोग आपके आदर्शकी कल्पनाको जानने नहीं लगे हैं। क्या आप अिसका चित्र अंकित करेंगे? खेत कमसे

कम कितने बड़े होने चाहिये? नये ढंगके औजारोंका अुपयोग करना चाहिये या नहीं? दुग्धालय और चर्मालयमें यंत्रोंके लिअे कोअी स्थान है या नहीं? अिस तरहके अनेक प्रश्न हैं। अिनका खुलासा यदि आप कर देंगे, तो देहातमें कार्य करनेवाले सेवकोंको अुससे बड़ा लाभ होगा।"

'गाय-भैंस' का लेख लिखते समय मैंने यह खयाल कर लिया था कि भैंसके स्वराज्यकी बातमें विशेष स्पष्टीकरणकी कोअी आवश्यकता नहीं है। जिस जानवरको हम पालते हैं, अुसकी स्वाधीनताको छीन लेते हैं, फिर हम अुसका पालन चाहे कितने ही शुभ हेतुपूर्वक करें। सैकड़ों अंग्रेज यह मानते हैं कि वे भारतका पालन शुभ हेतुपूर्वक कर रहे हैं। हम अुनके अिस दावेको अस्वीकार करते हैं तो भी वे हमें बेवकूफ समझकर अपने काल्पनिक धर्मको नहीं छोड़ते। परंतु यदि हम दोनोंके बीच कोअी न्याय करने बैठे, तो हमारी तरफसे केवल अितने शब्द काफी होंगे —"हमारे दुःखोंकी बात वे शख्स क्या जानें जिन्होंने अपने-आपको जबरदस्ती हमारा पालन-कर्ता बना लिया है? यह तो अेक त्रिकालदर्शी परमात्मा ही जान सकता है या खुद हम। और हम तो साफ साफ कह रहे हैं कि हमारा हित तो स्वाधीनतासे होगा।" अिसी प्रकार यदि भैंसको वाणी हो, और अुसके तथा हमारे बीच कोअी न्यायाधीश नियुक्त किया जाय, और भैंस हमारे ही समान दलील करके अपना पक्ष अुसके सामने रखे — और मैं मानता हूं कि वह जरूर रखेगी — तो न्याय अुसीके पक्षमें जायगा। अिसीलिअे मैंने कहा है कि भैंसका पालन करनेके मोहको त्याग कर हम यदि अुसे छोड़ दें तो अुससे अुसका अहित नहीं होगा, बल्कि वह स्वाधीन हो जायगी। अिसमें अपने सिर परकी जिम्मेदारीको टालनेकी बात नहीं है। जिस भैंसको हमने रखा है, अुसके पालनकी जिम्मेदारी तो हमें अपने सिर पर धारण करनी ही होगी। परंतु जिस प्रकार गायके वंशको बढ़ाने तथा अुसे सुधारनेके लिअे अुचित अुपायोंका अवलंबन करना हम अपना धर्म समझते हैं, वैसा धर्म — यदि मेरा खयाल ठीक हो तो — भैंसके विषयमें हमारे लिअे अुत्पन्न नहीं होता।

अर्थात् गोरक्षाके विशेष धर्ममें भैंसको भी स्थान देनेकी आवश्यकता नहीं है। मैंने जो योजना सूचित की है, अुसको यदि सब स्वीकार करें तो अुससे यह मतलब भी निकाला जा सकता है कि जहां गाय-बैलका निर्वाह नहीं हो सकता, तथा जहां केवल भैंस ही रह सकती है, वहां सभी भैंसोंको अेकत्र कर दिया जाय और अुनके पाड़े आदिकी संपूर्ण रक्षा की जाय।

मेरे कहनेका आशय यह तो नहीं था कि प्रत्येक गांवमें पृथक् पृथक् दुग्धालय और चर्मालय भी हों। परंतु आजकी तो हमारी स्थिति अितनी दयनीय हो गअी है कि पहले शहरोंमें अिन बातोंके प्रयोग सफल करनेके बाद ही अुन्हें देहातमें ले जाना होगा। जानवरोंका पालन ठीक ठीक तरह कैसे हो, गायको बिना तकलीफ दिये अुससे हम अधिकसे अधिक दूध किस तरह लें, तथा अुनके चमड़ोंको कैसे कमाया जाय अित्यादि समस्यायें हैं, जिनका प्रयोग हमें पहले करना होगा। आज-कल तो गोचरोंका पता नहीं। खली और घास महंगे हैं। परंतु फिर भी देहातके लोग किसी तरह अपने जानवरोंकी रक्षा कर ही रहे हैं। चमड़ेकी तो यह दशा है कि अेक अपढ़ मोची हमें जितना अुपयोग दे सके अुसीको लेकर हम संतुष्ट हो जाते हैं। हड्डियां वृथा जाती हैं। मतलब यह कि अिस जीवित धनका नाश हो रहा है। अगर जानवर मरते नहीं हैं, तो मृतप्राय तो जरूर हो जाते हैं। और अपने मालिकके लिअे अेक तरहसे भाररूप हो जाते हैं, और अंतमें बंबअी आदि शहरोंके बूचड़खानोंकी राह लेते हैं। मैं जानता हूं कि अिस विषयमें महत्त्वपूर्ण फेरफार करनेकी जरूरत है। परन्तु अिन फेरफारोंको हमें किस तरह करना चाहिये यही प्रश्न है। अिस समय तो मैं यह कहनेमें असमर्थ हूं कि पश्चिमसे हमें क्या लेना चाहिये और क्या नहीं। यह सब अभी प्रयोगावस्थामें है। और अगर मैं यह समझा चुका हूं कि किस बातको कहां तक ग्रहण करना चाहिये, तो अब प्रत्येक सेवक अपनी ही जिम्मेदारी पर अिस बातको ढूंढ़ ले कि अुसे किस तरह कार्यमें परिणत करना चाहिये। अेक समय अैसा था जब हमारी सभ्यतामें अुचित फेरफार हो सकते थे, और अिन

फेरफारोंकी आवश्यकताको लोग महसूस भी करते थे। और हम कह सकते हैं कि हमारी सभ्यता तभी तक जिन्दा भी थी, जब तक कि वह अपनी अुन्नतिकी अिन शर्तोंको स्वीकार करती थी। आज तो हमारी यह दशा हो गअी है कि शास्त्रके नाम पर जो कोअी भी किताब छापकर हमारे हाथोंमें दे दी जाती है, अुसीको हम अंतिम शब्द समझ लेते हैं, और हमें यह निश्चय होता है कि अिसमें घटती-बढ़ती कुछ हो ही नहीं सकती। हमें अिस भयानक मानसिक मृत्युसे बाहर निकलना चाहिये। यह तो हम आज भी अपनी नंगी आंखोंसे देख सकते हैं कि हर युगमें हमारे रहन-सहनमें फेरफार होते रहे हैं। अिस नियमको स्वीकार कर निःस्वार्थी तथा संस्कारवान सेवकोंको आत्मश्रद्धापूर्वक देहातमें चले जाना चाहिये। सबको कुछ खास सिद्धान्तोंको तो जरूर ही स्वीकार करना होगा। हां, अिन सिद्धांतोंके पालनमें अवश्य विविधता होगी। पर यह अनिवार्य और स्वागत करने योग्य भी है। अिस पद्धति द्वारा सिद्धांतों पर अमल करनेसे बढ़ियासे बढ़िया रास्ते हमें मिल जावेंगे। अिस विचारसरणीमें यह बात गौण रूप धारण कर लेती है कि हमें पश्चिमके यंत्रोंका अुपयोग करना चाहिये या नहीं। और यदि किया जाय तो कहां तक? तथापि सामान्य नियम तो यही होना चाहिये कि देहातमें हम जो कुछ बना सकें और पैदा कर सकें, अुसे वहीं बनाना और पैदा करना चाहिये। यदि हमारा काम अपने गांवमें बने छुरेसे चल सकता है तो हमें जर्मनीके अच्छे समझे जानेवाले 'क्रॉप' नामक छुरेको खरीदनेके मोहमें नहीं पड़ना चाहिये। पर यदि हम सीने-पिरोनेके लिअे अपने गांवमें सस्ती सुअी नहीं बना सकते, तो हमें ऑस्ट्रियाकी बनी सस्ती सुअीसे द्वेष भी नहीं करना चाहिये। मतलब यह कि मैं अैसी किसी वस्तुके ग्रहण करनेको दोषास्पद नहीं कहूंगा, जो अच्छी और ग्रहणीय हो तथा जिसे हम हजम कर सकें, फिर वह कहीं भी बनी हो।

हिन्दी-नवजीवन, २६-५-'२७

३९

हमारी सभ्यता

किसानकी बख्शिश

संयुक्त प्रान्तके अेक गरीब किसानने मुझे मेरे प्रवासमें नीचेका लिखकर दिया था। अुसकी तारीख है ४-११-'२४। तबसे मैंने अुसे अपने काजगपत्रोंमें संग्रह कर रखा था। मुझे यह जैसा मिला है वैसा ही यहां दे रहा हूं। नाम भी नहीं छिपाता, क्योंकि अिसमें यह भय नहीं कि यह रामचंद्र फूला न समायगा। यही अधिक संभव है कि वह कभी 'नवजीवन' पढ़ता ही न हो। और यदि पढ़ता भी होगा, तो जिसने तुलसीदासकी ये सुन्दर चौपाअियां लिख भेजी हैं, वह मैं आशा करता हूं कि अभिमानसे न फूलेगा।

(संसारके जीवोंको सुख पहुंचानेवालोंकी)

(नीति)

जननी, जनक, बंधु, सुत, दारा। तन, मन, भवन सुहृद परिवारा।।
सबकै ममता तागबटोरी। मम पद मनहिं बांधि बरडोरी।।
समदर्शी अिच्छा कछु नाहीं। हर्ष, शोक, भय नहिं मन माहीं।।
अस सज्जन मम अुर वस कैसे। लोभी हृदय वसत धन जैसे।।
तुम सरीखे संत प्रिय मोरे। धरहुं देह नहिं आन निहोरे।।

दोहा

सगुण अुपासक परहित, निरत नीति दृढ़नेम।
ते सज्जन मोहिं प्राणप्रिय, जिनके द्विज पद-प्रेम।

जब तक सब नेता अैसा न समझ लें, तब तक यह संसारके पापी जीव तर नहीं सकेंगे। क्या करूं अिस समय (ममत्व) के अहंने सबकी मतियों पर अपना दबाव डाल कर अंधा कर दिया है।

जीव मायाके जालमें पड़ बौराय रहे हैं। अिससे हे महात्मन्, अीश्वर आपको दीर्घायु प्रदान करे, जिससे कलियुगके पाप दूर हों।

(प्रार्थि-नम्र-चिंता-जनक)

(रामचंद्र)

—किसान अवध ४-११-२४

बड़ो दादाकी बख्शिश

अिसी प्रकार बड़ोदादासे प्राप्त अेक अमूल्य वस्तु मेरे पास हमेशा रहती है। अुनके जीवनकालमें जब मैं शांतिनिकेतनमें आखिरी दफा गया था, अुस समय नीचे दिया हुआ श्लोक अुन्होंने मुझे अपने हाथसे लिखकर दिया था:—

विपत् संपदिवाभाति मृत्युश्चाप्यमृतायते।
शून्यमापूर्णतामेति भगवज्जनसंगमात्॥

अिसका अर्थ दूं:

भगवद्भक्तके सत्संगसे दुःख सुखरूप होता है, मृत्यु भी अमृत-रूप बन जाता है और जड़ मनुष्य संपूर्ण ज्ञानी बन जाते हैं।

अेक जंगली गिना जानेवाला किसान भी समय आने पर तुलसीदासकी ज्ञान और भक्तिरस-पूर्ण चौपाअियां लिख सकता है और दूसरा महाकवि अपनेको गूढ़ ज्ञान होने पर भी अहंभावको छोड़कर सत्संगकी खोजमें रहता है। अुपरोक्त दोनों अवतरणों पर अुसके साथ मेरा जो संबंध है, अुसे त्याग कर पाठक यदि तटस्थ दृष्टिसे विचार करेंगे, तो अुन्हें मालूम होगा कि हमारी सभ्यता क्या है और अुसके लायक हम कैसे बन सकते हैं।

हिन्दी-नवजीवन, ८-९-'२७

४०

कौंसिल-प्रवेश

कौंसिल-प्रवेशके बारेमें अेक सज्जन लिखते हैं :

"अिस समय चारों तरफ आगामी कौंसिलके लिअे कार्य शुरू हुआ देखकर आपकी अनुमति जाननेकी यह अिच्छा प्रबल हो रही है कि अिस संबंधमें आपकी क्या राय रहेगी। यद्यपि कौंसिलों पर आपका विश्वास नहीं था, किन्तु कलकत्ता कांग्रेसके समय खादी-प्रचार पर आपका जो अुपदेश हुआ था, शायद अुसमें आपने कहा था कि खादी-प्रचारके लिअे कौंसिलोंमें भी प्रस्ताव पास करना चाहिये। अिसका खुलासा अर्थ आपको कर देना चाहिये; नहीं तो लोग अिससे कौंसिलों पर विश्वासका अर्थ लगायेंगे। बहुतसे लोग कह भी रहे हैं कि अबकी बार महात्माजी भी कौंसिल-प्रवेशसे सहमत हैं, और अिसकी नीति पर अुनका विश्वास भी है। अिस संबंधमें लोग यह दलील पेश करते है कि कौंसिलके गत अधिवेशनमें हमारे लोग कम संख्यामें गये थे; अतः जैसी आशा की जाती थी वैसी कामयाबी हासिल न हो सकी। अबकी बार पूरी ताकत लगाकर हम अपना बहुमत करेंगे, जिससे आगे चलकर कानून-भंगमें अधिक लाभ होगा।

"अिस पर वादविवाद न कर आपसे सादर यही अनुरोध है कि आप अपनी अनुमति अिस पत्रके समाधानके साथ 'नवजीवन' में प्रकाशित कर प्रस्तुत भ्रमको दूर करनेकी कृपा करें।"

जो अभिप्राय मेरा सन् १९२०–२१ में अिस विषयमें था वही आज भी मौजूद है। मैं नहीं मानता कि कौंसिलोंमें जानेसे देशको लाभ हुआ है। परन्तु यदि कौंसिलमें जाना ही है, तो वहां जाकर भी लोग खद्दर अित्यादिका रचनात्मक कार्य करनेकी चेष्टा करें तो अवश्य अच्छा है। कौंसिलमें न जाना बुद्धिमानीका प्रथम लक्षण है,

जानेके बाद वही कार्य करना, जो हम बाहर भी करना चाहते हैं, दूसरी श्रेणीकी बुद्धिमानी है।

पाठकोंको मेरी सलाह यह है कि जिन्हें कौंसिलोंमें जानेका या किसीको भेजनेका मोह नहीं है, वे अुनका नाम तक भूल जायं।

हिन्दी-नवजीवन, ६–६–'२९

४१

क्षमा-प्रार्थना

मुझे हमेशा दुःख रहा है कि 'हिन्दी नवजीवन'का सम्पादक होते हुअे भी मैंने अिसके लिअे कुछ लिखा ही नहीं है। लिखनेकी अिच्छा तो प्रबल रही है, परन्तु अिससे पहले अुसे सफल न कर सका। अबसे अिरादा है कि हर सप्ताह कुछ न कुछ लिखता रहूंगा।

हिन्दी-नवजीवन, ६–६–'२९

४२

बुनाओ बनाम कताओ

खादी-आश्रम रींगससे मूलचंदजी लिखते हैं:

"अिस केन्द्र द्वारा छः माससे कृषकोंमें पींजना सिखानेका काम हो रहा है। अब तक करीब ९०० लोग पींजना सीख चुके हैं। ये वे लोग हैं, जिनको हमने पींजना सिखाया है, और जिनके नाम हमारे पास लिखे हुअे हैं। अिनके सिवा भी बहुतसे लोग आपसमें अेक-दूसरेकी सहायतासे पींजना सीख गये हैं। अिनमें से अब शायद ही कोअी पिंजारेके पास पींजनेको रुअी ले जाते होंगे।

"चरखा तो अिनके यहां पहलेसे मौजूद है, और स्त्रियां कातती भी हैं।

"आजकल जब कि हम अिनको पींजना सिखा रहे हैं, अिनमें से कुछ लोग यह भी कह रहे हैं कि आप हमको बुनना भी क्यों नहीं सिखा देते?

"जब हम कृषकोंको बुनना सिखानेकी समस्या पर विचार करते हैं, तो हमारे खयालमें कुछ बातें तो अिसके विपक्षमें और कुछ पक्षमें आती हैं। विपक्षकी बातें अिस प्रकार हैं:

१. बुनाअी संहायक धंधा नहीं है।

२. राजपूतानेमें बुनाअीका पेशा करनेवाले लोग गांवोंमें सब जगह हैं।

३. यह जरा टेढ़ा काम है।

बुनाअीके पक्षमें निम्नलिखित बातें हैं:

१. कोअी-कोअी कृषक बुनना सिखानेके लिअे कह रहे हैं।

२. पेशेवाले जुलाहे बुनाअी ज्यादा मांगते हैं, बहुधा हात-कते सूतमें मिलका सूत मिला देते हैं और कृषक जो सूत अुनको बुननेके लिअे देते हैं अुसे बदल भी लेते हैं।

३. कृषकोंके पास फुरसतका समय काफी रहता है।

४. बिजोलियामें सैकड़ों कृषकोंने बुनना सीख लिया है।"

मेरा अभिप्राय है कि जो कृषक बुनना सीखना चाहते हैं, अुनको बुनना सिखाना खादी-सेवकका धर्म है। परन्तु जैसे धुनाअीका प्रचार सफलतापूर्वक किया जाता है, और आवश्यक है, वैसे बुनाअीके बारेमें नहीं कहा जा सकता। धुनाअी कताअीका अविभाज्य अंग है; जैसे, रोटी पकानेमें आटेका गूंधना। जो आटेको गूंध नहीं सकता, परन्तु चूल्हेके पास बैठकर रोटी पका सकता है, यह नहीं कहा जाता कि वह रोटी पकाना जानता है। अिसलिअे धुनाअीका प्रचार अुतना ही आवश्यक है जितना कताअीका।

बुनाअी अलग क्रिया है; अलग पेशा है। अिसका नाश नहीं हुआ है। हिन्दुस्तानके दारिद्र्यके साथ बुनाअीका संबंध नहीं है;

कताओीके नाशसे कृषकोंकी हालत चिंताजनक और कंगाल हो गओी है। स्वावलंबन पद्धतिके प्रचारार्थ भी बुनाओीके प्रचारकी आवश्यकता नहीं है। स्वावलंबन पद्धतिका यह अर्थ हरगिज नहीं है कि प्रत्येक मनुष्य अपना सब काम खुद कर ले। अैसा प्रयत्न करना भी व्यर्थ और हानिकर है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज पर अवलंबित है। स्वावलंबन पद्धतिका यह अर्थ है कि प्रत्येक देहातमें देहाती लोग अपना अनाज आप पैदा करें, अपने कपड़े आप बना लें। देहातमें श्रम-विभाग अवश्य होगा। केवल सूत कातना सबके लिअे कर्तव्य होगा। भूतकालमें अैसा था, आज अैसा होना चाहिये, भविष्यमें अैसा रहना चाहिये। थोड़े ही विचारसे मनुष्य देख सकेगा कि यदि कताओीकी क्रिया हाथोंसे की जाय — और करनी चाहिये — तो वह अिसी तरह की जा सकती है।

हमारे दिलमें यह खयाल भी नहीं आना चाहिये कि चूंकि जुलाहे सचाओीसे काम नहीं करते हैं, अिसलिअे कृषकोंको बुनाओीका काम सीख लेना चाहिये। हमारा काम जुलाहोंको अच्छे बनानेका है। वे भी प्रजाके अेक अंग हैं। हां, अेक काम हमें अवश्य करना चाहिये। कओी खादी-सेवकोंको बुनाओीका काम अच्छी तरह सीख लेना चाहिये, ताकि अुन भाअियों पर हम असर डाल सकें और अुन लोगोंको हमारे अज्ञानसे होनेवाले अन्यायसे भी बचा लें।

हिन्दी-नवजीवन, ६–६–’२९

४३

धुनाओकी लगन

श्री महावीरप्रसाद पोद्दार धुनकी (पींजन) की तारीफ नीचे लिखे शब्दोंमें करते हैं :

"आपको यह जानकर खुशी होगी कि मैंने यहां धुनाओका हुनर सीख लिया है। 'हिन्दी-नवजीवन'में धुनाओके संबंधमें अक्सर चर्चा हुओ है; पर तब अुसमें मुझे वैसा रस नहीं आता था। अब तो अुन लेखोंको फिरसे पढ़नेकी अिच्छा हो रही है। मुझे तो अिस समय यह जान पड़ रहा है कि खादी महंगी और काफी मजबूत न होनेकी सबसे बड़ी वजह है कातनेवालेका धुनाओकी कला न जानना। जब तक धीरजसे, अच्छी तरह पहले रुओ साफ न कर ली जाय और बादको अुचित रूपमें धुन न ली जाय, तब तक कताओका काम अच्छा होना संभव नहीं है। मेरी समझमें धुनिया मेरी रुचिके अनुकूल रुओ धुन कर दे ही नहीं सकता। बाजारके गंदे दूध और घरकी गायके दूधमें जो अंतर है, वही अंतर अिसमें भी है। जिन्हें कताओका कुछ भी शौक है, अुन्हें धुनना तुरन्त सीख लेना चाहिये। जो लोग गांवोंमें चरखेका प्रचार कर रहे हैं या करना चाहते हैं, अुन्हें पहले कत्तिनको हाथसे धुनना सिखलाना चाहिये। साफ की हुओ रुओके अच्छी तरह धुन जाने पर कताओ शीघ्र होती है, सूतमें फुटकी नहीं पड़ती, सूत मजबूत होता है, तार कम टूटता है और कातनेमें मौज आती है। अैसे सूतकी बुनाओ वर्तमानसे आधी तक हो सकती है और अुसकी खादी आजसे ड्योढ़ी मजबूत हो सकती है।

"अगर प्रांत-प्रांतमें कुछ अैसे स्कूल हों, जहां यह हुनर दो-तीन महीनोंमें सिखा कर लोगोंको गांवोंमें सिखाने भेज

दिया जाय तो कितना अच्छा हो! यहां खादी प्रतिष्ठानवाले तो कुछ अिसी तरहका काम कर रहे हैं। देहाती किसानोंके कुछ लड़के आकर यह काम सीख गये हैं और अब अपने गांवोंमें जाकर प्रचार करेंगे। प्रतिष्ठानवाले तो १५–२० दिनमें ही साधारण रूपसे धुनना सिखा देते हैं। बिहार विद्यापीठ, काशी-विद्यापीठ और प्रेम-महाविद्यालय सरीखी संस्थायें अेक-अेक योग्य अध्यापक रखकर अपने प्रान्तमें यह काम कर सकती हैं। बापूजी, मेरा तो धुनाअी सिखानेमें और धुननेमें बड़ा मन लगता है। जैसे अमीर लोग अपने कमरोंमें बाघकी छाल और हरिनके सींग तथा कुछ 'अल्लम-गल्लम' सामान टांगे रहते हैं, वैसे ही अगर हम अपने कमरेमें प्रांत प्रांतके धुनने और कातनेके औजार सुंदरतासे सजायें तो क्या कमरेकी शोभा नहीं बढ़ेगी? मुझे बांसकी मध्यम पींजन अुतनी ही प्यारी लगने लगी है, जितनी किसी शिकारीको अुसकी बंदूक लगती होगी। क्यों नहीं आप यहां किसी दूसरे आदमीको दे देते और मुझे गांवोंमें धुनना सिखानेको भेज देते? आज नहीं तो भंडारके साल भरके वादेके बाद तो मुझे आपको यही काम देंना चाहिये।"

जैसा भाअी महावीरप्रसाद लिखते हैं, धुनकी अुसी प्रशंसाके योग्य है। जो कातनेकी कलाका पूरा दर्शन करना चाहें अुनके लिअे धुनकी अत्यावश्यक है। वह सीखनेमें आसान है, चलाते समय अुसमें से जो संगीत निकलता है, वह बहुत श्रुतिमधुर होता है। बर्फके समान सफेद-साफ रुअीकी पोल (अुम्दा धुनी हुअी रुअी) बनाकर कातने-वाले सब याज्ञिकोंको मेरी सलाह है कि वे महावीरप्रसादजीका अनुकरण करें।

हिन्दी-नवजीवन, १३–६–'२९

४४

यज्ञार्थ सिलाओ

श्री महावीरप्रसाद पोद्दार और लिखते हैं :

> "कुछ दिन हुअे 'हिन्दी-नवजीवन' में किसी भाओीने सुझाया था कि सिलाओी जाननेवाली बहनें या भाओी फुरसतके समय मुफ्तमें खादीके कपड़े सीकर खादी-सेवा यज्ञमें भाग ले सकते हैं। अुस समय अेक-दो मित्रोंमें अिसकी चर्चा हुओी, पर काम कुछ नहीं हुआ। अुस दिन भाओी श्री घनश्यामदासजी बिड़लाने अुक्त स्कीमकी बात छेड़ी। तो तय हुआ कि अुन्हींके घरसे श्रीगणेश हो। अुनके घरकी कओी स्त्रियोंने यज्ञार्थ सीना स्वीकार किया है। कुछ काम शुरू हो गया है। अुदाहरण देखकर और बहनें भी भाग ले सकती हैं। आशा है, 'हिन्दी-नवजीवन' में आप फिर अेक बार अिसकी चर्चा करनेकी कृपा करेंगे।"

हम परोपकारार्थ जो भी कार्य करते हैं, सब यज्ञ है। खादीकी सफलताके लिअे बहुतसे छोटे-मोटे यज्ञोंकी आवश्यकता है। चरखा-यज्ञ सबसे बड़ा, सर्वव्यापक यज्ञ है। जिनके पास समय है, वे सब थोड़ा समय खादी सीनेमें दे सकें तो खादी बहुत सस्ती हो सकती है। यह कार्य वहीं संगठित हो सकता है, जहां खादी-भंडार हैं और खादी-भंडारवाले ही अिस पर नियंत्रण रख सकते हैं। अिसलिअे मैं भाओी महावीरप्रसादको अिस आरंभके लिअे धन्यवाद देता हूं, घनश्यामदासजीको भी। मुझे अुम्मीद है कि अुन्होंने जिस पवित्र कार्यका आरंभ किया है, अुसे वे कभी न छोड़ेंगे। कलकत्तेमें अैसी सीनेवाली स्वयंसेविकाओंका मिलना कोओी मुश्किल बात न होनी चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन, १३-६-'२९

४५

विवाह और वेद

आजकल हिन्दू-संसारमें विवाह-विधि जिस तरह होती है, अुसमें धर्म कम है और विलास ज्यादा है। जिनके विवाह होते हैं, अुनको पता भी नहीं चलता कि अिस विधिमें क्या होता है, अुसके मानी क्या हैं, और विवाहितका क्या धर्म है? यह शोचनीय बात है। वेदोंमें विवाहको धार्मिक कार्य माना गया है और अुसकी विधि भी बतलाअी गअी है। अुसीके अनुकूल (आज भी) विवाह-कार्य होना चाहिये। माता-पिता और गुरुजनोंका यह धर्म है कि वे वर-वधूको विवाह-धर्म समझावें और विवाह-विधिका अर्थ स्पष्ट करके बतलावें। यह विधि क्या है और वर-कन्याकी प्रतिज्ञाअें क्या हैं, सो सब 'नवजीवन' में बताया गया था, पाठक अुसे देख लें।*

हिन्दी-नवजीवन, १३–६–'२९

---

* [ता० ४–३–'२६ के 'हिन्दी-नवजीवन' में 'अेक स्मरणीय विवाह' नामक लेख छपा है। अुसमें विवाह-विधिका तो जिक्र है, लेकिन वर-कन्याकी प्रतिज्ञायें नहीं दी गअी हैं। वे ता० ७–३–'२६ के 'नवजीवन' से यहां दी जाती हैं ––संपा०]

सप्तपदी

"वर कन्यासे कहता है:

१. अिष अेकपदी भव। सा मां अनुव्रता भव।

अिच्छाशक्ति पानेके लिअे अेक कदम बढ़ा। मेरे व्रतकी पूर्तिमें मेरी सहायता कर।

कन्या –– मैं आपके प्रत्येक सत्य संकल्पमें आपकी मदद करूंगी।

२. अूर्जे द्विपदी भव। सा मां अनुव्रता भव।

तेज पानेके लिअे दूसरा कदम बढ़ा। मेरे व्रतकी पूर्तिमें मेरी सहायता कर।

कन्या –– मैं आपके प्रत्येक सत्य संकल्पमें आपकी मदद करूंगी।

कुछ प्रश्न

अेक सज्जनने कुछ प्रश्न पूछे हैं। अुसमें आरंभ मेरी स्तुतिसे किया है। मुझे पूर्ण निर्भय, पूर्ण त्यागी, पूर्ण निर्वैर और पूर्ण सत्याग्रही माना है। अैसे विशेषणोंका प्रयोग मानपत्रोंमें तो होता ही है; परन्तु (चूंकि) मानपत्रोंमें अतिशयोक्ति हमेशा होती है, यह भले ही क्षन्तव्य माना जाय। (मगर) खतोंमें अैसे विशेषणोंका अुपयोग अक्षन्तव्य है, अविनय है। किसी मनुष्यकी स्तुति अुसके सामने करना असभ्यता है। हिन्दीके पत्रोंमें अैसी स्तुति विशेषतया देखता हूं, अिसीलिअे

---

३. रायस्पोषाय त्रिपदी भव। सा मां अनुव्रता भव।

कल्याणकी वृद्धिके लिअे तीसरा कदम बढ़ा। मेरे व्रतकी पूर्तिमें मेरी सहायता कर।

कन्या — मैं आपके सुखमें सुखी और आपके दुःखमें दुःखी रहूंगी।

४. मायोभव्याय चतुष्पदी भव। सा मां अनुव्रता भव।

आनंदमय बननेके लिअे चौथा कदम बढ़ा। . . .

कन्या — मैं सदा आपकी भक्तिमें तत्पर रहूंगी, सदा प्रिय बोलूंगी, सदा आपके आनन्दकी कामना करूंगी।

५. प्रजाभ्यः पंचपदी भव। सा मां अनुव्रता भव।

प्रजाकी सेवाके लिअे पांचवां कदम बढ़ा। . . .

कन्या — आपके प्रजा-सेवा व्रतमें मैं पगपग पर आपके साथ रहूंगी।

६. ऋतुभ्यः षट्पदी भव। सा मां अनुव्रता भव।

नियम-पालनके लिअे छठा कदम बढ़ा। . . .

कन्या — यम-नियमके पालनमें मैं आपके पीछे-पीछे चलूंगी।

७. सखा सप्तपदी भव। सा मां अनुव्रता भव।

हम दोनोंमें आपसमें मित्रता बनी रहे, तदर्थ सातवां कदम बढ़ा। मेरे व्रतकी पूर्तिमें मेरी सहायता कर।

कन्या — आज मेरे पुण्योदयका दिन है, जो आप मेरे पति हुअे हैं। आप मेरे परम मित्र हैं, परम गुरु हैं, परम देवता हैं।

मैंने यह अुल्लेख यहां किया है। वस्तुतः मैं पूर्ण निर्भय, पूर्ण निर्वैर, पूर्ण त्यागी नहीं हूं। सत्याग्रही शब्दका धात्वर्थ लेनेसे पूर्ण सत्याग्रहीपनका आरोपण (मुझ पर) हो सकता है। क्योंकि सत्यकी कीमत समझ लेनेके बाद सत्यका आग्रह रखना आसान है। (यह) याद रखा जाय कि सत्यका आग्रह अेक वस्तु है, सत्यका आचार दूसरी। मुझे यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि मैं पूर्णतया निर्वैर, निर्भय और त्यागी नहीं हूं। केवल स्थूल यानी बाह्य त्यागसे अिन गुणोंमें पूर्णता नहीं आ सकती। मानसिक त्याग बहुत कठिन है और मैं यह प्रतिज्ञा (दावा) हरगिज नहीं कर सकता कि मैं मनसे भी वैर, भय अित्यादिसे मुक्त हूं। हां, मन पर भी काबू पानेका मेरा सतत प्रयत्न है; परन्तु प्रयत्न और सिद्धिमें अुतना ही अंतर है, जितना पृथ्वी और सूर्यके

कन्याका पिता कहता है:

यस्त्वया धर्मश्चरितव्यः सोऽनया सह।
धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्या।।

आपको जो धर्माचरण करना पड़े सो सब अिस कन्याके साथ करना। धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्तिमें अिस कन्याके प्रति अेकनिष्ठ रहना, व्यभिचार न करना।

वर — नातिचरामि, नातिचरामि, नातिचरामि।

धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्तिमें व्यभिचार न करूंगा, न करूंगा, न करूंगा।

यह हमारी प्राचीन विवाह-विधिका प्राण है। अिसके सिवा आजकलके विवाह आदि संस्कारोंमें जो कुछ किया जाता है, सो सब आडम्बर है। न हमें लम्बी-चौड़ी निमंत्रण पत्रिकाअें भेजनेकी जरूरत है, न जाति-भोजोंकी आवश्यकता है, न बैण्ड बाजोंकी। वर-कन्या दोनों शुद्ध खादी पहनें, शुद्ध चित्तसे प्रतिज्ञायें करें, सादगीसे प्रामाणिक जीवन बितायें, यही हमारे संस्कारोंका आदर्श होना चाहिये। अगर हिन्दू-संसार यह सब करने लगे तो कितना धन बचे, कितना आडम्बर कम हो, माता-पिता और वर-वधू कितनी झंझटोंसे मुक्त हों और कितनी अधिक धर्म-वृद्धि हो?"

बीच। अिसलिअे कोअी यह न मान ले कि मैं जो कुछ भी कहता हूं, अुसमें कभी भूल हो ही नहीं सकती। निर्मल बुद्धिसे मैं जितना देख सकता हूं, अुतना ही कहता हूं। अगर सज्जन अपनी बुद्धि द्वारा अिसकी प्रतीति न कर सकें तो छोड़ दें। अंधश्रद्धासे हमें बहुत हानि हुअी है। मैं अपने पर (किसीकी) अंधश्रद्धा नहीं चाहता हूं, अुससे बचना पसंद करता हूं। लोगोंकी अंधश्रद्धा मेरे मार्गमें रुकावट डालती है। अब मैं अुक्त सज्जनके प्रश्नों पर आता हूं; अुन पर वे और अन्य पाठकगण बुद्धिपूर्वक सोचें।

पहला प्रश्न यह है :

> "केवल श्रवण तथा कथन-मात्रकी अपेक्षा न रखनेवाला आत्मबल कौन कौनसे साधनोंकी अपेक्षा रखता है?—वह आत्मबल जिसका अुपयोग प्रह्लाद आदिने किया था।"

श्रवण और कथन-मात्रकी सर्वथा अुपेक्षा करनेसे आत्मबलकी प्राप्ति (यदि) असंभव नहीं तो कठिन (अवश्य) है। आत्माकी मूर्छित स्थितिमें पवित्र श्रवणादि चिनगारीका काम देते हैं। जब अंतर्ज्ञान प्रकट होता है तब श्रवणादिकी आवश्यकता मिटती है। प्रह्लादके तो अन्तर्नाद बहुत था। मनुष्यके लिअे श्रवणादि पहला पाठ है।

दूसरा प्रश्न यह है :

> "क्या विधवाओंकी आधुनिक विपत्तिको दूर करनेके लिअे भारतके सतीत्व धर्मकी ध्वजाको अवनत करनेवाले पुनर्विवाहके सिवा और कोअी अैसा अुपाय नहीं है कि जिससे अुनके ब्रह्मचर्यकी रक्षा होकर वे कर्मक्षेत्रमें भाग ले सकें? भारतमें लड़कों तथा रंडुओंकी अपेक्षा लड़कियों तथा विधवाओंकी संख्या अधिक है। यह कमी पुनर्विवाहसे क्योंकर पूरी हो सकती है?"

यह कहना कि विधवा-विवाहसे सतीत्वका नाश होता है, भ्रम-मूलक है और भ्रमजन्य है। जो विधवा पुनर्लग्न करना चाहती है, अुसको बलात् अविवाहित रखनेसे धर्मका और सतीत्त्वका लोप होता जाता है। बाल-विधवाका विवाह ही धर्मकी और सतीत्वकी

रक्षा कर सकता है। विधवाओंका आदर करनेसे, अुनके लिअे ज्ञान-प्राप्तिके साधन पैदा कर देनेसे और पुनर्विवाहकी संपूर्ण स्वतंत्रता देनेसे ही ब्रह्मचर्यकी रक्षा हो सकती है। आज तो मानसिक और शारीरिक व्यभिचार व्यापक बन गया है और अुसका कारण है विधवा पर होनेवाला बलात्कार। यह सिद्ध नहीं हो सकता कि लड़कियों और विधवाओंकी संख्या लड़कों और विधुरोंकी अपेक्षा ज्यादा है। कअी जातियोंमें यह है सही। किन्तु असंख्य जातियोंका तो नाश (होना) ही अिष्ट है। चार वर्णोंसे अधिक (अलग) कोअी जाति हो नहीं सकती। असंख्य जातियोंकी हस्तीके लिअे हिन्दू-धर्म-शास्त्रमें कोअी मान्य प्रमाण नहीं है। संभव है कि जब जाति-विभाग पड़े, तब अुनकी कुछ अुपयोगिता रही हो; आज तो न अुनकी कोअी अुपयोगिता है, न आवश्यकता ही।

हिन्दी-नवजीवन, २०–६–'२९

४७

गुप्त दान

'कुदरती वस्ल' अुपनामसे अेक दानीने गुमनाम खतके साथ १०० रु० भेजे हैं। अिनमें से ५० लालाजी स्मारकके लिअे हैं, १० रुपये मगनलाल-स्मारकके लिअे, २५ रुपये दक्षिण-संकट-निवारणके लिअे और १५ रुपये गोरक्षाके लिअे हैं।

'कुदरती वस्ल' को मैं अिस गुप्तदानके लिअे धन्यवाद देता हूं। गुमनाम खत लिखनेकी आदत बहुत बुरी है। मैं बहुत बार यह लिख चुका हूं कि यह भीरुताकी निशानी है, और अिसे कभी भी अुत्ते-जन न दिया जाना चाहिये। मगर 'कुदरती वस्ल' वालोंका गुमनाम खत अिनमें से किसी अेक भी दोषका पात्र नहीं है। संसारमें अैसी बहुत थोड़ी वस्तुअें हैं, जो सब जगह और सब समय अच्छी या खराब ही होती हों; 'कुदरती वस्ल' का खत अिसका अेक नमूना

है। यह वांछनीय है कि कअी लोग 'कुदरती वस्ल' का अनुकरण करें। दाताको अखबारमें अपना नाम छपा देखनेकी बड़ी हवस होती है। और कमसे कम अितना तो लोभ हरअेकमें होता ही है कि जिसे दान दिया जाता है, वह दाताका नाम जान ले। अिनमें अगर कोअी अैसा निकल आये जो दान लेनेवालेको अपना नाम बताना न चाहे, तो अुसका हौसला बढ़ाना मुनासिब है। अिससे दान लेनेवालेकी भी अच्छी परीक्षा हो जाती है। क्योंकि दानी छिपे तौर पर यह भली-भांति देख सकता है कि अुसके दिये हुअे दानका कैसा अुपयोग किया जाता है।

हिन्दी-नवजीवन, २०-६-'२९

४८

अप्राकृतिक व्यभिचार

कुछ साल पहले बिहार सरकारने अपने शिक्षा-विभागमें पाठशालाओंमें होनेवाले अप्राकृतिक व्यभिचारके सम्बन्धमें जांच करवाअी थी। जांच-समितिने अिस बुराअीको शिक्षकों तकमें पाया था, जो अपनी अस्वाभाविक वासनाकी तृप्तिके कारण विद्यार्थियोंके प्रति अपने पदका दुरुपयोग करते हैं। शिक्षा-विभागके डायरेक्टरने अेक सरक्यूलर द्वारा शिक्षकोंमें पाअी जानेवाली अैसी बुराअीका प्रतिकार करनेका हुक्म निकाला था। सरक्यूलरका जो परिणाम हुआ होगा — अगर कोअी हुआ हो — वह अवश्य ही जानने लायक होगा।

मेरे पास अिस सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न प्रांतोंसे साहित्य भी आया है, जिसमें अिस और अैसी बुराअियोंकी तरफ मेरा ध्यान खींचा गया है और कहा गया है कि यह बुराअी प्रायः भारत भरके तमाम सार्वजनिक और प्रायवेट मदरसोंमें फैल गअी है और बराबर बढ़ रही है।

यह बुराअी यद्यपि अस्वाभाविक है तथापि अिसकी विरासत हम अनन्त कालसे भोगते आ रहे हैं। तमाम छुपी बुराअियोंका

अिलाज ढूंढ़ निकालना अेक कठिनतम काम है। यह और भी कठिन बन जाता है, जब अिसका असर बालकोंके संरक्षकों पर भी पड़ता है — और शिक्षक बालकोंके संरक्षक हैं ही। प्रश्न होता है कि अगर प्राणदाता ही प्राणहारक हो जाय तो फिर प्राण कैसे बचें? मेरी रायमें जो बुराअियां प्रकट हो चुकती हैं, अुनके सम्बन्धमें विभागकी ओरसे बाजाब्ता कार्रवाअी करना ही अिस बुराअीके प्रतिकारके लिअे काफी न होगा। सर्व साधारणके मतको अिस सम्बन्धमें सुगठित और संस्कृत बनाना अिसका अेकमात्र अुपाय है। लेकिन अिस देशके कअी मामलोंमें प्रभावशाली लोकमत जैसी कोअी बात है ही नहीं। राजनैतिक जीवनमें असहायता या बेबसीकी जिस भावनाका अेकछत्र राज्य है, अुसने देशके जीवनके सब क्षेत्रों पर अपना असर डाल रखा है। अतअेव जो बुराअियां हमारी आंखोंके सामने होती रहती हैं, अुन्हें भी हम टाल जाते हैं।

जो शिक्षा-प्रणाली साहित्यिक योग्यता पर ही अेकान्त जोर देती है, वह अिस बुराअीको रोकनेके लिअे अनुपयोगी ही नहीं है, बल्कि अुससे अुलटे बुराअीको अुत्तेजना ही मिलती है। जो बालक सार्वजनिक शालाओंमें दाखिल होनेसे पहले निर्दोष थे, शालाके पाठ्य-क्रमके समाप्त होते होते वे ही दूषित, स्त्रैण और नामर्द बनते देखे गये हैं। बिहार-समितिने 'बालकोंके मन पर धार्मिक प्रतिष्ठाके संस्कार जमाने' की सिफारिश की है। लेकिन बिल्लीके गलेमें घंटी कौन बांधे? अकेले शिक्षक ही धर्मके प्रति आदर भावना पैदा कर सकते हैं। लेकिन वे स्वयं अिससे शून्य हैं। अतअेव प्रश्न शिक्षकोंके योग्य चुनावका प्रतीत होता है। मगर शिक्षकोंके योग्य चुनावका अर्थ होता है, या तो अबसे कहीं अधिक वेतन या फिर शिक्षणके ध्येयका कायापलट — याने शिक्षाको पवित्र कर्तव्य मानकर शिक्षकोंका अुसके प्रति जीवन अर्पण कर देना। रोमन कैथोलिकोंमें यह प्रथा आज भी विद्यमान है। पहला अुपाय तो हमारे जैसे गरीब देशके लिअे स्पष्ट ही असंभव है। मेरे विचारमें हमारे लिअे दूसरा मार्ग ही सुलभ है। लेकिन वह भी अुस शासन-प्रणालीके अधीन रह कर संभव नहीं जिसमें

हरअेक चीजकी कीमत आंकी जाती है, और जो दुनिया भरमें ज्यादा से ज्यादा होती है।

अपने बालकोंकी नैतिक सुधारणाके प्रति माता-पिताओंकी लापरवाहीके कारण अिस बुराअीको रोकना और भी कठिन हो जाता है। वे तो बच्चोंको स्कूल भेजकर अपने कर्तव्यकी अितिश्री मान लेते हैं। अिस तरह हमारे सामनेका काम बहुत ही विषादपूर्ण है। लेकिन यह सोचकर आशा भी होती है कि तमाम बुराअियोंका अेक रामबाण अुपाय है, और वह है—आत्मशुद्धि। बुराअीकी प्रचण्डतासे घबरा जानेके बदले हममें से हरअेकको पूरे पूरे प्रयत्नपूर्वक अपने आसपासके वातावरणका सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना चाहिये और अपने-आपको अैसे निरीक्षणका प्रथम और मुख्य केन्द्र बनाना चाहिये। हमें यह कहकर संतोष नहीं कर लेना चाहिये कि हममें दूसरोंकी-सी बुराअी नहीं है। अस्वाभाविक दुराचार कोअी स्वतंत्र अस्तित्वकी चीज नहीं है। वह तो अेक ही रोगका भयंकर लक्षण है। अगर हममें अपवित्रता भरी है, अगर हम विषयकी दृष्टिसे पतित हैं, तो पहले हमें आत्म-सुधार करना चाहिये और फिर पड़ोसियोंके सुधारकी आशा रखनी चाहिये। आजकल तो हम दूसरोंके दोषोंके निरीक्षणमें बहुत पटु हो गये हैं और अपने-आपको अत्यंत निर्दोष समझते हैं। परिणाम दुराचारका प्रसार होता है। जो अिस बातके सत्यको महसूस करते हैं, वे अिससे छूटें तो अुन्हें पता चलेगा कि यद्यपि सुधार और अुन्नति कभी आसान नहीं होते, तथापि वे बहुत कुछ संभववीय हैं।

हिन्दी-नवजीवन, २७–६–'२९

४९
आत्मशुद्धिकी आवश्यकता

आंध्र-यात्राके दिनोंमें कर्नूलमें मुझे अेक गुमनाम खत मिला था। पत्रमें यह शिकायत की गअी थी कि स्थानीय स्वागत-समितिके सदस्य मेरे स्वागत मात्रके लिअे ही खादीधारी बने थे, वैसे तो वे आम तौर पर विदेशी कपड़े और विदेशी ढंगकी पोशाक पहननेवाले थे। सभाओंमें भी विदेशी वस्त्रका ही अच्छा-सा प्रदर्शन होता था। अतअेव मैंने अिस पत्रकी बात सभामें कही और साथ ही गुमनाम पत्र लिखनेवालेको भी नाम छुपानेके कारण खरी-खोटी सुनाअी। पत्र-लेखकने मेरा भाषण सुनकर तुरन्त ही मुझे अपना नाम लिख भेजा। अुनका पत्र अुनके गौरवको बढ़ानेवाला और दूसरी दृष्टिसे बोधप्रद भी है, अतअेव अुसे नीचे देता हूं :

> "गुप्त व्यवहार-मात्र पाप है। परन्तु नीचे लिखे कारणोंसे मैंने कल अपना नाम नहीं दिया था। मैं सरकारी नौकर हूं। आप भलीभांति जानते हैं कि अेक सरकारी नौकरकी हैसियतसे मैं अपने देशकी स्थिति और आवश्यकताके बारेमें अपनी सच्ची राय प्रकट नहीं कर सकता। क्योंकि यह बड़ेसे बड़ा राजद्रोह माना जाता है। फिर भी कल जो लोग आपकी सेवामें हाजिर हुअे थे, अुनमें से कअियोंका बनावटीपन मैं सह न सका। मुझे अुससे आघात पहुंचा। शिक्षित वर्गका कर्तव्य है कि वह अशिक्षितोंको समझाकर सन्मार्ग पर लावे। लेकिन अगर शिक्षित लोग यह मानते हों कि साधारण अशिक्षित जनताको ढोंग और पाखंड द्वारा समझाया जा सकता है, तो वे बड़ी भूल करते हैं। अगर हरअेक आदमी निश्चय कर ले कि और कहीं नहीं तो कमसे कम अपने-अपने घरमें तो आपकी सलाहके मुताबिक वह चलेगा, तो मुझे विश्वास है

कि थोड़े ही समयमें देश स्वतंत्रताके नाते अपना सिर अूंचा अुठा सकनेमें समर्थ हो सकेगा। मिथ्याचारके द्वारा लोगोंकी बुद्धिमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता। अुलटे अपने खोखलेपनके कारण हम झूठी मिसाल पेश करते हैं और दुनियाकी नजरमें हंसीके पात्र बनते हैं। अिन विचारोंसे मैं बेचैन था, अिमीसे आपको पत्र लिखा था। मैं बहुत ही गरीब हूं, फिर भी जब तक मुझे विश्वास न हो जाय कि मैंने जो कुछ किया है, बुरा किया है, तब तक नाम देने या न देनेके बारेमें मैं लापरवाह हूं। आपको नाम बतानेसे मेरे निर्वाहका अेकमात्र आधार — मेरी सरकारी नौकरी — भी अगर जोखिममें पड़े तो मैं अुसकी परवाह न करूंगा।"

अिन लेखकको और दूसरोंको, जो प्रतिष्ठित समाचारपत्रोंके नाम पत्र भेजते हैं, जानना चाहिये कि जो लेखक अपना नाम सिर्फ संपादककी जानकारीके लिअे ही लिख भेजते हैं, अुनके नाम प्रकट न करनेके लिअे संपादक बंधा रहता है। अतअेव प्रस्तुत पत्रलेखकको विश्वास रखना चाहिये कि अुनका नाम कभी भी प्रकट न होगा। अगर अिन पत्रलेखकको यह जानकर आश्वासन मिलता हो, तो मैं कहूंगा कि अुनका पत्र पढ़कर मैंने अुनके पत्रमें से नामवाला भाग अुसी दम फाड़ डाला था, और अब तो अुसे याद करने पर भी याद नहीं आता है।

मेरे विचारमें अगर अिन सज्जनने अपना पहला पत्र भी नामसहित छपनेके लिअे भेजा होता तो अुनकी कोअी हानि न होती। पत्र अेकदम निर्दोष था और कोअी भी सरकारी नौकर बिना किसी खतरे या भयकी आशंकाके लिख सकता था। हम अकसर बिला वजह डर कर सच्चा काम करनेसे भय खाते हैं। सच्चाअीको अमलमें लानेकी हिम्मत हममें होनी चाहिये।

मुझे पता नहीं, कर्नूलके नेताओंके खिलाफ की गअी अिन लेखककी शिकायत सच है या नहीं। फिर भी यह तो मैं भी जानता हूं कि सार्वजनिक जीवनकी दाम्भिकताके बारेमें अिन्होंने जो कुछ लिखा है,

वह बिलकुल सच है। अगर नेता लोग जैसा बोलते हैं वैसा करने भी लगें, तो सर्व-साधारणके साथ साफ साफ बात करनेमें हमें कठिनाओी न हो। अतअेव आज जरूरत तो नेता लोगोंकी आत्मशुद्धिकी है। अिस आत्मशुद्धिके होते ही और बातें अपने-आप हो जायंगी।

हिन्दी-नवजीवन, २७–६–'२९

५०

परदेकी कुप्रथा

कोअी बात प्राचीन है अिसलिअे वह अच्छी है, अैसा माननेसे बहुत गलतियां होती हैं। यदि प्राचीन सब अच्छा ही होता, तो पाप थोड़ा प्राचीन नहीं है। परन्तु कितना भी प्राचीन होते हुअे भी पाप त्याज्य ही रहेगा। अस्पृश्यता प्राचीन है परन्तु पाप है, अिसलिअे वह सर्वथा त्याज्य है। शराबखोरी, जुआ अित्यादि प्राचीन हैं परन्तु पाप हैं, अिसलिअे वे त्याज्य हैं। जिसकी योग्यता आज हम बुद्धिसे सिद्ध कर सकते हैं और जो बुद्धि ग्राह्य है, अुसे यदि बुद्धि कबूल न करे तो वह शीघ्र छोड़ने योग्य है। पर्दा कितना ही प्राचीन हो, आज बुद्धि अुसको कबूल नहीं कर सकती है। परदेसे होनेवाली हानि स्वयंसिद्ध है। जैसा कि बहुतसी बातोंका किया जाता है, परदेका कोअी आदर्श अर्थ करके अुसका समर्थन नहीं करना चाहिये। जिस हालतमें आज हम परदेको पाते हैं, अुसका समर्थन करना असंभव है।

सच्ची बात तो यह है कि परदा बाह्य वस्तु नहीं है, आंतरिक है। बाह्य परदा करनेवाली कितनी ही स्त्रियां निर्लज्ज पाअी जाती हैं। जो बाह्य परदा नहीं करती, परन्तु आंतरिक लज्जा जिसने कभी नहीं छोड़ी है, वह स्त्री पूजनीया है। और अैसी स्त्रियां आज जगत्‌में मौजूद हैं।

प्राचीन ग्रंथोंमें अैसी भी बातें हम पाते हैं, जिनका पहले बाह्य अर्थ किया जाता था और अब आंतरिक अर्थ किया जाता है।

अैसा अेक शब्द यज्ञ है। पशुहिंसा सच्चा यज्ञ नहीं। परन्तु पाशवी वृत्तियोंको जलाना सच्चा यज्ञ है। अैसे सैकड़ों अुदाहरण मिल सकते हैं। अिसलिअे जो लोग हिन्दू जातिका सुधार और रक्षा करना चाहते हैं, अुनको प्राचीन दृष्टान्तोंसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है। प्राचीन सिद्धान्तोंसे बढ़कर नये सिद्धान्त हमें मिलनेवाले नहीं हैं। परन्तु अुन सिद्धान्तों पर अमल करनेमें नित्य परिवर्तन होगा। परिवर्तन अुन्नतिका अेक लक्षण है। स्थिरता अवनतिका आरंभकाल है। जगत् नित्य गतिमान है, स्थिरता शवमें है, वह मृत्युका लक्षण है। यहां योगीकी स्थिरताकी बात नहीं। योगीकी स्थिरतामें तीव्रतम गति है। अुस स्थिरतामें आत्माकी तीव्रतम जागृति है। यहां जड़ स्थिरताकी बात है। अुसका दूसरा नाम जड़ता कहा जा सकता है। जड़ताके वश होकर हम सब प्राचीन कुप्रथाओंका समर्थन करनेको अुत्सुक हो जाते हैं। यह हमारी जड़ता हमारी अुन्नतिको रोकती है। यही जड़ता हमारे स्वराज्यके प्रति गमनमें रुकावट डालती है।

अब परदेसे होनेवाली हानियोंको देखें :

१. स्त्रियोंकी शिक्षामें परदा बाधा डालता है।

२. स्त्रियोंकी भीरुताको बढ़ाता है।

३. स्त्रियोंके स्वास्थ्यको बिगाड़ता है।

४. स्त्रियों और पुरुषोंके बीचमें स्वच्छ (शुद्ध) संबंधको रोकता है।

५. स्त्रियोंकी नीच वृत्तिका पोषक बनता है।

६. परदा स्त्रियोंको बाह्य जगत्से दूर रखता है, अिसलिअे वे अुसके योग्य अनुभवसे वंचित रहती हैं।

७. अर्धांगना-धर्म-सहचारी धर्ममें परदा बाधा डालता है।

८. परदानशीन स्त्रियां स्वराज्यमें अपना पूरा हिस्सा हरगिज नहीं दे सकती हैं।

९. परदेसे बाल-शिक्षामें रुकावट होती है।

अिन सब हानियोंको देखते हुअे विचारशील सब हिन्दुओंका यह धर्म है कि वे परदेको तोड़ दें।

परदा तोड़नेका क्या और दूसरे सुधारोंका क्या, सबसे सरल अिलाज अिसका अपनेसे आरंभ करना है। हमारे कार्यका अच्छा परिणाम देखकर दूसरे अपने-आप अुसका अनुकरण करेंगे। अेक बातका खयाल अत्यावश्यक है। सुधारक कभी विनयका और मर्यादाका त्याग नहीं करेगा। परदा तोड़नेमें संयम हेतु है, तो अुसका तोड़ना कर्तव्य है और वह टूट सकता है। परदा तोड़नेमें स्वच्छंद भी हेतु हो सकता है। अैसी अवस्थामें परदा टूट नहीं सकता है, क्योंकि तब जनतामें क्रोध पैदा होगा और क्रोधके वश होकर जनता बुद्धिका त्याग करके कुप्रथाका भी समर्थन करने लगेगी। जनताका हृदय पवित्र है। अिस कारण अपवित्र हेतुका जनता कभी आदर नहीं करेगी।

हिन्दी-नवजीवन, २७–६–'२९

५१

अेक अभागिनी पुत्री

भारतवर्षमें जिन्हें मैं जानता हूं और जिन्हें नहीं भी जानता, अैसी बहुतसी पुत्रियां हैं। अुनमें से अेकने 'अभागिनी पुत्री' के अुपनामसे पुष्करसे मुझे अेक पत्र लिखा है। अुसे मैं अक्षरशः नीचे देता हूं :

"श्रीमान् पूज्यवर धर्मपिता महात्माजी, सादर वंदे।

"मैं अजमेर निवासी अेक सारस्वत ब्राह्मणकी कन्या हूं। मेरी आयु १८ सालकी है। पूर्ण दुःखी हूं। आशा है, आप मेरी करुण कथा पर ध्यान देकर मुझे अुचित सलाह देंगे, ताकि मैं अपना जीवन देशभक्ति, समाजसेवा और स्त्री-जातिके अुद्धारमें लगा सकूं।

"मैंने हिन्दीकी मिडिल पास की है। १३ सालकी आयुमें मेरे माता-पिताने बगैर मुझे पूछे मथुरा ले जाकर अेक युवकसे, जिसे मैंने न देखा था, न बातचीत की थी, न कुछ हाल ही

समझ सकी थी, परदेकी ओटमें बैठाकर शादी कर दी और कुछ ही मिनटमें कह दिया कि तेरी शादी हो गअी ! मैं आश्चर्य-चकित रह गअी। सैकड़ों दफा माता-पितासे अिसका विरोध किया कि आपने बगैर मुझे पूछे मेरी शादी क्यों की? और अुलटे दो हजार रुपये दहेजमें देकर आपने यह काम चुपकेसे क्यों किया? वह जयपुरके रहनेवाले हैं, अुन्हें अजमेर बारातके साथ बुलाना था, मेरे तेल चढ़ाना वगैरा रस्में करनी थीं।

"शादीके बाद मुझे मालूम हुआ कि अुनके आगेमे अेक पत्नी और बैठी हुअी है, जो अपने पिताके घर है। अिसका कारण है सास, ससुर, पति आदिके अत्याचार, अुनके घरकी यह रीति कि पहली शादीकी पत्नी किसी रअीसके घर पहुंचाअी जाय।

"तीन सालके बाद मुझे ससुरालसे लेने आये, तब मैंने जानेसे अिनकार किया। पर मेरे पिताजीको पूरा भरोसा दिया गया कि अिसके साथ कुछ भी नहीं होगा। बड़ोंकी आज्ञा मान मैं चली गअी। पर महात्माजी मैं क्या लिखूं? मुझे जयपुर ले जानेके बाद अेक बंद रथमें, जिसमें हवा तक न आती थी, बैठाकर किसी रअीसके घर ले जाया गया। वहांका रंगढंग देख-कर मैं घबड़ा गअी। मुझे कुछ पूछा गया। मैंने अपने कुटुम्बी भाअीका, जो वहां डॉक्टर रह चुके हैं, नाम लिया। अीश्वरने मुझे बचाया। बुद्धि दे दी, ताकि वे लोग घबरा गये और कहा कि अिस बाअीको यहां क्यों लाये? अिस तरह मेरी अिज्जत बची; नहीं, न जाने क्या क्या बीतती!

"कुछ दिन बादका वादा था कि मैं पिताके घर वापिस जाअूंगी। मेरे पिताजी लेने आये। मैंने अुन्हें सब हाल कहा। तबसे मैं ससुराल नहीं गअी हूं। तभीसे मैं दुःखी हूं। मेरी माताजीको अेक अैसी बीमारी, तीन साल हुअे, हो गअी है कि बहुत अिलाज कराया पर ठीक नहीं होती। अब दो महीनेसे पुष्कर-तीर्थमें यही सोचकर रहते हैं कि अच्छी हो जायं तो ठीक

है, वर्ना तीर्थमें शरीर तो छूट जायगा। पर रंगढंगसे पता चलता है कि माताजी १५ या २० दिनमें ही स्वर्गवासिनी हो जायंगी। डॉक्टर, वैद्य सबका यही मत है।

"मेरी समझसे मेरी शादी हुअी ही नहीं है। अब मैं खुद बालिग हूं। जो जबरदस्ती मेरा पति बनता है, अुससे मेरी अेक मिनट नहीं पट सकती। माताजी और मैं चाहती हूं कि दूसरी शादी हो, पर मेरे पिताजी पुरानी चालके हैं। यदि मेरी दूसरी शादी न की और जयपुर ही भेजी गअी तो मैं आत्म-हत्या जरूर करूंगी। अीश्वर साक्षी है, किसी तरह बच नहीं सकती।

"मेरा विचार देशसेवा करनेका है। मैंने खादी पहनना शुरू कर दिया है और अब चरखा भी चलाअूंगी। अभी यह विचार नहीं कर पाअी हूं कि जीवनभर ब्रह्मचर्यसे रह सकूंगी। अतअेव अेक साथी, जो देशभक्त हैं, अब तक ब्रह्मचारी रहे हैं और अिस प्रान्तमें अच्छा काम करते है, मेरी रक्षाका भार अपने अूपर लेनेको तैयार हैं, बशर्ते कि आप आज्ञा दे दें। पूज्य महात्माजी, मैं अनाथ हूं। पूरी तरह दुःखी हूं। केवल माताकी सेवाके लिअे ही जीवित रह सकी हूं। अन्यथा अिस हिन्दू धर्मके अत्याचारसे आत्महत्या कर लेती। और यदि माताजीके शरीर छोड़ने तक कोअी रक्षक न मिला, तो मैं आत्महत्या कर लूंगी।

"अब आपसे प्रार्थना है कि मुझ अभागिनी अबलाकी पुकार सुन सलाह दें, ताकि मैं दूसरी शादी अुस देशभक्त युवकके साथ कर लूं, जिससे मेरा जीवन सुधरेगा। मैं जयपुर हरगिज न जाअूंगी। अिस शरीरका बलिदान करूंगी हिन्दू धर्मके नाम पर।

"आशा है, आप 'नवजीवन' द्वारा जवाब देंगे और देश, समाज अेवं मातृजातिकी अिस सेविकाकी पुकार सुन अिसे अुबार लेंगे। सिवा आपके मेरा कोअी नहीं है। मैं सीना, कसीदा

निकालना, चित्र बनाना सब जानती हूं। अभी यहां अेक अवैतनिक कन्यापाठशाला खोल रखी है, जिससे मेरा समय कट जाता है।

आपकी अभागिनी पुत्री
लक्ष्मीदेवी"

जो हाल लक्ष्मीदेवीका है, वही भारतवर्षमें बहुतसी हिन्दू कन्याओंका होता है। बेचारी कन्या कुछ कुछ जानने लगती है और खेलने या पठन-पाठनके योग्य होती ही है कि अितनेमें स्वार्थी और धर्मांध माता-पिता अुसे संसार-सागरमें ढकेल देते हैं। जैसा विवाह लक्ष्मीदेवीका किया गया है, वह धर्म-विवाह कभी नहीं माना जा सकता। धर्म-विवाहमें कन्याको यह ज्ञान होना चाहिये कि विवाह कहां किया जाता है, विवाहके लिअे अुसकी संमति लेनी चाहिये, विवाहसे पहले यथासंभव कन्याको जिस नवयुवकके साथ अुसका अचल संबंध होनेवाला है, अुसे देखनेका मौका मिलना चाहिये। लक्ष्मीदेवीके साथ अैसा कोअी भी व्यवहार नहीं हुआ है। दूसरे, अुसकी अुम्र अितनी छोटी थी कि वह विवाहके योग्य ही न थी। अिसलिअे अुसे अिस संबंधसे अिनकार करनेका, प्रस्तुत विवाहको विवाह न समझनेका, संपूर्ण अधिकार है। अिस दुःखद किस्सेमें अितना अच्छा है कि लक्ष्मी-देवीकी माता अुसका साथ दे रही हैं। अुन्हें मेरी ओरसे धन्यवाद। लक्ष्मीदेवीके पितासे मेरी प्रार्थना है कि वह अधर्मको धर्म मानकर अपनी पुत्रीके मार्गमें कोअी रुकावट न डालें। मुझे अुम्मीद है कि लक्ष्मीदेवीने जिस वीरता और विनयके साथ प्रकाशित करनेके अिरादेसे यह पत्र लिखा है, अुसी वीरताके साथ और दृढ़तापूर्वक वह अपने निश्चय पर कायम रहेगी। और जो नवयुवक अुसका पाणिग्रहण करना चाहता है, अुसके साथ पवित्र संबंधमें बंधेगी। मैं यह भी आशा करता हूं कि वह सेवाकी अपनी प्रतिज्ञा पर कायम रहेगी। वे कन्याअें, जो बुरी रूढ़ियोंको ठुकराकर नया मार्ग ग्रहण करती हैं और मेरी धर्म-पुत्री बनना चाहती हैं, अुन्हें चाहिये कि वे कभी विनय, विवेक, सत्य और संयमको न छोड़ें। क्योंकि स्वेच्छाचारसे और विनयादिकी

मर्यादाका भंग करनेसे वे दुःखी होंगी, मैं लज्जित होअूंगा और वे दूसरोंके लिअे कभी मार्गदर्शक नहीं बन सकेंगी। अैसी कन्याओंमें सीताके समान मर्यादा, नम्रता, पवित्रता और द्रौपदीके समान वीरता और तेजस्विता अत्यावश्यक हैं। सुकन्याओंको याद रखना चाहिये कि अुन्हें भारतवर्षमें स्वराज्य–रामराज्य–स्थापित करनेमें पुरुषोंके साथ साथ काम करना है और स्त्रियोंकी दुःखद स्थितिको सुधारना तो अुन्हींका विशेष धर्म है।

हिन्दी-नवजीवन, ४–७–'२९

५२

विदेशी खांड़ और खादी

मेरठसे अेक सज्जन लिखते हैं:

"सेवामें निवेदन है कि मैं पिछले करीब दो सालसे 'हिन्दी-नवजीवन' पढ़ता हूं और खूब विचार करता हूं। यह बात बहुत अच्छी तरहसे दिलमें जगह कर चुकी है कि हमको खादी ही पहननी चाहिये। मैं ३०-३२ आदमियोंके कुटुम्बमें से अेक हूं। यह कुटुम्ब बापदादोंके जमानेसे खंड़सालका काम करता आया है। मुझे आशा है, खंड़सालसे आप मेरा मतलब समझ गये होंगे; काश्तकारोंसे कच्ची राब खरीदकर अुसकी खांड़ बनाना खंड़-साली कहलाता है। अिसमें कोअी मशीन वगैराकी मदद नहीं ली जाती। लेकिन अब पिछले कअी सालोंमें विदेशी खांड़ आ जानेसे और मशीनकी बनी खांड़की वजहसे हम लोगोंको बहुत नुकसान हो रहा है। यानी अितना भी हम नहीं मिला पाते कि मजदूरी ही ठीक ठीक पड़ जाय। जब कि कपड़ेके बाद खांड़में देशका बहुतसा रुपया विदेशोंमें चला जाता है, आप खांड़के बारेमें बिलकुल ही खामोश क्यों रहते हैं? हम लोगोंकी

समझमें नहीं आता कि क्या करें। घरमें हम सबकी औरतें, जैसा पहलेसे रिवाज है, सूत कातती हैं और वह सूत मजदूरी देकर बुनवा लिया जाता है; मगर वह बहुत थोड़ा होता है और ज्यादातर सूत मोटा होनेकी वजहसे दरी, दोतहे लिहाफ, बिछौने या ज्यादासे ज्यादा कुरते तक बनवा लेते हैं। फिर भी धोती व औरतोंकी साड़ी तो मिलकी बनी हुआी ही पहनी जाती है और कुटुम्बमें जहां अेक दो आदमी बिलकुल खद्दर-धारी हैं वहां अेक-दो शायद विलायती कपड़ा भी खरीद लेते होंगे, हालांकि सब मिलकर अुनको बहुत मना करते हैं। आजकल कुटुम्बमें ताअू-चचाके काम करनेवाले आठ भाअी हैं, और चार-पांच जवान भतीजे भी हैं, जो काम करते हैं। अिन आठ भाअियोंमें से चार अंग्रेजी पढ़ गये थे, सो सरकारी नौकरी करते हैं; और करीब करीब हरअेक १५० रुपया माहवारके पाता है। अब हाल यह है कि जो खंड़सालका काम करते हैं वे काफी नुकसानमें रहते हैं। रातदिन मेहनत करते हैं, चोटीका पसीना अेड़ी तक बहा देते हैं, लेकिन साल आखिरमें मजदूरी तक भी नहीं निकलती; यानी पेट भर खाने व कपड़ेके लिअे काफी रुपया तक नहीं मिलता। जो भाअी नौकरी पर हैं वे मदद करते हैं, तभी कहीं काम चलता है। अब और कुछ नहीं सूझता कि क्या करें। आपसे हाथ जोड़कर निवेदन करता हूं कि क्या बापदादोंके रोजगार यानी खंड़सालको बिलकुल छोड़ दें और सूत कातने लगें? यह हाल हमारे गांवमें करीब करीब दस या बारह घरानोंका है। अेक वक्त था जब कि हमारे पुरखे कहा करते थे कि खांड़ मेरठसे भरकर बैलगाड़ियोंमें आगरे ले गये। दस मुकाममें वहां पहुंचे और आठ मुकाममें वापस आये। अच्छा मुनाफा रहा; लेकिन अब तो सारे हिन्दुस्तानमें अेक ही भाव है और विदेशके मारे अुलटी परेशानी है। अतअेव आप हमें 'हिन्दी-नवजीवन' द्वारा सलाह दीजिये कि हम क्या करें?

"जो अंग्रेजी पढ़े-लिखे भाओी हैं, वे हम लोगोंको काफी बुरी निगाहसे देखते हैं और कभी तो कहते हैं कि यह काम बिलकुल छोड़ दो और कुछ और करो; मगर ठीक ठीक यह कोओी नहीं बताता कि क्या करें। जिसे अंग्रेजीकी छाप मिलती जाती है, वह नौकरी करता है। हमारे नौकर भाअियोंमें कुछ अैसे भी हैं जो हमारी बेबसीको जानते हैं और मदद करते हैं। अिसी वजहसे कुटुम्ब अभी अेक जगह ही है। अफसोस तो यह है कि दिखावटमें कुटुम्बकी धाक लखपति जैसी है; मगर भीतर बिलकुल पोल है। औरतें सब करीब करीब बिला पढ़ी-लिखी हैं और खादीकी साड़ी अभी बहुत भारी मालूम होती है।"

मुझे दुःखपूर्वक कहना पड़ता है कि यदि खंड़सालका धंधा नुकसानीमें है तो अुसे छोड़ना चाहिये। खांड़को रोकनेका कोओी तरीका आज मेरी नजरमें नहीं आता है। खांड़ अनावश्यक वस्तु है। अुससे बहुतसी व्याधियां पैदा होती हैं। परन्तु अुसका मोह कैसे छूटे? आज भारतवर्ष जितनी खांड़ खाता है, अुतनी तैयार करनेकी शक्ति अुसमें नहीं है। फिर भी अेक तो घरमें बनी हुअी खांड़ बहुत महंगी पड़ती है, दूसरे वह सफेद भी नहीं होती, अिसलिअे लोग अुसे खरीदते नहीं। यह अुद्योग अैसा नहीं है, जिसके लिअे लोगोंमें सफल आन्दोलन हो सके, जैसा खादी आन्दोलन है। स्वदेशी खांड़के प्रचारसे भी खंड़सालोंको लाभ नहीं पहुंच सकता। अिसलिअे अिस धंधेमें जिसे फायदा न पहुंचे वह अिसे छोड़ दे।

तो फिर क्या किया जाय? मेरी दृष्टिसे तो खंड़सालीकी जगह बुननेका काम करना अच्छा होगा। कातनेसे आजीविका पैदा नहीं हो सकती। बुननेसे आजीविका अवश्य मिल सकती है। और खद्दर-प्रचारके कारण बुननेका काम बढ़ता ही रहेगा।

अब रहा प्रश्न लेखकके कुटुम्बमें खद्दर-प्रचारका। थोड़े ही प्रयत्नसे कुटुम्बीजन महीन सूत कात सकते हैं। महीन सूत कात कर जैसे महीन कपड़े पहनने हों पहने जा सकते हैं। यदि कुटुम्बका

प्रत्येक मनुष्य अेक घंटा कताअीके लिअे निकाल ले, तो साड़ी, धोती अित्यादि सब कपड़े केवल बुनाअीके दाम देने पर बन जायंगे। यदि बुनाअीका काम कुटुम्बमें ही प्रवेश पा जाय, तो और अधिक लाभ होगा।

हिन्दी-नवजीवन, ४–७–'२९

५३

काशीकी पंडित-सभा

जब मैं काशीजीमें था, मेरे पास काशी-पण्डित-सभाकी तरफसे तीन प्रश्न भेजे गये थे। अुन प्रश्नोंके अुत्तर देना मैंने अपना धर्म समझा था। परंतु अुस समय मुझे अवकाश नहीं था। बादमें वे प्रश्न मेरे दफ्तरमें पड़े रहे। भ्रमणमें मैं अुन्हें हाथमें न ले सका। अब जब कि दफ्तर साफ कर रहा हूं, अुक्त प्रश्न मेरे सामने हैं। वे ये हैं :

"१. श्रुतियों तथा श्रुति-संमत स्मृतियोंको अभ्रांत प्रमाण माननेवाला अेक सनातनधर्मी धर्मशास्त्रज्ञ 'देवयात्राविवाहेषु संकटे राजविप्लवे, अुत्सवेषु च सर्वेषु स्पर्शास्पर्शौ न दुष्यत:' अित्यादि अपवादोंके सिवाय अछूतों (चांडालादि) के स्पर्शका सर्वदा व सर्वथा किस तरह समर्थन कर सकता है और कह सकता है कि हिन्दू धर्ममें अछूत नहीं हैं?

"२. 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्य्याकार्य्यव्यवस्थितौ' अिस गीतावाक्यको अविचल श्रद्धा-भक्तिके साथ माननेवाली सनातनधर्मी जनता ही भारतवर्षमें अधिक है, और अुसीमें आपको काम करना है; अतअेव जब तक आप अपने अछूतोद्धारवाले कार्यक्रमको शास्त्र-संमत न सिद्ध कर लें, तब तक अुसका प्रचार कैसे हो सकता है?

"३. मुसलमान अुलेमाओंके हृदयमें यह भाव कूट-कूटकर भरा है कि अिस्लाम धर्मके सिवा दूसरे धर्मको माननेवालोंकी हत्या करना सवाब है, वे काफिर हैं; अुनके साथ मेल तभी हो सकता है, जब वे अिस्लाम धर्म कबूल कर लें। जब तक छोटे-बड़े सभी मुसलमान अिन्हीं अुलेमाओंके अधीन हैं, तब तक हिन्दू धर्मकी रक्षा करते हुअे हिन्दू लोग मुसलमानोंसे किस प्रकार मेल कर सकते हैं?"

मेरे अुत्तरमें पण्डित महाशय पाण्डित्यकी आशा न करें। मैंने धर्मको अनुभव द्वारा जिस रूपमें जाना है, शास्त्रको अनुभवसे मैं जिस तरह समझा हूं, अुसीके आधार पर अुत्तर देनेका मैं नम्र प्रयत्न करता हूं।

केवल नाम देनेसे श्रुति-स्मृतियां धर्मवाक्य नहीं बन सकती हैं। जो कोअी भी बात सत्यादि अटल सिद्धांतोंके विरुद्ध है, वह धर्म-प्रमाण नहीं हो सकती। मनुस्मृति आदि जो ग्रंथ आज हमारे सामने रखे जाते हैं, वे मूलतः जैसे थे वैसे आज प्रतीत नहीं होते, क्योंकि अुनमें विरोधी वचन आते हैं। अुनमें अैसे भी वचन पाये जाते हैं, जो सनातन नीति, सिद्धांत और बुद्धिके विरोधी हैं। श्रुतिग्रंथोंके रहस्यको देखते हुअे 'अस्पृश्यता' पाप ही प्रतीत होती है। मैंने अस्पृश्यताके विषयमें जो वाक्य कहा है, वह तो यों है: 'आज हम जिसे अस्पृश्यता मानते हैं, अुसके लिअे शास्त्रमें कोअी प्रमाण नहीं है।' अिस कथनमें और पंडितोंने जिस वचनका मुझमें आरोपण किया है, अुसमें बहुत अंतर है।

आजके अछूतकी व्याख्याके लिअे प्रचलित स्मृति-ग्रंथोंको प्रमाण माननेसे भी कोअी आधार नहीं मिलेगा। पण्डितोंने जो स्मृति-वचन अुद्धृत किया है, अुसे प्रमाण माननेसे भी हमारा तीन-चौथाअी कार्य सधेगा।' 'देवयात्रा, विवाह, संकट, राजविप्लव और अुत्सव' हमारे सामने आज भी मौजूद हैं। अिनमें किसीको अछूत न माननेकी स्मृतिकी संमति होते हुअे भी पंडित लोग क्यों जनताके सामने अस्पृश्यताका समर्थन करते हैं

अब दूसरे प्रश्नका अधिक अुत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं है। मैंने स्पष्टतया बताया है कि मेरे कार्यक्रमके लिअे पंडितोंके ही वचन काफी हैं। परंतु यहां अिस बात पर थोड़ा विचार करें कि शास्त्र किसे कहा जाय। मैं अूपर बता चूका हूं कि संस्कृत भाषामें छपे हुअे हरअेक संस्कृत ग्रंथको शास्त्र माननेसे पुण्य पाप सिद्ध हो सकेगा और पाप पुण्य बन जायगा। अिसलिअे गीताकी भाषाके अनुसार तो 'गीताके स्थितप्रज्ञ' का वचन ही शास्त्रका बुद्धिग्राह्य अर्थ हो सकता है। अिसलिअे यदि पंडित लोग जनताको सीधे रास्ते पर ले जाना चाहें, तो पाण्डित्यके साथ प्रज्ञाको भी स्थिर करें, और रागद्वेष आदिका त्याग करें। जब तक पंडित लोग तपश्चर्या करके गीताके 'ब्रह्मभूत' न बनेंगे, तब तक मेरे-जैसे प्राकृत मनुष्यके पास अनुभवके सहारे सेवा करनेके सिवा और कोअी चारा नहीं है।

अब रहा तीसरा प्रश्न। मेरा नम्र अभिप्राय है कि तीसरा प्रश्न करके पंडित महाशयोंने अपना अज्ञान प्रकट किया है। न तो अिस्लामकी ही यह शिक्षा है कि अन्य धर्मवालोंकी हत्या कर्तव्य है, न भारतवर्षीय अुलेमाओंके हृदयोंमें ही यह बात है। और न सब मुसलमान ही अैसे अुलेमाओंके अधीन हैं। हिन्दू धर्मकी रक्षा तो हिन्दुओंकी पवित्रतासे ही हो सकती है, किसी औरसे नहीं। आत्मा ही आत्माकी रक्षा कर सकती है। 'आप भला तो जग भला' अिस लौकिक कथनके न्यायसे सबके साथ मिलकर रहना ही हमारा कर्तव्य है। मेरा अनुभव भी मुझे यही सिखाता है।

हिन्दी-नवजीवन, ११–७–'२९

५४

विधवा और विधुर

जबसे विधवा-विवाहके बारेमें मैंने अपना अभिप्राय प्रकट किया है, तबसे कअी प्रकारके प्रश्न आते हैं। बहुतेरोंके अुत्तर देनेकी आवश्यकता न प्रतीत होनेसे मैं अुन्हें भूल जाता हूं। मगर निम्नलिखित प्रश्नावली विचारणीय है:

"(१) किस अुम्र तककी विधवाओंको शादी करनेकी अनुमति दी जाय?

(२) निश्चित अुम्रसे अधिक आयुकी विधवा 'विधवा-विवाह' के पास हो जाने पर अपना विवाह कर देनेको कहे और अुसके लिअे अुद्यत हो जाय तो अुसे किस प्रकार रोका जाय?

(३) 'विधवा-विवाह' के पास हो जाने पर यदि संतानवती और गतयौवना विधवायें विवाह करना चाहें, तो क्या अुन्हें अैसा करनेकी अनुमति दी जाय?

(४) श्रीयुत रामानंद चटर्जी, संपादक 'मॉडर्न रिव्यू' द्वारा लिखित अेक लेख लाहौरसे प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी पत्र 'विडोज़ कॉज़' में प्रकाशित हुआ है। अुससे प्रकट होता कि ३५ वर्ष तककी अुम्रवाली विधवायें पुनर्विवाह कर सकती हैं। क्या यह अुचित है?

(५) पुनर्विवाहकी प्रथा प्रचलित हो जाने पर विधवाओंमें फिरसे शादी कर लेनेकी अिच्छा जागृत हो जायगी और वे विधवायें भी, जो अब तक लोकप्रथाके कारण विवाहका ध्यान तक नहीं धरती थीं, विवाह करने लगेंगी।"

अिन प्रश्नोंके पृथक्-पृथक् अुत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि अिन प्रश्नोंके पीछे मेरे अभिप्रायके अर्थके बारेमें गलतफहमी

है। जो अधिकार यानी रिआयत विधुरको है, वही विधवाको होनी चाहिये। अन्यथा विधवा पर बलात्कार होता है और बलात्कार हिंसा है, जिसका परिणाम बुरा ही होता है। जो प्रश्न विधवाके लिअे किये जाते हैं, विधुरके लिअे अुठते ही नहीं हैं। अिसका कारण तो यही हो सकता है कि स्त्रियोंके लिअे पुरुषने कानून बनाये हैं। यदि कानून बनानेका कार्य स्त्रियोंके जिम्मे होता, तो स्त्री कभी अपने अधिकार पुरुषसे कम न रखती। जिन मुल्कोंमें स्त्रियोंको कानून बनानेका अधिकार है, वहां स्त्रियोंने भी अपने लिअे आवश्यक कानून बना लिये हैं।

अतअेव अुक्त प्रश्नोंका अुत्तर यह हुआ कि पिताका धर्म है कि वह निर्दोष जवान विधवाका पुनर्लग्न करे और जो विधवा पुनर्लग्न करनेकी अिच्छा करे, अुसके रास्तेमें कोअी रुकावट न डाली जाय।

यह माननेके लिअे कोअी प्रमाण नहीं है कि अिस प्रकारकी व्यवस्थासे सब विधवायें पुनर्लग्न कर लेंगी; जिन मुल्कोंमें विधवाको पुनर्लग्न करनेकी रिआयत है, वहां भी सब विधवायें शादी नहीं करतीं, न सब विधुर ही शादी करते हैं। जिस वैधव्यका पालन स्वेच्छासे होता है, वह हमेशा सराहनीय है। बलात् पलाया जानेवाला वैधव्य निंद्य है और वर्णसंकरता वर्धक है। मैं अैसी अनेक विधवाओंको जानता हूं, जिनके मार्गमें कोअी रुकावट न होते हुअे भी जो पुर्नलग्न करना नहीं चाहतीं।

हिन्दी-नवजीवन, ११–७–'२९

५५

वृद्ध-बाल-विवाह

वृद्ध-बाल-विवाहके संबंधमें शोलापुरसे अेक माहेश्वरी नवयुवक लिखते हैं :

"हमारे माहेश्वरी समाजमें विवाह-पद्धति करीब करीब नष्ट हो चुकी है। प्रतिवर्ष सैकड़ों कामी बूढ़े धनके बल पर बारह-चौदह वर्षकी अबोध कन्याओंसे विवाह करके अपनी काम-तृप्ति किया करते हैं। अिन कामी जनोंकी काम-लालसा सारे समाजको रसातलकी ओर ले जा रही है। बाल-विवाह और बेजोड़-विवाह प्रतिवर्ष अुतनी ही संख्यामें होते हैं, जितने कि वृद्ध-विवाह। जिस समाजकी विवाह-पद्धतिकी यह करुणाजनक दशा हो अुस समाजमें भविष्यमें नामी वीरोंकी आशा करना व्यर्थ है, और यह स्पष्ट है कि अुस समाजका अस्तित्व भी खतरेमें है। अैसे समाजको सुधारनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

"अैसे अनुचित विवाहोंके अवसर पर सत्याग्रह करके अुन्हें रोकनेके लिअे हम ८–१० युवकोंने 'बाल-वृद्ध-बेजोड़ विवाह प्रतिबंधक दल' नामक संस्थाकी स्थापना करके अुसके द्वारा संगठित प्रयत्न शुरू किये हैं। विवाहकी हरअेक रस्म पर परिणामकारक सत्याग्रह करनेसे फलप्राप्ति होगी ही। अिस पत्रके साथ छपी हुअी पत्रिका है, जिससे आपको पता चलेगा कि किस तरहसे हमने सत्याग्रह करना ठहराया है। माहेश्वरी समाजकी विवाह-पद्धतिसे आप परिचित होंगे ही। अुसकी हरअेक रस्म पर शांतिसे किस तरह सत्याग्रह किया जाना चाहिये, अिस पर और अिसीके पुष्ट्यर्थ अन्य बातों पर 'हिन्दी-नवजीवन'में लिखनेकी कृपा करें। हमें आशा है, हमारी प्रार्थना स्वीकृत की जायगी।

"आप पुरुष और स्त्रीके किस आयुसे किस आयु तकके विवाहको सुयोग्य विवाह समझते हैं? योग्य अुम्रके विवाहोंके खिलाफ होनेवाले किन विवाहोंको सत्याग्रह द्वारा रोकना चाहिये; अिस बातका भी स्पष्ट खुलासा करेंगे।

"हाल ही में दो बूढ़े महाशयोंने अपनी क्रमशः ५५ और ६० वर्षकी अवस्थामें तेरह हजार और बाअीस हजार देकर १२–१२ वर्षकी कन्याओंसे विवाह किया है। अिसी तरहके और भी दो विवाह अेक ही गांवमें होनेवाले हैं। अिनके विरोधमें हमने पत्रिकाओं द्वारा आंदोलन शुरू किया है। किंतु अब पत्रिकाओंके आन्दोलनकी अपेक्षा प्रत्यक्ष कृतिके आंदोलनकी विशेष आवश्यकता है। कृपया आप अिस सारे पत्रके अुत्तरमें 'हिन्दी-नवजीवन' में अवश्य लिखें।"

अिसमें संदेह नहीं कि अैसे विवाहोंके विरोधमें सत्याग्रह आवश्यक है। परंतु सत्याग्रह कैसे हो सकता है? सत्याग्रहकी मर्यादाके बारेमें मने बहुत दफा लिखा है। तथापि अिस समय कुछ लिखना आवश्यक है। सत्याग्रही संयमी होने चाहिये। समाजमें अुनकी कुछ न कुछ प्रतिष्ठा होनी चाहिये। सत्याग्रही दुराचारी पर न कभी क्रोध करे, न अुससे वैरभाव रखे। दुराचारीका कार्य चाहे जितना दुष्टतापूर्ण हो, दुराचारी व्यक्तिके प्रति सत्याग्रही कठोर शब्दका प्रयोग न करे। वह कर्म और कर्मीका भेद कभी न भूले। कर्म दुष्ट (बुरे) और अच्छे होते हैं, अुनके कारण कर्मी दुष्ट न माना जाय। सत्याग्रहीका अेक आवश्यक मन्तव्य यह है कि अिस संसारमें अैसा कोअी पतित नहीं है, प्रेम द्वारा जिसका सुधार न हो सकता हो। सत्याग्रही दुराचारको सदाचारसे, दुष्टताको प्रेमसे, क्रोधको अक्रोधसे, असत्यको सत्यसे, हिंसाको अहिंसासे दूर करना चाहता है। और कोअी तरीका अिस दुनियामें पापोंको दूर करनेका नहीं है। अिसलिअे जो मनुष्य सत्याग्रही होनेका दावा करता है, अुसे आत्मनिरीक्षण करके देख लेना चाहिये कि क्या वह क्रोध, द्वेष आदिसे मुक्त है? जिन विकारोंका वह विरोध करता है, स्वयं अुन विकारोंसे मुक्त तो है? आत्मशुद्धि और तपश्चर्यामें

सत्याग्रहीकी आधी विजय है। सत्याग्रहीको विश्वास रखना चाहिये कि बगैर व्याख्यानादिके ही सत्य और प्रेमका अदृष्ट और अदृश्य परिणाम दृष्ट और दृश्यसे कहीं ज्यादा होता है।

परंतु सत्याग्रहीको कुछ बाह्य कार्य भी करने हैं। अुसका सबसे पहला काम तो यह है कि सुधारके लिअे सार्वजनिक आंदोलन करके कुप्रथाके प्रति विरोधी लोकमत तैयार करे। जब किसी बुराअीका विरोधी लोकमत तैयार हो जाता है, तब धनिक भी अुसका विरोध नहीं कर सकते हैं। लोकमत सत्याग्रहका बलवान शस्त्र है। लोकमतके रहते हुअे भी जब कोअी मनुष्य अुसका आदर नहीं करता है, तब समझा जाय कि अुसके बहिष्कारका समय आ पहुंचा है। बहिष्कार करनेकी दशामें भी अैसे मनुष्यका कोअी अनिष्ट तो कभी न किया जाय। बहिष्कारका दूसरा अर्थ यहां असहयोग है। जो मनुष्य समाजका विरोध करता है, अुसको समाजकी सेवाका अधिकार नहीं है। अिससे आगे बढ़नेकी मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। प्रत्येक वस्तुके लिअे हमेशा कुछ न कुछ विशेष कार्य हो सकता है। विवेकशील और बुद्धिशाली सत्याग्रही अैसे कार्यका पता पा ही लेता है।

कामी पुरुषोंके कामकी तृप्तिका प्रश्न विकट है। कामको न ज्ञान होता है, न विवेक। कामी पुरुष अपने कामकी तृप्ति किसी न किसी तरह कर लेता है। अिसका अुपाय यह है कि २० वर्षके पहले और अुसकी संपूर्ण संमतिके अभावमें कन्याका विवाह कभी न किया जाय। कोअी कन्या वृद्धके साथ विवाह न करेगी। अैसी हालतमें वृद्ध कामी क्या करें? समाजके पास अिसका कोअी अुत्तर नहीं रहता है। समाजका कर्तव्य निर्दोष बालाको बचानेका है, कामीके कामकी तृप्ति करनेका कदापि नहीं। वस्तुतः जब समाजमें शुद्धि--पवित्रताकी मात्रा बढ़ जाती है, तब कामीका काम भी शांत हो जाता है।

हिन्दी-नवजीवन, १८-७-'२९

५६
मेरी अपूर्णता

अेक पाठक लिखते हैं :

"शहदकी गणना विकृति-जनक पदार्थों, घृत, दुग्ध, दधि, मधु, मद्य, मांस आदिमें की गअी है। मधुकी अुत्पत्तिमें महती हिंसा होती है। अुसकी प्राप्तिके लिअे मधुमक्खियोंके घर अुजाड़ने पड़ते हैं। अुनकी स्वाभाविक और परिश्रमसे पैदा की हुअी खुराकको छीननेका हमें कोअी हक नहीं। जहां तक मैं जान पाया हूं, अहिंसाके खयालसे आपने गाय और बकरी तकका दूध छोड़ रखा है। फिर आप शहद क्योंकर ग्रहण कर सकते हैं? जिस प्रकार अहिंसाकी दृष्टिसे रेशमी वस्त्र त्याज्य हैं, अुसी प्रकार मधु भी त्याज्य होना चाहिये। आशा है, आप अिन शंकाओंका निवारण अवश्य करेंगे।"

अिन पाठकने जो कुछ लिखा है, अुचित ही है। मैं शहद लेता हूं, क्योंकि मैंने अुसका सर्वथा त्याग अब तक नहीं किया है। मेरी अपूर्णताको जितना मैं जानता हूं, दूसरे शायद ही जान सकते हैं। बात यह है कि अैसी कअी वस्तुअें हैं, जिनका त्याग मुझे अिष्ट लगता है परंतु मैं अुनका त्याग नहीं कर सका हूं। मेरे स्वास्थ्यके लिअे शहद अच्छा माना गया है। मैं कअी खाद्य पदार्थोंका त्याग कर चुका हूं। अिसलिअे यह जानते हुअे भी कि शहदमें हिंसा है, मैं अुसका त्याग करनेका साहस नहीं कर सका हूं। बुद्धिसे किसी वस्तुको त्याज्य समझना अेक बात है, हृदयसे अुसे छोड़ना दूसरी। अितना लिख चुकने पर मैं कह सकता हूं कि शहद छोड़नेका मेरा प्रयत्न चालू है। परंतु शहद छोड़ने पर चीनी, गुड़ अित्यादिका छोड़ना भी आवश्यक हो जाता है। विकृतिकी दृष्टिसे चीनी सबसे बुरी चीज है। चीनी बनानेमें हिंसा भी काफी होती है। शहदसे मुझको

कोअी हानि नहीं हुअी है। डॉक्टरोंका अभिप्राय है कि आरोग्यके लिअे मधु अच्छी वस्तु है। अेक बात और। मधु चुआनेकी आधुनिक पद्धतिमें मक्खीका नाश तो किया ही नहीं जाता है। परन्तु अिससे शहद खानेका समर्थन नहीं हो सकता। व्यवसाय-मात्र सदोष है, वह जितना कम किया जाय अच्छा ही है।

अब थोड़ा विषयांतर करता हूं। पाठक समझ लें कि खाद्या-खाद्यमें ही हिंसाकी परिसमाप्ति नहीं होती। सूक्ष्म दृष्टिसे अिन वस्तुओंका खयाल रखना स्तुत्य है। परंतु जो अहिंसा परम धर्म है, वह अिस अहिंसासे कहीं बढ़कर है। अहिंसा हृदयकी अुच्चतम भावना है। जब तक हमारा आपसका व्यवहार शुद्ध नहीं है, जब तक हम किसीको अपना दुश्मन समझते हैं, तब तक यह कहना चाहिये कि हमने अहिंसा-भावका स्पर्श तक नहीं किया है।

अेक मनुष्य खाने-पीनेमें अहिंसाका सूक्ष्म पालन करता है, परंतु यदि व्यापारमें अनीतिसे काम लेता है, दगा देनेसे नहीं हिचकिचाता, अपने स्वार्थके लिअे दूसरोंको दुःख देता है, तो निस्संदेह वह अहिंसा-धर्मका पालन नहीं कर रहा है। अेक दूसरा मनुष्य मांसाहारी है या आहारके नियमोंका सूक्ष्मतासे पालन नहीं करता है, परंतु अुसका हृदय दूसरोंको दुःखी देख पिघल जाता है और अुनकी मदद करनेकी चेष्टामें वह अपने-आपको खपा देता है। कहना पड़ेगा कि यह परोपकार-रत साधु अहिंसा-धर्मको जानता है और अुसका भलीभांति पालन करता है।

अिस मध्यबिंदुको छोड़कर आजकल हम धर्मको भुला रहे हैं। अिसलिअे मैं तो यह चाहता हूं कि आपसी बैरके बढ़नेसे जो घोर हिंसा हो रही है, हम अुसे देखें और अुसे मिटानेमें ही पुरुषार्थ समझें। अंग्रेजों, मुसलमानों और विजातियोंके साथ हमारा व्यवहार कैसा हो? अिस धर्मका परिशोधन अहिंसाका सच्चा क्षेत्र है।

शुद्ध आहारकी शोध-खोजका काम दैवीसंपद्वाले वैद्योंका है। साधारण जनता अिस चीजको समझ भी नहीं सकती। अिसके लिअे विज्ञानकी जानकारी आवश्यक है। शहदको मैं निर्दोष कह दूं तो

क्या, और सदोष कहूं तो क्या? जो मधुकी अुत्पत्तिके शास्त्रको जानता है, जिसने अुसके असरका अनुभव किया है, वह अुस संबंधमें जो कहे अुसे ही हम सहज भावसे करते रहें। आरंभ-मात्रमें दोष है। खाद्य पदार्थमात्र लेनेमें कुछ न कुछ हिंसा तो है ही। यह सब जान लेने पर हमारे सामने अेक ही धर्म रहता है: जिसका त्याग कर सकते हैं अुसका त्याग करें। अकेले स्वादके लिअे कभी कुछ न खायें। अिस शरीरको अीश्वरके रहनेका अेक मंदिर मानकर हम अपनेको अिसका रक्षक समझें और अिसे यथासंभव और यथाशक्ति शुद्ध रखनेकी कोशिश करें। अिसे हरगिज भोगका भाजन न समझें; हां, नित्य संयमका क्षेत्र मानकर संयम बढ़ाते रहें। बस, अितना निश्चय करके हम खाद्याखाद्यके झगड़ेसे बच जायं।

हिन्दी-नवजीवन, २५–७–'२९

५७

स्वागतम्

भारत-कोकिला पश्चिममें कअी जय-विजय मिलाकर स्वदेश लौट आअी हैं। समय ही बतावेगा कि अुनके द्वारा अुत्पन्न प्रभाव कितना स्थायी हुआ है। खानगी जरियोंसे जो संवाद मिलते रहे हैं, अुन्हें कसौटी माना जाय तो कहना चाहिये कि सरोजिनी देवीने अमेरिकन प्रजाके मन पर अपने कामकी गहरी छाप डाली है। अिस विजय-यात्राको समाप्त कर अब वह अैसे समय स्वदेश वापिस आअी हैं जब कि देशके सामने अनेक और अुलझनभरी समस्यायें दरपेश हैं। अिन समस्याओंको हल करनेमें वह हाथ तो बंटावेंगी ही। जिस मोहिनी मंत्रकी छाप वह अितनी सफलतापूर्वक अमेरिकावालों पर डाल सकी हैं, अीश्वर करे अुनका वह जादू हम पर भी असर कर जाय।

हिन्दी-नवजीवन, २५–७–'२९

५८
लक्ष्मीदेवीकी कथा

लक्ष्मीदेवीका जो पत्र मैंने प्रकट किया था, अुसके सिलसिलेमें मेरे पास बहुतसे खत आये हैं। अुनमें अेक तो लक्ष्मीदेवीके साथ जिनका विवाह किया गया था अुन्हींका है। अुन नवयुवकका नाम श्री मदन-मोहन शर्मा है। वह कॉलेजमें पढ़ते हैं। श्री मदनमोहन शर्मा लिखते हैं :

"अेक 'अभागिनी पुत्री' का पत्र ४ जुलाअीके 'हिन्दी-नवजीवन' में पढ़ा। हाल जाना। आशा है कि आप दूसरे पक्षकी बातें भी प्रकाशित करनेकी कृपा करेंगे। अिससे मालूम होगा कि वह पत्र कितना सच्चा है।

"विदित हो कि वह लड़की सारस्वत ब्राह्मणकी कन्या नहीं है। अुस लड़कीके पिता तथा माता गौड़ ब्राह्मण थे। अुसकी माता लगभग पंद्रह वर्षसे, बतौर स्त्रीके, अुन सारस्वत ब्राह्मणके घरमें रह रही थीं, जिनकी वह पुत्री बनती है। अुसके खास पिता अभी तक जीवित हैं, मरे नहीं। विवाह हुअे पूरे तीन वर्ष व्यतीत हुअे हैं। यदि वह लड़की अिस समय १८ वर्षकी है तो यह संभव नहीं हो सकता कि अुस समय वह १३ वर्षकी रही होगी। अुसका जन्म आश्विन संवत् १९६८ का है। अुसके धर्म पिता हमारे यहां कमसे कम बीस बार आये थे, और हमारे विषयमें पूरी जांच-पड़ताल कर ली थी। अुस समय मैं बी० अे० की पहली कक्षामें प्रविष्ट हुआ था। तब मुझसे मिलने पर अुन महाशयने मेरे विचारोंकी परख की थी। मुझे लड़कीका चित्र दिया गया था, लेकिन मैंने कहा था कि लड़कीको बिना देखे मैं विवाह नहीं करूंगा। बादमें मैं विवाहके लिअे सहमत हो गया। विवाह होना ठहर गया। ये लोग पंद्रह दिन पहले मथुरा पहुंचे। मैं तथा मेरे माता-पिता अिनका

तार आने पर मथुरा गये। सामाजिक सुधारके विचारसे ही अपने माता-पिताकी आज्ञाका अुल्लंघन करके भी यह विवाह करनेका विचार मैंने किया था। अुसका यह प्रायश्चित्त मुझे भोगना पड़ रहा है! अिसका प्रमाण मेरे पास है कि विवाह धर्मशास्त्रानुसार और भलीभांति हुआ था। दो हजार रुपयेके दहेजकी बात भी बिलकुल असत्य है, अुलटे हमारे १,५०० रुपयेके गहने अुसके पास हैं। सास-ससुर, पति आदिके अत्याचारका जो अुल्लेख किया है, वह अक्षर अक्षर असत्य है। कोअी देश-हितैषी या शिक्षित पुरुष मेरे घरकी दशा देखकर अैसे विचार कदापि नहीं बना सकता। मेरे हृदयमें स्त्री-जातिके लिअे अुच्च विचार हैं और मैं अुन्हें सदैव आदर-भावसे देखता हूं। मेरे माता-पिता सदैव शांति-सेवक रहे हैं, और यह बात मेरे मित्रोंसे बिलकुल छिपी हुअी नहीं है।

“साथ ही साथ यह भी जानना आवश्यक है कि हमारा किसी रअीससे किसी प्रकारका कोअी सम्बन्ध नहीं है। यदि वह साहस रखती है तो प्रमाण दे। अिस तरह किसीको कलंकित करना नीतिकी हत्या करना है। अुस देवीको जानना चाहिये कि कोअी झूठी बात कहना और अुसे साबित करना कितना कठिन है।

“हमारे घरसे सब लोग भलीभांति परिचित हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपने अुसे जो राय दी है, दूसरे पक्षकी कुछ बात न जानकर ही दी है। अतः प्रार्थना है कि वे शब्द आप वापस लेंगे। यदि वह अब भी देशसेवामें लगकर ब्रह्मचर्यसे रहे, तो मैं अुसे सहर्ष आज्ञा देनेको तैयार हूं। अजमेरके शिक्षित समाजसे ही पूछा जा सकता है कि अुस लड़कीके विषयमें अुसकी क्या संमति है।

“वह महाशय जो अपने-आपको देशभक्त बतलाते हैं और जिनके साथ वह लड़की विवाह करना चाहती है, बड़े धोखेबाज अेवं धूर्त हैं, अिस बातका पूरा प्रमाण मेरे पास है। मैंने देशभक्तके

नाते अुन्हें कुछ गुप्त पत्र लिखे थे, परन्तु दुःख है कि अुन्होंने वे प्रकट कर दिये और जहां तक पता चला है, आपको पत्र भिजवाने अित्यादिका कार्य भी अुन्होंने करवाया है।

"शोकके साथ लिखना पड़ता है कि कअी लोग, जो अपने-आपको समाज-सुधारक समझते हैं और बतलाते हैं, हृदयसे वैसे नहीं होते। कोअी बिरले ही होते हैं, जो अपना हृदय शुद्ध रखकर समाज-सेवा करते हैं। वे लोग, जो खुद हृदय शुद्ध नहीं रखते, दूसरे समाज-सेवकों तथा देशभक्तोंको भी कलुषित करते हैं।"

जो दूसरे पत्र आये हैं, वे सब करीब करीब श्री मदनमोहन शर्माके बयानका समर्थन करनेवाले हैं। भाअी हरिभाअू अुपाध्यायने अिस बातकी जांच भी की है। अुनका भी पत्र आया है। अुन्होंने अिस विषयमें 'त्यागभूमि' में जो लेख लिखा है, अुसे भी मैं पढ़ चुका हूं। भाअी हरिभाअूका पत्र भी मेरे सामने पड़ा है। दोनोंको जो सलाह हरिभाअूजीने दी है, वह मुझे अुचित जान पड़ती है।

मैं नहीं जानता कि दोनों बयानोंमें किसका मानने योग्य है। यदि श्री मदनमोहनका बयान सच्चा है तो लक्ष्मीदेवीने बड़ी गलती की है। यदि लक्ष्मीदेवीका सच्चा है, तो मैंने जो अभिप्राय दिया है, अुस पर मैं कायम हूं। श्री मदनमोहनके दूसरे पत्र भी आये हैं। अुनमें वह प्रतिज्ञा करते है कि अुन्होंने जो कुछ भी लिखा है, अुसमें न तो कोअी बात छिपाअी है, न कुछ असत्य ही लिखा है। अुन्होंने मुझे अिस बातकी जांच करनेके लिअे भी लिखा है। भाअी हरिभाअू अुपाध्याय मेरे साथी हैं। अुन पर मुझे विश्वास है। अुन्होंने तो साफ लिखा है कि दोनों पक्षोंने सच्ची बात पर कुछ न कुछ परदा तो डाला ही है। अैसी हालतमें शुद्ध सत्यका पता लगना मुश्किल है। श्री मदनमोहनको मेरी सलाह है कि वह और जो कुछ कहना चाहते हों, हरिभाअूजीसे कहें और अुनके मनमें जो शंका है अुसे दूर करें।

मुझे यह भी लिखा गया है कि मैंने लक्ष्मीदेवीका खत छापकर श्री मदनमोहनके साथ अन्याय किया है और असत्यको अुत्तेजन दिया

है। मैं तो समझता हूं कि लक्ष्मीदेवीका खत प्रकट करके मैंने सत्यकी और दोनों पक्षोंकी सेवा की है। पुरुषवर्ग बहुत दफा स्त्रियोंके साथ घोर अन्याय करता है। बहुतसी स्त्रियोंका दुःख अुनकी जिन्दगीके साथ ही मिटता है। यदि लक्ष्मीदेवीने असत्य लिखा है तो अपनी जातिको हानि पहुंचाअी है, अिसमें तनिक भी संदेह नहीं। परन्तु यदि अुनका खत प्रकट न करता, तो अब असत्यके प्रकट होनेका जो अवसर आया है, वह नहीं आ सकता था। मेरे लेखका सहारा सत्यवती लक्ष्मी-देवीको ही मिल सकता है, असत्यवतीको कभी नहीं। अुनके खतकी सत्यता पर ही मेरी सलाह अवलंबित थी। लक्ष्मीदेवीको चाहिये कि यदि वह सत्यके रास्ते पर हैं, तो निर्भय होकर अपनी निर्दोषता सिद्ध करें। यदि अुन्होंने असत्य लिखा है, तो अुसे स्वीकार करें और पश्चात्ताप करें। मेरे पास जो खत आये हैं, अुनमें तो लक्ष्मीदेवी पर बहुतसे आक्षेप किये गये हैं। लक्ष्मीदेवीकी रक्षा केवल अुनके सत्य, सतीत्व और दृढ़तासे ही हो सकती है।

हिन्दी-नवजीवन, १–८–’२९

५९

पतिधर्म

अेक मित्र लिखते हैं:

“मेरे अेक मित्र हैं। वह अपनी स्त्री पर बहुधा अिसलिअे नाराज रहा करते हैं कि वह अच्छा और यथेच्छ भोजन बनाकर नहीं देती और घरमें ठीक ठीक सफाअी भी नहीं रख सकती। अुनका कहना है कि यदि बार-बार कहने पर भी स्त्री ये काम ठीक ठीक नहीं करती, तो अुसे अुनके कमाये हुअे पैसेका अुपयोग करनेका कोअी हक नहीं है। अुसे चाहिये कि वह खुद मेहनत करके कमाअी करे और अपना निर्वाह करे। अुनका यह भी

कहना है कि यदि वह अुनसे संबंध-विच्छेद करके दूसरा पति करना चाहे तो कर सकती है। अिस परसे दो प्रश्न अुठते हैं:

१. पतिके कमाये हुअे धन पर स्त्रीका कितना अधिकार है?

२. साधारण-सी असुविधाओंके कारण, खर्चेके भारसे मुक्त होनेके लिअे पत्नीको बिलकुल छोड़ देनेकी अिच्छा करना कहां तक अुचित है?

"आशा है, आप अिनका अुत्तर 'हिन्दी-नवजीवन' द्वारा देनेकी कृपा करेंगे।"

पतिवर्ग पत्नी-धर्मका अुपदेश देनेके लिअे सदा अुत्सुक रहता है, और पत्नियोंसे यहां तक कहा जाता है कि वे अपनेको पतिकी मिल्कियत समझें। पति तो मानता ही है कि अुसे पुरुषके नाते जो अधिकार अपने घरबार, जमीन-जायदाद और पशु अित्यादि पर प्राप्त हैं, ठीक वही अधिकार अुसे पत्नी पर भी प्राप्त हैं। अिस बातके समर्थनमें रामायण-जैसे ग्रंथका भी अवलंबन लिया जाता है:

'ढोल, गवांर, शूद्र, पशु, नारी। ये सब ताड़नके अधिकारी॥'

रामायणकी अिस पंक्तिका आधार लेकर समाजमें पत्नी दंडनीय ठहराअी जाती है, अुसे दंड दिया जाता है। मुझे विश्वास है कि यह दोहा गो० तुलसीदासका नहीं है। यदि है भी, तो कह सकते हैं कि अिन शब्दोंमें तुलसीदासजीने अपना अभिप्राय नहीं प्रकट किया है, बल्कि अपने समयमें प्रचलित रूढ़िका निरूपण किया है। यह भी असंभव नहीं कि अिस बारेमें सहज स्वभाव-वश अुन्होंने अुस समयकी प्रथाका विचार किये बिना ही अपनी संमति दे दी हो। रामायण भक्ति-निरूपणका ग्रंथ है। गो० तुलसीदासने सुधारककी दृष्टिसे रामायण नहीं लिखी है। यही कारण है कि अुन्होंने रामायणमें अपने जमानेकी बातोंका प्रकृत चित्र खींचा है, सहज भावसे अुनका वर्णन किया है। अिस वर्णनके सदोष होने पर भी रामायण-जैसे अद्वितीय ग्रंथका महत्त्व कम नहीं होता। जैसे रामचरितमानसमें भूगोलकी शुद्धताकी आशा नहीं की जा सकती, ठीक अुसी तरह हम अपनी वर्तमान नअी

दृष्टिके प्रतिपादनकी आशा भी अुस ग्रंथसे न करें। परंतु यह तो विषयांतर हुआ। गोस्वामी महाराजने स्त्रीके बारेमें कुछ ही क्यों न माना हो, अिसमें संदेह नहीं कि जो मनुष्य स्त्रीको पशुतुल्य समझता है, अुसे अपनी मिल्कियत मानता है, वह अपने अर्द्धांगका विच्छेद करता है।

पतिका धर्म है कि पत्नीको अपनी सच्ची सहधर्मिणी, सहचारिणी और अर्द्धांगिनी माने; अुसके दुःखसे दुःखी हो और अुसके सुखसे सुखी। पत्नी पतिकी दासी कदापि नहीं है, न वह कभी पतिके भोगकी भाजन ही है। जो स्वतंत्रता पति अपने लिअे चाहता है, ठीक वही स्वतंत्रता पत्नीको भी होनी चाहिये।

जिस सभ्यतामें स्त्री-जातिका सम्मान नहीं किया जाता, अुस सभ्यताका नाश निश्चित ही है। संसार न अकेले पुरुषसे चल सकता है, न अकेली स्त्रीसे; अिसके लिअे तो अेक दूसरेका सहयोग ही अुपाय है। स्त्री अगर कोप करे तो आज पुरुषवर्गका नाश कर सकती है। यही कारण है कि वह महाशक्ति मानी गअी है।

हिन्दू सभ्यतामें तो स्त्रीका अितना सम्मान किया गया है कि प्राचीन कालमें स्त्रीका नाम प्रथम पद रखता था। अुदाहरणार्थ, हम 'सीताराम' कहते हैं, 'रामसीता' कदापि नहीं। विष्णुका 'लक्ष्मीपति' नाम प्रसिद्ध है ही। महादेवको हम पार्वती-पतिके नामसे भी पूजते हैं। महाभारतकारने द्रौपदीको और आदिकवि वाल्मीकिने सीताजीको गौरवका स्थान दिया ही है। हम प्रातःकाल सतियोंका नाम लेकर पवित्र होते हैं। जो सभ्यता अितनी अुच्च है, अुसमें स्त्रियोंका दर्जा पशु या मिल्कियतके समान कदापि हो नहीं सकता।

अब जो प्रश्न पूछे गये हैं अुनका अुत्तर देना सहज है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि पतिके कमाये हुअे धन पर स्त्रीका पूरा अधिकार है और पत्नी पतिकी मिल्कियतकी अविभाज्य भागीदार है।

पत्नीकी रक्षा करना और अपनी हैसियतके मुताबिक अुसके भरण-पोषण और वस्त्रादिका प्रबंध करना पतिका आवश्यक धर्म है।

हिन्दी-नवजीवन, ८-८-'२९

६०

सनातन धर्मके नाम पर अधर्म

चूंकि आजकल मैं 'हिन्दी-नवजीवन' में भी कुछ न कुछ लिखता हूं, हिन्दी-समाचारपत्रोंकी जो बातें मेरे देखने योग्य मानी जाती हैं, मेरे सामने रखी जाती हैं। आज मेरे सामने अेक अखबार आर्य-समाजका और दूसरा सनातनधर्मियोंका रखा गया है। सनातनधर्मके अखबारमें महर्षि दयानंद स्वामीकी घोर, असभ्य और अश्लील निन्दा की गअी है। पत्रमें जिस भाषाका प्रयोग किया गया है और जैसे आक्षेप स्वामीजी पर किये गये हैं, वे अेक धार्मिक और अपने अुत्तर-दायित्वको समझनेवाले पत्रमें शोभा नहीं देते। सनातनधर्मकी रक्षा करनेवाले अिस पत्रकी कुछ प्रतिष्ठा है या नहीं, मुझे पता नहीं। मुझे आशा है, अैसे पत्रकी कोअी प्रतिष्ठा न करता होगा।

मुझे डर है कि स्वामीजी पर किया गया हमला किसी नीच स्वार्थसे प्रेरित होकर किया गया है, और अिसी कारण वह अितना असभ्यतापूर्ण और असत्यमय है। मुझे यह जानकर आश्चर्य न होगा कि ये लेख खुफिया पुलिसके किसी प्रतिनिधि द्वारा लिखे गये हैं। अितने जहरीले लेख लिखनेका और कोअी कारण दीख नहीं पड़ता।

हिन्दू महासभाको चाहिये कि वह गंदे सनातनी अखबारोंको रोके। आर्यसमाजियोंसे मैं प्रार्थना करता हूं कि वे अैसे लेखोंको पढ़ें ही नहीं, और अगर पढ़ें भी तो गुस्सा न करें। साथ ही अपने अखबारोंमें अुनका जिक्र तक न करें। गंदे लेखक विरोधके भूखे हैं; क्योंकि विरोध ही अुनकी खुराक है। स्वामी दयानंदका चरित्र अितना बलवान था, अुनकी जनसेवा अितनी महान थी कि स्वार्थी अथवा ज्ञानहीन लेखकवर्ग अुसे तनिक भी हानि नहीं पहुंचा सकता। यदि वे सब्र रखेंगे तो अैसे गंदे लेख अपने-आप बंद हो जायंगे। यदि कोअी अैसे लेखोंकी टीका ही न करे, अिनका खयाल तक छोड़ दे, तो अिस धंधेका स्वयमेव लोप हो जाय।

हिन्दी-नवजीवन, ८-८-'२९

६१

कुछ धार्मिक प्रश्न

अेक भाअी नीचे लिखे प्रश्न पूछते हैं :

१. "धर्मका वास्तविक रूप तथा अुद्देश्य : — आज धर्मके नाम पर कैसे-कैसे अनर्थ होते हैं ? जरा जरासी बातोंमें धर्मकी दुहाअी दी जाती है; किन्तु अैसे कितने मनुष्य हैं जो धर्मके अुद्देश्य तथा रहस्यको जानते हों ? अिसका अेकमात्र कारण धार्मिक शिक्षाका अभाव है। मुझे आशा है आप अिस पर और नीचे लिखे दूसरे प्रश्नों पर 'हिन्दी-नवजीवन' द्वारा अपने विचार प्रकट करनेका कष्ट स्वीकार करेंगे।

२. "मनुष्यकी आत्माको किन साधनों द्वारा शांति मिल सकती है और अुसका अिहलोक व परलोक बन सकता है ?

३. "क्या आपके विचारसे अगर मनुष्य अपने पिछले दुष्कृत्योंका प्रायश्चित्त कर ले, तो अुनका फल नष्ट हो सकता है ?

४. "मनुष्यके जीवनका अुद्देश्य और अुसके प्रमुख कर्तव्य क्या होने चाहिये ?"

यह आश्चर्य और आनंदकी बात है कि 'यंग अिंडिया', 'गुजराती नवजीवन' और 'हिंदी-नवजीवन' के पाठकोंमें से हिन्दी पाठक ही धर्मके बारेमें ज्यादातर प्रश्न पूछते हैं। अिसका यह अर्थ तो हरगिज नहीं होता कि दूसरे प्रांतके लोगोंमें धर्म-जिज्ञासाका अभाव है। परंतु यह ठीक है कि 'हिन्दी-नवजीवन' के पाठकोंमें ही अधिकतर अैसे हैं, जिन्हें धार्मिक प्रश्नोंकी चर्चासे प्रेम है, और जिसके समाधानके लिअे वे मेरी सहायताकी अपेक्षा रखते हैं। मैं अपने लिअे धर्मशास्त्रके गंभीर अनुभवका दावा नहीं कर सकता; हां, धर्म-पालनके प्रयत्नका दावा मैं अवश्य करता हूं। अपने अिस प्रयत्नमें मुझे जो

अनुभव होते हैं, अुनसे अगर पाठकोंका कुछ लाभ हो सकता है, तो अवश्य ही वे अुनका लाभ अुठा सकते हैं। अपनी अिस मर्यादाका अुल्लेख कर अब मैं अुक्त प्रश्नोंके अुत्तर देनेकी चेष्टा करूंगा।

१. निस्संदेह यह सच है कि आजकल देशमें धार्मिक शिक्षाका अभाव है। धर्मकी शिक्षा धर्मपालन द्वारा ही दी जा सकती है; कोरे पांडित्य द्वारा कदापि नहीं। अिसी कारण किसीने कहा है:

'सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ?'

अर्थात् — सत्संग मनुष्यके लिअे क्या नहीं कर सकता? तुलसीदासने सत्संगकी महिमाका जो वर्णन किया है, अुसे कौन नहीं जानता होगा? अिसका यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक पुस्तकोंका पठन-पाठन अनावश्यक है। अिसकी आवश्यकता तभी होती है, जब मनुष्य सत्संग प्राप्त कर चुकता है और कुछ हद तक शुद्ध भी बन चुकता है। यदि अिससे पहले धर्म-पुस्तकोंका पठन-पाठन शुरू किया जाता है, तो शांतिप्रद होनेके बदले अुसका बंधक बन जाना अधिक संभव है। तात्पर्य, समझदार मनुष्य दुनियाभरकी फिक्र करनेके बदले पहले स्वयं धर्मपालन करना शुरू कर दे। फिर तो 'यथापिंडे तथा ब्रह्माण्डे' के न्यायानुसार अेकके आरंभका असर दूसरे पर अवश्य ही पड़ेगा। अगर सब अपनी अपनी चिंता करने लगें, तो किसीको किसीकी चिंता करनेकी जरूरत ही न रह जाय।

२. साधु-जीवनसे ही आत्मशांतिकी प्राप्ति संभव है। यही अिहलोक और परलोक, दोनोंका साधन है। साधु-जीवनका अर्थ है सत्य और अहिंसामय जीवन; संयमपूर्ण जीवन। भोग कभी धर्म नहीं बन सकता। धर्मकी जड़ तो त्याग ही में है।

३. पिछले दुष्कृत्योंका प्रायश्चित्त शक्य है और कर्तव्य भी है। प्रायश्चित्तका अर्थ न मिन्नतें हैं, न रोना-पीटना ही है; हां, अुसमें अुपवासादिकी गुंजाअिश अवश्य है। पश्चात्ताप ही सच्चा प्रायश्चित्त है। दूसरे शब्दोंमें, दुबारा दुष्कर्म न करनेका निश्चय ही शुद्ध प्रायश्चित्त है। दुष्कर्मोंके फलोंका कुछ न कुछ नाश तो अवश्य होता है। जब तक प्रायश्चित्त नहीं किया जाता, तब तक फल चक्रवृद्धि ब्याजकी

भांति बढ़ता ही रहता है। प्रायश्चित्त कर लेनेसे सूदकी वृद्धि बंद हो जाती है।

४. मनुष्य-जीवनका अुद्देश्य आत्मदर्शन है। और अुसकी सिद्धिका मुख्य अेवं अेकमात्र अुपाय पारमार्थिक भावसे जीवमात्रकी सेवा करना है; अुनमें तन्मयता तथा अद्वैतके दर्शन करना है।

हिन्दी–नवजीवन, १५–८–'२९

६२

वृक्ष-पूजा

अेक भाअी लिखते हैं:

"यहांके स्त्री-पुरुष और और पूजाओंके साथ साथ वृक्ष-पूजा भी किया करते हैं। मगर जब मैंने समाज-सेवकोंकी शिक्षित स्त्रियोंको भी वृक्ष-पूजा करते देखा, तो हैरान हो गया। परंतु अुन बहनों और कुछ मित्रोंका कहना है कि यदि यह पूजा किसी प्रकारकी मान्यताके बिना की जाय, तो अिसे अंधविश्वास नहीं कह सकते। हम तो पवित्र भावसे पूजा करते हैं। अुन्होंने सावित्री और सत्यवानका अुदाहरण दिया और कहा कि आज अुनकी यादगारका दिन है, अिसीलिअे हम यह पूजा करते हैं। किन्तु अुनकी यह दलील मेरे गले नहीं अुतरी। अतः आपसे अिस विषय पर प्रकाश डालनेकी प्रार्थना करता हूं।"

यह प्रश्न अच्छा है। अिसके गर्भमें मूर्ति-पूजाका प्रश्न छिपा है। मैं मूर्ति-पूजाका हामी भी हूं और विरोधी भी। मूर्ति-पूजाके कारण जो वहम पैदा हो जाते हैं, अुनका खंडन या विरोध करना आवश्यक है। शेष मूर्ति-पूजा तो मनुष्यमात्र किसी न किसी रूपमें करता ही है। पुस्तक-पूजा भी मूर्ति-पूजा है। मंदिरों और मस्जिदोंकी पूजाका भी यही अर्थ है। मगर अिनमें कोअी बुराअी नहीं। शरीरधारी अिसके

सिवा और कुछ कर ही नहीं सकता। अिसीलिअे मेरे अपने खयालसे तो वृक्ष-पूजामें कुछ भी दोष नहीं है। अुलटे वह बड़ी अर्थपूर्ण और महाकाव्यका-सा महत्त्व रखनेवाली है। वृक्ष-पूजाका अर्थ वनस्पतिमात्रकी पूजा है। वनस्पतिमें जो अद्‌भुत सौंदर्य भरा पड़ा है, अुससे हमें अीश्वरकी महिमाका कुछ कुछ ज्ञान होता है। बगैर वनस्पतिके हम अेक क्षण भी जी नहीं सकते। जिस मुल्कमें वृक्षादिकी कमी होती है, वहांकी वृक्ष-पूजामें तो गंभीर अर्थशास्त्र निहित है।

अतः मेरे विचारमें वृक्ष-पूजाका विरोध करनेकी कोअी आवश्यकता नहीं है। वृक्ष-पूजा करनेवाली स्त्री पूजा करते समय किसी तत्त्वज्ञानका अुपयोग नहीं करती। अगर अुसे पूछा जाय कि वह पूजा क्यों करती है, तो कोअी कारण न बता सकेगी। अेकमात्र श्रद्धा ही अुसकी पूजाका कारण है। अुसकी वह श्रद्धा अेक बड़ी और पवित्र शक्ति है। अिस शक्तिका नाश किसी हालतमें भी अिष्ट नहीं।

हां, निजी स्वार्थके कारण जो मन्नतें ली जाती हैं, वे अवश्य ही दोषमय हैं। मन्नत-मात्र सदोष है। वृक्षोंकी मन्नत मनाना जितना सदोष है, गिर्जों और मस्जिदोंकी मन्नतें भी अुतनी ही दोषपूर्ण हैं। मन्नतके साथ मूर्ति-पूजाका या वृक्ष-पूजाका कोअी भी अनिवार्य संबंध नहीं। जनताको मन्नतोंकी जालमें से छुड़ाना बहुत ही जरूरी है। परंतु यह तो विषयांतर हुआ। हम लोगोंमें वहम अितने जड़ पकड़ गये हैं कि सब कोअी अुनकी जालमें फंस जाते हैं।

अिसका कोअी यह अर्थ न कर बैठे कि वृक्षादिकी पूजा सबके लिअे आवश्यक है। पूजा करनेके लिअे मैं वृक्षादिकी पूजाका समर्थन नहीं करता; बल्कि अिसलिअे कि अीश्वरकी प्रत्येक कृतिके प्रति मेरे हृदयमें सहज ही आदर है।

हिन्दी-नवजीवन, १५–८–’२९

६३

दुःखप्रद कहानी

रामगढ़ (जयपुर) से अेक सज्जन लिखते हैं:

"यहांके अग्रवाल समाजमें अेक अैसी मृत्यु हो गअी है, जिससे सारे शहरमें सनसनी फैली हुअी है; यानी अेक अैसे युवकका देहांत हो गया, जिसका विवाह हुअे अभी केवल दो महीने हुअे थे। बालिका न अभी अपने सुसराल गअी थी और न अभी अुसे अितना ज्ञान ही है कि वह कुछ समझ सके। वह बिलकुल निर्बोध है और केवल १२ वर्षकी है। वह यह जानती ही नहीं कि विवाह क्या है। अिस तरहकी बालिकाको समाजने विधवा करके बैठा दिया है। लोग कहते हैं: अुसके भाग्यमें यही लिखा था। यह अुसके पूर्वजन्मके पापोंका फल है, अुसे कौन रोके? न लड़कीका पिता जीवित है, न लड़केका ही; अिस तरह लड़की अेक दृष्टिसे अनाथ है। लड़कीकी बूढ़ी माता और दादी जीवित हैं। समाजके भयसे भला अुसकी माता विवाहका तो विचार ही कैसे कर सकती है? अिस तरह दोनों ओर भीषण शोक छाया हुआ है, मगर अुन्हें धैर्य दिलानेका कोअी मार्ग महीं सूझता।

"मारवाड़ी समाजमें अिस तरहकी और भी कअी बालिकाअें मिलेंगी। वे भी अिसीकी तरह समाजको श्राप दे रही हैं, और यदि निकट भविष्यमें समाज न चेता तो अुसका सर्वनाश अवश्य होगा। आप मारवाड़ी समाजको अिसके लिअे चेतावनी दें तो बहुत-कुछ असर हो सकता है। अवश्य ही बहुतसे नवयुवकोंमें आपके वाक्य नवजीवनका संचार करते हैं। अतः आप अिसके लिअे 'हिन्दी-नवजीवन' में कुछ अवश्य ही लिखें।"

अैसी दारुण कथाअें भारतवर्षमें बहुत सुन पड़ती हैं। और विशेषता यह है कि अैसी घटनाअें धनिक जातियोंमें ही अधिक होती हैं। क्योंकि धनिकोंमें वृद्ध लोगोंको भी शादी करनेकी अिच्छा होती है और जो लड़की विधवा हो जाती है अुसे विधवा बनाये रखनेमें ही बे लोग बड़प्पन मानते हैं। धर्मकी तो यहां बात ही नहीं है। अिसी कारण अैसी घटनाअें मारवाड़ी, भाटिया अित्यादि वर्गोंमें अधिक होती रहती हैं। अिस व्याधिकी अेक ही औषधि है: प्रत्येक जातिमें अिन बुराअियोंके खिलाफ विनयपूर्ण आंदोलन शुरू किये जायं और अुनके द्वारा सारी जातिमें जागृति फैलाअी जाय। जब समाज जागृत हो जायगा, तब न कोअी वृद्ध पुरुष विवाह करनेकी धृष्टता करेगा और न कोअी बालिका विधवा बनी जायगी। साथ ही जब अेक बार लोकमत तैयार हो जायगा, तब दैवको अथवा पूर्वजन्मके पापोंके फलको दोष देकर अथवा अुन्हें निमित्त बनाकर कोअी बाल-वैधव्यका समर्थन नहीं करेगा। जब अेक नवयुवक विधुर हो जाता है, तब अुसे पूर्वजन्मके दोषके बहाने विवाह करनेसे कोअी नहीं रोकता। अिसलिअे सुधारकोंको मेरी सलाह है कि वे निराश न होवें, बल्कि अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहें और आत्मविश्वास रखकर आगे बढ़ते चले जायं। हां, यह बात अवश्य ही याद रखनी चाहिये कि अकेले व्याख्यानों द्वारा यह काम नहीं हो सकता। सत्याग्रह तक पहुंचनेकी आवश्यकता होगी। सत्याग्रहकी मर्यादा पिछले अंकोंमें बताअी गअी है। सत्याग्रह-रूपी सूर्यके सामने बाल-वैधव्यरूपी यह अंधेरा कभी ठहर नहीं सकेगा। क्योंकि सत्याग्रहीके शब्दकोषमें निष्फलता शब्द ही नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन, २२–८–’२९

६४

मूर्ति-पूजा

अेक जिज्ञासु लिखते हैं :

> १. "जिस मूर्ति-पूजाका आप समर्थन करते हैं, अुसकी विधि क्या है? क्या किसी महापुरुषकी मूर्तिका दर्शनमात्र पर्याप्त है अथवा अुसे भोग (नैवेद्य) लगाना आदि भी? जब मूर्ति भोजन नहीं कर सकती है, तो अुसके सामने भोजनादि रखना कहां तक सार्थक है?"

मेरे पास मूर्ति-पूजाकी कोअी विधि नहीं। प्रत्येक मनुष्य या समाज अपनी-अपनी विधि निश्चित कर सकता है। यही होता भी है। विधिके द्वारा हम अुस व्यक्ति या समाजकी सभ्यताका दिग्दर्शन करवाते हैं। विधिमें धर्म कम और रिवाजका प्राबल्य ज्यादा है। जैसे भक्त, वैसे भगवान हैं। क्योंकि यह सब कल्पना ही है। लेकिन जब तक कल्पना काम करती है, तब तक यही सच्ची-सी वस्तु प्रतीत होती है।

दूसरा प्रश्न यों है :

> २. "शरीरधारी मनुष्यमें, फिर चाहे वह महापुरुष ही क्यों न हो, कुछ न कुछ दोष तथा त्रुटियां तो रहती ही हैं। अब यदि कोअी मनुष्य अैसे पुरुषकी मूर्तिकी अुपासना करता है तो मेरे खयालसे अुसके दोष भी अुसमें आने लगेंगे, क्योंकि अुपास्यके गुण-दोष दोनों ही अुपासकमें आ जाते हैं। क्या अिस प्रकारकी अुपासना आपको अिष्ट है?"

हमारे दो अुपास्य हो सकते हैं। अेक आदर्श व्यक्ति यानी काल्पनिक और दूसरा अैतिहासिक। मुझे काल्पनिक अुपास्य ही अभीष्ट है। संपूर्णावतार श्री कृष्णचंद्र अेक काल्पनिक आदर्श अवतार हैं। अैतिहासिक श्रीकृष्ण सदोष हैं। यदि अुपास्य गुणदोषमय है तो अुपासकमें भी अुसके गुणदोष अवश्य आवेंगे।

वही फिर पूछते हैं :

३. "जीवात्मा-सहित शरीरको चेतन और जीवात्मा-रहित शरीरको जड़ कहा जाता है। यदि यह कहें कि जड़ मूर्तिमें भी सर्वव्यापक चेतन तत्त्व मौजूद है तो यह समझनेवाला कि अीश्वर सर्वव्यापक है, अुसे मूर्तिमें ही महदूद क्यों समझे ? चक्रवर्ती राजाको कोअी अेक छोटेसे गांवका ही राजा कहे तो क्या अुसका अपमान नहीं होगा ?"

चक्रवर्तीके शासनको हम किसी अेक गांव तक ही महदूद नहीं रखते। परंतु जैसे वह लाखों देहातका शासक है वैसे ही अेक गांवका भी संपूर्ण शासक है। और यह बिलकुल संभव है कि अेक देहातीको किसी दूसरे देहातका खयाल तक न हो। भक्तशिरोमणि तुलसीदासके भगवान सुदर्शनचक्रधारी कृष्णचंद्र नहीं, बल्कि धनुर्धारी सीतारमण रामचंद्र थे। यही वजह है कि वह कृष्णकी मूर्तिमें भी रामचन्द्रका ही दर्शन करते थे। .

अुनका चौथा प्रश्न यों है :

४. "आपने कअी बार लिखा है कि अमुक कार्यकी सिद्धिके लिअे लोगोंको अीश्वरकी प्रार्थना करनी चाहिये, जैसे कि हिन्दू-मुस्लिम अेकता। तो फिर जो लोग वृक्षको अीश्वरवत् समझकर पूजते हैं वे अपने या दूसरेके लिअे अुसकी मन्नत क्यों न मानें ?"

मन्नत माननेमें तटस्थता नहीं होती, अुसमें राग होता है, अतः द्वेष भी हो सकता है। मेरी आदर्श प्रार्थना रागरहित है, अिसलिअे वह सर्वव्यापक और अचिंत्य अीश्वर तत्त्वके प्रति की जाती है। परंतु जो वृक्षमें भी भगवानकी कल्पना करते हैं, वे किसी स्वार्थपूर्ण प्रार्थनाके बदले हिन्दू-मुस्लिम अैक्य जैसी पारमार्थिक प्रार्थना भले ही कर सकते हैं।

अपने पांचवें प्रश्नमें वह पूछते हैं :

५. "श्रद्धाके साथ विवेककी आवश्यकता है या नहीं ? विवेकरहित श्रद्धाको क्या आप अंधश्रद्धा, अंधविश्वास नहीं

कहेंगे? अंधश्रद्धासे ही तो संसारमें बहुतसे अनर्थ हुआ करते हैं।"

मेरी श्रद्धा तो ज्ञानमयी और विवेकपूर्ण है। जो बुद्धिका विषय है, वह श्रद्धाका विषय कदापि नहीं हो सकता। असलिअे अंधश्रद्धा श्रद्धा ही नहीं।

अुनका छठा और अंतिम प्रश्न यों है:

६. "जिस प्रकार आप मनुष्यमात्रके लिअे सत्य और अहिंसाका अेक ही मार्ग बतलाते हैं, अुसी प्रकार क्या आप अुपासनाका कोअी अेक मार्ग सबके लिअे अुचित नहीं समझते? फिर वह अुपासना तथा प्रार्थना चाहे किसी भी भाषामें क्यों न की जाय।"

सत्य और अहिंसा सर्वव्यापक सिद्धांत या तत्त्व हैं। अुपासना मनुष्यकृत अेक आवश्यक प्रचण्ड साधन है। असलिअे वह देशकालसे परिमित है और अुसमें विविधता रहती है, रहना आवश्यक भी है। अुसका अंतिम निचोड़ तो अेक ही है। जैसे, कहा भी है कि सब नदियोंका पानी जिस तरह समुद्रमें गिरता है, अुसी तरह सब देवोंको की गअी वंदना — नमस्कारमात्र केशवको पहुंचती है।

हिन्दी-नवजीवन, २९-८-'२९

६५

भारतकी सभ्यता

सन् १९२४ में जब मैं संयुक्त प्रान्तमें भ्रमण कर रहा था, अयोध्याजीके नजदीक अेक किसानने पुकार कर मेरी गाड़ीमें अेक पर्चा फेंका था। मैंने अुस पर्चेको अुठाया और देखा कि अुसमें अुसने तुलसीदासजीके रामचरितमासनमें से कअी अुपयोगी चौपाअियां और दोहे अुद्धृत किये हैं। यह देखकर मुझे हर्ष हुआ और भारतवर्षकी सभ्यताके प्रति मेरे मनमें आदर बढ़ा। अुस पर्चेको मैंने अपने दफ्तरमें अिस अिच्छासे रख छोड़ा था कि किसी न किसी रोज अुसे 'नवजीवन' में दे दूंगा।

वैसे, प्रति सप्ताह मैं अुसे देखकर छोड़ देता था। क्योंकि जब वह पर्चा मुझे मिला था, मैं 'हिन्दी-नवजीवन' के लिअे कुछ नहीं लिखता था। गुजराती 'नवजीवन' के लिअे मैंने अुसे अुतना अुपयोगी नहीं समझा था, जितना 'हिन्दी-नवजीवन' के लिअे। पर्चेका अेक हिस्सा गुजराती और हिन्दीमें सन् १९२७ में दिया गया था।

अब चूंकि मैं प्रति सप्ताह कुछ न कुछ 'हिन्दी-नवजीवन' के लिअे खसूसन लिखता हूं, और चूंकि अनकरीब ही फिरसे मेरा यू० पी० का दौरा आरंभ होता है, अुस पर्चेका दूसरा हिस्सा यहां देता हूं:

(वर्तमान स्थितिके सुधारोंमें बाधा डालनेवालोंके लक्षण)

काहु हि सुमति कि खल संग जामी, शुभ गति पाव कि परतिय गामी।
राज कि रहे नीति बिनु जाने, अघ कि रहे हरि-चरित बखाने।।
अघ कि बिना तामस कछु आना, धर्म कि दया सरिस हरियाना।
यहां न पक्षपात कछु राखौं, वेद पुराण संत मत भाखौं।।
अरि वश दैव जियावै जाही, मरण नीक तेहि जियब न चाही
सत्य वचन विश्वास न करहीं, वायस अिव सबही सन डरहीं।
आरत का न करै कुकर्म। . . . .

क्रोध कि द्वैत बुद्धि विनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
मायावश परछन्न जड़, जीव कि ओश समान।।
और करे अपराध कोओी, और पावे फल भोग।
अति विचित्र भगवंत गति, को जग जानै योग।।
सचिव, वैद्य, गुरु, स्वामी जो, प्रिय बोलहिं भय आश।
राज, तन, धन तीन कर, वेगहिं होओी विनाश ।।*
परद्रोही परदार रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद।।
भाग छोट अभिलाख बड़, करअूं अेक विश्वास।
अुदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति।
भले भलाओी पै लहहिं, लहहि निचाओी नी।।
संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाव सनेह।

मैंने अिसमें से स्तुतिके वचन निकाल डाले हैं। अिस किसान भाओीके अक्षर स्पष्ट हैं और जो लिखा है, सजाकर लिखा है।

सब अितिहासकारोंने गवाही दी है कि जो सभ्यता भारतके किसानोंमें पाओी जाती है, दुनियाके और किन्हीं किसानोंमें नहीं पाओी जाती। यह पर्चा अिस बातका अेक अुदाहरण है। भारतकी सभ्यताकी रक्षा करनेमें तुलसीदासने बहुत अधिक भाग लिया है। तुलसीदासके चेतनमय रामचरितमानसके अभावमें किसानोंका जीवन जड़वत् और शुष्क बन जाता। पता नहीं कैसा क्या हुआ, परंतु यह तो निर्विवाद है कि तुलसीदासजीकी भाषामें जो प्राणप्रद शक्ति है वह दूसरोंकी भाषामें नहीं पाओी जाती। रामचरितमानस विचार-रत्नोंका भण्डार है। अुनकी कीमतका कुछ अन्दाजा हम अुपर्युक्त दोहे और चौपाअियोंसे लगा सकते हैं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि किसान लेखकने अिन चौपाअियों और दोहोंको ढूंढ़नेमें कोओी खास परिश्रम नहीं किया है; हां, अपने कण्ठस्थ भण्डारमें से जो याद हो आये वही दे दिये हैं।

---

* अिसका शुद्ध पाठ यह है:
मंत्री, गुरु अरु वैद्य जो, प्रिय बोलहिं भय आश।
राज, धर्म, तन तीन कर, वेगहिं होई विनाश।।

जब हम अेक किसानके मुखसे —

शुभ गति पाव कि परतिय गामी ?
राज कि रहे नीति बिनु जाने ?
अघ कि रहे हरिचरित बखाने ?
अघ कि बिना तामस कछु आना ?
धर्म कि दया सरिस हरि याना ?

आदि वचनोंको सुनते हैं, तब भारतवर्षकी नीतिके संबंधमें हमें कभी निराशा हो नहीं सकती।

आजकल यह कहा जाता है कि हमारे किसान अंधकारमें पड़े हैं, हमारा देश तमस्-प्रधान है, अिसलिअे अुसे रजस्‌में प्रवेश करना होगा। पहिली बात तो यह है कि मैं अिस कथनमें विश्वास ही नहीं रखता कि तमस्, रजस् और सत्त्वके बीच अैसा कोअी यांत्रिक भेद है, जिसके कारण हमें अेक कमरेमें से दूसरेमें क्रमशः जाना ही पड़े। मेरे विचारमें, प्रायः हरअेक मनुष्यमें तीनों गुण कुछ न कुछ अंशमें होते हैं। भेद केवल मात्राका है। मेरा अपना दृढ़ विश्वास है कि हमारा मुल्क तमस्-प्रधान नहीं, बल्कि सत्त्व-प्रधान है। और अुक्त पर्चा अिस बातका अेक यत्किंचित् प्रमाण है। अगर यह पर्चा असाधारण बात होती तो यह सत्त्व-प्रधानताका थोड़ा भी प्रमाण न हो सकता। परंतु जब हम जानते हैं कि लाखों किसानोंको तुलसीदासजीके दोहे-चौपाअी कण्ठस्थ हैं और वे अुनके अर्थको भी समझते हैं, तब हम अवश्य कह सकते हैं कि जिन लोगोंमें अैसे विचार प्रचलित हैं अुनकी सभ्यताके सत्त्व-प्रधान होनेका यह कुछ नहीं तो अेक प्राथमिक प्रमाण तो है ही।

हिन्दी-नवजीवन, ५–९–’२९

६६

परमार्थ बनाम स्वार्थ

भाअी महावीरप्रसाद पोद्दार लिखते हैं:

"यहां अिस समय करौली (जयपुरके पास) की खादी ज्यादा आ रही है। तीन-चार मासके अंदर ही वहांकी अुत्पत्ति १,५०० से ४,००० रुपये मासिककी हो गअी है। गुंजाअिश ८,००० तककी बतलाअी जा रही है। पहले तीन आना या चार आना प्रति रुपया नफा लगाते थे, फिर दो आना लगाने लगे, अब अेक आना रुपया लगाते हैं। खादीके दामोंके संबंधमें आपसे कुछ निवेदन है। चरखा-संघकी कअी शाखाअें सवाया नफा तक लगाती हैं। पहले जब थोड़ा माल बनता था, तब तक तो खर्च ज्यादा लगता था, लेकिन अब जब माल अधिक बनने लगा है तब नफा घटाना चाहिये। चरखा-संघकी ओरसे शाखाओं पर जोर डालना चाहिये कि वे दाम कम रखें। कअी जगह खादीके नफेसे कअी संस्थाअें और प्रवृत्तियां चलानेकी चिंता की जाती है, यह अुचित नहीं है। अिधर कअी माससे देखा जा रहा है कि यू० पी० की ओर कअी व्यापारियोंकी खादीकी बिक्रीकी ओर रुचि हो रही है। अिसका कारण नफेकी गुंजाअिश ही है। अगर अच्छी तरह जांच करते हुअे व्यापारियोंको अुदारता-पूर्वक प्रमाणपत्र दिये जायं तो व्यापारी कम खर्चेमें काम चला सकेंगे।"

मुझे अिसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अगर खादीमें से नफा खड़ा करनेकी भावना रखी जाय तो खादी कभी चल ही नहीं सकती। चरखा-संघकी यह नीति रही है कि खादीकी अुत्पत्ति और बिक्री पर खर्चकी लागत फी सदी सवा छह रुपयेसे ज्यादा न लगाअी जाय। अगर खर्च अिससे अधिक हो तो भी खादीके खरीददारोंसे वसूल न करके

अुसके लिअे अलग भिक्षा मांगी जाय। तजबीज तो यह है कि अगर हो सके तो सवा छह फी सदीसे भी कम लागत लगाअी जाय। और आदर्शकी बात तो यह है कि बुनाअी तककी क्रियाओंमें जो खर्च हो अुससे अधिक कुछ लेनेकी आवश्यकता ही न रहे। यदि आवश्यकता हो भी तो बिक्री पर कुछ अधिक व्यापारिक मुनाफा ले लिया जाय। जब खादी घीके समान प्रचलित हो जायगी और करोड़ोंमें बिकने लगेगी, तब मुनाफा फी सदी तीनसे अधिक न रहेगा — न रहना चाहिये। दूसरे, यह भी तो आशा की जाती है कि करोड़ों किसान स्वावलंबन-पद्धतिसे अपने लिअे आवश्यक खादीका सूत आप ही कातकर बुनवा लेंगे और वही पहनेंगे। यदि वे अधिक खादी पैदा कर सकें तो खुद ही बेचेंगे। भले ही, यह आदर्श-युग कभी आवे या न आवे, खादी द्वारा धन कमानेका लोभ तो त्याज्य ही है। खादी आजीविका पानेका अेक प्रचण्ड साधन अवश्य है, धनोपार्जनका कदापि नहीं। प्रत्येक अुद्यमी मनुष्यको आजीविका पानेका अधिकार है, मगर धनोपार्जनका अधिकार किसीको नहीं। सच कहें तो धनोपार्जन स्तेय है, चोरी है। जो आजीविकासे अधिक धन लेता है वह, जानमें हो या अनजानमें, दूसरोंकी आजीविका छीनता है। अर्थ दो प्रकारके हैं: परम और स्व। परम अर्थ ग्राह्य है, धर्मका अविरोधी है; स्व अर्थ त्याज्य है, धर्मका विरोधी है। खादी-शास्त्र परमार्थका शास्त्र है और अिसी कारण सच्चा अर्थशास्त्र भी है। अिसलिअे किसीको खादी पर अनावश्यक या अतिशय दाम लगाना ही नहीं चाहिये।

जो खादी पर दूसरी प्रवृत्तियोंका बोझ डालते हैं, वे खादीके साथ अत्याचार करते हैं। आज खादी दूसरी प्रवृत्तियोंसे मदद की आशा रखती है। अैसी हालतमें खादी पर दूसरी प्रवृत्तियोंका बोझ डालना जूतोंके लिअे भैंसकी हत्या करनेके समान है।

हिन्दी-नवजीवन, १२–९–'२९

६७
युक्तप्रान्तकी कुप्रथाअें

युक्तप्रान्तमें मेरा भ्रमण शुरू होता देख यू० पी० के अेक अनुभवी और सुशिक्षित मित्र मुझे लिखते हैं:

"और और प्रांतोंमें, खास कर शिक्षित समाजमें, लोग तब तक ब्याह नहीं करते, जब तक अुनको आमदनीका कोअी जरिया न मिल जाय। स्कूलमें जानेवाले विद्यार्थियोंमें थोड़े ही अैसे होते हैं, जिनका ब्याह हो चुका होता है; पर यू० पी० में प्रथा अिसके विपरीत है। यहां शायद ही अैसा कोअी लड़का मिलेगा जिसका ब्याह नहीं हुआ हो। यही नहीं कि माता-पिता अज्ञानवश जल्दीमें ब्याह कर देते हों; लड़कोंमें भी यह भाव नहीं है कि जब तक वे स्वयं धनोपार्जन न करने लगें तब तक अुनका ब्याह नहीं होना चाहिये। कितने ही लड़के तो यह अिच्छा प्रकट करते हैं कि अुनका ब्याह कर दिया जाय। ब्याहकी जिम्मेदारीका भान बहुत ही कम लड़कोंमें है।

"विवाह आदिके संबंधमें लोग प्रायः अपनी शक्तिसे कहीं ज्यादा खर्च कर डालते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि कअी कुटुम्ब यावज्जीवन ऋणी रहते हैं। अिस मामलेमें शिक्षित समाजवाले खासकर दोषी हैं। जिनके पास पैसा है वे अिस बातकी परवाह ही नहीं करते कि अुनके निर्धन भाअी किस तरह अुनकी-सी शानसे ब्याह कर सकेंगे। पर देखादेखी वे भी वैसा ही करते हैं, और परिणाम भयंकर होता है।

"यू० पी० में पर्देकी प्रथा कैसी है, सो तो आप जानते हैं। जहां अकेले हिन्दुओंकी बस्ती है, वहां अितना पर्दा नहीं किया जाता, जितना मुसलमानोंकी बस्तीमें। यू० पी० में आकर बसे हुअे गुजराती नागर भी पर्दा करने लगे हैं।

"यू० पी० में राज्य जमींदारोंका है, खासकर अवधमें।"

अगर मौका मिला तो मैं अवश्य ही अिन प्रश्नोंका अभ्यास करूंगा और अिनके बारेमें कुछ कहूंगा। जैसा कि यह सज्जन लिखते हैं, यदि सचमुच यू० पी० में अन्य प्रान्तोंके मुकाबले विद्यार्थी-वर्ग विवाहके मामलोंमें ज्यादा विषयासक्त है, और ब्याहके अवसर पर खर्च भी ज्यादा होता है तो अवश्य ही खेदकी बात है।

परंतु अिन मामलोंमें किसी प्रांतके साथ तुलना करनेकी आवश्यकता है ही नहीं। यदि कुप्रथाअें दूसरे प्रान्तोंके बराबर या अुनसे कम भी हुअीं तो क्या हुआ? कुप्रथा-मात्रका नाश करना प्रत्येक विवेकशील मनुष्यका कर्तव्य है। विद्यार्थी-अवस्थामें विद्यार्थियोंका विवाह-जालमें फंसना सर्वथा अनुचित है, धर्मविरुद्ध है। धर्म हमें सिखाता है कि विद्यार्थी-अस्वस्थामें जो युवक ब्रह्मचर्यादिका भलीभांति पालन नहीं करता है, अुसे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेका अधिकार ही नहीं रहता। अिसी तरह जो मनुष्य घर-गृहस्थी चलानेमें असमर्थ है, अुसे चाहिये कि वह गृहस्थाश्रममें प्रवेश ही न करे। गृहस्थाश्रम विषय-सेवन या भोग-विलासके ही लिअे नहीं है — गृहस्थ, यदि चाहे तो, मर्यादित मात्रामें, पुत्रोत्पत्तिकी अिच्छासे, स्वपत्नीके साथ विषय-सेवन कर सकता है। विषय-भोगके लिअे ही विषय-भोग करना, क्या हिन्दू धर्ममें और क्या अन्य धर्मोंमें, सर्वथा त्याज्य कहा गया है।

यदि यह सच है कि यू० पी० के विद्यार्थियोंमें से बहुत ज्यादा विद्यार्थी विवाहित होते हैं, तो मुझे अेक दुःखद अनुभवका कारण ज्ञात हो जाता है। हिन्दी-प्रचार यू० पी० का अेक खास कर्तव्य है। जब अिन्दौरमें मैंने दक्षिण-भारतमें हिन्दी-प्रचारकी बात की थी, तब मुझे आशा थी कि अिस कामके लिअे चारित्र्यवान, त्यागी, शिक्षित, राष्ट्र-भाषा विशारद और ब्रह्मचारी युवक काफी संख्यामें मिल सकेंगे। मगर पाठकोंको यह जानकर दुःख होगा कि यू० पी० से अिस काममें बहुत कम सहायता मिली। आज भी अैसे स्वयंसेवकोंके अभावके कारण ही बंगाल, सिंध, अुत्कल अित्यादि प्रांतोंमें राष्ट्रभाषाका प्रचार

बहुत कम हो रहा है। अिसका कारण धनका अभाव नहीं, बल्कि सच्चे स्वयंसेवकोंका अभाव ही है।

विवाहमें किये जानेवाले खर्चकी बात भी दुःखप्रद है। धनिक लोग हर जगह अपनी धनराशिके अभिमानमें आकर अमर्यादित खर्च करने और गरीबोंमें बुद्धिभेद अुपजाते हैं। अिस संबंधमें भी विद्यार्थियोंको चाहिये कि वे प्रतिज्ञाबद्ध होकर माता-पिताको ब्याहके अवसर पर अधिक खर्च हरगिज न करने दें। जिन मित्रने मुझे यह पत्र लिखा है, वह मुझसे मिल चुके हैं। अुन्होंने श्री जमनालालजीके अुदाहरणकी याद दिलाते हुअे मुझे कहा है कि मैं अुस अुदाहरणको विद्यार्थियों और अुनके माता-पिताके सामने रखूं। जब जमनालालजीकी पुत्री कमलाका ब्याह हुआ, तब शायद ही अुन्होंने ५०० का खर्च किया हो। अुन्होंने जातिभोज तो दिया ही नहीं। वर-वधूको आशीष देनेके लिअे कुछ मित्रोंको बुला लिया था। विवाह-विधि केवल धार्मिक क्रिया तक ही परिमित रही थी। आडंबरमात्रका त्याग किया गया था। वर-वधू, दोनों, सादी खादीके कपड़े पहने हुअे थे। ठीक अिसी तरह हरअेक धनाढ्यका धर्म है कि वह विवाह अित्यादि अवसरों पर अपने अभिमानको रोके और समाजको हानि पहुंचानेसे बाज आये।

तीसरा प्रश्न पर्देका है। पर्देकी बुराअीके बारेमें मैं काफी लिख चुका हूं। यह प्रथा हर तरहसे अकल्याणकारिणी है। अनुभवसे यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्रीकी रक्षा करनेके बदले यह स्त्रीके शरीर और मनको हानि पहुंचाती है।

जमींदारोंके बारेमें मैं क्या लिखूं? जमींदार-वर्गमें से शायद ही कोअी 'हिंदी-नवजीवन' पढ़ता हो। लेकिन चूंकि मैं मनुष्य-स्वभावके अुच्चगामित्वको मानता हूं, मेरा विश्वास है कि जमींदार लोग जापानके समुराअी अमीरोंकी तरह लोकसेवाका मंत्र सीखेंगे और यथासंभव त्यागमय जीवन बिताकर अपना अेवं भारतवर्षका कल्याण करनेमें पूरा-पूरा योग देंगे। यह तो मेरी अपनी आशा है; 'हिन्दी-नवजीवन' में अिसका अुल्लेखमात्र करनेसे यह सफल नहीं हो सकती।

हिन्दी-नवजीवन, १२-९-'२९

६८

बुद्धि बनाम श्रद्धा

'मूर्ति-पूजा' शीर्षक लेखमें मैंने लिखा था कि जहां बुद्धि निरुपाय हो जाती है, वहां श्रद्धाका आरंभ होता है। अर्थात् श्रद्धा बुद्धिसे परे है। अिस परसे कअी पाठकोंको यह शक हुआ है कि यदि श्रद्धा बुद्धिसे परे है तो वह अंधी ही होनी चाहिये। मेरा मत अिससे अुलटा है। जो श्रद्धा अंधी है, वह श्रद्धा ही नहीं है। अगर कोअी मनुष्य श्रद्धापूर्वक यह कहे कि आकाशमें पुष्प होते हैं, तो अुसकी बात अुचित नहीं मानी जा सकती। करोड़ों मनुष्योंका प्रत्यक्ष अनुभव अिससे अुलटा है। आकाश-कुसुमको मानना श्रद्धा नहीं, बल्कि घोर अज्ञान है। क्योंकि आकाशमें पुष्प है या नहीं, यह बात बुद्धिगम्य है और बुद्धि द्वारा अिसका 'नास्तित्व' सिद्ध हो सकता है। अिसके विपरीत जब हम यों कहते हैं कि अीश्वर है, तब हमारे कथनके 'नास्तित्व' को कोअी सिद्ध नहीं कर सकता। बुद्धिवादसे अीश्वरके अस्तित्वको असिद्ध करनेका कोअी भले कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, हरअेक मनुष्यके दिलमें अिस विषयकी शंका तो फिर भी बनी ही रहेगी। अुधर, करोड़ोंका अनुभव अीश्वरका अस्तित्व सिद्ध करता है। किसी भी मामलेमें श्रद्धाकी पुष्टिमें अनुभूत ज्ञानका होना आवश्यक है। क्योंकि आखिर तो श्रद्धा अनुभव पर अवलंबित है, और जिसे श्रद्धा है अुसे कभी न कभी अनुभव होगा ही। परंतु श्रद्धावान कभी अनुभवकी आकांक्षा नहीं करता, क्योंकि श्रद्धामें शंकाको स्थान ही नहीं है। अिसका यह अर्थ नहीं कि श्रद्धामय मनुष्य जड़-रूप है या जड़ बन जाता है। जिसमें शुद्ध श्रद्धा है, अुसकी बुद्धि तेजस्वी रहती है। वह स्वयं अपनी बुद्धिसे जान लेता है कि जो वस्तु बुद्धिसे भी अधिक है — परे है — वह श्रद्धा है। जहां बुद्धि नहीं पहुंचती वहां श्रद्धा पहुंच जाती है। बुद्धिकी अुत्पत्तिका स्थान मस्तिष्क है, श्रद्धाका हृदय।

और यह तो जगत्का अविच्छिन्न अनुभव है कि बुद्धिबलसे हृदयबल सहस्रशः अधिक है। श्रद्धासे जहाज चलते हैं, श्रद्धासे मनुष्य पुरुषार्थ करता है, श्रद्धासे वह पहाड़ों——अचलों——को चला सकता है। श्रद्धावानको कोअी परास्त नहीं कर सकता। बुद्धिमानको हमेशा पराजयका डर रहता है। बालक प्रह्लादमें बुद्धिकी न्यूनता हो सकती थी, मगर अुसकी श्रद्धा मेरुके समान अचल थी। श्रद्धामें विवादको स्थान ही नहीं। अिसलिअे अेककी श्रद्धा दूसरेके काम नहीं आ सकती। अेक मनुष्य श्रद्धासे दरिया पार हो जायगा, मगर दूसरा, जो अंधानुकरण करेगा, अवश्य डूबेगा। अिसी कारण भगवान कृष्णने गीताके १७ वें अध्यायमें कहा है——यो यच्छ्रद्धः स अेव सः——जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बनता है।

तुलसीदासजीकी श्रद्धा अलौकिक थी। अुनकी श्रद्धाने हिन्दू संसारको रामायणके समान ग्रंथरत्न भेंट किया है। रामायण विद्वत्तासे पूर्ण ग्रंथ है, किन्तु अुसकी भक्तिके प्रभावके मुकाबले अुसकी विद्वत्ताका कोअी महत्त्व नहीं रहता। श्रद्धा और बुद्धिके क्षेत्र भिन्न भिन्न हैं। श्रद्धासे अन्तर्ज्ञान, आत्मज्ञानकी वृद्धि होती है, अिसलिअे अंतःशुद्धि तो होती ही है। बुद्धिसे बाह्यज्ञानकी, सृष्टिके ज्ञानकी वृद्धि होती है, परन्तु अुसका अंतःशुद्धिके साथ कार्यकारण जैसा कोअी संबंध नहीं रहता। अत्यंत बुद्धिशाली लोग अत्यंत चारित्र्यभ्रष्ट भी पाये जाते हैं। मगर श्रद्धाके साथ चारित्र्यशून्यताका होना असंभव है। अिस परसे पाठक समझ सकते हैं कि अेक बालक श्रद्धाकी पराकाष्ठा तक पहुंच सकता है और फिर भी अुसकी बुद्धि मर्यादित रह सकती है। मनुष्य यह श्रद्धा कैसे प्राप्त करे? अिसका अुत्तर गीतामें है, रामचरितमानसमें है। भक्तिसे, सत्संगसे श्रद्धा प्राप्त होती है। जिन्हें जिन्हें सत्संगका प्रसाद प्राप्त हुआ है, अुन्होंने——

'सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्?'

वचनामृतका अनुभव अवश्य किया होगा।

हिन्दी-नवजीवन, १९–९–'२९

६९

दो प्रश्न

मैं जब आगरेमें था, अेक सज्जनने यह पत्र लिखा था :

"मेरे चित्तमें बार बार यह विचार अुठता है कि मैं आपसे मिलूं और कुछ शंकायें दूर करूं। परन्तु मिलना कठिन है, क्योंकि लोग मिलने नहीं देते। अिसलिअे पत्र द्वारा नीचे लिखे प्रश्न भेजता हूं। आशा है, अुत्तर पाकर शांति अथवा अशांति कुछ न कुछ तो अवश्य होगी।

१. आप अिस पृथ्वीभरकी जनताके प्रति कितना प्रेम रखते हैं? (क) सारे भारतवर्ष पर कितना प्रेम रखते हैं? और (ख) गुजरात देशके प्रति कितना प्रेम रखते हैं?

२. क्या आपको भारतभरमें भ्रमण करने पर भी भारतकी दशाका ज्ञान है? यदि हां तो भारतकी कैसी दशा है? (क) प्रान्त-प्रान्तकी दशाका भी बोध हो तो लिखें; किस किस प्रान्तकी कैसी क्या दशा है?"

यदि अिन महाशयको मेरे पास आनेसे किसीने रोका है तो दुःख और शर्मकी बात है। हां, यह होता था सही कि बेचारे स्वयंसेवक मेरे स्वास्थ्यकी रक्षाकी फिक्रमें रहते हुअे समयका खयाल अवश्य रखते थे। अुनका प्रेम मुझे अुनसे — मिलनेवालोंसे बचानेमें खर्च होता था; प्रश्नकारोंका, दर्शनाभिलाषियोंका प्रेम अुनसे समयकी मर्यादाका अुल्लंघन करवाता था। प्रेमकी दो विरुद्ध दिशा होनेके कारण कुछ खींचतान जरूर होती थी। मिलनेवालोंको कुछ कष्ट भी होता था, परन्तु शामकी प्रार्थनाके समय सब आ सकते थे। किसीको रोक-टोक न थी। और प्रार्थना खुले मैदानमें होनेके कारण सब कोअी आ जाते थे। हरअेकको अितना तो समझ लेना चाहिये कि जब अेकको अनेक मिलनेवाले रहते हैं तब कुछ न कुछ मर्यादा आवश्यक हो जाती है।

अब पहले प्रश्न पर आअूं।

अिस पृथ्वीभरकी जनताके प्रति अेक अल्प प्राणी जितना समभावी हो सकता है, अुतना होनेकी मैं कोशिश करता हूं। अिसलिअे भारतवर्ष पर और गुजरात पर अुतना ही प्रेम करनेकी चेष्टा करता हूं, जितना पृथ्वीके अन्य प्रदेशों पर। लेकिन अिस समभावका अर्थ यह नहीं है कि मेरी सेवा सबको अेकसी मिलती है या मिल सकती है। मेरी आत्मा काल, स्थल और प्रसंगके बन्धनसे मुक्त होनेके कारण अुसका प्रेम तो सबके प्रति समान मात्रामें बंट जाता है। परन्तु चूंकि शरीर बहुत ही मर्यादित है, शरीर और शरीरस्थ अिन्द्रियोंसे जो सेवा होती है वह भी मर्यादित है। अिसमें मेरी भावनाका कोअी दोष नहीं है। यह दोष विधिका है। शायद, अिस दोषके कारण भारतवर्षको अैसा अनुभव होता होगा कि मैं विशेषतया अुसीका हूं और गुजरातको अिससे भी अधिक। गुजरातमें, अुद्योग-मंदिरवासियोंको और भी अधिक। वस्तुतः अुद्योग-मंदिरके मार्फत मेरी सेवा सारे जगत्को मिलती है। क्योंकि अुद्योग-मंदिरकी मेरी सेवा न गुजरातकी, न भारतवर्षकी और न जगत्की सेवाकी ही विरोधिनी है। और अिसीको मैं स्वच्छ स्वदेशाभिमान मानता हूं, तथा अिसीमें मेरी कर्तव्यपरायणता रही है। अैसे ही अनुभव परसे 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' महावाक्यकी घोषणा हुअी है।

अब दूसरा प्रश्न।

मेरी नम्र सम्मतिमें भारतवर्षकी दशाका मुझे ठीक ज्ञान हुआ है। अिसका कारण मेरा भ्रमण नहीं, परन्तु सच्ची दशा जाननेकी मेरी तीव्र अिच्छा है। पश्चिमसे बहुतेरे मुसाफिर कुतूहलवश यहां चले आते हैं। वे मुझसे भी ज्यादा भ्रमण करें तो भी भारतकी दशा नहीं जान सकते, क्योंकि अुनमें वह जिज्ञासा नहीं होती। मेरा भ्रमण देशकी दशा जाननेमें कारणभूत तो था, परन्तु अुसकी जड़ अिच्छामें छिपी हुअी थी। प्रान्त प्रान्तकी दशामें कोअी भारी भेद नहीं है, न हो सकता है। मात्रामें कुछ न्यूनाधिकता रहनेका संभव है। भारतवर्ष पराधीन है और कंगाल है। यह अुसका महारोग है। अिसका

अुपचार हुआ तो सबका हुआ। यदि अिसका न हुआ तो और किसी चीजका नहीं हो सकता। अितनी सीधी-सादी, सरल बात जो समझेगा अुसे भारतवर्षके दुःखोंके निवारणके लिअे जो अिलाज मैंने बताये हैं अुन्हें समझनेमें कोअी कष्ट नहीं हो सकता।

हिन्दी-नवजीवन, २६–९–'२९

७०

संयुक्तप्रान्तका धर्म

महासभाकी बागडोर अिस वर्ष संयुक्तप्रान्तके अेक महान पुरुषके हाथोंमें है। आगामी वर्षके लिअे भी अुन्हींके नवयुवक सुपुत्रके हाथोंमें रहेगी। अिसलिअे भारतवर्षके प्रति संयुक्तप्रान्तका कर्तव्य बहुत ज्यादा बढ़ गया है। मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी किसी प्रान्तके दो नेता अुत्तरोत्तर अेकके बाद अेक सभापति हुअे हों। पिताके बाद पुत्रके गद्दीनशीन होनेका तो यह पहला ही दृष्टान्त है। जिस प्रान्तमें पिताके रहते हुअे पुत्र अितना योग्य माना जाता हो कि पिताके बाद दूसरे ही वर्षमें वह अेक महान राष्ट्रका नेता बने, अुस प्रान्तके लिअे अवश्य ही यह गौरवकी बात है।

दूसरे, संयुक्तप्रान्त हिन्दुस्तानके मध्यभागमें बसा हुआ है। संयुक्त-प्रान्तमें भारतकी स्वतंत्रताका अेक युद्ध हो चुका है। युक्तप्रान्त ही पूज्य मालवीयजीका सेवा-क्षेत्र है। युक्तप्रान्त ही में हिन्दुओंके सर्वोत्तम तीर्थस्थान हैं। और संयुक्तप्रान्तमें मुसलमानी बादशाहतके स्मारकरूप अनेक स्तम्भ-स्मृतिचिह्न भी हैं। अिस या अैसे संयुक्तप्रान्तके लोग अगर जीतोड़ मेहनत करें, पूरा-पूरा प्रयत्न करें, तो अगले साल भारतवर्षकी अभिलाषाके परिपूर्ण होनेमें कुछ भी कष्ट न हो।

संयुक्तप्रान्त बड़े-बड़े जमींदारों और तालुकेदारोंका केन्द्र है। साथ ही वहां निर्धनता भी है। संभव है, संयुक्तप्रान्तकी गरीबी अुत्कलकी गरीबीसे बहुत कम न हो। कअी स्थानोंमें तीन-तीन साल हुअे बराबर

दुर्भिक्ष चला आ रहा है। लोगोंके पास न काम है, न धन है। भूखों मरते हैं। अुनके लिअे तो वही स्वराज्य हो सकता है, जिसमें अुन्हें स्थाअी काम मिले और वे भूखों मरनेसे बचें। अगर संयुक्तप्रान्तके नौजवान चाहें तो वे गांवोंमें प्रवेश करके चरखा-प्रचार द्वारा जनताको काम और दाम, दोनों दे सकते हैं। साथ ही विदेशी वस्त्र-बहिष्कारका काम भी कर सकते हैं। चरखेका जिक्र मैंने अेक मिसालके तौर पर किया है। मैं तो यही चाहता हूं कि किसी न किसी तरह हम अपने अिन करोड़ों भाअी-बहनोंकी बेकारी और अुनके भुक्खड़पनका नाश करें और अुनकी सेवामें परायण हो जायं। जब तक हम दूरसे ही अुनका खयाल रखेंगे, परन्तु अुनके पास जाकर अुनके कष्टोंको जानने और अुन्हें मिटानेकी कोशिश नहीं करेंगे, तब तक हमें समझ रखना चाहिये कि हमने कुछ नहीं किया है। और अुस दशामें स्वराज्य हमारे लिअे आकाश-पुष्पवत् अेक काल्पनिक वस्तुमात्र बना रहेगा।

हिन्दी-नवजीवन, ३–१०–'२९

७१

तुलसीदासजी

भिन्न-भिन्न मित्र पूछते हैं :

"रामायणको आप सर्वोत्तम ग्रंथ मानते हैं, परन्तु समझमें नहीं आता क्यों? देखिये, तुलसीदासजीने स्त्री-जातिकी कितनी निन्दा की है। बालि-वधका कैसा समर्थन किया है। विभीषणके देशद्रोहकी किस कदर प्रशंसा की है। सीताजी पर घोर अन्याय करनेवाले रामको अवतार बताया है। अैसे ग्रन्थमें आप कौनसा सौन्दर्य देख पाते हैं? तुलसीदासजीके काव्य-चातुर्यके लिअे तो शायद आप रामायणको सर्वोत्तम ग्रंथ नहीं समझते होंगे? यदि अैसा ही है तो कहना पड़ेगा कि आपको काव्य-परीक्षाका कोअी अधिकार ही नहीं।"

अुपरोक्त सब सवाल अेक ही मित्रके नहीं हैं, परन्तु भिन्न भिन्न मित्रोंने भिन्न भिन्न समय पर जो कुछ कहा है और लिखा है, अुसका यह सार है। यदि अैसी अेक अेक टीकाको लेकर देखें तो सारीकी सारी रामायण दोषमय सिद्ध की जा सकती है। संतोष यही है कि अिस तरह प्रत्येक ग्रंथ और प्रत्येक मनुष्य दोषमय सिद्ध किया जा सकता है। अेक चित्रकारने अपने टीकाकारोंको अुत्तर देनेके लिअे अपने चित्रको प्रदर्शनीमें रखा और नीचे अिस तरह लिखा — 'अिस चित्रमें जिसको जिस जगह दोष प्रतीत हों, वह अुस जगह अपनी कलमसे चिह्न कर दे।' परिणाम यह हुआ कि चित्रके अंग-प्रत्यंग दोषपूर्ण बताये गये। मगर वस्तुस्थिति यह थी कि वह चित्र अत्यंत कलायुक्त था। टीकाकारोंने तो वेद, बाअिबल और कुरानमें भी बहुतेरे दोष बताये हैं, परन्तु अुन ग्रंथोंके भक्त अुनमें दोषोंका अनुभव नहीं करते। प्रत्येक ग्रंथकी परीक्षा पूरे ग्रंथके रहस्यको देखकर ही की जानी चाहिये। यह बाह्य परीक्षा है। अधिकांश पाठकों पर ग्रंथ-विशेषका क्या असर हुआ है, यह देखकर ही ग्रंथकी आन्तरिक परीक्षा की जाती है। किसी भी साधनसे क्यों न देखा जाय रामायणकी श्रेष्ठता ही सिद्ध होती है। ग्रंथको सर्वोत्तम कहनेका यह अर्थ कदापि नहीं कि अुसमें अेक भी दोष नहीं है। परन्तु रामचरितमानसके लिअे यह दावा अवश्य है कि अुससे लाखों मनुष्योंको शांति मिली है। जो लोग अीश्वर-विमुख थे वे अीश्वरके सम्मुख गये हैं और आज भी जा रहे हैं। मानसका प्रत्येक पृष्ठ भक्तिसे भरपूर है। मानस अनुभव-जन्य ज्ञानका भण्डार है।

यह बात ठीक है कि पापी अपने पापका समर्थन करनेके लिअे रामचरितमानसका सहारा लेते हैं। अिससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि वे लोग रामचरितमानसमें से अकेले पापका ही पाठ सीखते हैं। मैं स्वीकार करता हूं कि तुलसीदासजीने स्त्रियों पर अनिच्छासे अन्याय किया है। अिसमें और अैसी ही अन्य बातोंमें तुलसीदासजी अपने युगकी प्रचलित मान्यताओंसे परे नहीं जा सके थे। अर्थात् तुलसीदासजी सुधारक नहीं, बल्कि भक्त-शिरोमणि थे। अिसमें हम तुलसीदासजीके दोषोंका नहीं परन्तु अुनके युगके दोषोंका दर्शन अवश्य करते हैं।

अैसी दशामें सुधारक क्या करें? क्या अुनको तुलसीदासजीसे कोअी सहायता नहीं मिल सकती? अवश्य मिल सकती है। रामचरित-मानसमें स्त्री-जातिकी काफी निन्दा मिलती है, परन्तु अुसी ग्रंथ द्वारा सीताजीके पुनीत चरित्रका भी हमें परिचय मिलता है। बिना सीताके राम कैसे? रामका यश सीताजी पर निर्भर है। सीताजीका रामजी पर नहीं। कौशल्या, सुमित्रा आदि भी मानसके पूजनीय पात्र हैं। शबरी और अहल्याकी भक्ति आज भी सराहनीय है। रावण राक्षस था, मगर मंदोदरी सती थी। अैसे अनेक दृष्टान्त अिस पवित्र भंडारमें से मिल सकते हैं। मेरे विचारमें अिन सब दृष्टान्तोंसे यही सिद्ध होता है कि तुलसीदासजी ज्ञानपूर्वक स्त्री-जातिके निन्दक नहीं थे। ज्ञानपूर्वक तो वह स्त्री-जातिके पुजारी ही थे। यह तो स्त्रियोंकी बात हुअी। परन्तु बालि-वधादिके बारेमें भी दो मतोंकी गुंजाअिश है। विभीषणमें तो मैं कोअी दोष नहीं पाता हूं। विभीषणने अपने भाअीके साथ सत्याग्रह किया था। विभीषणका दृष्टान्त हमें यह सिखाता है कि अपने देश या अपने शासकके दोषोंके प्रति सहानुभूति रखना या अुन्हें छिपाना देशभक्तिके नामको लजाना है, अिसके विपरीत देशके दोषोंका विरोध करना सच्ची देशभक्ति है। विभीषणने रामजीकी सहायता करके देशका भला ही किया था। सीताजीके प्रति रामचंद्रके बर्तावमें निर्दयता नहीं थी, अुसमें राजधर्म और पति-प्रेमका द्वंद्व युद्ध था।

जिसके दिलमें अिस सम्बन्धकी शंकाअें शुद्ध भावसे अुठें, अुन्हें मेरी सलाह है कि वे मेरे या किसी औरके अर्थको यंत्रवत् स्वीकार न करें। जिस विषयमें हृदय शंकित है, अुसे छोड़ दें। सत्य, अहिंसादिकी विरोधिनी किसी वस्तुको स्वीकार न करें। रामचंद्रने छल किया था, अिसलिअे हम भी छल करें, यह सोचना औंधा पाठ पढ़ना है। यह विश्वास रखकर कि रामादि कभी छल नहीं कर सकते, हम पूर्ण पुरुषका ही ध्यान करें और पूर्ण ग्रन्थका ही पठन-पाठन करें। परन्तु 'सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता:' न्यायानुसार सब ग्रंथ दोषपूर्ण हैं, यह समझकर हंसवत् दोषरूपी नीरको निकाल फेंकें और गुणरूपी क्षीर ही ग्रहण करें। अिस तरह अपूर्णमें संपूर्णकी

प्रतिष्ठा करना, गुणदोषका पृथक्करण करना, हमेशा व्यक्तियों और युगोंकी परिस्थिति पर निर्भर रहेगा। स्वतंत्र संपूर्णता केवल अीश्वरमें ही है और वह अकथनीय है।

हिन्दी-नवजीवन, १०–१०–'२९

७२
स्वयंसेवकका कर्तव्य

संयुक्तप्रान्तके दौरेमें स्वयंसेवकोंसे परिचय हो रहा है; अिससे मैं देखता हूं कि अुनको तालीमकी बड़ी आवश्यकता है। स्वयंसेवकोंकी भावना शुद्ध है, अुनके प्रेममें कोअी न्यूनता नहीं, परन्तु भावना और प्रेममें से जो शक्ति पैदा होनी चाहिये वह शिक्षाके अभावसे हो नहीं रही। स्वयंसेवकोंमें प्रबन्ध-शक्ति बहुत कम है। अिस कारण अक्सर अुनसे सहायता मिलनेके बदले नअी मुसीबतें खड़ी हो जाती हैं। अतअेव अुनके लिअे तालीमकी बड़ी आवश्यकता है। दिलसे भले वे स्वयंसेवक बन जाते हों, मगर अिस तरह कोअी काम पूरा नहीं होता। जो आसानमें आसान काम माने जाते हैं अुनके लिअे भी कुछ न कुछ तालीमकी तो आवश्यकता मानी ही गअी है। भंगीका काम भी बगैर तालीमके नहीं हो सकता। फिर भला स्वयंसेवकका काम बगैर तालीमके कैसे सफल हो सकता है?

स्वयंसेवक राष्ट्रका सिपाही है। अुसके द्वारा हम अंतमें स्वराज्य पानेकी आशा रखते हैं। राष्ट्रीय दलके अैसे लोगोंमें बड़ी योग्यता होनी चाहिये। स्वयंसेवकमें :

१. बड़ी-बड़ी सभाओंमें शांति रखनेकी शक्ति होनी चाहिये।

२. राष्ट्रभाषाका ज्ञान होना चाहिये।

३. अिशारेसे अपने विचार दूसरे स्वयंसेवकको समझानेकी शक्ति होनी चाहिये।

४. कोलाहलको बन्द करनेकी शक्ति होनी चाहिये।

५. लोगोंके समुदायमें रास्ता बनानेकी शक्ति होनी चाहिये।

६. अेक साथ तालबद्ध कूच करनेकी शक्ति होनी चाहिये।

७. किसीको चोट लगने पर अुसके तात्कालिक अुपचारका ज्ञान होना चाहिये।

८. लोगोंकी गालियां, अुनके कटुवचन, प्रहार, ताने-तिशने वगैरा सहनेकी शक्ति होनी चाहिये।

९. सरकारी दंड, जैसे कि जेल अित्यादिको सह लेनेकी शक्ति होनी चाहिये।

१०. धीरज, सत्य, दृढ़ता, वीरता, अहिंसादि गुण होने चाहिये।

अिनके अलावा मेरी दृष्टिमें स्वयंसेवक निरन्तर खद्दरपोश होने चाहिये, अुन्हें नियमपूर्वक यज्ञार्थ सूत भी कातना चाहिये।

अिस तरह तालीमके लिअे प्रत्येक प्रान्तमें स्वयंसेवक शिक्षागृह होने चाहिये और अिसके लिअे हमारे देशके अनुकूल पाठ्य-पुस्तकें भी होनी चाहिये।

हिंसक सिपाहीमें जिस शक्तिकी आवश्यकता है, अुसमें से हिंसाके भागको छोड़कर शेष सब शक्ति अेक अहिंसक सिपाहीके लिअे भी आवश्यक है। परन्तु अहिंसक सिपाहीमें हिंसक सिपाहीकी अपेक्षा दूसरे बहुतेरे गुणोंकी भी आवश्यकता रहती है। पाठक अुन्हें जानते होंगे।

हिन्दी-नवजीवन, १०–१०–'२९

७३
स्वयंसेवक या सरदार?

स्वयंसेवकके बारेमें गतांकमें जो कुछ लिखा है, अुसे थोड़ा और दोहरानेकी आवश्यकता है। अपने हर जगहके भ्रमणमें मैंने देखा है कि बहुतेरे स्वयंसेवकोंको अिस बातका खयाल नहीं रहता कि आया वे स्वयंसेवक हैं या सरदार। अुदाहरणार्थ, अगर जलसोंमें किसीसे कुछ कहना है, तो वे हुक्मके तौर पर कहते हैं, प्रार्थना नहीं करते। जब मुझे मंच तक ले जाते हैं, तो रास्तेमें खड़े हुअे देहातियोंसे विनयपूर्वक और धीरेसे अलग हटनेको न कहकर अुलटे अुन्हें धकेलते या कठोर भाषा अथवा स्वरमें अुन्हें हट जानेका हुक्म छोड़ते हैं। स्टेशन पर जहां-जहां मैं अुतरता हूं, भीड़ तो होती ही है। स्वयंसेवक विनयपूर्वक मार्ग करवानेके बदले जोरोंसे चीखते हैं, अिससे लोग न तो समझते हैं, न सुनते हैं; अुलटे कोलाहलमें वृद्धि होनेसे कुप्रबंधकी मात्रा बढ़ती है। मेरे कष्टका तो कहना ही क्या है? यद्यपि अिन तमाम हुक्मोंकी मंशा तो मुझे कष्टसे बचाना ही है। जब सारा जुलूस प्लेटफार्मसे बाहर निकलता है, तब मुसाफिरोंका खयाल तक नहीं रखा जाता; लोग अुनके असबाबको कुचलते हुअे चलते हैं, अुसे पैरोंसे ठेलते जाते हैं। अगर कोअी मुसाफिर रास्तेमें बैठा हो तो अुसका भी विचार नहीं करते। मान लीजिये कि हम आम सड़कसे होकर कहीं जा रहे हैं, और कोअी देहाती बीचमें चल रहा है। स्वयंसेवक अुसे दुतकार कर हटा देना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। अैसे और भी अनेक दृष्टांत मैं दे सकता हूं। मुझे विश्वास है कि यह सब अविनय जानबूझ कर नहीं किया जाता होगा; बल्कि विवेक और तालीमके अभावके कारण ही यह सब होता होगा। हमारे वायुमण्डलमें अूंच-नीचके भाव भरे पड़े हैं। शहराती लोग देहातियोंको हलका मानते हैं। जब राजाओंकी सवारी

निकलती है, तब अुनके नौकर-चाकर वगैरा शान-ओ-शौकतसे चलते हैं; लोगोंको मनमानी गालियां तक दे देते हैं। गोरे साहबोंने अिसीका अनुकरण किया है। अैसी नकलबाजीके फनमें साहब बहादुर बड़े होशियार रहते हैं। अिस वायुमण्डलका प्रभाव हम पर अिच्छा न रहते हुअे भी पड़ा है। लेकिन अिस लोक-जागृतिके कालमें स्वयंसेवकोंको सच्चे सेवक बनना होगा। अुनकी सच्ची सेवा मूक सेवा होनी चाहिये; गरीबोंकी और असहायोंकी सेवा होनी चाहिये। प्रतिष्ठित नेताओंकी सेवाके लिअे तो सैकड़ों तैयार हो जाते हैं और अुन्हें अधिक तथा अनावश्यक सेवा द्वारा नाहक परेशान करते हैं, लेकिन गरीबोंकी सेवाके लिअे बहुत थोड़े निकलते हैं; और जो मिलते हैं अुनमें भी बहुतेरे तो यह मानते हैं कि गरीबोंकी सेवा करके वे अुन पर बड़ा अुपकार कर रहे हैं। सच तो यह है कि जो गरीबोंकी सेवा करता है, वह अपने ऋणका कुछ हिस्सा अदा करता है। भारतवर्षके गरीब भूखों मरते हैं, लाचार बन गये हैं, अिस सबका कारण हम मध्यम वर्गके लोग हैं। स्वयंसेवक भी अिसी वर्गके होते हैं। हमींने अुन गरीबोंके कंधों पर बैठकर अपना निर्वाह किया है और आज भी कर रहे हैं। जब गरीब वर्गको अपने अधिकारका और अपने बलका ज्ञान होगा, तब वे हमारे सरदार बन जायेंगे और हम लाचारीसे, मजबूरन, अुनके सेवक बनेंगे। अुस हालतमें हमें कोअी स्वयंसेवक नहीं कहेगा। अवश्य ही हम अुनके गुलाम या नौकर कहलायेंगे।

अिसलिअे किसी भी स्वयंसेवकको ख्वाब तकमें यह खयाल नहीं आना चाहिये कि अगर वह नम्रतासे, आदरपूर्वक या जीजानसे देहातियोंकी सेवा करता है, तो किसी पर कोअी अुपकार करता है। अैसी ही सेवामें अुसका और सारे भारतवर्षका भला है।

हिन्दी-नवजीवन, २४-१०-'२९

७४

अूंच-नीच

हम कहते हैं कि यह अूंच है, वह नीच। शास्त्र — वैज्ञानिक और आध्यात्मिक शास्त्र कहते हैं कि जैसे शारीरिक दृष्टिसे वैसे ही आत्मिक दृष्टिसे भी हम सब अेक ही हैं। शरीरका पृथक्करण करके वैज्ञानिक कहते हैं, हम सब पंच महाभूतके पुतले हैं, न योनिका भेद है, न जातिका, न लिंगका। चींटी-हाथी, ब्राह्मण-भंगी, स्त्री-पुरुष सबके शरीर मिट्टी वगैरा वस्तुओंके बने हैं। अुपनिषदादि हमें सिखाते हैं कि आत्मदृष्टिसे देखा जाय तो पता चलेगा कि सबमें अेक ही आत्मा व्याप्त है। अिसलिअे सूक्ष्मदर्शी आचार्य शंकर हमें बता गये हैं कि नामरूपादिका जो भेद हमें दिखाअी पड़ता है वह सब माया ही माया है। दूसरे अुसे अुपाधि कहते हैं और कोअी अुसे मोह भी कहते हैं। सब कोअी कबूल करते है कि नामरूपादिका यह समुदाय क्षणस्थायी है।

ये सब बातें जानते हुअे भी अूंच-नीचका जितना झगड़ा हिन्दू समाजमें है, अुतना किसी और समाजमें शायद ही देख पड़े। अिसका अनुभव करते हुअे अेक सज्जन लिखते हैं:

> "थोड़ा-बहुत पंजाबको छोड़कर भारतवर्षके सभी प्रान्तोंमें कच्चे-पक्के (सखरे-निखरे) भोजनका भेदभाव माना जाता है। लोगोंका अैसा खयाल है कि अपनेसे हलके वर्गके हाथका बना कच्चा (सखरा) भोजन नहीं करना चाहिये।
>
> "हम लोगोंके साथ, जो कि कच्चे-पक्केका भेदभाव नहीं रखते, जनसाधारण पूरा-पूरा सहयोग नहीं करते, हमको भ्रष्ट समझते हैं। अैसी स्थितिमें हम जितने लोगोंको खादीकी तरफ आकर्षित करना चाहते हैं, अुतने नहीं होते। यदि कोअी साबरमतीके अुद्योग-मन्दिरमें रहकर खादीका कार्य सीखना अथवा देखना चाहे, तो वह अिसलिअे संकोच करता है कि

वहां भोजनमें कच्चे-पक्केका और जाति-पांतिका कोअी भेदभाव नहीं रखा जाता।

"खादी-प्रचार और अुसके द्वारा राष्ट्रनिर्माणके लिअे क्या आप यह अुचित नहीं समझते हैं कि अिस कच्चे-पक्केके झगड़ेके विरुद्ध आन्दोलन किया जाय?

"कुछ सुधारक लोगोंका अैसा भी मत है कि खान-पानके विषयमें किसी भी प्रकारका आन्दोलन करनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु अिस प्रकारका भेदभाव सेवाके मार्गमें बाधा डालता हो तो अुसके विरुद्ध आन्दोलन क्यों न किया जाय?"

अिस पत्रमें दो प्रश्न अुपस्थित किये गये हैं। क्या खादीका प्रचारक लोकमतके वश होकर कच्चे-पक्केका भेद रखे? अूंच-नीचको माने? मेरा अपना यह निश्चित मत है कि खादीके कारण ही क्यों न हो, मगर कोअी खादी-प्रेमी अपने धर्मको न छोड़े, अयोग्य आचरण न करे, अच्छे हेतुसे भी बुराअीका आश्रय कभी न ले। मलिन साधनसे शुद्ध साध्यकी साधना कभी नहीं हो सकती। खादीमें जिन शक्तियोंकी कल्पना हम करते हैं, अुन सबका सर्वथा नाश हो जाय यदि हम खादी-प्रचारके लिअे अशुद्ध साधनका आश्रय लेकर काम करें। अूंच-नीचके भेदका नाश होना तो खादीका अेक महान फल है।

अब दूसरा प्रश्न यह है कि कच्चे-पक्केके अभेदका आन्दोलन क्यों न किया जाय? खादी-प्रचारकके आन्दोलनका विषय खादी ही हो सकती है। अपने जीवनमें से कच्चे-पक्केके भेदको हटा देने पर अुसका अिस बारेमें और कोअी कर्तव्य नहीं रह जाता है। यह भी समझना चाहिये कि आचारसे बढ़कर और कोअी प्रचार हो ही नहीं सकता। जो काम मनुष्य दूसरोंसे कराना चाहता है, अुसे वह स्वयं करे। अुसका यह सबसे बढ़कर असरकारक प्रचार होगा।

हिन्दी-नवजीवन, ३१-१०-'२९

७५

राष्ट्रभाषा

जो मानपत्र मुझे संयुक्तप्रान्तमें मिल रहे हैं, अुनसे मुझे बहुत कुछ जाननेको मिलता है। अिस लेखमें मैं अुन पर भाषाकी दृष्टिसे ही विचार करना चाहता हूं। मेरे पास तीन नमूने हैं। अुनमें से मैं नीचे लिखे फिकरे चुनता हूं:

१. "हमारे मदारिसमें कोअी अिम्तयाज छूत-अछूतका नहीं है। और हर कौमके लड़के बिला तफरीक तालीम पाते हैं। अिस बोर्डका हमेशा यह तर्जेअमल रहा है कि अगर अछूतोंके दाखलेके मुताल्लिक कोअी सदा अुठती है तो अुसका मजबूतीसे मुकाबिला किया जाता है।

"जिलेके बाशिंदगान देहात आम तौर पर घर रूअी कतवाकर लोकल जुलाहों और कोलियोंसे खद्दर बुनवाकर अिस्तेमाल करते हैं, लेकिन यह मानना होगा कि तालीमकी कमीके बाअिस वह अिसकी पोलिटिकल अहमियतको महसूस नहीं करते और हममें भी अैसे लोग मौजूद हैं, जो अिसके सियासी पहलूको नजरअन्दाज करते हैं। अलावा अुस खद्दरके जो लोग अपने सूतसे तैयार कराते हैं, बिलअमूम जिलेके कोली और जुलाहे जो फरोख्तके लिअे कपड़ा तैयार करते हैं अुसमें या तो दोनों सूत देशी मिलोंके अिस्तेमाल करते हैं या तानेमें मिलका और बानेमें चरखेका सूत लगाते हैं; कहीं-कहीं ख्याल बख्याल निफासत विलायती सूत भी अिस्तेमाल होता है। लेकिन अिसका निजाम कायम किये जाने पर अुन्हें शुद्ध खद्दर तैयार करनेकी तरगीब कामियाबीके साथ दी जा सकती है और बलिहाज पैदावार खद्दर यह जिला यू० पी० के मर्कजी मुकामातमें से हो सकता है।"

२. "हिन्दू-मुस्लिम अेकताको जो श्रीमानने स्वराज्य-सिद्धिका मुख्य अुपाय निर्धारित किया है, अुसमें कौन संदेह कर सकता है! यह कहना अनुचित न होगा कि खादी-परिधान और हिन्दू-मुस्लिम अेकता, बस, अिन दो आज्ञाओंको ही यदि हम भले प्रकार स्वीकार कर लें तो स्वशासन प्राप्त करनेमें और किसी तीसरे साधनकी आवश्यकता ही न रह जाय। अंततोगत्वा आज न सही तो कल विवश होकर हमको अैक्य करना ही होगा। क्या ही अच्छा हो, अगर जिस प्रकार हम जय-जयके नारे लगानेमें जोश दिखलाते हैं अुसका शतांश भी कार्य करनेमें तत्परता धारण करें।"

३. "अेक दूसरा महान् कर्तव्य आपने हमारे आगे खादीके विषयमें रखा है। हम आपको विश्वास दिलाना चाहते हैं कि खादीके सामाजिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक पहलूने हमारे हृदयों पर गहरी अपील की है और हम अपने गरीब भाअी-बहनोंके भूखसे तड़पते हुअे पेटोंमें रोटी पहुंचानेके लिअे खादीके विषयमें कुछ न कुछ यत्न कर रहे हैं। अभी तक लगभग २० फी सदी अध्यापक और १० फी सदी विद्यार्थी कॉलेजमें खादी पहनकर आते हैं। यह संतोषजनक तो किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता, पर आशा है कि आपके आशीर्वादसे खादीके विषयमें अधिक और अधिक अुन्नति होगी।"

ये तीनों नमूने हिन्दी, हिन्दुस्तानी यानी राष्ट्रभाषाके हैं। अेक केवल फारसी-अरबी शब्दोंसे भरा पड़ा है, जिसे सामान्य हिन्दू नहीं समझ सकेगा। दूसरा केवल संस्कृत शब्दोंसे भरा हुआ है, जिसे सामान्य मुसलमान कभी नहीं समझ सकता। तीसरा अैसा है, जिसे सामान्य हिन्दू या मुसलमान, दोनों समझ सकते हैं। अिसमें जान-बूझकर संस्कृत या अरबी-फारसी शब्दोंका त्याग या चुनाव नहीं पाया जाता। यदि हम हिन्दीको राष्ट्रभाषा मनवाना चाहते हैं, यदि हिन्दू-मुसलमान, दोनों अैक्य सिद्ध करना चाहते हैं, तो हम संस्कृत या अरबी-फारसी शब्दोंका अिरादतन बहिष्कार नहीं कर सकते। अर्थात्

भाषा लिखते या बोलते समय हमारे मनमें अेक-दूसरेका या अेक-दूसरेकी बोलीका द्वेष नहीं होना चाहिये, बल्कि अेक-दूसरेके लिअे प्रेम अथवा मुहब्बत होनी चाहिये। मुसलमान जब किसी हिन्दूको फारसी-अरबी शब्दोंका अिस्तेमाल करते देखता है तो अुसे खुशी हासिल होती है। अिसी तरह अुस मुसलमानके प्रति हिन्दूका आदर बढ़ता है, जो मौकेसे संस्कृत शब्दोंका भी अुचित अुपयोग कर लेता है।

तीनों भाषाओंके अुचित शब्दोंको अपना लेनेसे हिन्दीका गौरव और विस्तार बढ़ता है, भाषाकी मिठासमें वृद्धि होती है। बात यह है कि जब हममें भाषा-विशेषके प्रति द्वेषभाव नहीं रहता, तब हम अुस भाषाकी मददसे अपनी भाषाको संवारनेमें, अुसे बढ़ानेमें संकोच नहीं करते।

श्री रामनरेशजी त्रिपाठीने अपनी 'ग्राम्यगीत' नामक पुस्तककी भूमिकामें लिखा है :

> "आजकल हिन्दीमें जो ग्रंथ या लेख निकल रहे हैं, अुनमें जितने शब्द प्रयुक्त होते हैं, मेरी गिनतीमें वे तीन सौसे अधिक नहीं आये। अितने थोड़े शब्दोंके अन्दर हिन्दीकी विद्वत्ता घेर कर रखी गअी है। हम अितने ही शब्दोंमें सोचते हैं, लेख या पुस्तक लिखते हैं और व्याख्यान देते हैं। हमारे घरोंमें, खेतोंमें, कारखानोंमें प्रतिदिन काममें आनेवाले कितने ही पदार्थोंके नाम हिन्दीमें नहीं हैं; कितने ही भावोंके लिअे अुपयुक्त शब्द नहीं हैं।"

यदि यह बात सही है, तो शोचनीय और लज्जास्पद है; विचारकी मुफलिसीका चिह्न है। कहा जाता है कि शेक्सपियरने अपनी पुस्तकोंमें २०,००० शब्दोंका प्रयोग किया है, और मिल्टनने १०,००० का। कहां अिन लोगोंका भाषा-भण्डार और कहां हमारी निर्धनता! अिस दशाके रहते हुअे भी यदि हम राष्ट्रभाषाका मुख अुज्ज्वल करना चाहते हैं, तो और नहीं तो भाषाके खातिर ही हमें अपना ज्ञान बढ़ाना होगा। किसी भाषाके शब्दोंको अपना लेनेमें शर्मकी कोअी बात नहीं है। शर्म तो तब है, जब हम अपनी भाषाके प्रचलित शब्दोंको न जाननेके

कारण दूसरी भाषाके शब्दोंका प्रयोग करें। जैसे, घर शब्दको भुलाकर 'हाअुस' कहें, माताको 'मदर' कहें, पिताको 'फादर' कहें, पतिको 'हसबण्ड' और पत्नीको 'वाअिफ' कहें।

हिन्दी-नवजीवन, ७–११–'२९

७६

आदर्श मानपत्र

पिछले अंकमें मैंने मानपत्रोंकी भाषाके कुछ नमूने दिये थे। हरअेक सभामें मुझे तीन-चार या अिससे भी अधिक मानपत्र मिलते हैं। अुनमें से बहुतेरोंमें मुझे कोअी कला नहीं दीख पड़ती। अधिकतर मानपत्र तो केवल मेरी स्तुतिके विशेषणोंसे ही भरे रहते हैं। अिसमें, मेरी दृष्टिसे तो, विवेक और विचार दोनोंका अभाव है। अेक मनुष्यके सामने अुसके गुणोंका कथन करके हम न तो अुसका सम्मान करते हैं और न अुसे खुश ही रख सकते हैं। जिन विशेषणोंका प्रयोग मेरे लिअे किया जाता है, अुन सबको अगर मैं स्वीकार कर लूं, तो मेरा बहुतेरा काम रुक जाय। अीश्वरने मुझे विनोदशक्ति दी है, अुसके सहारे मैं अैसे सब विशेषणोंको विनोदमें टाल देता हूं; और चूंकि मैं गीताजीकी शिक्षा पर अमल करनेका प्रयत्न करता हूं, स्तुति और निन्दाका मेरी जानमें मुझ पर कोअी असर नहीं पड़ सकता। परन्तु अिस लेखमें मैं यह विचार करने नहीं बैठा हूं कि मानपत्रका मुझ पर क्या असर हो सकता है। यहां तो मैं पाठकोंको यही बताना चाहता हूं कि आदर्श मानपत्र कैसा होना चाहिये, जिससे भविष्यमें मानपत्र देनेवालोंको भी मानपत्र बनानेमें थोड़ी सहायता मिल सके। निम्नलिखित नियमोंका पालन करनेसे आदर्श मानपत्र बन सकता है:

१. मानपत्रकी भाषा अैसी होनी चाहिये कि अुसे हिन्दू-मुसलमान सब कोअी समझ सकें।

२. मानपत्रके लिअे चौखटकी कोअी आवश्यकता न समझी जाय।

३. जहां तक हो सके मानपत्र हाथके बने कागज पर लिखा जाना चाहिये। प्रयत्न करनेसे अैसे कागज मिल सकते हैं। भले ही हाथका बना हुआ कागज यंत्रके बने कागजका मुकाबिला न कर सके, फिर भी हमें अिस हाथके हुनरको मिटाना नहीं चाहिये। अैसे हुनरकी हस्ती धनिकों और विचारशील लोगोंके देशप्रेम पर निर्भर है।

४. मानपत्र हस्तलिखित ही होना चाहिये। अगर यह रिवाज चल जाय तो लेखन-कलाकी खूब अुन्नति हो सकती है। अैसा मानपत्र हर किसीके हाथसे न लिखा जाना चाहिये। सुंदर अक्षर लिखनेकी कलामें निष्णात किसी कातिबके हाथों ही लिखाया जाना चाहिये। जनतामें प्रचारके लिअे मानपत्र छपवानेकी आवश्यकता मानी जाय, यह दूसरी बात है। मेरे विचारमें तो अिस तरह मानपत्र बांटनेकी कोअी आवश्यकता नहीं है। मानपत्र अतिथिके आनेसे पहले ही सभाके समक्ष पढ़ दिया जाना चाहिये।

५. आजकल यह रिवाज-सा हो गया है कि संस्था या समाजके नामसे जो मानपत्र दिया जाता है, वह किसी अेक ही आदमीका लिखा रहता है; अुसके बारेमें समाज या संस्था किसीकी भी संमति नहीं ली जाती। हमारे लोग अैसी बातोंमें अुदासीन रहते हैं, अिसलिअे जो कुछ कहना या करना होता है, अेक आदमी ही सबके लिअे कह या कर लेता है। लेकिन सभ्य तरीका तो यह है कि जिनके नामसे मानपत्र दिया जाय, अुन सब लोगोंको वह पहिले बता दिया जाय। तभी अुस मानपत्रका कुछ मूल्य हो सकता है। मसलन्, जब विद्यार्थियोंके नामसे कोअी मानपत्र दिया जाय तो विद्यार्थियोंकी अेक समिति बननी चाहिये और फिर तैयार मानपत्र सब विद्यार्थियोंकी आम सभामें पेश किया जाना चाहिये।

६. मानपत्रमें स्तुत्यात्मक शब्द कमसे कम रहें। हां, जिसको हम मानपत्र देना चाहते हैं, अुसके विचारोंके अनुरूप क्या हुआ है और क्या करनेका निश्चय किया गया है, अिसका मानपत्रमें अुल्लेख होना चाहिये। साथ ही मानपत्र देनेवाली संस्था और समाजका अुसमें परिचय भी दिया जाना चाहिये।

यदि अुपरोक्त शर्तोंका पालन किया जायगा तो जो मानपत्र आज नीरस और निरर्थक-से पाये जाते हैं, वे सब सरस और सार्थक बन जायंगे।

हिन्दी-नवजीवन, १४–११–'२९

७७

कुछ प्रश्न

अेक पाठक लिखते हैं:

"सेवामें सविनय निवेदन है कि मैं कांग्रेसका तुच्छ सेवक तथा भक्त हूं। आपके असहयोग आन्दोलनके सम्बन्धमें ९ मासका कठिन कारावासका दण्ड भी भुगत चुका हूं। आशा है, कृपया निम्नलिखित प्रश्नोंका अुत्तर देकर आप मेरा समाधान कर देंगे।"

अुनका पहला प्रश्न यह है:

१. "क्या आपको मालूम है कि . . . कांग्रेसमें प्रधान होते हुअे और खद्दर पहनते हुअे भी साअिमन कमीशनसे सहयोग कर चुके हैं, और मेमोरेंडम भी भेज चुके हैं? क्या अैसे सज्जनोंके कांग्रेसमें रहते हुअे आपको अब भी आशा है कि कांग्रेस द्वारा देशका अुद्धार हो सकेगा?"

देशका अुद्धार किसी अेक मनुष्य पर निर्भर नहीं है। कांग्रेसमें भले-बुरे सबको आनेका अधिकार है। कांग्रेसके सब आदेशोंका पालन

करनेवालोंकी संख्या अधिक रहेगी तो अवश्य देशका अुद्धार होगा। अिसलिअे दूसरे क्या करते हैं, अिस बातका हम खयाल न करें; मैं क्या करता हूं, यही प्रश्न सब कोअी अपने सामने रखें।

दूसरा प्रश्न यों है :

२. "क्या विद्यार्थियोंसे पाठशालाओं तथा कॉलेजोंका बहिष्कार करवाकर आपने देशको लाभ पहुंचाया है?"

मेरा दृढ़ निश्चय है कि पाठशाला और कॉलेजका त्याग करनेवालोंने अपना और अपने देशका भला ही किया है। अिसके कारण कॉलेज अित्यादिकी प्रतिष्ठा कम हुअी है। और जिन थोड़े लड़कोंने बहिष्कार किया था अुनमें से भी मुल्कको अच्छे स्वयंसेवक मिले हैं। यह बहिष्कारका ही प्रताप है कि आज, थोड़ी ही क्यों न हो, मगर कुछ राष्ट्रीय शालाअें देशमें मौजूद हैं, जो स्वराज्य-यज्ञमें काफी हाथ बंटा रही हैं। अकेले गुजरात विद्यापीठने अिस यज्ञमें कितना हाथ बंटाया है, सो तो मैं 'हिन्दी-नवजीवन' में पहले बतला चुका हूं। यदि हम दूसरे राष्ट्रीय विद्यापीठोंके कार्यकी भी अिसी तरह गणना करें, तो सरकारी कॉलेज आदिके बहिष्कारका महत्त्व हम कुछ हद तक समझ सकेंगे। मुझे आज तक अैसे बहुत थोड़े लोग मिले हैं, जो अिस बहिष्कारके मूलको ही दूषित बताते हों। अधिकांश लोगोंकी यह धारणा है कि देश न तो सन् १९२०-२१ में अिस तरहके त्यागके लिअे तैयार था, न आज ही है। अिसका मतलब तो यह होता है कि देश न तो अुन दिनों स्वराज्यके लिअे तैयार था, न आज तैयार है। यदि यह बात सही है तो हम बहिष्कारकी निन्दा छोड़कर अुसकी तैयारीमें लग जायं।

अपने तीसरे प्रश्नमें वह पूछते हैं :

३. "प्रत्येक आदमीके लिअे चरखा कातना कहां तक लाभदायक हो सकता है और अिससे अपना जीवन बितानेके लिअे कितनी आय हो सकती है? जो समय अिसमें लगाया जाता है, क्या अुतने समयमें अिससे अच्छा काम करके आदमी अपनी आर्थिक दशा सुधार नहीं सकता?"

यह प्रश्न कओी बार पूछा गया है और पुनः पुनः अिसका अुत्तर दिया गया है। और वह यह है कि जो लोग आर्थिक लाभके लिअे चरखा चलाते हैं, अुन्हें यदि कोओी अधिक लाभदायी धंधा मिले तो बिलाशक वे अुसे कर सकते हैं। चरखा-प्रचारके प्रचारकोंका मूल आशय तो यह रहा है कि करोड़ोंके लिअे चरखेको छोड़कर और कोओी धंधा नहीं है। जो लोग यज्ञ समझकर चरखा चलाते हैं, अुनके लिअे हानि-लाभका कोओी प्रश्न ही नहीं अुठता। याज्ञिक अपने लाभका कभी खयाल नहीं करता। वह तो लोकहितमें ही अपना हित समझता है।

चौथा प्रश्न यह है :

> ४. "राजनैतिक दृष्टिसे चरखा कहां तक सहायता दे सकता है? प्राचीन कालमें विधवायें और मामूली घरानेकी औरतें चरखा काता करती थीं। आज आप आदमियोंको चरखा कातनेके लिअे क्यों बाध्य करते हैं?"

मेरे मतमें राजनैतिक दृष्टिसे चरखेकी सहायता महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अिस दृष्टिसे विदेशी वस्त्रका बहिष्कार अत्यंत आवश्यक है और विदेशी वस्त्रका बहिष्कार खादीसे ही सफल हो सकता है। स्त्री और पुरुष, विधवा और सधवाके बीच अैसे कामोंमें कोओी भेद नहीं हो सकता। चरखा-यज्ञ सार्वजनिक है।

पांचवा प्रश्न अिस प्रकार है :

> ५. "क्या आपने तथा अन्य नेताओंने जेलसे बाहर आये हुअे कार्यकर्ताओंकी भी कभी कोओी सहायता की है? और अगर नहीं तो अुन्हें अपना जीवन व्यतीत करनेकी क्या सलाह दी है? अुनको अब क्या करना चाहिये? क्या अेक सेनापतिके लिअे यही अुचित है कि वह अपने जेल जाते हुअे सिपाहीसे कहे कि जेल जानेवालोंको कांग्रेसके नेताओंसे कोओी भी आशा न करनी चाहिये और अुनको तबाही और बेबसीकी दशामें छोड़ देना चाहिये? जैसे कि आजकलके छूटकर आये हुअे कांग्रेसके स्वयंसेवक देखे जाते हैं?"

जेलसे छूटकर आये हुअे अैसे अेक भी कार्यकर्ताको मैं नहीं जानता जिसे सहायता पानेके योग्य होते हुअे भी सहायता न मिली हो। अैसे कार्यकर्ताओंको मैं जानता हूं, जिन्हें बहुत मदद मिली है। कुछ अैसे भी कार्यकर्ता मेरी नजरमें हैं, जो मनचाही मदद मांगते हैं और न मिलने पर रूठते हैं।

छठा प्रश्न यों है :

६. "कांग्रेसके नेता लोग जेलमें खास रिआयतके मुस्तहिक होते हैं, जब कि वालेंटियर लोग मामूली कैदियोंकी तरह रखे जाते हैं। अिसका अुन्हें — नेताओंको — कोअी अधिकार है? और अगर वे लोग अैसा करते हों तो क्या रिआयाको अुन पर श्रद्धा रखनी चाहिये?"

मेरे मन तो सत्याग्रही कैदीको अपने लिअे किसी भी तरहकी विशेष रिआयत नहीं मांगनी चाहिये — वैसी रिआयतकी आशा तक न रखनी चाहिये।

सातवां प्रश्न निम्नलिखित है :

७. "तिलक-स्वराज्य फंडके लिअे अेक करोड़ रुपया आपने जमा किया। क्या आप कृपया बतला सकते हैं कि देश और जातिकी दरिद्रताके नाम पर अेकत्रित किया हुआ वह रुपया किस काममें आ रहा है, और सर्वसाधारण जनताको अुससे क्या लाभ है?"

अिन पैसोंका हिसाब छप चुका है। कांग्रेसके कार्यालयसे आज भी अुसकी प्रतियां मिल सकती हैं। अिस द्रव्यसे नौ वर्षों तक कांग्रेस अपना काम जोरोंसे चला सकी है।

आठवां प्रश्न यों है :

८. "क्या सन् १९२१ अीस्वीके बाद वाअिसरॉय साहब बहादुरकी गोलमेज कान्फरेन्समें बैठना पाप था? अगर हां, तो क्या आप बता सकते हैं कि अुसी गोलमेज कान्फरेन्समें अब सम्मिलित होना पुण्य कैसे है? क्या आपका स्वराज्य भारतवर्षमें

अिसी गोलमेज कान्फरेन्स द्वारा अुतरेगा? क्या स्वराज्यसे आपका मतलब अिसीसे था? अगर हां, तो आपने अिस बातकी घोषणा १९२१ में ही क्यों नहीं कर दी? और अगर नहीं तो सरकार बहादुरके साथ असहयोग करके, अेक प्रकारसे राजा और प्रजामें घोर युद्ध कराके, सैकड़ों घर तबाह करनेका क्या अभिप्राय था और अिस प्रकारसे डोमीनियन स्टेटस मिलनेमें कांग्रेसके नेताओंका क्या अेहसान है?"

यदि वाअिसरॉय साहब बहादुर कांग्रेसकी ओरसे दुबारा पेश की गअी शर्तें कबूल कर लेते, तो अुसमें (गोलमेज परिषद्में) शामिल होनेमें कोअी दोष न था। परन्तु कांग्रेसकी शर्तें स्वीकार नहीं की गअीं। आज भी शर्तोंकी स्वीकृतिके अभावमें मैं गोलमेज परिषद्में सम्मिलित होना दूषित समझता हूं।

कान्फरेन्ससे या किसी बाहरी साधनसे स्वराज्य नहीं मिल सकता; हां, अुचित शर्तों पर बुलाअी गअी कान्फरेन्स लोकशक्तिका अेक नाप जरूर बन सकती है। अिसी कारण मैं कह चुका हूं कि जनता कान्फरेन्सका विचार तक न करे। हमारा काम तो बस लोकशक्तिको संगठित करना है; दूसरे शब्दोंमें, अिसी कारण हमें विदेशी वस्त्र-बहिष्कार वगैरा रचनात्मक कामोंमें सफलता पाना है।

अुनका अन्तिम प्रश्न है:

९. "आपका यह भी दावा है कि कांग्रेस ही अेक अैसी संस्था है, जो देशके दुःखोंको सत्य रूपसे प्रकट कर सकती है और अुनकी रोकथाम भी कर सकती है। क्या आपको अपने कांग्रेसके नेताओं पर — अुनके सब काम देखकर और सुनकर — अब भी विश्वास है? अगर हां, तो क्या आप कह सकते हैं कि सर्वसाधारणको भी अुन पर विश्वास है? अगर नहीं, तो क्या आप बतला सकते हैं कि अिस संस्थाके सुधारके लिअे आपने कौनसा मार्ग सोचा है?"

कांग्रेसमें बहुतेरे दोष हैं। आजकल कांग्रेसमें कअी स्वार्थी लोग घुस गये हैं, तथापि और और संस्थाओंकी अपेक्षा कांग्रेसमें ज्यादा

गुण हैं। अुसमें सुधारकी काफी गुंजाअिश अवश्य है। अगर सुधार न होगा तो कांग्रेस भी नाशसे नहीं बच सकेगी।

हिन्दी-नवजीवन, २१-११-'२९

७८

देशी राज्य

अेक सज्जनने मध्यभारतके कअी व्यभिचारी राजाओंका अुल्लेख करके पूछा है कि मैं अिन बातोंको जानते हुअे भी चुप क्यों हूं? कअी राजा बूढ़े हैं। कअियोंके अनेक रानियां हैं, लेकिन अुनसे संतुष्ट न होकर वे कअी औरतोंको अुपरानियां (पासवान या रखेल) बनाये रहते हैं। क्या मैं अैसे राजाओंसे भी कुछ आशा रखता हूं?

मैं तो मनुष्यमात्रसे पवित्र बननेकी आशा रखता हूं, क्योंकि अपनेसे भी मैं यही आशा करता हूं। अिस जगत्में कोअी पूर्णतया शुद्ध नहीं है। प्रयत्नसे सब शुद्ध बन सकते हैं। कोअी कोअी राजा व्यभिचारी हैं, क्योंकि प्रजाजन भी व्यभिचारसे मुक्त नहीं हैं। अिसलिअे हम राजाओं पर क्रोध न करें। अथवा राज्य-संस्थाओंका विचार करते समय, व्यक्तिगत राजाओंके दोषोंको अुसके साथ मिला न दें। यह तो अिस बातका तात्त्विक निर्णय हुआ। परन्तु अिससे कोअी यह न समझ बैठे कि मेरे मतानुसार हमारी राज्य-संस्थाओंके लिअे या राजाओंके व्यभिचार आदिके लिअे किसी भी तरहका कोअी प्रयत्न ही न किया जाय। सामाजिक दोषोंको मिटानेका जो भी प्रयत्न भारतवर्षमें होता है, अुसका प्रभाव राजा लोगों पर भी कुछ न कुछ तो अवश्य ही पड़ता है। अिस प्रभावका परिमाण निकालनेका हमारे पास कोअी यंत्र नहीं है। सच बात तो यह है कि सामाजिक शुद्धिके हमारे प्रयत्न बहुत शिथिल हैं। अिसलिअे सामाजिक शुद्धिकी गति भी यत्किंचित् है। व्यभिचारी राजाके लिअे विशेष प्रयत्न हो सकता है, और वह है अैसे राज्यसे अुस राज्यकी प्रजाका असहयोग। दुःख

है कि रिआयामें अिस प्रकारकी जागृति और शक्तिका प्रायः अभाव है। यही नहीं बल्कि राजाओंके अधिकारीगण — अमले — स्वार्थके वश होकर राजाओंकी अुनके कुकर्मोंमें पूरी पूरी सहायता करते हैं।

अब रही देशी राज्य-संस्थाओंकी बात। सो जैसे चक्रवर्ती, वैसे अुनके माण्डलिक। हमारे देशकी चक्रवर्ती संस्था आसुरी है, अिसीलिअे सन् १९२० से असहयोगके प्रचण्ड शस्त्रका अुपयोग किया जा रहा है। चक्रवर्ती संस्था जब दैवी बनेगी, तब राजा भी अपने-आप शुद्ध हो जायेंगे। यह सनातन नियम है — पुरातन रूढ़ि है। आज देशी राज्योंके विरोधमें जितना आन्दोलन हो रहा है, अुससे चक्रवर्ती शासन दृढ़ बनता जाता है। क्योंकि आन्दोलनका अेक अर्थ यह भी है कि देशी राज्योंको दबानेमें चक्रवर्ती संस्थाकी सहायता मिले।

आशा है, अिस खुलासेको पढ़कर देशी राज्योंके बारेमें मेरी चुप्पीको समझना मुश्किल नहीं रह जायगा। मेरा यह मौन असहयोगका अुपांग है।

हिन्दी-नवजीवन, २८–११–'२९

७९

हमारा भ्रम

तुलसीदासजीने कहा है :

रजत सीप महं भास जिमि, यथा भानु कर वारि।
जदपि मृषा तिहुं काल सोअी, भ्रम न सकै कोअू टारि।।

अिसमें जो गूढ़ सत्य भरा है, अुसका अनुभव मुझे तो नित्य-प्रति होता रहता है। अच्छी या बुरी, जो बात हमारे खयालमें या हृदयमें ठंस गअी है, वह तब तक नहीं मिटती, जब तक तजुर्बा नहीं होता।

ठीक अिसी तरह अस्पृश्यता-रूपी भ्रम हिन्दू जनताके हृदयमें घर कर गया है। बुद्धिके सहारे हम देखते हैं कि कोअी अस्पृश्य नहीं

है। जनताके पास अस्पृश्यकी कोओी संज्ञा या परिभाषा नहीं है। यदि अस्पृश्य अपनी मानी गओी काल्पनिक अस्पृश्यताको छिपावे, तो अुसे पहचाननेवाले चंद आदमियोंको छोड़कर कोओी अिस बातका कयास भी नहीं कर सकेगा कि वह अस्पृश्य है। अिस तरह कओी 'अस्पृश्य' भाओी हर जगह बगैर किसी रोक-टोकके मंदिरोंमें और दूसरे स्थलोंमें चले जाते हैं।

यदि अस्पृश्यता कोओी धर्म होता, तो अेक प्रान्तका अस्पृश्य हरअेक प्रान्तमें अस्पृश्य माना जाता। किन्तु वस्तुत: आसामके अस्पृश्य सिंधमें अस्पृश्य नहीं माने जाते। त्रावणकोरके अस्पृश्य और कहीं अस्पृश्य नहीं हैं। वहांकी अस्पृश्यता, दूरता अित्यादिकी तो और जगहोंमें गंध तक नहीं है।

हिन्दू जातिमें अस्पृश्यताका यह भ्रम अितना घोर — अितना भयानक हो अुठा है! श्री जमनालालजी अिसे मिटानेका खूब प्रयत्न कर रहे हैं। अुन्हें मंदिरोंको खुलवानेकी अपनी प्रवृत्तिमें काफी सफलता मिलती जाती है। जबलपुरमें अेक साथ आठ मंदिरोंका खुलना, अुसमें प्रतिष्ठित लोगोंका शामिल होना अित्यादि आशाजनक बातें हैं। अिस भ्रमको मिटानेका राजमार्ग तो यह है कि जिनका भ्रम दूर हो चुका है वे अपने कार्योंसे भ्रममें डूबे हुओंको बता दें कि अस्पृश्यता नामका कोओी धर्म है ही नहीं।

हिन्दी-नवजीवन, ५-१२-'२९

८०

धर्मक्षेत्रमें अधर्म

अेक काशीनिवासी लिखते हैं :

"काशी परंपरासे सनातनियोंका धर्मप्राण स्थान है। सालमें लाखों यात्री श्री विश्वनाथ तथा माता गंगाकी श्रद्धा-भक्तिसे आकर पूजा-अर्चा करते हैं। यह तीनों लोकोंसे न्यारी शिवपुरी कहलाती है। यहां संस्कृत विद्यापीठ तथा हिन्दुओंका विश्व-विद्यालय है, जिसके जन्मदाता हमारे प्रान्तके धर्मप्राण पं० मदनमोहन मालवीयजी हैं। अैसे काशी-क्षेत्रकी क्या दशा है, अिसीका खुलासा आपके समक्ष रखनेकी अिच्छासे प्रेरित होकर लिख रहा हूं।

"यहां पर वैष्णवों तथा शैव मतावलंबियोंका पक्का पुराना अड्डा है, जो कि सनातन धर्मकी रूढ़ि पर स्थित है। यहां अिन दोनों मतोंके मंदिर अितने अधिक हैं कि कदाचित् ही और कहीं हों। यहां पर बसनेवाले अधिकतर अिन्हीं दोनों मतोंके अनुयायी हैं। यहां पर प्राणत्याग करनेवाले, सीधे बिना किसी प्रकारकी यातना पाये ही, मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं; यह परंपरागत विश्वास बराबर चालू है, अिसीलिअे भारतवर्षके राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार चतुर्थ अवस्थामें यहीं आकर बसते हैं तथा प्राण त्यागते हैं। अिस शहरमें केवल रेशमी कलाबत्तूके कामकी साड़ी, दुपट्टे, हाथियोंके झूल तथा अनेक प्रकारके सामान और साथ ही चांदीकी कुर्सी, अंबारी, तश्तरी आदि तैयार होते हैं, जो कि भारतवर्षकी जितनी रियासतें हैं अुन सबमें चौगुने दामों पर अभी तक बिका करते हैं। अिसके कारबारी यहांके अिने-गिने थोड़ेसे पूंजीपति हैं। अिसके अतिरिक्त यहांके पीतलके बर्तन और लकड़ीके खिलौने भी बाहर जाते हैं।

अिन कामोंमें थोड़ेसे हिन्दू तथा अधिकतर मुसलमान जुलाहे हैं। बाकी आबादीके लोग साधारणतः नौकरी, रोजगार, खुर्दाफरोशीमें गुजर करते हैं। बहुतेरे बैठकर आसपासकी जमीनोंके जमींदार तथा मकानोंका किराया खानेवाले हैं। पर अिन सबसे बड़ा अेक दल है, जो नौसरबाजी, दलाली, मुकदमेबाजी, जुवा, चोरी, शराब-गांजा-भांगकी ठेकेदारी, कारिंदगिरी करता है तथा यात्रीको साथमें लेकर दर्शन कराकर पैसा ठगता है और मौका मिल जाने पर जानसे मार डालनेकी मनमें धारणा रखता है।

"काशीमें श्री गंगाजीकी अेक ओरसे दूसरी ओर तक बराबर चंद्राकार घाटोंकी कतार तथा मंदिर हैं। अिन घाटों पर प्रायः करके सुबहके वक्त स्नानार्थियोंकी खासी भीड़ बारहों महीने रहती है, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों होते हैं।

"समस्त भारतवर्षमें जितनी विधवायें अपने संबंधियों द्वारा व्यभिचारिणी हो जाती हैं या अन्योंसे भी, अुन सभीके छोड़नेका स्थान काशी समस्त सनातनियोंने निर्धारित कर रखा है। और यहां सालमें हजारों अैसी स्त्रियां, खासकर पर्वोमें, छोड़ी हुअी मिला करती हैं, जिनके आश्रयदाता मुसलमान भाअी थे। पर अब श्रीमान् बी० अेन० मेहता, भूतपूर्व कलेक्टरके अुद्योगसे अेक अनाथालय अैसी स्त्रियोंके लिअे स्थापित है तथा आर्यसमाजने भी अपनी तरफसे अेक अनाथालय स्थापित कर रखा है। आर्यसमाज अनाथालयके मंत्रीजीने हालमें अेक लेख 'आज' में छपाकर अुन स्त्रियोंके चालचलनके सुधारका अुपाय भी पूछा था। क्योंकि अुन्होंने लिखा था कि जबसे यह अनाथालय स्थापित है, तबसे जितनी स्त्रियां अिसमें प्रविष्ट हुअीं, सभी व्यभिचारिणी होकर अपने कुटुंबियों द्वारा निकाली हुअी थीं, जो कि यहां प्रविष्ट होनेके साथ ही विवाहकी अिच्छा प्रकट करने लगती हैं; विलंब होनेसे अपनी आदतका परिचय यहां भी देती हैं तथा अिधर अेक भी मनुष्य अिन्हें रखने पर

अुद्यत नहीं होता। अैसी स्त्रियां पंजाब भेज दी जाती हैं। वहींके लोग अिन्हें रख लेते हैं, पर जिन लोगोंने अैसी स्त्रियां रखी हैं, वे आंसू गिराते हैं और यही कहते हैं कि भगवान अिनसे बचावे। कारण अुनकी आदत ज्योंकी त्यों बनी रहती है और मौका पाकर अपने पतिको जहर अित्यादि देकर अथवा मालमता लेकर दूसरोंकी प्रेमिका बन जाती हैं, या कहीं दूसरे अनाथालयमें घुसकर पुन: ब्याहकी योजना कराती हैं।

"आपके समक्ष अैसी बातोंके कहनेका साहस कभी करने योग्य नहीं, पर मेरी समझमें जितना ही यह विषय गोपनीय और निंद्य करके छोड़ा जा रहा है अुतना ही अुसका विषैला प्रभाव बढ़ रहा है, जिससे बड़ों बड़ोंकी नाकों दम है। हां, थोड़े दिनोंसे, जबसे आपका प्रभाव देश पर छाया है व शिक्षाका प्रभाव बढ़ा है, संभव है कि यह बुराअी शिक्षित समाजसे दूर हो गअी हो। अिससे निंदनीय तथा गोपनीय कोअी विषय दूसरा न होगा। पर जहां तक मेरा स्वत:का अनुभव है, बम्बअीको छोड़ सर्वत: यह वर्तमान है — कहीं कुछ कम, कहीं कुछ ज्यादा। पर अिधर बिहार तथा यू० पी० का हाल वर्णनातीत हो रहा है। अिसका सबूत ४९४ दफा ताजिरात हिंदकी रूसे अदालतमें पेश अर्जियोंसे किसी कदर ही चल सकेगा, जो कि यहांकी नीच जातियोंने दी हैं। पर यहांकी नाममात्रको अुच्च कहलानेवाली जातियोंमें तथा खासकर काशीपुरीका कोअी घर अैसा नहीं बचा होगा, जो व्यभिचारके संसर्गसे दूषित न हुआ हो।

"काशीके अधिकतर अमीर, मठों व मंदिरोंके अधिष्ठाता, अफसर, सभी बाहर तो अपनेको चारित्र्यवान बताकर अनेक संस्थाअें चलाते, आदर्श जीवन दिखलाते तथा भीतर-भीतर अैसी कअी स्त्रियोंका पेट भरा करते हैं, जो कि मध्यम श्रेणीकी युवती स्त्रियोंको अुनके भोगके वास्ते रुपये तथा जेवरका लोभ

देकर दर्शनों, पूजनों तथा अपने जातिभाअियोंके यहां जानेके बहाने घरसे निकालती हैं, तथा अपने प्रेमियोंसे मिलाकर ही रहती हैं। अिन्हीं अुद्देश्योंकी पूर्तिके अर्थ यहां अधिक मेले व पर्व मनाये जाते हैं। दूसरा तरीका अिन कामोंके वास्ते डॉक्टर व वैद्योंका अड्डा और घाट पर जप-पूजाके अर्थ जमघट है। अिसके अलावा तीसरा तरीका यह निकाला गया है कि कहीं पर बेचू बीर, कहीं दरगाह, कहीं देव व देवियोंकी मन्नतोंके बहाने करके स्त्रियां अपने पतियोंको बाध्य करके नौकरोंके साथ, पड़ोसियोंके साथ, तथा अन्य लोगोंके साथ होकर जाती हैं व अपनी कुटिल अिच्छाको पूरा करती हैं। अिन कुकामनाओंको पूरा करनेके लिअे यहां शहरमें कअी अड्डे हैं, जहां पर खुले आम ये हरकतें हुआ करती हैं और अैसी जगहें बदमाशोंके सहारे पर ही ठहरी हैं। अिन बदमाशोंके भयसे जो लोग अिन बातोंके विरोधी हैं, वे भी कानूनन कोअी रास्ता न देखकर चुप्पी साधे रहते हैं; तथा बहुतेरे अिनमें पीछेसे सहमत अिस कारण हो जाते हैं कि यह समाजकी अिच्छासे ही चलता है, मैं अकेला क्या करूंगा? अैसे अड्डोंके पृष्ठपोषक खास करके पुलिसवाले भी गुप्त रूपसे रहते हैं।

"अिन बातोंको दूर करनेका भार आप कदाचित् काशीके नगरपिताओं तथा म्युनिसिपैलिटी पर छोड़ेंगे; जिसके अुत्तर-स्वरूप आप यह भी जान लें कि जितनी धांधली यहांकी म्युनिसिपैलिटीमें है, अुतनी शायद ही कहीं हो। यहांके मेंबर दो गुटोंमें विभाजित हैं, जिनमें आपसकी खींचातानी अिस कदर रहती है कि चाहे काशीके निवासी मर मिटें, पर अुनकी बातोंकी ओर कौन ध्यान देता है? रोज नये नये करोंसे लोगोंको अुत्पीड़ित करके अपनी जेब भरना अिनका अुद्देश्य है। कारण अिन पदोंको प्राप्त करनेके लिअे कमसे कम प्रत्येक व्यक्तिको दो हजार खर्च करना पड़ता है, तिस पर तुर्रा यह कि वह रकम गुण्डों, बदमाशों, रंडियों और दलालोंके पेटमें जाती है। अिसीको दूना

और तिगुना करनेकी अिनके मनमें आकांक्षा बनी रहना कुछ अनुचित नहीं कहा जा सकता।

"आप पूछेंगे, अैसी कुत्सित बातोंके लिखने तथा मेरे सामने पेश करनेकी क्या आवश्यकता है? अत: अिसके अुत्तर-स्वरूप निवेदन है कि मेरी समझमें मानसिक तथा शारीरिक अुन्नति अिस तरहकी बुराअी दूर किये बगैर नहीं हो सकती। दूसरे, मैं भी अिन्हीं बुराअियोंसे अुत्पीड़ित हुआ हूं और मेरी आत्मा बार बार अिसे आपके समक्ष रखनेको बाध्य कर रही है।"

संभव है, अिस लेखमें अतिशयोक्ति हो, लेकिन अतिशयोक्तिवाला अंश निकाल डालने पर भी जो रहेगा, वह हमारे लिअे शोचनीय होगा। कोअी यह कहकर अिन बुराअियोंकी ओर दुर्लक्ष न करे कि अैसी अपवित्रता अन्य धर्मोंके क्षेत्रोंमें भी पाअी जाती हैं, या हिन्दू धर्मके दूसरे तीर्थक्षेत्रोंकी भी यही दशा है। हर हालतमें, हर जगह अैसी अनीति निंदनीय है और अुसे दूर करनेके लिअे प्रयत्न करना जरूरी है। अिन बुराअियोंको दूर करनेका सबसे अच्छा मार्ग तो यह है कि जो अिन बुराअियोंको जानते हैं और अिन्हें निंदनीय समझते हैं, वे अपने जीवनको शुद्ध बनायें और शुद्धतामें दिनोंदिन वृद्धि करते रहें। यह प्राचीन मार्ग है। जब अधर्म बढ़ता है, तब साधु पुरुष तपश्चर्या करते हैं। और तपश्चर्याका अर्थ शुद्धि है।

अेक दूसरा और आधुनिक मार्ग नवयुवकों द्वारा आंदोलन मचानेका है। आजकल युवक-संघ बढ़ रहे हैं। युवकोंमें सेवाभाव बढ़ा है और बढ़ रहा है। यदि वे अिस कामको अुठा लें तो बहुत-कुछ कर सकते हैं। सब मंदिरोंकी फेहरिस्त बनाकर अुनके संरक्षकों और पुजारियोंसे परिचय बढ़ावें और जिन मंदिरोंके खिलाफ शिकायत हो अुनकी यथासंभव जांच करें। यात्रियों और दूसरे दर्शनार्थी लोगोंको अिन बातोंसे सावधान कर दें। अनाथालय आदि संस्थाओंकी जानकारी हासिल करें। अिन कार्योंसे बहुतेरा सुधार अपने-आप हो जायगा। क्योंकि अनीति अंधेरेमें ही जी सकती है, प्रकाशमें नहीं।

अैसे कार्य करनेवाले युवकोंका जीवन विशुद्ध होना चाहिये। जो दूसरोंकी शुद्धि करना चाहते हैं, अुनके खुद शुद्ध न होने पर अुनका कोअी प्रभाव नहीं पड़ता।

तीसरा मार्ग संभावित—अिज्जतदार और पवित्र लोगोंकी समिति बनाकर, अुसके द्वारा तीर्थक्षेत्रोंके सुधारकी चेष्टा करना है।

ये तीनों मार्ग साथ-साथ चल सकते हैं, चलने चाहिये। अैसी अनीति होते देख हम बहुधा निराश हो जाते हैं। परन्तु निराशाका कोअी कारण नहीं है। हमारी निराशा और मंदताके कारण बहुतेरी अनीतियां जिंदी रह सकती हैं। हममें यह श्रद्धा होनी चाहिये कि अनीति क्षणिक वस्तु है, और कुछ ही लोगोंकी क्यों न हो, मगर तेजस्विनी नीतिके सामने वह टिक नहीं सकती।

हिन्दी-नवजीवन, १२–१२–'२९

८१

कांग्रेस किसकी ?

संयुक्तप्रान्तके दौरेमें किन्हीं सज्जनने दो-तीन प्रश्न पूछे थे और अुत्तर 'हिन्दी-नवजीवन' द्वारा मांगा था। अुनमें से अेक प्रश्न यह था :

> "क्या कांग्रेस हिन्दू-मुसलमानोंका सम्मिलित गिरोह है? यदि अिसका अुत्तर 'हां' हो तो क्या अैसी कांग्रेसके कर्मचारी, जो हिन्दू-मुस्लिम अुपद्रवके कारण होते हैं, कांग्रेसी कहलानेके अधिकारी और अनुकरणीय हैं? और यदि अैसी समस्या अुपस्थित हो तो अुस दशामें सर्व-साधारणको क्या करना चाहिये?"

कांग्रेस हिन्दू-मुसलमानोंकी तो है ही, लेकिन वह अिससे भी कुछ अधिक है। कांग्रेस भारतवर्षमें रहनेवाले हरअेक व्यक्तिकी संस्था है— हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, अीसाअी, यहूदी वगैरा सब किसीकी

है। कांग्रेसके सदस्य वे सब स्त्री-पुरुष हो सकते हैं, जो महासभाके अुद्देश्योंको स्वीकार करते हैं। कांग्रेसके कर्मचारियोंमें से यदि कोअी हिन्दू-मुसलमानोंके अुपद्रवका — झगड़ेका कारण बने, तो कांग्रेस अुसका बहिष्कार कर सकती है। कांग्रेसका सदस्य बनकर जो अेक-दूसरेके बीच वैमनस्य — दुश्मनी पैदा करता है, वह न केवल कांग्रेसका, बल्कि देशका भी द्रोही है।

यह तो अूपरके प्रश्नका अुत्तर भर है। परन्तु जब अितनेसे खुद मुझे ही संतोष नहीं होता, तो प्रश्नकर्ताको भला कैसे हो सकता है? दुःखकी बात तो यह है कि दोनों कौमोंके बीच वैमनस्य पैदा करनेकी किसीको आवश्यकता ही नहीं होती। अिस हालतका असर, कुछ ही अंशोंमें क्यों न हो, कांग्रेस पर भी पड़ता है। अिस वैमनस्यको मिटानेका तरीका क्या है? यह सवाल प्रश्नकर्ताके दिलमें तो है, लेकिन अिसे वह प्रकट नहीं कर सके हैं।

वैमनस्यको मिटानेके लिअे शुद्धि चाहिये। अेक-दूसरेमें वीरताके भाव पैदा होने चाहिये। आज तो हम अेक-दूसरेसे डरते हैं। यदि डर मिट जाय और आपसमें विश्वास पैदा हो जाय, तो सब वैमनस्य, सारी दुश्मनी आज ही दूर हो सकती है। अिस दौर्बल्य — कमजोरीको मिटानेका सबसे अच्छा मार्ग यह है कि हम अिस सम्बन्धमें किसीका अनुकरण न करें, बल्कि खुद ही डरना छोड़ दें। अगर अैसे कुछ ही लोग आज पैदा हो जायं, तो कांग्रेसकी शिकायत ही न रह पाये। हां, यह मैं जानता हूं कि अैसा वायुमण्डल पैदा करनेकी कोशिश हो रही है, और अिसे जानते हुअे मैं अपना निजी विश्वास नहीं छोड़ सकता।

हिन्दी-नवजीवन, १९–१२–'२९

८२

राष्ट्रभाषा

हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है, अैसा यद्यपि सब लोग बुद्धिसे कबूल करते हैं, तो भी जिन सूबोंमें हिन्दी मातृभाषा है वहां हिन्दी भाषाके प्रति जैसा प्रेम नवयुवकोंका होना चाहिये वैसा देखनेमें नहीं आता है। हिन्दीमें जो कुछ साहित्य निकलता है वह प्रायः अनुवाद है। यदि कुछ मौलिक वस्तु निकलती है तो वह प्रभावरहित देखी जाती है। यह कह सकते हैं कि रवीन्द्रनाथ हर जगह पैदा नहीं होते हैं, तुलसीदास करोड़ोंमें से अेक ही होते हैं; परन्तु तुलसीदास, रवींद्रनाथ अित्यादिके पैदा होनेके लिअे क्षेत्र हम सब तैयार कर सकते हैं। नवयुवकोंका सच्चा अुत्साह ही वह क्षेत्र है। अुनका प्रेम जब हिन्दी भाषाके प्रति बढ़ेगा तब हिन्दीमय वायुमण्डल पैदा हो जायगा और अुसमें से कुछ कवि भी निकल सकते हैं।

आज तो हिन्दी जिनकी मातृभाषा है, अुन नवयुवकोंकी बोलीमें न प्रेम देखनेमें आता है, न प्रयत्न। व्याकरणादिके जो दोष यू० पी०, बिहारके नवयुवकोंकी हिन्दीमें आते हैं, कभी बंगला और मराठीमें देखनेमें नहीं आते। राष्ट्रभाषाका प्रचार मद्रास आदि प्रान्तोंमें होता है, परन्तु मेरा अनुभव है कि हिन्दी शिक्षक कष्टसे ही मिलते हैं। अुनमें भी तेजस्विता नहीं होती, त्याग-शक्ति बहुत कम होती है। हिन्दी-प्रचारके ही लिअे सर्वार्पण करनेवाले अनेक नवयुवक होने चाहिये; परन्तु अैसे यदि कोअी हैं तो मैं अुनको नहीं जानता हूं। अैसे अवश्य मिल सकेंगे, जो आजीविका मात्र लेकर सेवा करनेके लिअे तत्पर होंगे, लेकिन अुनके पास हिन्दी भाषाकी शिक्षा देनेकी सामग्री नहीं होती।

नवयुवक चाहें तो अिस त्रुटिको मिटा सकते हैं। अेक नवयुवक भी अिस कार्यका आरंभ करेगा तो काम आगे बढ़ सकता है।

जब किसी क्षेत्रमें दुर्दशा प्रतीत होती है तब निराश होकर बैठे रहनेसे दुर्दशा बढ़ती है। कर्तव्यपरायण मनुष्यका धर्म है कि दुर्दशाको देखकर अुसके निवारणकी चेष्टा शीघ्र करे, रास्तेमें रुकावटोंका खयाल करके निरारम्भ न रहे।

प्रत्येक पाठशालामें हिन्दी भाषोत्तेजक संघ बनना चाहिये। अैसे संघका कर्तव्य प्रत्येक क्षेत्रमें हिन्दीका अुपयोग बढ़ाना, पारिभाषिक शब्दोंका शोधन करना, विदेशी भाषाका अुपयोग राजनीति अित्यादिमें कभी नहीं करना, गूढ़ ग्रंथोंका गहरा अध्ययन करना, जहां हिन्दी शिक्षककी आवश्यकता देखी जाय वहां सहायता देना, बिना शुल्क हिन्दी शिक्षक स्वयंसेवक तैयार करना अित्यादि हो सकता है। प्रत्येक बड़ी पाठशालामें अेक-अेक नवयुवकके चित्तमें अैसी लगन पैदा हो जाय, तो वह बैठा नहीं रहेगा, अपने-आप संघ बन जायगा और अपने सहाध्यायीको अुसमें प्रवेश करनेका निमंत्रण देगा। नवयुवकोंमें आज जो जागृति आअी है, अुसको स्थायी बनानेका तरीका यही है कि अुनका प्रत्येक क्षण किसी न किसी सेवाकार्यमें ही व्यतीत हो।

खयाल रखना चाहिये कि अिस लेखमें हिन्दीका अर्थ हिन्दुस्तानी भी है। मेरी दृष्टिके सामने वह हिन्दी नहीं है, जिसमें से अिरादतन फारसी या अरबी शब्दोंका त्याग किया गया हो।

हिन्दी-नवजीवन, २६–१२–'२९

८३

महासभामें हिन्दी

हमारा दुर्दैव कुछ अैसा है कि हमें 'कांग्रेस' नामसे जितना परिचय है अुतना 'महासभा' से नहीं। महासभाका नाम लेनेसे कोअी हिन्दू-महासभा समझते हैं और कोअी किसी दूसरी ही सभाका खयाल करते हैं। संयुक्तप्रांतके दौरेमें जब मैं कांग्रेसके लिअे महासभा शब्दका प्रयोग करता था, तो मुझसे कहा जाता था कि महासभाके नामसे कोअी कांग्रेसका अर्थ नहीं लगायेंगे। यह आदतका प्रभाव है। हमें अंग्रेजी शब्दके प्रयोगकी आदत पड़ गअी है, अिसलिअे जब कोअी हिन्दी शब्दका प्रयोग करता है, तो अुसे समझनेमें हमें कष्ट होता है।

अिसीलिअे यद्यपि महासभामें हिन्दी भाषाका ही प्रयोग करनेका कानून है, अंग्रेजीका ही काफी प्रयोग होता है। महासभाके अिश्तहार प्रायः अंग्रेजीमें छपते हैं। महासभाके दफ्तरमें भी प्रायः अंग्रेजीका ही व्यवहार होता है। अेक-दूसरेको खत अंग्रेजीमें लिखे जाते हैं। लाजपत नगरमें रास्तों पर जहां देखो अंग्रेजीमें लिखे पटिये ही दिखाअी पड़ते थे। यह सब शोचनीय है। परंतु अिस व्याधिकी औषधि, अिस रोगकी दवा सख्तीके साथ कानून मनवाना नहीं है। अिसकी औषधि या दवा तो है जनताका राष्ट्रभाषाके प्रति प्रेम और जनताकी तदनुसार चेष्टा — कोशिश। जनता चाहे तो महासभाका सारा काम हिन्दीमें करवा सकती है। बात यह है कि न जनतामें अितनी जागृति है, न अितना अुत्साह है और न अितना भाषाप्रेम ही है।

महासभाका दफ्तर हिन्दीमें रखनेके मार्गमें अेक बड़ी व्यावहारिक रुकावट है। राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरूने अिस ओर सदस्योंका ध्यान भी खींचा था। जैसा कि मैं पिछली बार लिख चुका हूं, संयुक्त-प्रांत, बिहार वगैरा हिन्दी भाषा-भाषी प्रांतोंमें अैसे लोग बहुत कम मिलते हैं, जो अिस कामके लिअे तैयार हों। जो थोड़े-बहुत हैं या

होंगे वे अपने काममें लगे हुअे हैं। महासभाके कार्यालयमें क्या और और जगहोंमें क्या, हिन्दी जिनकी मातृभाषा है, वे लोग राष्ट्रकार्यमें बहुत कम पाये जाते हैं। अैसी दशामें कौन आश्चर्य है कि राष्ट्र-भाषाके व्यवहारका कानून होते हुअे भी महासभाका बहुतेरा काम अंग्रेजीमें ही होता है।

दस साल पहिले तो सारा काम अंग्रेजी ही में होता था। अिधर अिस दिशामें बहुत परिवर्तन हुआ है, फिर भी अभी बहुत कुछ बाकी है। महासभाका कुल बहस-मुबाहसा — सारा वादविवाद राष्ट्रभाषामें ही होना चाहिये और अुसके अंग्रेजी अनुवादकी भी कोअी जरूरत न रहनी चाहिये। अिसमें दो दिक्कतें पेश आती हैं। अेक तो यह कि बंगाल, तामिलनाड़ वगैराके सदस्य बहुत कम हिन्दी समझते हैं और दूसरी यह कि वक्ता जो कुछ कहना चाहता है, सो सबको समझाना भी चाहता है। अिसलिअे अगर वह दोनों भाषायें जानता है, तो दोनोंमें बहस करके अपना काम बना लेता है। अिन दिक्कतोंको दूर करनेके दो अुपाय हैं। अेक तो यह कि जब कोअी वक्ता अंग्रेजीमें बोलने लगे, तब अुसे और राष्ट्रपतिको अिस बातका स्मरण दिलाना चाहिये। दूसरे, बंगाली और तामिल भाअी-बहन कह दें कि अुन्हें अंग्रेजीकी कोअी आवश्यकता नहीं है। अुनका धर्म है कि वे हिन्दी सीख लें अथवा अपने पड़ोसियोंसे, जो कुछ कहा जाय, अुसका मतलब समझ लें। हिन्दी भाषा-भाषियोंके प्रेम, अुनके निश्चय और विनय पर ही बंगाली, तामिल वगैरा भाअियोंके हृदयका परिवर्तन निर्भर है। बगैर विनयके कुछ काम नहीं हो सकेगा। बलात्कार या जबरदस्तीसे हिन्दीको अपना स्थान नहीं मिल सकेगा।

हिन्दी-नवजीवन, २–१–'३०

८४

जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल हिन्दका जवाहर सिद्ध हुआ है। अुनके व्याख्यानमें अुच्चतम विचार मधुर और नम्र भाषामें प्रकट हुअे हैं। अनेक विषयोंका प्रतिपादन होने पर भी व्याख्यान छोटा है। आत्माका तेज प्रत्येक वाक्यसे झलकता है। कअी लोगोंके दिलमें जो भय था, भाषणके बाद वह सब मिट गया। जैसा अुनका व्याख्यान था वैसा ही अुनका आचरण भी था। कांग्रेसके दिनोंमें अुन्होंने अपना सारा काम स्वतंत्रता और संपूर्ण न्यायबुद्धिसे किया। और अपना काम सतत अुद्यमसे करते रहनेके कारण सब कुछ ठीक समय पर निर्विघ्नताके साथ पूर्ण हुआ।

अैसे वीर और पुण्य नवयुवकके सभापतित्वमें यदि हम कुछ न कर पायेंगे तो मुझे बड़ा आश्चर्य होगा। परंतु यदि सेना ही नालायक हो तो वीर नायक भी क्या कर सकता है? अिसलिअे हमें आत्म-निरीक्षण करना चाहिये। क्या हम जवाहरलालके नेतृत्वके लिअे लायक हैं? यदि हैं, तो परिणाम शुभ ही होगा। स्वतंत्रताकी घोषणा करने-मात्रसे स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। हममें स्वतंत्रताका वायुमण्डल पैदा होना चाहिये। स्वतंत्रता अेक चीज है, स्वच्छन्दता दूसरी। कअी बार हम स्वच्छन्दताको ही स्वतंत्रता मान बैठते हैं और स्वतंत्रता गंवा देते हैं। स्वच्छन्दताकी पराकाष्ठा स्वार्थ है; स्वतंत्रताकी परमार्थ। स्वच्छन्दता समाजका नाश करती है, स्वतन्त्रता समाजको जीवन देती है। स्वच्छन्दतामें मर्यादाका त्याग किया जाता है, स्वतंत्रतामें मर्यादाका पूर्ण पालन किया जाता है। पराधीनतामें हम बहुतसी बातें डरके मारे करते हैं; स्वाधीनतामें वे ही बातें हम अिच्छापूर्वक करते हैं।

पराधीन मनुष्य डरके वश होकर चोरी नहीं करेगा, किसीके साथ फसाद नहीं करेगा, झूठ नहीं बोलेगा, बाह्याचारमें शुद्ध-सा

प्रतीत होगा, डाकू आदिसे, स्वामीके बलसे बचेगा। पराधीन मनुष्य जो कुछ करता है, अुसमें वह अपने मनका साथ नहीं देता। स्वाधीन मनुष्यके जैसे आचार होते हैं, वैसे ही विचार भी। वह जो कुछ अच्छा-बुरा करता है, स्वेच्छासे करता है। अिसलिअे स्वाधीन मनुष्य अपने सत्कार्यका पूरा फल पाता है और अैसा होनेसे समाजकी नित्य वृद्धि होती है। स्वाधीन मनुष्य किसीकी रक्षाकी अपेक्षा नहीं करेगा।

अिसलिअे यदि हममें सच्ची स्वतंत्रता आअी है, तो हम कौमी (सांप्रदायिक) डरको छोड़ देंगे। हिन्दू-मुसलमान अेक-दूसरेसे डरना भूल जायंगे। दोनों साथ-साथ भूलें तो बहुत ही अच्छा है, परंतु स्वतंत्र मनुष्य डर छोड़नेके लिअे साथियोंके सहयोगकी अपेक्षा न करे। यदि अेक पक्ष न्यायकी मर्यादाको छोड़ दे, तो भी वह तीसरी ताकतका सहारा नहीं मांगेगा। वह अपनी ताकत पर ही निर्भर रहेगा। और हार गया तो अपनी ताकत बढ़ानेकी कोशिश करेगा। लड़ते हुअे मर जाना जीत है, धर्म है। लड़नेसे भागना पराधीनता है, दीनता है। शुद्ध क्षत्रियत्वके बिना शुद्ध स्वाधीनता असंभव है। अिसीलिअे क्षत्रियके लक्षणमें 'अपलायनम्' को ही अद्वितीय स्थान है। अिस कारण हमें अपनी हरअेक बातमें 'अपलायनम्' का सेवन करना आवश्यक है।

हिन्दी-नवजीवन, ९–१–'३०

८५
प्रस्तुत प्रश्न

काशी विश्वविद्यालयके 'अेक राजनीतिके विद्यार्थी' ने निम्नलिखित प्रश्न पूछे हैं:

"लाहौरकी महासभाने पूर्ण स्वतंत्रताको अपना लक्ष बनाकर त्रिविध बहिष्कारका अुपाय सोचा है। मेरे तुच्छ विचारमें यह अुपाय सफल होगा, अिसमें भारी संदेह है। पहली बात जो बाधक है वह है लोगोंमें त्याग-भावनाकी कमी। अधिकांश लोगोंसे यह आशा करना कि वे जेलमें जाकर चक्की पीसनेको तैयार होंगे, मेरी समझमें गलत है। जेलोंमें जाना तो दूरकी बात है, जनतामें छोटे-छोटे त्यागकी भी भावना लाना कठिन काम है। अुदाहरणके लिअे खद्दर ही को लीजिये। जनता अच्छी तरह अिसकी अुपयोगिता जानती है और यह भी समझती है कि सब बातोंको लेते हुअे यह सस्ता भी पड़ता है, तिस पर भी अिसका प्रचार आबादीके लिहाजसे बहुत कम हो पाया है। यह केवल अिसलिअे कि जनताको विदेशी कपड़ा पहननेकी आदत पड़ गअी है और खद्दर पहननेसे अेक दो महीनों तक थोड़ी बहुत तकलीफ अुठानी पड़ती है।

"दूसरे भी दृष्टान्त हैं, जिनसे मालूम होता है कि जनतामें त्यागका भाव लाना टेढ़ी खीर है।

"दूसरी बाधा यह है कि बहिष्कारके सफल होने पर भी हमारा अुद्देश्य सफल होगा, सरकार बदल जायगी, अिसमें संदेह है। मान लिया जाय कि महासभावाले धारासभाओंमें नहीं जायेंगे, लड़के स्कूल-कॉलिजोंका बहिष्कार कर देंगे, कानूनपेशा लोग अदालतें छोड़ देंगे; तो भी मैं पूछता हूं कि अिससे सरकारका क्या बिगड़ेगा? अुस पर कौनसी अैसी आपत्ति

आयेगी, जिससे घबड़ा कर वह प्रबंध छोड़ देगी? धारासभाअें सरकारके दूसरे पिट्ठुओंसे भरी ही रहेंगी, और सरकारके लिअे यह अेक सुविधाकी बात होगी। लड़कोंके अशिक्षित रहनेसे भी अुसका कुछ बिगड़ता नहीं, बल्कि बनता ही है। अदालतें सूनी हो जायेंगी, यह बात महत्त्व रखती है। लेकिन अिसका सफल होना बहुत कठिन है। वर्तमान समयमें सरकार ही अेक अैसी शक्ति है, जो मुद्दालेहकी अिच्छाओंके विरुद्ध अुसकी जायदाद जब्त कर सकती है। लोग अपना दिया हुआ रुपया वसूल करनेकी कोशिश न करेंगे या मारकाटका बदला न चुकावेंगे, अैसी आशा भी ठीक नहीं है। अेक कर न देनेकी बात अैसी है, जो सरकारकी भलाअी-बुराअी या अुसके अस्तित्वसे सीधा संबंध रखती है। नियमोंके मुताबिक वह कर न देनेवालोंकी भी जायदाद जब्त कर सकती है, और अगर अुसे नीलाममें लेनेवाले यहां न मिलें तो दूसरे देशवालोंको बुला सकती है। अतः कर न देनेकी हालतमें वह जबरदस्ती कर वसूल करेगी और अिस तरह अपना अस्तित्व कायम रखेगी।

"अेक बात और है। बारडोली, चम्पारण, अफ्रीका आदि जगहोंमें आपका अहिंसात्मक सत्याग्रह सफल हो चुका है, अिससे आपको अिसकी सफलतामें विश्वास करनेका बल मिलता है। परंतु मौजूदा अुद्देश्य और पहलेके अुद्देश्यमें फर्क है। पूर्ण स्वाधीनताका वर्तमान अुद्देश्य बहुत ही अूंचा है, और सरकारके जीवन या मरणसे अुसका सीधा संबंध है; बारडोली वगैराके अुद्देश्योंमें यह बात नहीं थी। बारडोलीमें केवल अिसी बातकी निष्पक्ष जांच करवा लेनी थी कि हम पर कर बढ़ाना अुचित है या नहीं। जांच निष्पक्ष होनी चाहिये, यही झगड़ा था; जांचका सरकारके अस्तित्वसे कोअी संबंध नहीं था। अुद्देश्यकी सिद्धि हो जाने पर भी, मेरी रायमें, बारडोलीके किसानोंको जितना फायदा नहीं हुआ, अुससे अधिक मूल्यका अुन्हें त्याग करना पड़ा है। न केवल बारडोली किंतु अन्य स्थानोंके विषयमें भी यह

बात ठीक है। अतः परिस्थितिको देखते हुअे मेरी समझमें अगर सरकार पूरी तरह न मिटी, जैसा कि निश्चित है, तो सत्याग्रहके सफल होने पर भी हम असफल होंगे, हमारा प्रयत्न शायद निरर्थक होगा।"

सन् १९२२ में जो प्रश्न पूछे जाते थे, ठीक वैसे ही प्रश्न अिन विद्यार्थीके हैं। परंतु मुझे अिनसे कोअी आश्चर्य नहीं होता। प्रश्नोंके अुत्तर प्रश्नकर्ताके अतिरिक्त थोड़े ही लोग पढ़ते हैं। अुनमें से समाधान तो बहुत कमका होता है। कअियोंको अैसे प्रश्नोत्तरोंका खयाल भी नहीं रहता। अिसलिअे जब-जब अैसे प्रश्न पूछे जायं, तब-तब संपादकका कर्तव्य है कि वह अुनका अुत्तर देता रहे।

पहली बात त्याग-भावनाके अभावकी है। यह ठीक है और ठीक नहीं भी है। ठीक अिसलिअे है कि प्रश्नकर्ताके नजदीकी वायु-मण्डलमें त्याग-भावना प्रतीत नही होती है, और अिस कारण वह यही समझता है कि देश भरमें त्यागवृत्ति कम है; ठीक अिसलिअे नहीं है कि यदि त्याग-भावनाकी सर्वथा कमी होती तो देशका कुछ भी कार्य होना संभव न था। यह स्वीकार करते हुअे भी कि त्यागकी मात्राके बढ़नेकी काफी गुंजाअिश है, मेरा अनुभव मुझे बताता है कि देशमें त्याग-भावना है और वह बढ़ती जाती है। अिसमें जरा भी शक नहीं कि पूर्ण स्वराज्य पानेके लिअे त्यागकी मात्रा बहुत अधिक होनी चाहिये। खद्दर पहननेके संबंधमें विद्यार्थीने जिस वैश्यवृत्तिका अुल्लेख किया है, अुसे आगे चलकर अुदार और पारमार्थिक वृत्तिमें परिवर्तित होना पड़ेगा।

त्रिविध बहिष्कारके विषयमें विद्यार्थीने जो कुछ लिखा है, अुसमें मुझे अज्ञान ही अधिक प्रतीत होता है; कारण कि कांग्रेसने पाठ-शालाओं और अदालतोंके बहिष्कारका पुनरुद्धार नहीं किया है। परंतु मेरा यह विश्वास अवश्य है कि तीनों बहिष्कार आवश्यक हैं। यह कहना कि कौंसिलोंमें कोअी न कोअी तो जावेगा ही, फिर कांग्रेसवाले क्यों न जायं, अुचित नहीं। शराबकी दुकान खाली न रहेगी, तो क्या

अुसमें भी हमें जाना ही चाहिये? यदि हम कौंसिलोंको निरर्थक अथवा हानिकर मानते हों तो अुनमें क्यों जायं? अब पाठशालाओंकी बात लीजिये। सरकारी पाठशालाओंको त्यागनेसे लड़के अशिक्षित रहेंगे, अिस मान्यतामें मैं भयंकर आत्मवंचना पाता हूं। अंग्रेज सरकारके आनेके पहले लड़के अशिक्षित नहीं रहते थे। बात यह है कि अंग्रेजी सत्ताके भारतमें कायम होनेके पूर्व प्राथमिक शिक्षा आजसे कहीं अधिक थी और अुच्च प्रकारकी शिक्षा भी लोग काफी पाते थे। क्या आज हम अितने गिरे हुअे हैं कि सरकारी शिक्षा बंद कर देनेसे हमारी शिक्षा ही बंद हो जायगी? अिन विद्यार्थीको जानना चाहिये कि आजकल भारतवर्षमें राष्ट्रीय विद्यापीठ मौजूद हैं और अुनमें हजारों नवयुवक राष्ट्रीय शिक्षा पा रहे हैं। यदि लड़के तमाम सरकारी पाठशालाअें छोड़ दें, तो भी अुन्हें अशिक्षित रहनेकी आवश्यकता न पड़ेगी। हां, यह अवश्य है कि अुन्हें गरीबोंके खूनसे सने हुअे पैसोंसे निर्मित शानदार मकान पाठशालाके लिअे नहीं मिलेंगे और न स्वतंत्रतानाशक शिक्षा मिलेगी।

अदालतोंके बहिष्कारके संबंधमें यह स्वीकार करना चाहिये कि वह कठिन काम है। आज अुनके प्रति जो मोह है, वह देश-हितका घातक है। जहां तक हो सकता है, अिस मोहको हटानेकी कोशिश करके ही हमें संतुष्ट हो जाना पड़ता है। किंतु यह भूलना नहीं चाहिये कि अदालतें प्रत्येक सल्तनतकी प्रधान आश्रय-स्थान होती हैं। अिस कारण जितने वकील अिन्हें छोड़ सकें, जितने वादी और प्रति-वादी अिन्हें छोड़ें, अुतना लाभ ही है। हमें तो अदालतोंकी प्रतिष्ठाको प्रतिदिन कम ही करना चाहिये।

अंतमें यह जानना चाहिये कि प्रत्येक संस्था वा मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा पर ही निर्भर रहता है। धारासभा, पाठशाला, अदालत अित्यादिसे सरकार प्रतिष्ठा पाती है। बहिष्कारसे प्रतिष्ठा टूटती है। अतः अुसे प्रजाके सम्मुख रखनेसे सरकारकी प्रतिष्ठा कम होगी। यह सर्वथा स्वाभाविक है। केवल बंदूक-बलसे कोअी सरकार कायम नहीं रह सकेगी।

सत्याग्रहसे बारडोलीके लोगोंने कमाया कम और गंवाया अधिक, यह कहना यथार्थ नहीं है। वे स्वयं जानते हैं कि सत्याग्रहसे अुन्हें अत्यधिक लाभ पहुंचा है। यदि यह प्रत्यक्ष देखना हो तो बारडोली जाकर आज कोअी भी देख सकता है। हां, स्वराज्य पानेके लिअे अधिक कष्ट अुठाना होगा, अिसमें न दुःखकी बात है, न आश्चर्यकी।

हिन्दी-नवजीवन, १६–१–'३०

८६

क्या अहिंसा छोड़ दी ?

अेक मित्र कहते हैं कि "आजकल किसी न किसी अखबारमें आपके लिअे अैसी बातें आती हैं, जिनसे यह भ्रम पैदा होता है कि अब आप हिंसाको भी पसन्द करनेके लिअे तैयार हो गये हैं। जैसा कि कहा जाता है, गुजरात विद्यापीठमें आपने यह घोषणा की है कि मेरे पकड़े जाने पर हिंसामय संग्राम छेड़ देना, और यह भी कहा है कि यदि पराधीनता और हिंसामें से पसन्दगी करनी पड़े तो आप हिंसाको स्वीकार करने पर आमादा हो जायंगे। मैं तो यह बात माननेके लिअे तैयार नहीं हूं। परंतु अखबारमें आनेके कारण संभव है कि जो लोग आपको अच्छी तरह नहीं पहचानते, वे अिसे मान भी लें। क्या आप अिस पर कुछ प्रकाश डालेंगे ?"

किसी भी पत्रकारके लिअे बगैर जांच-पड़ताल किये अिस तरह किसीके संबंधमें गलत खबर छाप देना बहुत बुरी बात है। जो बात अूपर कही गअी है, वह मैंने कही ही नहीं। अहिंसा मेरे प्राणके साथ जुड़ी हुअी चीज है, अुसे मैं कभी छोड़ नहीं सकता। मेरा विश्वास अहिंसा पर दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। और अुसकी सफलताका प्रत्यक्ष अनुभव भी मुझे होता रहता है। मेरे पकड़े जानेके बाद लोगोंको क्या करना होगा, अिस बारेमें मैंने जो कुछ भी कहा था वह ठीक अिसका अुलटा था। अर्थात्, मैंने तो यह कहा था कि

अगर अुस मौके पर लोग हिंसक प्रवृत्ति ग्रहण करें तो अहिंसावादी अुसे रोकनेकी चेष्टा करें। पराधीनताके बारेमें जो कहा था वह यह था कि अगर मुझको पराधीनताका या हिंसाकाण्डका साक्षी होनेके लिअे विवश होना पड़े, तो मैं हिंसाकाण्डका साक्षी होना अवश्य पसन्द करूंगा। अिस कथनमें और जो अखबारमें छपा है, अुसमें बहुत फर्क है। हिंसा करनेकी तो मेरे कथनमें कोअी बात ही नहीं है। हम सब तो हिंसादि अनिष्ट कर्मोंके साक्षी, अनिच्छासे ही क्यों न हों, मगर हमेशा रहते आये हैं, और रहना होगा।

अुक्त पत्रसे अेक बात सीखने योग्य है। वह यह कि जब किसी प्रसिद्ध लोकसेवक या लोकनेताके संबंधमें कोअी भी सामान्य अनुभवसे बाहरकी बात सुननेमें या पढ़नेमें आवे, तो जब तक अुससे पूछ न लिया जाय, अुस पर कभी विश्वास न करना चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन, २३–१–'३०

८७

राक्षसी विवाह

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते हैं:

"बड़ी लज्जाके साथ मैं आपका ध्यान 'माथुर हितैषी' के ३० दिसम्बरके अंकमें प्रकाशित 'मथुरामें बालविवाहोंकी भरमार' शीर्षक लेखकी ओर आकर्षित करता हूं। ये विवाह हमारी माथुर चतुर्वेदी जातिमें हुअे हैं। दो वर्ष और २॥ और ३ वर्षकी कन्याओंके विवाह करनेका दुर्भाग्य हमारी जातिको ही प्राप्त है। काफी आन्दोलन किया गया। हमारी जातिके प्रतिष्ठित नेता श्री राधेलालजी चतुर्वेदीने बहुत प्रयत्न किया, पर ये बालविवाह नहीं रोके जा सके। पिछले वर्ष तो ८ महीने और सवा सालकी लड़कियोंकी शादी की गअी थी! समझमें नहीं आता कि अिन लोगोंका क्या अिलाज किया जाय? यह बात

ध्यान देने योग्य है कि हम लोग, यानी चतुर्वेदी समाज, अपनेको सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण समझते हैं और दूसरे ब्राह्मणों तकके हाथकी रोटी खानेमें पाप समझते हैं!"

जिन विवाहोंका वर्णन बनारसीदासजीने किया है, अैसे विवाहोंको राक्षसी न कहें तो क्या कहें? दुःखकी बात यह है कि अैसे विवाहोंमें हिस्सा लेनेवाले लोग प्रतिष्ठित रहते हैं। अिससे अुनको रोकनेमें बहुत कठिनाअियां पैदा होती हैं, और अिसके साथ जब धर्मको मिलाया जाता है, तब तो कठिनाअियोंकी मात्रा और भी बढ़ जाती है। कैसे भी हो, सब अुपद्रवोंके लिअे सत्याग्रह अेक संपूर्ण अुपाय हो सकता है; हमेशा हर हालतमें सत्याग्रहका प्रयोग करनेकी हममें शक्ति नहीं रहती, या प्रयोग करनेका तरीका हमको मालूम नहीं होता, यह दूसरी बात है। अिससे सत्याग्रहकी नहीं, लेकिन सत्याग्रहीकी मर्यादा सिद्ध होती है। अेक प्रयोग अुपरोक्त परिस्थितिमें प्रत्येक मनुष्य कर सकता है; जिस घरमें अैसे विवाहका आदर किया जाय, अुसका त्याग करना चाहिये और अुसकी तरफसे किसी प्रकारकी मदद नहीं लेनी चाहिये। जैसे कि पिता अगर अपनी छोटी लड़कीको ब्याहना चाहता है या अुसे बेचना चाहता है, तो अुस हालतमें अुस घरके सब लड़के-लड़की या कोअी अेक ही, जिसमें शक्ति है, पिताके घरका त्याग करे और अुसकी तरफसे कुछ भी मदद न ले। अैसा करनेसे पिताके हृदय पर कुछ न कुछ असर अवश्य होगा। परंतु असर न भी हुआ तो भी जिन्होंने त्याग किया है, वे अिस पापसे बच जायेंगे। साथ ही अुन्हें श्रद्धा रखनी चाहिये कि अैसे त्यागका अंतिम परिणाम शुभ ही हो सकता है। मैंने तो दृष्टांत-रूपसे अैसे मौके पर सत्याग्रहका यह अेक ही प्रयोग बतलाया है। परिस्थितिको देखकर प्रत्येक सत्याग्रही और भी प्रयोगोंकी तलाश कर सकता है।

हिन्दी-नवजीवन, ३०–१–'३०

८८

वर्णधर्म और श्रमधर्म

(१)

निम्नलिखित प्रश्न पूछे गये हैं और अुनके अुत्तर प्रत्येक प्रश्नके नीचे ही दिये जाते हैं:

प्र० — टाल्स्टाय द्वारा प्रतिपादित श्रमधर्म आप मानते हैं क्या?

अु० — अवश्य।

प्र० — क्या आप चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपना सब काम स्वयं करे?

अु० — न मैं चाहता हूं, न मैं अिसे शक्य मानता हूं और न टाल्स्टायने अिसे आवश्यक माना है। मनुष्य जितना स्वाधीन है, अुतना ही पराधीन भी। वह जब तक समाजमें रहता है, और अुसे रहना ही होगा, तब तक अुसे अपनी स्वाधीनता दूसरोंकी, अर्थात् समाजकी स्वाधीनतासे मर्यादित रखनी पड़ेगी। अिसलिअे अितना ही कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य यथासंभव अपना काम अपने आप कर ले, अर्थात् मैं अपने लिअे पानीका लोटा भर लूं, परंतु अपने लिअे अपना कुआं न खोदूं। पानीका लोटा न भरनेमें घमण्ड है, कुआं खोदनेके विचार या आरंभमें मूर्खता है। अिसलिअे प्रत्येक कार्य स्वयं किया जाय या दूसरोंकी सहायतासे, अिसका निश्चय करनेके लिअे विवेक-बुद्धिका अुपयोग करना चाहिये।

प्र० — क्या आप चाहते हैं कि सभी लोग शारीरिक श्रम द्वारा अपनी आजीविका अुपार्जन करें?

अु० — अवश्य। सब लोग अैसा नहीं करते हैं, अिसीसे जगतमें और विशेषतया भारतवर्षमें अत्यंत दरिद्रता पैदा हो गअी है। अनारोग्यका भी यही अेक बड़ा कारण है। धनोपार्जनमें जो अति लोभ पैदा हुआ है, अुसका यह प्रधान कारण है। यदि सब अपनी आजीविका शारीरिक परिश्रमसे पैदा करें, तो लोभवृत्ति कम हो जायगी और

धनोपार्जनकी शक्ति भी अपने आप बहुत क्षीण हो जायगी। शारीरिक परिश्रम करनेसे अनारोग्य भी प्रायः मिट जायगा और सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि अूंच-नीचका भाव सबका सब नष्ट हो जायगा।

हिन्दी-नवजीवन, ६–२–'३०

(२)

प्र० — वर्णाश्रम धर्ममें जो श्रम-विभाग है, क्या वह मानव-विकास और मानव-कल्याणके लिअे पर्याप्त नहीं है? श्रमधर्म और वर्णधर्म, अिन दोनोंमें आप किसको अधिक मानते हैं।

अु० — अिस प्रश्नकी ध्वनि है कि श्रमधर्म और वर्णधर्म परस्पर विरोधी धर्म हैं। वस्तुतः अैसा कुछ भी नहीं है। दोनों सहवर्ती और आवश्यक हैं। वर्णधर्म सामाजिक धर्म है और श्रमधर्म वैयक्तिक। ऋषियोंने समाजको चार भागोंमें बांटा और समाज-हितकी व्यवस्था करके अुसके द्वारा लोक-घातक प्रतिस्पर्धाको मिटानेकी चेष्टा की। अिसलिअे अुन्होंने अेक वर्णको समाजकी ज्ञानवृद्धिका, दूसरेको समाजके जानमालका, तीसरेको समाजके व्यापारका और चौथेको समाजके परिचर्यात्मक व्यवहारका रक्षक बनाया। चारों कार्य अमुक प्रमाणमें आवश्यक थे और हैं, अिसलिअे अेकको अुच्च और दूसरेको नीच माननेका कोअी भी कारण न था। तुलाधारका दृष्टांत देकर व्यासजीने यह बताया भी है कि प्रत्येक धर्मी स्वधर्मके पालनसे मोक्ष-पदके लायक बन सकता है और अेक-दूसरेके साथ स्पर्धा करनेसे, अेक-दूसरेको अुच्च-नीच माननेसे अधोगति होती है।

वर्णधर्मके यह माने भी कभी नहीं हैं कि कोअी वर्ण वैयक्तिक श्रमधर्मसे मुक्त है। श्रमधर्म किसी भी वर्णके सब व्यक्तियोंके लिअे है। ब्राह्मणको भी समित्पाणि होकर गुरुके पास जाना पड़ता था, अर्थात् अुसे भी जंगलमें जाकर लकड़ी लानी और गोसेवा करनी पड़ती थी। यह काम वह समाजके लिअे नहीं, किन्तु अपने लिअे, अपने कुटुम्बके लिअे करता था। केवल बच्चे और अपंग ही अिस श्रमसे मुक्त रहते थे।

श्रमधर्ममें से टाल्स्टायने जो आजीविका धर्म प्रस्तुत किया है, वह अेक अुपसिद्धांत है। टाल्स्टायने देखा कि यदि श्रम या मेहनत सबको करना ही है तो अिसका यह अर्थ है कि मनुष्य अपनी आजीविका शारीरिक श्रमसे पैदा करे, बुद्धिबलसे कभी नहीं। वर्णधर्ममें प्रत्येक वर्णका धर्म समाज-हितके लिअे अेक कर्तव्य था और आजीविका अुसमें हेतु नहीं थी। क्षत्रियको धन मिले या न मिले, रक्षा तो करनी ही पड़ेगी। ब्राह्मणको भिक्षा मिले या न मिले, ज्ञान देना ही पड़ेगा। वैश्यको धन मिले या न मिले, कृषि-गोरक्षा करनी ही पड़ेगी। परंतु टाल्स्टायका यह कथन सर्वथा ठीक है कि आजीविकार्थ हरअेकके लिअे शारीरिक श्रम करना आवश्यक है। अिस सर्व-साधारण धर्मका लोप होनेसे अथवा अिसे न जाननेके कारण ही आज अिस जगतमें दुःखद विषमता पायी जाती है। यों तो कुछ विषमता हमेशा रहेगी, किंतु वह विषमता अेक पेड़के विविध पत्तोंके समान सुंदर और सुखद लगेगी। शुद्ध वर्णधर्ममें विषमता है ही, और जब वह अपने शुद्ध रूपमें विद्यमान था तब वह सुखप्रद, शांतिप्रद तथा सुन्दर था। परंतु जब कअी अेक मनुष्य अर्थ-संग्रह ही के कारण अपनी बुद्धिका अुपयोग करते हैं, तब घातक विषमता पैदा हो जाती है। जैसे यदि शिक्षक (ब्राह्मण), सिपाही (क्षत्रिय), व्यापारी (वैश्य) और बढ़अी (शूद्र) समाज-हितके लिअे नहीं, बल्कि धन-संग्रहके लिअे अपना धंधा करें तो वर्णधर्मका लोप हो जाता है। क्योंकि धर्ममें धन-संग्रहको कोअी भी स्थान नहीं हो सकता। समाजमें शिक्षक, वकील, डॉक्टर, सिपाही वगैराकी आवश्यकता है। परंतु जब ये लोग स्वार्थवश काम करते हैं तब समाज-संरक्षक मिटकर समाज-भक्षक बन जाते हैं।

गीताके तीसरे अध्यायमें भगवानने

"सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वं अेष वोऽस्त्विष्ट-कामधुक्॥"

अर्थात् 'यज्ञके साथ साथ प्रजाको पैदा करके प्रजापतिने कहा, अिसीसे तुम्हारी वृद्धि हो, यही तुम्हारी कामधुक् हो।'— यह

कहकर दुनियाके अेक महान सिद्धांतका निरूपण किया है। और अब हम यज्ञका मूल अर्थ भलीभांति समझ सकते हैं। यज्ञका अर्थ शारीरिक कर्म है और यह अीश्वरकी प्राथमिक और प्रथम पूजा है। अीश्वरने हमें देह दी है। अन्नके बिना देह रह नहीं सकती और बिना परिश्रमके अन्न पैदा नही हो सकता। अतअेव शारीरिक श्रम सर्व-साधारण धर्म बना। यही टाल्स्टायका ही क्या, सारे संसारका श्रमधर्म है। अिस महायज्ञको न जाननेके कारण ही दुनियामें राक्षसी-वृत्तिका अुदय हुआ और बुद्धिशाली लोगोंने बुद्धिका अुपयोग दूसरोंको लूटनेके लिअे किया। यह तो स्पष्ट है कि अीश्वर परिग्रही नहीं है। सर्वशक्तिमान होनेके कारण वह प्रतिदिन अितना ही अन्न पैदा करता है जितना प्रत्येक मनुष्य या प्राणीके लिअे काफी हो जाय। अिस महान नीतिको न जानते हुअे कअी लोग अनेक प्रकारके भोग भोगते हैं, अिससे दूसरोंको भूखों रहना पड़ता है। अगर अिस लोभको छोड़कर अैसे लोग अपनी रोटीके लिअे आप परिश्रम करें और आवश्यक रोटी ही खायें, तो जो कंगालियत आज हम देखते हैं, वह नाबूद हो जाय। अब प्रश्नकर्ता समझ गये होंगे कि वर्णधर्म श्रमधर्मका सहवर्ती है, अेक दूसरेका सहायक है और आवश्यक है।

हिन्दी-नवजीवन, १३–२–'३०

(३)

प्र० —— चारों वर्णोंके गुण किसी अेक ही व्यक्तिमें पाये जायें यह है तो अच्छा, पर क्या अधिकांश मनुष्य-समाज अैसा बन सकता है, और क्या समाजके सामने यह आदर्श रखना अुचित है?

अु० —— कअी गुणकर्म तो सब वर्णोंके लिअे समान हैं ही, और होने चाहिये, लेकिन सब वर्णोंके सब गुण सबमें आना अनावश्यक और असंभव है।

प्र० —— टाल्स्टायका श्रमधर्म यदि सर्वमान्य हो अुठे, तो 'जब लग ताजा पोहौं बेही, तब लग भूलैं राम सनेही' कहनवाले कबीरका और पुष्पकी भांति सप्रतीक्ष भावसे बैठनेकी मनोकामनावाले रवींद्रका

अिस दुनियामें रहना दूभर न हो जायगा और क्या यह संसारके लिअे दुःखकी बात न होगी ?

अु० — श्रमधर्म कबीर या रवींद्रनाथके सिद्धांतोंका खंडन करनेवाला नहीं है, बल्कि अुन दोनोंके काव्यको अधिक शक्तिशाली और शोभास्पद बनानेवाला है। श्रमधर्म बौद्धिक शक्तिका ह्रास नहीं करता, अुलटे अुसका सच्चा पोषक है। भेद मात्र अितना ही है कि श्रमधर्मका अुपासक अकेली काव्य-रचना ही से अपनी आजीविका कभी पैदा नहीं करेगा और न श्रमका सर्वथा त्याग ही करेगा। कबीर श्रमधर्मके पोषक थे ही। अुन्होंने भजनादि बनाकर कभी कौड़ी भी नहीं कमाअी थी। वह कपड़ा बुनकर अपनी रोटी कमाते थे। धर्म-प्रचार अुनका स्वभाव या मनोरंजनका विषय बन गया था। रवींद्रनाथ अिस युगके कवि-श्रेष्ठ हैं, क्योंकि काव्य-रचना द्वारा वह अपने गुजारेके लिअे धन नहीं कमाते। काव्य-रचनासे अुन्हें जो कुछ आमदनी होती है, सो सब वह अपनी संस्थाको दे डालते हैं। अुनकी अपनी जायदादमें से अुनका निर्वाह होता है। वह श्रमधर्मको कहां तक मानते हैं, सो मैं नहीं जानता; अितना जरूर जानता हूं कि वह श्रमधर्मके निंदक कदापि नहीं हैं। अितिहाससे हमें पता चलता है कि प्राचीन कवियों अर्थात् ज्ञानियोंने श्रमधर्मका पालन किया है, फिर भले वह अनजाने ही क्यों न हो। फलस्वरूप अुनकी प्रसादी आज भी मौजूद है।

प्र० — श्रमधर्मके अनुसार तो अीसा और बुद्ध और स्वयं टाल्स्टाय भी दोषी ही रहते हैं। टाल्स्टायकी स्त्रीने ही कहा है कि पुस्तकें लिखनेके सिवा अिनसे कोअी काम नहीं हो सकता। लोगोंकी हंसी प्राप्त करने लायक बढ़अीगिरी या दूसरे काम अुन्होंने सीखे हों सही, पर अिससे टाल्स्टायका श्रमधर्म संतुष्ट नहीं हो सकता। क्या अिसीलिअे अिस पर सावधानीपूर्वक विचार करनेकी जरूरत नहीं है ?

अु० — अिस मंतव्यमें अितिहासकी विस्मृति है। अीसा तो बढ़अी थे। अुन्होंने बौद्धिक शक्तिको अपनी आजीविकाका साधन कभी नहीं बनाया था। बुद्धदेवने ज्ञानप्राप्तिसे पहले कितना परिश्रम

किया था, सो हमें मालूम नहीं है। हां, अितना हम जानते हैं कि अुन्होंने अपनी आजीविकाका अुपार्जन धर्म-प्रचार द्वारा नहीं किया, वह भिक्षान्न खाते थे। अुससे श्रमधर्मको कोअी हानि नहीं पहुंच सकती थी। परिव्राजकको काफी शारीरिक श्रम अुठाना पड़ता है। अब रहे टाल्स्टाय, सो अुनकी धर्मपत्नीने जो कुछ कहा है, वह सत्य है, परंतु पूर्ण सत्य नहीं है। विचार-परिवर्तनके बाद टाल्स्टायने जो पुस्तकें लिखी थीं, अुनकी आयमें से अपने लिअे अुन्होंने कुछ नहीं लिया था। लाखोंकी जायदादके मालिक होते हुअे भी वे अपने घरमें मेहमान बनकर रहते थे। ज्ञानप्राप्तिके बाद वह हर रोज आठ घंटोंकी मजदूरी करते थे। कभी खेत पर जाते थे तो कभी घरमें बैठकर जूते बनाते थे। अिन कामोंसे कुछ नहीं तो भी अपने पेटके लिअे आवश्यक मजदूरी वह अवश्य पा जाते थे। टाल्स्टाय जो कहते थे, वह करनेकी भी बहुत चेष्टा करते थे। यह अुनकी विशेषता थी। अिस सारे कथनका निचोड़ यह है कि जिस धर्मका पालन प्राचीन लोगोंने स्वतः किया और जिसका पालन आज भी जगतका अधिकांश करता है अुस श्रमधर्मको अुन्होंने जगतके सामने स्पष्ट रूपमें रखा है। सच तो यह है कि श्रमधर्म टाल्स्टायकी मौलिक शोध नहीं, शोध थी रूसके अेक महान लेखक बुरनाफ़की। टाल्स्टायने अुसको बल दिया और जगतके सामने जाहिर किया।

हिन्दी-नवजीवन, २०-२-'३०

(४)

प्र० — टाल्स्टायने लिखा है: 'पैसा और गुलामी अेक ही वस्तु है — अिसके अुद्देश्य अेक हैं और अिसके परिणाम भी अेकसे हैं। . . . रुपया गुलामीका नया और भयंकर स्वरूप है और पुरानी व्यक्तिगत दासताकी भांति यह गुलाम और मालिक दोनोंको पतित और भ्रष्ट बना देता है। अितना ही क्यों? यह अिससे भी अधिक बुरा है, क्योंकि गुलामीमें दास और स्वामीके बीच मानव-संबंधकी जो स्निग्धता रहती है, यह अुसे भी नष्ट कर देता है।'

क्या आप अिस बातसे सहमत हैं? क्या रुपया निर्दोष विनिमयका साधन कभी नहीं बन सकता? यदि बन सकता है तो कैसे, और नहीं तो क्यों?

अु० —— प्रश्नकर्ताने जैसा लिखा है यदि वही बात टाल्स्टायने कही हो तो मुझे वह मालूम नहीं है। गुलामी और पैसा सजातीय शब्द नहीं हैं, अिसलिअे अिन दोनोंमें मुकाबला नहीं हो सकता। गुलामी मनुष्यकी अेक स्थिति है और हमेशा त्याज्य है। पैसा जगतके साथ अपना आर्थिक व्यवहार चलानेका अेक साधन-मात्र है। फिर भले यह कितना ही बलवान साधन क्यों न हो; अुससे जितनी बुराअीकी संभावना है अुतनी ही भलाअी भी हो सकती है। यही बात दूसरे बहुतेरे जड़ साधनोंके लिअे भी कही जा सकती है। किसी न किसी हालतमें और किसी न किसी रूपमें पैसेकी आवश्यकता तो रहेगी ही। गुलामीकी आवश्यकता न कभी थी, न रह सकती है। यहां पैसेका अर्थ समझ लेना चाहिये। जब मैं अनाज देकर जूते खरीदता हूं, तो जूते खरीदनेका साधन होनेके कारण अनाज पैसा बन जाता है। मगर चूंकि बहुतेरे लोगोंके लिअे अनाजके जरिये लेन-देन चलाना मुश्किल होता है, संज्ञा-रूपसे धातुका या कागजका अुपयोग हो सकता है। यह धातु अथवा कागज ही पैसा है। अिसमें कोअी बाधा नहीं पड़ सकती। किन्तु जब कोअी मनुष्य अैसे कागज, धातुके सिक्के या अनाजका आवश्यकतासे ज्यादा संग्रह करता है तब बुराअी पैदा होती है। अिससे यह सिद्ध होता है कि स्वयं पैसेमें कोअी दोष नहीं है, परन्तु अुसके लोभमें दोष है। ठीक अिसके अुलटे गुलामी लोभकी निशानी है। अेक भी आदमीको गुलाम बनाकर रखनेमें लोभ है, दोष है। मगर पैसा या धनका अधिक मात्रामें रखना दोष है।

परन्तु जो मनुष्य वर्णधर्मको समझता है, वह संतुष्ट रहता है, अिसीलिअे वह धनका लोभ भी नहीं करेगा। और जो मनुष्य श्रमधर्म समझेगा वह किसीको गुलाम बनाकर नहीं रखेगा।

हिन्दी-नवजीवन, २७–२–'३०

८९

गंदा साहित्य

कोअी देश और कोअी भाषा गंदे साहित्यसे मुक्त नहीं है। जब तक स्वार्थी और व्यभिचारी लोग दुनियामें रहेंगे, तब तक गंदा साहित्य प्रकट करनेवाले और पढ़नेवाले भी रहेंगे। लेकिन जब अैसे साहित्यका प्रचार प्रतिष्ठित माने जानेवाले अखबारोंके द्वारा होता है, और अुसका प्रचार कलाके नामसे या सेवाके नामसे किया जाता है, तब वह भयंकर स्वरूप धारण करता है। अिस प्रकारका गंदा साहित्य मुझे मारवाड़ी समाजकी तरफसे मिला है और प्रतिष्ठित मारवाड़ी लोगोंकी ओरसे प्रकाशित अेक वक्तव्यकी प्रति भी मुझे भेजी गअी है। अिस वक्तव्यमें मारवाड़ी समाजको जागृत किया गया है और बताया गया है कि अैसे साहित्यका, जो कलाके नामसे परन्तु केवल धन कमानेके लिअे प्रकट होता है, समाजको बहिष्कार करना चाहिये। जिस पत्रको विशेषतया ध्यानमें रखकर यह वक्तव्य प्रकट किया गया है, वह 'चांद' नामक मासिकका 'मारवाड़ी अंक' है। मैं अुसे पूरा पढ़ नहीं सकता और न पढ़नेकी अिच्छा ही है, लेकिन जो कुछ मैं पढ़ सका हूं, वह अितना गंदा और बीभत्स है कि कोअी भी मनुष्य, जिसके दिलमें विवेक है या समाजके हितका जरा भी खयाल है, कभी अैसी बातें प्रकाशित नहीं करेगा। सुधारके नामसे अैसी चीजोंका प्रकट करना अनावश्यक और हानिकारक है। 'चांद' के समान गंदे गीत गानेवाले लोग अखबार नहीं पढ़ा करते। पढ़नेवाले दो प्रकारके ही हो सकते हैं। अेक पढ़े-लिखे कामुक लोग, जो अपनी वासनाको किसी न किसी प्रकार तृप्त करना चाहते हैं; दूसरे निर्दोष-बुद्धि, जो आज तक व्यभिचारमें फंसे नहीं हैं, परन्तु जिनकी बुद्धि परिपक्व भी नहीं है, जो लालचमें पड़कर विकारवश हो सकते हैं। अैसे लोगोंके लिअे गंदा साहित्य घातक है। यही सब लोगोंका अनुभव

भी है। मुझे अुम्मीद है कि प्रतिष्ठित मारवाड़ी सज्जनोंके वक्तव्यका असर 'चांद' के संपादक अित्यादि पर होगा, वे अपने अिस अंकको वापस ले लेंगे और दुबारा अैसा गंदा साहित्य प्रकट न करनेकी कृपा करेंगे। अिससे भी बढ़कर कर्तव्य तो अिस बारेमें मारवाड़ी समाजका और सर्व-साधारण समाजका है। वह अैसा गंदा साहित्य न कभी खरीदे और न पढ़े ही। हिन्दी पत्रोंके संपादकोंके सर पर दोहरा बोझ है। क्योंकि हिन्दीको हम राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं और अिसलिअे अिस भाषाकी रक्षा करनेका विशेष धर्म अुन्हें प्राप्त होता है। मेरे-जैसा राष्ट्रभाषाका पुजारी राष्ट्रभाषामें अुत्कृष्ट विचारोंको प्रकट करनेवाली पुस्तकोंकी ही प्रतीक्षा करेगा। अिसलिअे यदि सम्भव हो तो हिन्दी साहित्य सम्मेलनको अेक भाषा-समिति नियुक्त करनी चाहिये, जिसका धर्म प्रत्येक नअी पुस्तककी भाषा, विचार आदिकी दृष्टिसे परीक्षा करना हो। अिस परीक्षामें जो पुस्तकें सर्वोत्तम मानी जायं और जो गंदी ठहरें, समिति अुनकी अेक फेहरिस्त तैयार करे और अच्छी पुस्तकोंका प्रचार तथा गंदी पुस्तकोंका बहिष्कार करनेके लिअे जनताको प्रेरित करे। अैसी समिति तभी सफल हो सकती है, जब अुसके सदस्य साहित्य-ज्ञान और साहित्य-सेवाके लिअे ही अपने-आपको अर्पित कर दें।

हिन्दी-नवजीवन, ६–३–'३०

१०

बंगाल-आसाममें हिन्दी

पाठकोंको पता होगा कि सन् १९२८ में कलकत्तेमें अेक हिन्दी-प्रचार-समिति स्थापित की गअी थी। समितिके कोषाध्यक्ष श्री घनश्यामदास बिड़ला थे। अिस समितिके कार्यका विवरण और हिसाब मेरे पास आ गया है। विवरणमें से निम्नलिखित बातें नीचे देता हूं:

"संमेलनकी ओरसे फरवरी मासमें ही कलकत्तेमें चार पाठशालाअें खोली गअीं — बैठकखाना रोड, भवानीपुर, बागबाजार और प्रवासी कार्यालय। अिनमें कोअी ६० विद्यार्थियोंने नाम लिखाये। प्रवासी कार्यालयवाली पाठशाला शीघ्र ही बन्द कर देनी पड़ी, क्योंकि वहांके विद्यार्थी अितने व्यस्त थे कि अुन्हें समय ही नहीं मिला। शेष पाठशालाओंमें से बैठकखाना रोडकी पाठशाला आगे चलकर आर्य समाजवाली पाठशालामें मिला दी गअी। कलकत्तेमें तथा बाहर अन्यान्य पाठशालाअें खोलनेका भी शीघ्र प्रयत्न किया जाने लगा और परिणाम यह हुआ कि अप्रैलके अंत तक अिन पाठशालाओंके अतिरिक्त दो नअी पाठशालाअें खोली गअीं — अेक आर्य समाज मंदिर, कलकत्तामें और अेक खादी प्रतिष्ठान, सोदपुरमें। अिनके अतिरिक्त बोगरा, दीनाजपुर, बांकुरा, रानीगंजकी चार पाठशालाअें सम्मेलनसे सम्बद्ध कर ली गअीं। धीरे-धीरे आंदोलन आगे बढ़ाया गया और जुलाअीके अन्त तक अुपरोक्त दस पाठशालाओंके अतिरिक्त पांच नअी पाठशालाअें और खुलीं। अेक कलकत्तेमें शिमला व्यायाम समितिमें और चार बाहर — रंगपुर, ढाका, जैसोर और मैमनसिहमें खुलीं। अिन पाठशालाओंमें ढाका और रंगपुरमें सम्मेलनके प्रचारक स्वयं काम कर रहे हैं। दूसरी जगहों पर वहांके अुत्साही निवासी काम संभाले हुअे हैं।

अिसके बाद भी प्रचार-कार्य बराबर जारी रहा और नवम्बरके अन्त तक तीन नअी पाठशालाअें और खुलीं —— अेक पल्ली संस्कार समिति कार्यालय कलकत्तामें, और दूसरी नवद्वीप तथा जमालपुरमें। जमालपुरके अुत्साही निवासियोंने हिन्दी पुस्तकालय खोलनेके लिअे अेक जमीनका टुकड़ा भी खरीद लिया है।

"अिन अठारह पाठशालाओंमें से रंगपुर, ढाका, बागबाजार, भवानीपुर और बैठकखाना रोडकी पाठशालाओंका खर्च सम्मेलनके जिम्मे रहा। शेष स्थानोंके खर्चका भार तत्स्थानीय सज्जनोंने ही संभाला। अिस समय कुछ सज्जन सहायताके रूपमें कुछ चाहते हैं। अुनसे लिखा-पढ़ी हो रही है। प्रायः सर्वत्र प्रयत्न यह किया जा रहा है कि जहां पाठशालाअें हों वहांसे ही अुन पाठशालाओंका खर्च निकाला जाय। अिसके अनुसार प्रचारकोंको हिदायत भी दी जा चुकी है।

"पाठशाला खोलनेके अतिरिक्त अपने अनुकूल वायुमण्डल तैयार करनेके लिअे प्रचार-कार्य भी विशेष रूपसे किया गया। अिसके लिअे कअी सार्वजनिक सभाअें करके, समय-समय पर समाचार-पत्रोंमें विज्ञप्तियां और लेख प्रकाशित करवाकर तथा प्रचार-संबंधी यात्राअें करके और सार्वजनिक संस्थाओंमें अिस आन्दोलनके अनुकूल प्रस्ताव पास करके प्रचार किया गया। रंगपुरमें बंगाल प्रांतीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन भी किया गया। अिस अधिवेशनका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। अिससे प्रांतके कोने कोनेमें हमारी आवाज पहुंची और अिसके बाद वाले दौरेमें जब हम लोग जैसोर, झालाकोटी, बारीसाल आदि गये तो परिस्थिति बहुत कुछ अनुकूल पाअी। अिन कामोंके अलावा तुलसी-जयंतीका अुत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया गया। अिस अवसर पर अेक कवि-सम्मेलन भी किया गया। यात्राओंसे प्रचार-कार्यको सबसे अधिक सहायता मिली। हिन्दीकी आवश्यकता अब प्रायः सभी अनुभव करते हैं और वह अवस्था आ गअी है, जब प्रत्येक जिलेमें अेक

केन्द्र स्थापित हो सकता है। सम्मेलनकी ओरसे छात्रवृत्ति देकर चार प्रचारक तैयार किये गये हैं। अिनमें से दो रंगपुर और ढाकामें काम कर रहे हैं, अेक सज्जन चांदपुरमें हैं और अेक फिलहाल कलकत्तेमें ही काम करते हैं।

"आसामका हिन्दी-प्रचार कार्य अधिकांशमें श्री लक्ष्मी-नारायण शास्त्री पर ही निर्भर है। वह बड़े परिश्रम और अध्यवसायके साथ काम कर रहे हैं। पहलेसे स्वतंत्र रूपसे काम करते रहनेके कारण अुनको अनुभव भी है, अतः वह काममें सफल हो रहे हैं। अुन्होंने ११ स्कूल खोले हैं, जिनमें से प्रत्येकमें औसतन ३०–४० विद्यार्थी पढ़ते हैं। पिछले दिनों दिवालीके अवसर पर अुन्होंने सफलतापूर्वक आसाम प्रान्तीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन भी किया। खर्चका प्रबंध वे किसी तरह वहींसे कर लेते हैं। किन्तु अब खर्च चलानेमें कठिनाअी हो रही है। अतः वह भी सहायताके लिअे लिखा-पढ़ी कर रहे हैं। संक्षेपमें पिछले सालका यही कार्यविवरण है।

"अिस समय सम्मेलनकी आर्थिक अवस्था खराब है और अिसलिअे काम आगे बढ़ानेसे रोकना पड़ रहा है। खर्च कम करनेके विचारसे पिछले अक्तूबर महीनेसे मंत्रीने दो प्रचारकोंका खर्च, जिसे देनेमें कार्यसमिति असमर्थ थी, अपने अूपर ले लिया है। भवानीपुरकी पाठशालाके लिअे अध्यापकका जो खर्च लगता है, वह भी मंत्री अपनी जेबसे ही देते हैं। धनाभावको मिटानेका प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है, शीघ्र ही यह संकट दूर होगा।"

अिससे मालूम होता है कि काम कुछ न कुछ अंशमें हो रहा है। अिस कार्यके और भी बढ़नेकी बहुत गुंजाअिश है। प्रत्येक पाठशालाका खर्च स्थानिक मददसे पूरा करनेका प्रयत्न किया जा रहा है, और यह स्तुत्य है। अिसी तरह सफलता प्राप्त हो सकती है। आरंभ भले ही मुख्य केन्द्रसे किया जाय। अंतमें तो सारा स्थानिक कार्य स्वावलंबी ही बन जाना चाहिये। तभी प्रचार-कार्य विस्तृत और स्थायी

रूप पकड़ सकता है। बंगाल और आसाम अैसे क्षेत्र हैं, जिनमें हजारों लोगोंको हिन्दी पढ़ाअी जा सकती है। अिस कार्यके दो विभाग तो हैं ही: अेक शिक्षा और दूसरा स्थानिक सम्मेलनका व्याख्यान द्वारा प्रचार-कार्य। अेक तीसरे विभागकी और आवश्यकता है, और वह है शिक्षाको सुलभ करनेके अुपायोंका संशोधन। तज्ञ और तत्परायण शिक्षक शिक्षणक्रमको शीघ्रतासे सफल करनेके लिअे प्रतिदिन अुपायोंकी खोज करते रहते हैं। बंगला और आसामी भाषाओंके बहुतेरे शब्द हिन्दीसे मिलते-जुलते हैं। अिस विषय पर परिचय करानेवाली पुस्तकें लिखना, स्वयं-शिक्षक तैयार करना, हिन्दी-बंगला और बंगला-हिन्दीके छोटे-छोटे शब्दकोष प्रकट करना और नागरी लिपिमें बंगला पुस्तकें तथा बंगला लिपिमें हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करना आदि काम बहुत ही जरूरी हैं। अैसी पुस्तकें स्वावलंबी बन सकती हैं, जैसे कि मद्रासमें आज लगभग बन चुकी हैं। जब पुस्तकें सचमुच ही अुपयोगी और अच्छी होती हैं, तब अुनकी प्रतिष्ठा अपने-आप बढ़ जाती है और लोगोंसे अुन्हें प्रोत्साहन भी खूब मिलता है।

अेक बात और। बंगाल मारवाड़ी व्यापारियोंका अेक बड़ा केन्द्र है। बंगालमें हिन्दी-प्रचारका काम अिन्हीं भाअियोंकी अेक खास जिम्मेदारी है। अतः अिस प्रचार-कार्यमें धनाभावके कारण कोअी रुकावट नहीं पड़नी चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन, १३–३–'३०

९१

स्वराज्य और रामराज्य

स्वराज्यके कितने ही अर्थ क्यों न किये जायं, मैं भी अुसके कितने ही अर्थ क्यों न बताता रहा हूं, तो भी मेरे नजदीक तो अुसका त्रिकाल-सत्य अेक ही अर्थ है, और वह है रामराज्य। यदि किसीको रामराज्य शब्द बुरा लगे तो मैं अुसे धर्मराज्य कहूंगा। रामराज्य शब्दका भावार्थ यह है कि अुसमें गरीबोंकी संपूर्ण रक्षा होगी, सब कार्य धर्मपूर्वक किये जायंगे और लोकमतका हमेशा आदर किया जायगा। पर रामराज्यकी प्राप्तिके लिअे सब लोगोंको हाथ बंटाना चाहिये। अिस कामके लिअे हमारे पास खादी ही अेक सर्व-व्यापक और रचनात्मक साधन है। लेकिन लोगोंकी शक्तिको बढ़ानेके लिअे किसी दूसरी व्यापक वस्तुकी भी आवश्यकता थी। नमक-कर वह वस्तु है, और हम अुसे पा चुके हैं। नमकका अुपयोग तो गरीब और अमीर, दोनों, समान रूपसे करते हैं, और चूंकि अिस सर्वोपयोगी, सबके लिअे आवश्यक वस्तु पर कर लगाया गया है, हरअेक मनुष्य नमक-करके अिस कानूनका सविनय भंग कर सकता है, और यों अपनी शक्ति बढ़ा सकता है। अिस तरहके सविनय भंगसे जो शक्ति बढ़ेगी, अुसके शांतिमय और शांतिप्रद होनेके कारण रामराज्य स्थापित करनेमें अुससे हमें बड़ी मदद मिलेगी। नमक-करके समान और भी अनेक कर हैं, जो जनताके लिअे भाररूप हैं और जिन्हें मिटानेका प्रयत्न करनेसे लोगोंको सच्ची शिक्षा मिल सकती है, अुनकी शक्ति बढ़ सकती है। अैसे साधनोंसे रामराज्यकी स्थापना आसान हो जायगी। पूर्ण रामराज्य हमें कब मिलेगा, सो तो कोअी नहीं कह सकता। परन्तु रातदिन अुसीकी रट लगाये रहना हम सबका धर्म है। और सच्चा चिंतन तो वही है, जिसमें रामराज्यके लिअे योग्य साधनका भी अुपयोग किया गया हो। यह याद रहे कि रामराज्य

स्थापित करनेके लिअे हमें पाण्डित्यकी कोअी आवश्यकता नहीं है। जिस गुणकी आवश्यकता है, वह तो सब वर्गोंके लोगोंमें — स्त्री, पुरुष, बालक और बूढ़ोंमें — तथा सब धर्मोंके लोगोंमें आज भी मौजूद है। दुःख मात्र अितना ही है कि सब कोअी अभी अुसकी हस्तीको पहचानते नहीं हैं। क्या सत्य, अहिंसा, अनुशासन या मर्यादा-पालन, वीरता, क्षमा, धैर्य आदि गुणोंका हममें से हरअेक, यदि वह चाहे तो, आज ही परिचय नहीं दे सकता? बात यह है कि हम लोग माया-जालमें फंसे हुअे हैं, और अिसी कारण अपने पासकी चीजको पहचान नहीं रहे हैं, अुलटे दूरकी चीजोंको पहचाननेका निरर्थक दावा करते हैं। निःसंदेह यह बड़े शोककी बात है।

पर तो भी 'हिन्दी-नवजीवन' के पाठकोंसे मैं प्रार्थना करूंगा कि आज देशमें जो महायज्ञ आरंभ हो चुका है, अुसमें वे पूरी तरह हाथ बंटानेको तैयार रहें।

हिन्दी-नवजीवन, २०–३–'३०

९२

तलवारका न्याय

अेक अध्यापक महोदय लिखते हैं:

"ब्रिटिश शासनमें भारतवर्षका भूमिकर जमीनका भाड़ा है या टैक्स, यह अेक जटिल समस्या है। टैक्स तो यह हो नहीं सकता, क्योंकि सरकारकी मालगुजारी छोटेसे छोटे किसानसे भी, जिसकी खेतीकी आय अुसके भरण-पोषणके लिअे भी पर्याप्त नहीं है, बराबर वसूल की जाती है। भू-भाड़ेका सिद्धान्त भी नहीं ठहरता, क्योंकि अिसके अनुसार तो देशकी सारी जमीनकी मालिक सरकार हो जाती है, और लोगोंको खेती करनेके लिअे अुसीसे अुसके नियत किये हुअे भारी भाड़े पर जमीन लेनी

पड़ती है। किसानोंको यह मौका ही नहीं कि वे अिस बातकी चेष्टा कर सकें कि जहांसे सस्ते भाड़े पर जमीन मिल सके वहांसे लें। हमारी सरकार अिस समस्याको यह कहकर टालती रही है कि अुसने तो अपने पूर्वज मुगल बादशाहोंकी ही परिपाटीका अनुसरण किया है। मुगलोंके बन्दोबस्तके आधार पर ही अुसने अपनी मालगुजारी नियत की है। यह बात कहां तक ठीक ठहरती है, यही नीचे बताया जाता है।

"श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त लिखित 'अिंडिया अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल' पुस्तकके पृष्ठ ८५ से मुगल बादशाहोंके शासन-कालके विभिन्न समयकी बंगाल प्रान्तकी मालगुजारीके बंदोबस्त-संबंधी अंक नीचे दिये जाते हैं :

बंदोबस्तका विवरण	वर्ष (अीस्वी)	मालगुजारी (रुपयोंमें)	वृद्धि या कमी	समय वर्ष
अकबरके समयमें राजा टोडरमल द्वारा बंदोबस्त	१५८२	१,०६,९३,१५२	--	--
सुल्तान शुजा द्वारा	१६५८	१,३१,१५,९०७	२४,२२,७५५ वृद्धि	७६
जफरखां द्वारा	१७२२	१,४२,८८,१८६	११,७२,२७९ वृद्धि	६४
शुजाखां द्वारा	१७२८	१,४२,४५,५६१	४२,६२५ कमी	६

"अिन अंकोंसे मालूम होता है कि राजा टोडरमलके बंदोबस्तसे सुलतान शुजा तक अर्थात् ७६ वर्षमें मालगुजारीकी वृद्धि केवल २४ लाख २२ हजार रुपये हुअी थी। मुगलकालकी अिस वृद्धिके मुकाबलेमें अंग्रेजी राज्यके शासन-कालके अंकोंका अब मिलान कीजिये। सन् १८७४ अी० में अंग्रेजी राज्यका भारतवर्षमें विस्तार प्राय: पूर्ण हो चुका था, अिसलिअे अुससे आगेकी तुलना करनेमें हमें कोअी दिक्कत नहीं पड़ती। नीचे अंग्रेजी राज्यमें भारतवर्षकी कुल मालगुजारीके कुछ अंक दिये जाते हैं :

वर्ष	मालगुजारी (रुपयोंमें)	वृद्धि	समय
१८७४ अी०	१७ करोड़ ८८ लाख	—	—
१८९८ अी०	२३ " ३६ "	५ करोड़ ४८ लाख	१४ वर्ष
१९१३ अी०	२८ " ५ "	४ " ६९ "	१४ "
१९२० अी०	२९ " १ "	१ " ० "	७ "
१९२९ अी०	३६ " ५२ "	७ " ५२ "	९ "

"अिन अंकोंमें से पहले चार अध्यापक सी० अेन० वकीलके दिये हुअे हैं, और पिछला 'टाअिम्स ऑफ अिंडिया' की सन् १९२९ की 'अिंडियन अीयरबुक' से लिया है। अिन अंकोंसे विदित होता है कि जहां मुगल शासनकालमें ७६ वर्षोंमें केवल २४ लाख रुपयोंकी ही वृद्धि भूमिकरसे हुअी थी, वहां ब्रिटिश हुकूमतके अंदर सन् १८७४ अी० से १९२९ तक केवल ५५ वर्षों ही में मालगुजारीकी वृद्धि पूरे १८ करोड़ ५५ लाख रुपयोंकी हो गअी। मुगलोंके समयमें जहां ७६ वर्षोंमें वृद्धि केवल २३ फीसदी हुअी थी, वहां अंग्रेजी कालमें ६५ वर्षोंमें १०० फीसदीसे भी अधिक वृद्धि हो गअी है।

"मालगुजारीकी वसूलीके अंक लिये जायें तो और भी भारी और प्रत्यक्ष अंतर दिखलाअी पड़ेगा। बंगाल प्रान्त अंग्रेजी राज्यमें सन् १७६५-६६ अी० से आया। अुससे कुछ वर्ष पहले मुसलमान नवाबके समयकी मालगुजारीकी वसूलीके बंगाल प्रान्तके अंक तथा साथ ही अंग्रेजी आधिपत्यमें आने पर वसूलीके अंक नीचे सर जॉन शोरके खरीतेसे दिये जाते हैं:

सन्	कुल मालगुजारी (रुपयोंमें)	वसूली कितनी हुअी (रुपयोंमें)
१७६२-६३	१,४२,४५,५६१	६४,५६,१९८
१७६३-६४	"	७६,१८,४०७
१७६४-६५	"	८१,७५,५३३
	अंग्रेजी आधिपत्य कायम होने पर	
१७६५-६६	"	१,४७,०४,८७५

"अिन अंकोंसे विदित होता है कि मुसलमानी शासनकालमें बंदोबस्तके अनुसार जितनी मालगुजारी थी, वह सब वसूल किसी भी वर्ष नहीं होती थी, वह केवल नाममात्रकी ही थी। और सिर्फ अुसकी आधी ही के करीब वसूल होती थी। अंग्रेजी शासनमें यह बात नहीं है। आजकल तो दुर्भिक्ष कालमें भी मालगुजारीकी वसूली पूरी कठोरतासे की जाती है।

"भारतके गरीब किसानों पर अंग्रेजी राज्यमें भूमि-करकी भारी कठोरताके संबंधमें सन् १८७५ अी० के भारत-सचिव लार्ड सेलिसबरी तकने अपने अेक खरीतेमें अिस प्रकार लिखा है:

"'भारतवर्षमें यह अच्छा सिद्धान्त नहीं कि सरकारी आयका अधिकांश भाग मालगुजारीके रूपमें गांवोंसे वसूल किया जाय, जहां पर कि रुपये और पूंजीकी नितांत कमी है, और शहरोंको अेक तरहसे ढीला छोड़ दिया जाय, जहां कि धन बहुत है और बहुतसा भोग-विलासोंमें व्यर्थ नष्ट होता है। **यदि भारतवर्षका खून चूसना ही** है तो छुरा अुन्हीं स्थानों पर चलाया जाय जहां पर खून बहुत जमा है या काफी है, अुन भागों पर नहीं जो पहले ही अुसकी कमीके कारण कमजोर हैं।'"

अिस लेखको पढ़कर मुझे मेमने और भेड़ियेके किस्सेका स्मरण हो आया। भेड़िया किसी न किसी तरह मेमनेको खा जाना चाहता था, परन्तु किसी न्याय्य बहानेकी खोजमें था। जब कोअी ठीकसा बहाना न मिला तब मेमनेके बापदादोंका दोष बताकर अुसने अुसे मार खाया। लोगोंके पास जमीन है, परन्तु न्यायतः अुसका मालिक कौन है, अिस सवालकी छानबीनसे सल्तनतको क्या वास्ता? सल्तनत तो रुपयोंकी भूखी है और तलवारके बलसे रुपये वसूल करती है। धारासभामें नौकरशाही लंबी-चौड़ी बहस होने देती है, पर अुस बहसके पीछे विश्वास तो यह रहा है कि आखिर सरकारकी माल-गुजारीमें कुछ कमी नहीं होगी, फिर भले ही जमीन किसीकी क्यों न मानी जाय।

अिसलिअे हमारे सामने सच्चा सवाल तो यह है कि हम अिस तलवार-बलका मुकाबला कैसे करें? क्या तलवारसे करेंगे? यदि तलवार-बलका मुकाबला तलवारसे ही करना है, तो अभी हमें वर्षों तक गुलामीमें रहना पड़ेगा। क्योंकि कैसा भी शासन क्यों न हो, मालगुजारी भरनेवाले करोड़ों किसानोंका तलवार-बल अेक ही दिनमें कभी बढ़ नहीं सकता। जमीन पर किसानका स्वामित्व सिद्ध करनेका अेक ही मार्ग है और वह यह है कि किसानोंमें सत्याग्रहका मंत्र फूंक दिया जाय। यह अेक अैसा बल है जो सबमें छिपा हुआ है। किसानको अिस बलका ज्ञान-भर हो जाना चाहिये। यदि किसान यह समझ ले कि शांतिपूर्वक अन्यायका विरोध करनेसे अुसकी जमीन अुससे कोअी नहीं छीन सकता, तो वह कदापि अन्यायके वश नहीं होगा। अिसी सत्याग्रहका सबक आज सारा हिन्दुस्तान सीख रहा है। यदि अिस पाठशालामें किसान भी शामिल हो गये तो अच्छा ही है। अुस हालतमें जमीनके स्वामित्वकी यह जटिल समस्या अपने-आप हल हो जायगी।

हिन्दी-नवजीवन, २७-३-'३०

९३

मद्यपान-निषेध

पंडित देव शर्मा 'अभय' हरिद्वारके अिर्दगिर्द मद्यपान-निषेधके लिअे कुछ आन्दोलन करना चाहते हैं। मैंने अुन्हें यह कहकर अपनी संमति दे दी है कि यदि अुनमें आत्मविश्वास हो तो वह अवश्य ही अिस कामको अुठा लें। असहयोगकी कल्पनाकी अुत्पत्ति आत्मशुद्धिकी भावनामें से हुअी है। अिसीलिअे सन् १९२१ में मद्यपान-निषेधका प्रचण्ड आन्दोलन शुरू हुआ था और अुसमें सफलता भी ठीक-ठीक मिली थी। बादमें यह आन्दोलन बंद करना पड़ा या अपने-आप ही बंद हो गया, क्योंकि अुसमें अशुद्धि यानी बलात्कारने प्रवेश कर लिया था।

अबकी बार लोग जान गये हैं कि बलात्कारसे कभी सच्ची सफलता प्राप्त नहीं होगी। अिसलिअे जहां अशांतिका कुछ भी भय नहीं है और काफी स्वयंसेवक मिल सकते हैं, वहां मद्यपान-निषेधका आंदोलन शुरू किया जा सकता है और किया जाना चाहिये।

यह आन्दोलन तीन प्रकारसे किया जा सकता है:

१. शराब पीनेवालोंके घर जाकर अुन्हें समझानेसे;

२. शराबखानोंके मालिकोंको अपनी दुकानें बंद करनेको समझा-बुझाकर; और

३. शराबकी दुकानोंके आसपास धरना देकर।

ये तीनों कार्य साथ साथ भी किये जा सकते हैं। पहले दोमें तो किसी प्रकारका खतरा ही नहीं है। तीसरेमें बलात्कारका भय जरूर है। संभव है कि अिस बारेमें सरकार मुमानियतका हुक्म निकाले। यदि अैसा कोअी हुक्म निकला भी तो अुसमें डरकी कोअी बात नहीं है। अैसे हुक्मका अनादर करनेसे सहज ही सविनय भंग हो सकता है।

जाहिर है कि अिस तरह पिकेटिंगका काम हरअेक आदमी नहीं कर सकता, और न हरअेक जगह ही यह काम हो सकता है। अिसलिअे यह आन्दोलन बहुत ही मर्यादित होगा। परंतु मर्यादित होते हुअे भी यह काम निहायत अच्छा है और अिसका नतीजा भी अच्छा हो सकता है। अतअेव यदि कोअी व्यक्ति आत्मविश्वासपूर्वक अिस आंदोलनका संचालन करेंगे, तो अुससे मुझे हर्ष ही होगा।

हिन्दी-नवजीवन, ३-४-'३०

१४

कुछ शर्तें

पूर्ण स्वराज्य पाना कठिन है और सहल भी। कठिन है, यदि हम कुछ करना ही न चाहें। सहल है, यदि सारी जनता अपने धर्मको समझ जाय। यही बात हम हर चीजके लिअे नहीं कह सकते। मसलन्, वेदाभ्यास। यह काम सबके लिअे सहल नहीं है। अिसके लिअे बरसोंका अभ्यास आवश्यक है। परंतु स्वराज्यके लिअे तो केवल हृदय-परिवर्तन ही आवश्यक है। क्योंकि स्वराज्य हमारी जन्मसिद्ध संपत्ति है।

तब प्रश्न यह अुठता है कि स्वराज्यके लिअे वह कौनसी शर्त है, जिसका पालन सब कोअी कर सकते हैं? सुनिये:

१. नमक-कानूनकी सविनय अवज्ञा सब कोअी कर सकते हैं। अिसमें किसी प्रकारकी तालीम आवश्यक नहीं है। आट गांवके तमाम स्त्री-पुरुषों तथा लड़के-लड़कियोंने मेरे देखते हुअे अिस कामको कर बताया। अिन लोगोंने पहलेसे कोअी तालीम नहीं पाअी थी।

२. सब कोअी तकली पर सूत कात सकते हैं। पर चरखा सबको मिल नहीं सकता, क्योंकि वह जरा खर्चीला है। तकली तो घर-घरमें बांसकी भी बना ली जा सकती है। अथवा सर्व-साधारण अुसे कुछ ही पैसोंमें खरीद सकते हैं। अगर करोड़ों लोग तकली चलाना तथा रूअी धुनना सीख लें तो जितनी चाहिये अुतनी खादी बन सकती है। अिस कामके लिअे भी किसी लंबी-चौड़ी तालीमकी जरूरत नहीं पड़ती। सिवा अिसके तकली तो फुरसतके वक्त चलानेकी चीज है। अतअेव यदि लोगोंके दिलमें यह बात बैठ जाय और अुनका हृदय-परिवर्तन हो जाय तो करोड़ों स्त्री-पुरुष, बालक-बूढ़े अिस कामको

आसानीसे कर सकते हैं और अुनके अिस कार्यसे देशके कमसे कम ६० करोड़ रुपये हर साल बच सकते हैं। हम सब विदेशी वस्त्रका त्याग करके सिर्फ खादी ही पहनें। क्योंकि यही हमारे पहननेकी चीज है। अगर हमारे पास पैसे नहीं हैं तो हम थोड़े कपड़ोंसे अथवा सिर्फ अेक लंगोटीसे भी अपना काम चला सकते हैं।

चूंकि यह लड़ाअी आत्मशुद्धिकी है, अिसलिअे यदि हम शराब, अफीम, तमाखू आदिके व्यसनी हैं तो हमें आज ही अिन व्यसनोंको छोड़ देना चाहिये। अैसे और भी कअी काम हैं जिन्हें अगर चाहें तो हम सब कर सकते हैं। अूपर मैंने अिन कामोंकी सिर्फ दो-अेक मिसालें ही दी हैं।

स्वराज्य-प्राप्तिके लिअे हिन्दू, मुसलमान और अन्य धर्मावलंबियोंका अेक-दूसरेको भाअी-भाअी मानना और अेक समान समझना जरूरी है। अस्पृश्यताके पापको समझकर अुसे दूर करना और दलित भाअी-बहनोंसे प्रेम करना भी आवश्यक है। ये सब वस्तुतः स्वराज्यकी शर्तें नहीं हैं, पर तो भी स्वराज्यकी व्याख्याके अंतर्गत अवश्य हैं। अब जब कि देशमें अद्‌भुत जागृति होती चली है, अिन पंक्तियोंके हरअेक पाठकको चाहिये कि वह अिस यज्ञमें यथाशक्ति बलिदान दे।

हिन्दी-नवजीवन, १०–४–'३०

९५

गिरफ्तारियां और जंगली न्याय

कह सकते हैं कि गुजरातने बाजी रखी है। गुजरातके गांव सविनय भंगके लिअे मैदानमें आ गये हैं। स्त्री, पुरुष और बालक हाथ बंटा रहे हैं। नमकके क्षेत्र कअी जगहोंमें पाये जाते हैं। गैरकानूनी नमक लोगोंके घरोंमें पहुंच चुका है। गुजरातको अब सरकारी नमक खाने-खरीदनेकी जरूरत नहीं रही। जो चाहे वह थोड़ी ही मेहनतसे जितना चाहिये अुतना तैयार नमक अपने लिअे ले आ सकता है।

लेकिन क्या सरकार अिस दृश्यको देखती रहती? नहीं। अिसी लिअे अुसने पकड़-धकड़ शुरू की है। धोलेरासे लेकर जलालपुर तालुके तक जागृतिकी लहर फैल चुकी है। नेतागण गिरफ्तार हो चुके हैं। अिन सबके नाम देनेकी मैं जरूरत नहीं समझता। कअी नाम तो मैं भूल गया हूं।

दरबार साहब और अुनके साथियोंको हथकड़ियां डाली गअीं, जेलमें मुण्डन कराया गया। यह सब अच्छा है, यदि गुजरात अिसका मूल्य समझे।

आटमें, अहमदाबादमें, धोलकामें नमक-रूपी स्वमानकी रक्षा करनेवालों पर मार पड़ी है, यह विशेषता है, जिसकी कल्पना नहीं की थी। मैंने सोचा था कि शायद सरकार जोरो-जुल्मसे काम नहीं लेगी। कानूनन् मुकद्दमे चला कर लोगोंको जेल भेजेगी। मेरा विचार झूठा ठहरा। कोअी अपना स्वभाव क्षण भरमें कैसे बदल सकता है? सरकारने अपने लाल पंजेका कुछ स्वाद चखाया है, अतः अब हम अधिककी आशा रखें।

गुजरातसे आगे बढ़ते हैं तो बम्बअीमें जमनालालजी, नरीमान वगैरा पकड़े गये हैं। मामले फुर्तीके साथ चल रहे हैं। मालूम होता है कि सजाका आधार मजिस्ट्रेटकी प्रकृति पर निर्भर है।

दिल्लीमें देवदास गांधीके साथी पीटे गये हैं। देवदास और अुसके साथी गिरफ्तार किये गये हैं।

जनता अिस सबका क्या जवाब देगी? यह लेख प्रकट होगा तब तक तो नअी बातें पुरानी हो चुकी होंगी।

मैं जनतासे और अधिककी आशा रखता हूं। विदेशी वस्त्रोंकी होली होनी चाहिये; प्रत्येकके हाथमें तकली रहनी चाहिये। कॉलेज-शालाअें खाली हो जानी चाहिये। वकील और डॉक्टर अनेक प्रकारोंसे मदद कर सकते हैं। स्त्रियोंके बारेमें तो मैं अलग लिख ही चुका हूं। स्वतंत्रताकी अिच्छुक जनताके सब अंगोंका विकास हो जाना चाहिये। सरकारी नौकरीका मोह अभी तक कम नहीं हुआ है। यह कमजोरीकी निशानी है।

लेकिन कमजोरी और स्वतंत्रताकी कभी बनी नहीं है। जहां-जहां कमजोरी है, जहां-जहां स्वार्थ है, वहां-वहांसे अुनकी जड़ें खोखली हो जायं तो स्वराज्य आज ही है; और आज ही हम जेलके दरवाजे खोलकर सत्याग्रहियोंको बाहर निकाल ला सकते हैं।

हिन्दी-नवजीवन, १७–४–'३०

९६

राष्ट्रपति जेल-महलमें

पंडित जवाहरलाल अब जेलमें हैं। अिसका अर्थ यह है कि सरकारने सारे हिन्दुस्तानको जेलमें ठूंस दिया है। यदि हम अितनी बात समझ जायं तो हमें सहज ही अपने धर्मका पता चल सकता है। यदि हम अपनी शक्तिसे जेलके दरवाजे खोलना चाहते हैं, तो हमें नीचे लिखे कामोंमें जुट पड़ना चाहिये:

१. हम सब जगह नमक बनायें और बांटें।

२. स्त्रियां शराबकी दुकानों पर धरना दें, अर्थात् विनयपूर्वक कलवारों और शराब पीनेवालोंको शराब बेचने तथा पीनेसे रोकें।

३. अिसी तरह स्त्रियां विदेशी वस्त्र बेचनेवालों तथा पहननेवालोंको भी विनयपूर्वक रोकें।

४. घर-घरमें कताओीका काम शुरू कर दें।

५. विद्यार्थी विद्यालयोंको छोड़कर राष्ट्रके कार्यमें जुट पड़ें।

६. वकील लोग वकालत छोड़ें और अिस राष्ट्रयज्ञमें अपना सारा समय लगा दें।

७. दूसरे धंधोंवाले भी जितना समय अिन कामोंके लिअे दे सकें, दें।

८. सरकारी नौकर नौकरी छोड़ें।

९. किसी भी अवस्थामें अशांत न बनें, हिंसा न करें।

१०. किसीको अपनेसे नीच न समझें। सब हिलमिल कर रहें।

यदि हम अितना कर सकें, तो अवश्य ही हमारी शक्ति बढ़ जाय और कोओी हमें अपने मार्गसे रोकनेकी हिम्मत न कर सके।

हिन्दी-नवजीवन, १७–४–'३०

९७

सलाम अथवा बेंत?

अजमेरसे श्री हरिभाअू अुपाध्याय लिखते हैं:

"जेलमें पथिकजी और बाबाजी (नृसिंहदासजी)से चक्की पिसवाओी जा रही है। न तो अुन्हें राजनैतिक कैदी माना है, न कोओी 'क्लास' ही मिला है। बाबाजीको 'सलाम' न करनेके अपराधमें काल-कोठरीकी सजा मिली है और संभव है कि बेंतें भी लगाओी जायं। अिस सजाके अुत्तरमें अुस वीरने जवाब दिया कि चाहे मेरी खाल कुत्तेसे नोंचवा डालो, पर मैं सलाम नहीं करूंगा। मैं जानता हूं कि आपकी राय है कि मामूली तौर पर जेल अधिकारियोंको प्रणाम करना चाहिये; किंतु मैं तो बाबाजीकी हिंमत और बहादुरी पर मुग्ध हूं। और यदि अुन्हें सचमुच बेंतें लगाओी गओीं और मैं अुस समय जेलमें रहा,

तो मैं भी अिस अमानुष व्यवहारके विरोधमें सलाम न करनेका विचार कर रहा हूं।"

यदि हरिभाअूजीको मिली हुअी खबर सच है, तो जेलमें भी सत्याग्रह करनेका काफी सामान मौजूद है। आम तौर पर कैदीका जेलरको सलाम करना ही अच्छा है। परंतु यदि कोअी सत्याग्रही सलाम न करे तो अुसके साथ जबरदस्ती कभी न की जानी चाहिये। अतअेव जब सलाम करानेके लिअे किसीके साथ जबरदस्ती की जाय तो दूसरोंका भी धर्म हो सकता है कि वे भी सलाम न करें।

आश्चर्य यह भी है कि कअी जगहोंमें सत्याग्रही कैदियोंको जो रिआयतें दी गअी हैं वे अिन कैदियोंको नहीं मिली हैं। मेरे विचारसे तो किसी भी सत्याग्रही कैदीको अन्य कैदियोंसे अलग न माना जाना चाहिये। परंतु यदि अेक सत्याग्रहीके साथ खास बर्ताव किया जाता है, तो दूसरोंके साथ भी वैसा ही बर्ताव किया जाना चाहिये। कांग्रेसके नजदीक तो पथिकजी और नृसिंहदासजीका वही स्थान है, जो राष्ट्रपतिका। परंतु कोअी अिस सल्तनतसे न्याय-बुद्धिकी — अिन्साफकी अपेक्षा कैसे रख सकता है?

हिन्दी-नवजीवन, २४–४–'३०

९८

'अहिंसाकी विजय'

श्री राजेन्द्रप्रसादको कौन नहीं जानता? वह पटनासे लिखते हैं:

"पटनेका झगड़ा ता० २३–४–'३० की संध्यासे खतम हो गया। अुस दिन जो जुलूस निकला अुसे पुलिसने नहीं रोका और न गिरफ्तार ही किया। सब तरहसे शांति है। अिस झगड़ेमें हमको लाभ ही लाभ रहा। पटनेको हम मुर्दा जगह जानते थे। अुसमें नअी जान आ गअी। मुसल्मानभाअी हमसे विरुद्ध थे। वे अब बहुत अंशोंमें हमारे साथ हमदर्दी करते हैं। दूसरे लोग जो अलग थे, अब मदद करने लग गये हैं। अिनमें मि० हसन

अिमाम सबसे प्रसिद्ध हैं। जनता बहुत कुछ अनुशासनमें आ गअी। जैसे-जैसे पुलिसकी मार बढ़ती गअी, जनताकी भीड़ भी बढ़ती गअी, और वह अधिकाधिक नियंत्रित रूपसे मार खानेके लिअे तैयार होती गअी। जो थोड़े लोग पहले भागते थे अुनकी संख्या घटती गअी और अंतिम दिन, जिस दिन मारपीट नहीं हुअी, प्राय: १५ हजारकी भीड़ थी और अुसमें बहुतेरे अैसे लोग थे जो सड़कों पर बैठकर मार खानेके लिअे तैयार होकर गये थे। अपनी ओरसे कभी कुछ भी अुपद्रव नहीं हुआ और जो जनतामें से कभी-कभी कुछ कटु शब्द कह दिया करते थे अुन्हें भी जनता ही रोकने लगी है। अहिंसाकी पूरी विजय रही।"

हिन्दुस्तानमें आजकल जो हवा बह रही है, अुसका जितना अनुभव करता हूं अुतना ही मुझे यह प्रतीत होता जाता है कि जनताने शांतिका सबक ठीक-ठीक सीख लिया है। अिसमें अभी कुछ कमी तो है। परंतु यदि लोग आखिर तक निर्भय और शांत बने रहे तो स्वराज्य दूर नहीं है।

स्वराज्यके लिअे तीन गुण बहुत ही जरूरी हैं: शुद्धि, निर्भयता और अुद्यम। शराब आदि नशीली चीजोंका त्याग शुद्धिकी निशानी है। नमकके कानून जैसे कानूनोंके सविनय भंगसे जनता निर्भयताका पाठ पढ़ रही है, और चरखे या तकलीके सर्वव्यापक होने पर जनता अुद्यमी बन सकती है। अिन तीनोंकी सफलतासे जो आर्थिक लाभ होता है सो तो है ही। शराब वगैरा नशीली चीजोंके त्यागसे २५ करोड़ रुपये बचेंगे। नमक-करके रद्द होनेसे कमसे कम ६ करोड़ और तकलीके अुद्यमसे अर्थात् खादीके द्वारा ६० करोड़की बचत होगी।

भगवान अिस देशकी जनताको बल दे कि वह अिन कार्योंको कर सके।

हिन्दी-नवजीवन, १–५–'३०

९९

बुराअियोंकी जड़

फतहपुर — पूर्वखानदेशसे भाअी ऋषभदास लिखते हैं :

"देहातमें फैली हुअी बुराअियोंकी तहमें आलस्यमें समय गंवानेकी आदत मुख्य है। अिसी आदतके कारण देहातवाले दुःखी, दरिद्र, व्यसनाधीन और चरित्रहीन बने हुअे हैं। 'बेकार दिमागमें शैतान रहता है', अिस कहावतका अनुभव यहां खूब हो रहा है। देहातमें छोटे बच्चोंसे लेकर बड़े-बूढ़ों तक यही आदत पाअी जाती है। अिस आदतके कारण केवल धनकी ही हानि नहीं होती, नैतिक अधःपात भी होता है, जिसकी कल्पना बाहरवाले बहुत ही मुश्किलसे कर सकते हैं। मुझे भी धीरे-धीरे अब अिस नैतिक पतनका पता लग रहा है। लोगोंमें यह आदत बहुत पुरानी है, और बचपनसे ही वे अिसके शिकार बन जाते हैं। बादमें अिसका प्राबल्य अितना बढ़ जाता है कि लोग अिस बुराअीकी हानियोंको महसूस तक नहीं करते। जब कोअी कार्यकर्ता अुन्हें अिस आदतसे होनेवाले नुकसान समझाता है, तो वे अिसे छोड़नेकी सामर्थ्य अपनेमें नहीं पाते। अुनके पतनकी यह पराकाष्ठा है। और जगहोंकी बात तो मैं नहीं करता, किंतु जिन गांवोंमें मैं काम करता हूं, वहांकी हालत तो अितनी खराब है कि लोग भूखों मरना और आपत्तिमें रहना मंजूर करते हैं, किंतु अपनी आदत नहीं छोड़ते। अिसका मुख्य कारण यह है कि बचपनसे ही लोगोंमें यह आदत पड़ जाती है। गांवोंमें बच्चोंकी शिक्षाका जो प्रबंध है, वह नहींके बराबर है; क्योंकि दस पांच गांवोंके पीछे मुश्किलसे अेक प्राथमिक शाला होती है, जिसमें दर्जा चार या पांच तक शिक्षा दी जाती है। अिन शालाओंमें दी जानेवाली शिक्षा गांववालोंके

लिअे किस प्रकार निरुपयोगी होती है, अुसकी चर्चा यहां न करूंगा, क्योंकि वह विषयांतर होगा। जो शिक्षा मिलती है अुसीका विचार करें, तो भी पता चलता है कि बहुत ही कम लड़के पढ़ सकते हैं; और जो पढ़ते हैं वे १२ या १३ वर्षकी अुम्रमें पढ़ना छोड़ देते हैं। अिन लड़कोंके लिअे सिवा अिधर-अुधर घूमनेके और कोअी काम नहीं रह जाता। लड़के यही करते भी हैं। अुनके मां-बाप खेतीके दिनोंमें ही अुनसे थोड़ा-बहुत काम ले सकते हैं, बादमें तो अुन्हींके लिअे पूरा काम नहीं रहता, अैसी दशामें वे लड़कोंसे कौनसा काम करवा सकते हैं? अिन १२–१३ वर्षके लड़कोंके अिस प्रकार बेकार व निरुद्यम रहनेका परिणाम कितना भयंकर होता है, अुसका ठीक-ठीक वर्णन करना मेरी शक्तिके बाहर है। अिस अुम्रमें बालकोंको अपना वक्त काममें, पढ़ने-लिखनेमें, अच्छी सोहबतमें बिताना चाहिये, किन्तु होता बिल्कुल अिसके विपरीत है। अिसका परिणाम अितना भयानक होता है कि देखकर मेरी आत्मा सिहर अुठती है। बालक मुंहसे गंदेसे गंदे शब्द बोलना, अश्लील हंसी-मजाक करना, बीड़ी पीना, हस्तमैथुन करना, अनैसर्गिक मैथुन करना वगैरा खराब आदतें सीखकर अपना जीवन बरबाद कर देते हैं। बचपनकी अिन आदतोंको छुड़ाना बहुत ही कठिन होता है। मुझे यहां अिसका खूब अनुभव हो रहा है। मैं परेशान हूं कि ये बुराअियां कैसे दूर हों। जब तक ये बुराअियां दूर नहीं होतीं, कुछ भी सच्चा काम नहीं हो सकता; अिसलिअे मैं अपने दोषोंको दूर करके अिस बातका प्रयत्न कर रहा हूं कि कुछ ठोस काम हो। किंतु जब तक राष्ट्रीय पाठशाला स्थापित करके शिक्षाका प्रबंध न कर सकूंगा, तब तक सफलता दूर ही रहेगी। खेद अिस बातका है कि अिस कार्यके लिअे योग्य कार्यकर्ता त्यागभावसे काम करनेकी अिच्छा रखकर देहातमें नहीं आते। शहरोंमें राष्ट्रीय शिक्षाका जो काम चलता है, अुतनी शक्ति, धन तथा कार्यकर्ताओंकी मददसे देहातमें

बहुत कुछ काम हो सकता है। गांवोंमें खर्च बहुत ही कम लगता है। यहां शहरोंके समान सरकारी स्कूलोंके साथ प्रति-स्पर्धा भी नहीं होती। फिर भी वे गांवोंकी तरफ क्यों नहीं ध्यान देते? आशा है, आप 'नवजीवन' और 'यंग अिंडिया' द्वारा राष्ट्रीय शिक्षाके कार्यकर्ताओंका ध्यान अिस विषयकी ओर आकर्षित करेंगे।

"आप बार बार अिस विषय पर लिखते हैं, जोर देते हैं, फिर भी अिस बातकी ओर लोगोंका पर्याप्त ध्यान नहीं जाता। अिसलिअे पुनः अिस संबंधमें कुछ लिखनेके लिअे आपसे प्रार्थना करता हूं।"

अिस लेखमें बताअी गअी बुराअियोंका वर्णन यथार्थ है। अिसे देखकर भयभीत या निराश होनेका कोअी कारण नहीं है। हम न तो सर्वज्ञ हैं, न हैं सर्वशक्तिमान। हम अपने हिस्सेका फर्ज अदा करें, अितना ही ओश्वरने हमारे हाथोंमें रखा है। अैसा करनेसे हम अपने कार्यमें ज्यादा सफल होंगे और हममें आत्मसंतोष पैदा होगा। दूसरे कार्यकर्ताओंके न आनेसे भी हमें दुःख न होना चाहिये। किसीके न आने पर भी यदि हम अपने कर्तव्यमें परायण रहें, तो संभव है कि दूसरे आ जायं।

हिन्दी-नवजीवन, ३०-७-'३१

१००

मृतक बिरादरी भोज

भाओी बसंतलाल मुरारका लिखते हैं:

"मृतक बिरादरी भोज मारवाड़ी समाजमें प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अिसे बंद करनेके लिअे कोअी १२ महीने पहले पिकेटिंग आरंभ की गअी थी। दो-तीन पिकेटिंगके बाद ही समाजके मुखियाओंने पिकेटिंग बन्द कर देने और मृतक बिरादरी भोजके विरुद्ध प्रचार करनेकी नवयुवकोंको सलाह दी। अुनकी सलाह मानकर यह कार्य १० महीने तक बंद रखा गया। परंतु समाजके मुखियाओंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। फिर नवयुवकोंने 'मृतक बिरादरी भोज निवारिणी सभा' नामक संस्था स्थापित की और समाजके पंचोंको डेढ़ महीनेका समय देकर जेठ वदी १ से आपके आदेशानुसार शांतिपूर्वक पिकेटिंग आरंभ कर दी। जब अिसकी सूचना समाजके पंचोंको दी गअी, तब अुन्होंने मारपीट करनेकी धमकी दी। अशांति होनेका भय दिखलाया। नवयुवकोंको ही जिम्मेवार ठहरानेकी धमकी दी। परंतु अभी तक हम लोग ७ बार पिकेटिंग कर चुके हैं। पिकेटिंग करनेवालोंमें ८५ स्वयंसेवकोंने भाग लिया है। ...हली पिकेटिंगमें तो पंचायत-पार्टीने स्वयंसेवकोंको भद्दी-भद्दी गालियां दीं, और अुनको अुत्तेजित करनेके लिअे नाना प्रकारके षड्यंत्र रचे। शांतिभंग करनेकी पूरी कोशिश की गअी, परंतु हम लोगोंकी ओरसे किसी प्रकारकी गड़बड़ी नहीं होने पाअी। अब लोकमत हम लोगोंके पक्षमें हो रहा है। पंचायत-पार्टीकी ओरसे भी गाली-गलोज बंद हो गअी है। अिसका कारण स्वयंसेवकोंका धैर्य और अुनकी सहनशीलता है।

"हम लोग जिस तरह पिकेटिंग कर रहे हैं, अुसके छपे हुअे कागज आपकी सेवामें भेज रहा हूं। आप अिस विषयमें अपने आशीर्वाद सहित संमति भेजियेगा।"

अिन समाज-सुधारकोंको धन्यवाद।

शांति और विनयका असर होता ही है। मृतक भोजमें न धर्म है, न कोअी अन्य अुचित कारण है। केवल मोह और धनसे अुत्पन्न होनेवाला अभिमान ही अैसे भोजनका कारण हो सकता है। धनिक लोग मृत्युके बाद किसी लोकोपयोगी कार्यके लिअे दान क्यों न दें? अैसा करनेसे अुन्हें यशप्राप्ति होगी, और मृतककी आत्माको अवश्य ही शांति मिलेगी। अैसा दान अेक प्रकारका श्राद्ध है, स्मारक है।

हिन्दी-नवजीवन, ३०–७–'३१

१०१

'हरिजनसेवक' के ग्राहकोंसे

'हरिजनसेवक' अिस अंकसे अपना अेक वर्ष पूरा करता है। पत्रकी नीति ग्राहक जानते हैं। अिसमें राजनीतिक प्रश्नोंकी चर्चा तक नहीं की जाती है। केवल हरिजनसेवाके निमित्त ही अिसका अस्तित्व है, और यथासंभव स्वावलंबी बनानेकी चेष्टा है। अेक दृष्टिसे स्वावलंबी-सा है ही। क्योंकि जो घाटा आता है वह हरिजन-सेवक-संघकी ओरसे नहीं लिया जाता है; तो भी दूसरी और सच्ची दृष्टिसे स्वावलंबी नहीं है, क्योंकि जितने चाहिये अुतने ग्राहक अब तक नहीं बने हैं। आज तक लगभग १,६०० ग्राहक हुअे हैं। स्वावलंबी बनानेके लिअे कमसे कम ८०० तो और चाहिये ही। लेकिन जो आज मौजूद हैं, वे भी न रहें तो अिस अखबारके जारी रखनेका कोअी कारण नजर नहीं आता। अतअेव ग्राहकोंसे विनय है कि अपना चंदा अिस अंकके बाद दो अंक निकलने तक अवश्य भेज दें। अुसके बाद हिन्दुस्तानके जिन सज्जनोंका चन्दा नहीं आया होगा अुनको 'हरिजनसेवक' नहीं भेजा जायगा। पत्रका वार्षिक चन्दा ३॥ रु० है, और छः माहका २ रु०। जो मित्रगण अिस पत्रके ग्राहक बनाकर अथवा दूसरी तरह सहायता भेजते

रहे हैं, वे कृपया अपनी वह सहायता अिस वर्ष भी जारी रखें। सब सज्जन याद रखें कि अिस अखबारमें सार्वजनिक खबरें भी नहीं छापी जाती हैं, और हिन्दीमें हरिजन-सेवक-संघका यही अेक मुखपत्र है।

हरिजनसेवक, २३–२–'३४

१०२

मेरा हाथ नहीं है

दो मअीके पत्रमें महाराजा साहब गिद्धौरने मुझे लिखा है:

"देवघरमें हुअे आपके भाषणकी जो रिपोर्ट अखबारोंमें प्रकाशित हुअी है, अुसकी अेक प्रति मुझे मिली। मैंने आपको तुरन्त ही यह सूचित करना ठीक समझा कि आपने जो यह सन्देह प्रकट किया है कि किसी पर्चे पर मेरा नाम मेरी आज्ञा लेकर प्रकाशित नहीं किया गया है, वह अुचित ही था।

"मुझे अैसे किसी पर्चेका पता नहीं है। सचमुच यह बात बिलकुल ही झूठ है कि मैंने किसी पर्चे पर अपना नाम प्रकाशित करनेकी आज्ञा दे दी थी। मैं समझता हूं कि अिस पत्रमें मैंने अपनी स्थिति आपके सामने स्पष्ट कर दी है। मन्दिर-प्रवेश बिलके सम्बन्धमें मेरी व्यक्तिगत सम्मति चाहे जो कुछ भी हो, पर मैं, आपके साथ ही, अिस बातके लिअे खेद प्रकट करता हूं कि ये झूठी बातें फैलाअी जा रही हैं।

"देवघरमें जो असभ्य प्रदर्शन हुआ है, अुसके लिअे मैं भी दुःखी हूं। अगर आप ठीक समझें, तो मेरे अिस पत्रको प्रकाशित कर दें।"

मुझे अिससे सन्तोष हुआ है कि महाराजा साहब गिद्धौरका अुस पर्चेमें कोअी हाथ नहीं था। यह खेदकी बात होती, अगर अैसे असत्यके प्रचारमें महाराजा साहब अपने नामका अुपयोग करने देते।

हरिजनसेवक, १८–५–'३४

१०३

वे अिसे करेंगे

जबसे मैंने पैदल यात्रा आरम्भ की है, सैकड़ों ग्रामवासी यात्रियोंका अनुगमन करते रहे हैं। कुछ अपनी व्यथाओंकी कहानी भी सुनाते हैं। अिस यात्रामें, जब मैं साखीगोपालके निकट पहुंच रहा था, अेक प्रतिनिधि बुनकरने स्वयं ही मुझसे कहा कि बुनकर बड़े कष्टमें हैं, क्योंकि अुनके कपड़ेकी कोअी मांग नहीं है। मैंने अुससे कहा कि यह भविष्यवाणी तो मैंने पंद्रह वर्ष पहले ही की थी कि जब तक ये लोग मिलके सूतका व्यवहार करेंगे, तब तक मिलोंकी प्रतियोगितामें ठहर नहीं सकते; हाथ-करघेका पोषणकर्ता और जीवनदाता तो चरखा ही है। अिसके अुत्तरमें, जहां तक मुझे स्मरण है, पहली ही बार मैंने सुना —‘हमें हाथका कता सूत दीजिये; हम अुसे बुनेंगे।’

‘अवश्य, यदि तुम जैसा मैं कहूं, करोगे’ — मैंने कहा।

‘हम करेंगे’ — बूढ़ेने जवाब दिया। यह बुनकर बूढ़ा था और अिसकी कमर झुक गअी थी।

मुझे अुसके अुत्तरोंसे अत्यधिक प्रसन्नता हुअी और मैंने कहा — ‘यह बड़ी अच्छी बात है। पर अैसी हालतमें मैं तुम्हें, तुम्हारी पत्नी और बच्चोंको ओटना, धुनना और कातना सिखलाअूंगा। तव तुम्हें अपने करघेके लिअे काफी सूत मिल जायगा। तुम्हें अच्छा, मजबूत और अेकसा सूत कातना होगा और टूट-फूट अेवं खराबीसे बचना होगा। तब मैं अुम्मीद करूंगा कि पहली बार कते अिस सूतसे तुम अपने निजी अुपयोगके लिअे खद्दर तैयार करोगे और अिसके बाद जो फालतू खादी बचेगी अुसे मैं खरीद लूंगा। मैं तुम्हारे कुटुम्बका अेक सदस्य बननेका प्रयत्न करूंगा और अपने अनुभवोंका लाभ तुम्हें प्रदान करूंगा। यदि तुम्हें मादक द्रव्योंका व्यसन होगा तो अुसे छोड़नेको कहूंगा। तुम्हारे कुटुम्बके आय-व्ययकी मैं जांच करूंगा और तुम्हें ऋण लेनेसे रोकूंगा।’

बूढ़ेका मुख प्रसन्नतासे चमक अुठा और वह बोला — 'हम निश्चय ही आपकी सलाहके मुताबिक चलेंगे। अिस समय तो गरीबी और विनाश हमें घूर रहे हैं।' मैंने अुससे कहा कि अपने कुछ साथियोंको लेकर साखीगोपालके गोपबन्धु आश्रममें ३ बजे मुझसे मिलो।

वह अपने मित्रोंके साथ आया। मैंने सुबहकी बातचीतमें कही हुअी बहुतेरी बातें दोहरानेके बाद कहा — 'मैं जानता हूं कि तुम लोग अपने करघोंको चलाने लायक सूत तुरन्त ही नहीं कात सकते। अिसलिअे काम आरम्भ करनेके लिअे होनहार और अुत्साही कुटुम्बोंको मैं काफी सूत दूंगा। जब तक तुम अुस सूतको बुनोगे तब तक अपने करघोंको आगे चलानेके लिअे तुम काफी सूत तैयार कर लोगे। अिस दिये हुअे सूतसे जो पहली खादी तुम बुनोगे, तुमसे ले ली जायगी। दूसरी बारके लिअे भी यदि तुम्हारे पास काफी सूत न होगा तो कुछ मैं फिर दूंगा। अिसके बाद तुम्हें स्वावलंबी हो जाना पड़ेगा। पहले तुम अपने कुटुम्बकी कपड़ेकी आवश्यकता पूरी करोगे और अिससे जो बचेगा अुसे बेचोगे।'

मैं अिसे अत्यधिक महत्त्व और शक्तिका प्रयोग समझता हूं। भारतवर्षमें कदाचित् अेक करोड़ बुनकर हैं। कोअी हजारोंमें भी अिनकी ठीक-ठीक संख्या नहीं बता सकता, पर अेक करोड़की संख्याका अनुमान बेजोखिमका है। यदि ये लोग बुनाअीकी कलाके साथ तत्सम्बन्धी अन्य प्राथमिक कार्यों (ओटाअी, धुनाअी, कताअी) को भी ग्रहण कर लें तो वे न केवल अपने अस्तित्वको सुरक्षित कर लेंगे वरन् खादीको भी संभाव्य सीमा तक सस्ती कर सकेंगे और अब तक जैसी खादी बनती आअी है अुसकी अपेक्षा अधिक टिकाअू और खूबसूरत खादी तैयार कर सकेंगे।

'हरिजनसेवक' के पाठक जानते हैं कि मध्यप्रान्तमें कुछ अैसे हरिजन बुनकर कुटुम्ब हैं, जो अपने कामके लिअे स्वयं धुन और कात लेते हैं। अिसके साथ मैं ओटाअीको भी जोड़ता हूं। यदि बुनकर स्वयं अपने हितकी दृष्टिसे बुनाअीके पूर्ववर्ती सब अुपकरणोंको स्वयं ही करने लग जायं तो खादीका भविष्य सुरक्षित हो सकता है।

हरिजनसेवक, १–६–'३४

१०४

अतिशयोक्तिसे बचो

पंडित लालनाथने मेरा अिस ओर ध्यान आकर्षित किया है कि अस्पृश्यता-निवारणका समर्थन करनेवाले कुछ अखबारोंने देवघरकी दुर्घटनाके बारेमें बहुत बढ़ा चढ़ाकर लिखा है और मेरी मोटरके हुड पर लाठियां चलानेवाले लोगों पर यह अिलजाम लगाया है कि अुनका अिरादा मेरी जान लेनेका था। विरोध प्रदर्शन करनेवालों पर अैसा कोअी दोष नहीं लगाया जा सकता कि अुनका अिरादा मेरी जान लेनेका था। वहींसे बिना दस्तखतका अेक पर्चा भी प्रकाशित हुआ है। अुसमें सुधारकोंके विरुद्ध प्रदर्शन करनेवालोंको मार डालनेकी धमकी दी गअी है। मैं यह नहीं मान सकता कि यह बेनामका पर्चा किसी अुत्तरदायी मंडल या व्यक्तिका छपाया हुआ है। जहां तक मैं जानता हूं, कलकत्तेके जिन सनातनियोंने मन्दिर-प्रवेश बिलके विरोधमें सभा अित्यादि करनेका जो दिन नियत किया था, अुस दिन अुनके विरुद्ध न तो कोअी प्रदर्शन ही किया गया और न अुन्हें कोअी नुकसान ही पहुंचाया गया। फिर भी अिस बात पर मैं जितना भी जोर दूं, अुतना थोड़ा है कि सुधारकोंको मन, वचन और कर्मसे अहिंसक रहना चाहिये। अुन्हें अिन सनातनियोंके विरोध-प्रदर्शनों पर कोअी ध्यान नहीं देना चाहिये। मैंने जहां तक देखा है, जनता अिन सनातनियोंके विरोध-प्रदर्शनोंका तनिक भी समर्थन नहीं कर रही है। कुछ भी हो, अुनकी भावनाके प्रति आदर दिखाकर ही हमें अुन्हें जीतना है। अुनके कार्योंके प्रति हमें अैसी कोअी बात मुंहसे नहीं निकालनी चाहिये, जिससे वे चिढ़ें या गुस्सा हों।

हरिजनसेवक, १५–६–'३४

१०५

अनुकरणीय

मध्यप्रान्तीय सरकारको मैं अुसकी अिस घोषणा पर कि अबसे तथोक्त 'डिप्रेस्ड क्लासेज' (दलित जातियां) को 'हरिजन' और 'क्रिमिनल ट्राअिब्स' (जरायमपेशा जातियां) को 'घुमक्कड़' कहा जायगा, बधाअी देता हूं। अवश्य ही 'डिप्रेस्ड क्लासेज' और 'क्रिमिनल ट्राअिब्स' ये दोनों नाम भारी अपमानजनक थे। हमें आशा करनी चाहिये कि दूसरी प्रान्तीय सरकारें भी मध्यप्रान्तीय सरकारके अिस सुन्दर अुदाहरणका अनुकरण करेंगी।

हरिजनसेवक, १५-६-'३४

१०६

शांतिसे अुपवास करने दें

मैं आशा करता हूं कि मेरे आगामी अनशन-सप्ताह (७ अगस्तसे १४ अगस्त तक) में कोअी वर्धा दौड़नेका कष्ट न करेगा। अुन दिनों में पूर्ण विश्राम और शांति चाहता हूं। मेरे साथ सहानुभूति दिखाने और मेरे शरीरमें बल पहुंचानेका सबसे अच्छा तरीका तो यही होगा कि मेरे तमाम मित्र हरिजनोंको हर तरहसे अपनाने और विरोधियोंको अपने शुद्ध और विनम्र व्यवहारसे जीतनेकी भरसक चेष्टा करें।

जिन लोगोंने साहसपूर्वक अपनी भूल कबूल कर ली है, अुसका प्रायश्चित्त वे मेरे साथ अुपवास करके नहीं, बल्कि यह दृढ़ निश्चय करके करें कि अुनकी जिस भूलके कारण मुझे यह अुपवास करना पड़ा है, वैसी कोअी भूल वे आगे न करेंगे।

हरिजनसेवक, ३-८-'३४

१०७

कुछ कूट प्रश्न

बिहारके अेक सज्जन लिखते हैं :

"मैं मिथिला प्रान्तका मैथिल ब्राह्मण हूं। हमारा कुल कट्टर सनातनी है, पर मुझ पर कट्टरताका कम ही असर पड़ा है। 'हरिजन' में प्रकाशित आपके विचारोंको मैं दूसरोंके आगे रखनेका भी साहस करता रहता हूं। अिस प्रयत्नमें मुझे थोड़ी-बहुत सफलता भी मिली है। मेरे गांवमें हम ब्राह्मणोंके कुअेंसे तीन चार बरस पहले हरिजन ही क्या अन्य शूद्र जातियां भी पानी नहीं भर सकती थीं। पर आज वह बात नहीं रही। अब तो डोम और चमार अिन दो जातियोंको छोड़कर शेष सभी हिन्दुओंको पानी भर लेने देते हैं। सिर्फ डोम आर चमारोंको ही पानीका कष्ट है। जन्मत: मानी जानेवाली घृणा-भावना तो अुनके प्रति भी अब बहुत-कुछ कम हो गअी है। जो थोड़ी-सी घिन अुनके प्रति शेष रह गअी है, वह अुनकी गन्दी आदतोंके ही कारण है। मुर्दार मांसका खाना, मरघटका वस्त्र पहनना, सबका जूठन खाना, सूअरका पालना आदि बातोंको ये लोग छोड़ दें, तो अुनके प्रति फिर अुतनी भी घृणा न रहे।

अब आपसे मैं कुछ प्रश्न पूछनेकी ढिठाअी करता हूं। आशा है, मेरी शंकाओंका समाधान आप कृपया 'हरिजन' के द्वारा कर देंगे :

१. जिस तरह आप अुच्च वर्णके कहलानेवाले हिन्दुओं पर हरिजनोंको अपना लेनेके लिअे जोर देते रहते हैं, अुसी तरह आप हमारे हरिजन भाअियोंसे क्यों नहीं कहते कि वे भी अपनी गन्दी आदतोंको छोड़ दें और स्वच्छतापूर्वक रहें ?

२. सनातन धर्मका क्या तो रहस्य है, और क्या लक्षण ? आप अपनेको सनातनी हिन्दू कहनेका दावा करते हैं।

क्या सनातनियोंके लिअे श्राद्ध, मूर्ति-पूजा, अवतार अित्यादिका मानना जरूरी नहीं है?

३. आपने कहा है कि मनुष्य जब अपने वर्णका परम्परागत धन्धा छोड़ देता है, तब वर्णका संकर हो जाता है। तब सनातनी 'वर्णसंकर' का जो अर्थ लगाते हैं, वह कहां तक ठीक है? गीताके प्रथम अध्यायमें आये हुअे "स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकर:" अिस श्लोककी संगति आप अपने अर्थके साथ कैसे बिठायेंगे?

४. प्राय: सभी स्मृतिकारोंका कथन है कि ब्राह्मणी तथा शूद्रके संयोगसे अुत्पन्न संतान चांडाल होती है। ब्राह्मणीके साथ जो शूद्र विवाह करेगा, वह अवश्य ही दुष्ट स्वभावका मनुष्य होगा, क्योंकि शूद्रके लिअे तो ब्राह्मणी माताके तुल्य है। अिस पर आपकी क्या राय है? यह आपके वर्णधर्मके प्रतिकूल है या अनुकूल?

५. आपके विचारसे न कोअी वर्ण किसीसे अुच्च है, न कोअी किसीसे नीच, सभी सर्वथा समान हैं। यद्यपि सिद्धान्त रूपसे यह ठीक मालूम पड़ता है, पर व्यावहारिक दृष्टिसे तो यह असंभव-सा ही जान पड़ता है। संसारमें बुद्धि द्वारा किये गये कामोंके लिअे शरीर द्वारा किये गये कामोंसे अधिक मूल्य दिया जाता है। फिर ब्राह्मणको सत्त्वगुण-प्रधान, क्षत्रियको सत्त्व अेवं रजोगुण-प्रधान, वैश्यको रजोगुण-प्रधान, और शूद्रको तमोगुण प्रधान शास्त्रोंमें माना है। भागवतमें लिखा है कि जिस मनुष्यका वर्ण मालूम न हो, अुसका वर्ण-निर्णय अुसके गुणकर्मादिको देखकर कर लेना चाहिये। शूद्रोंके विषयमें स्मृतियोंका क्या मत है यह भी तो देखिये। स्मृतियोंके साथ आपके तात्पर्यकी कहां तक संगति बैठती है?

६. आप भी वर्णको प्राय: जन्मना ही मानते हैं। पर कितने ही मनुष्योंमें, ब्राह्मण कुलमें जन्म लेने पर भी, ब्राह्मण स्वभाव या कर्मकी ओर प्रवृत्ति नहीं पायी जाती। अुन्हें आप अपनी वर्ण-व्यवस्थामें कहां स्थान देंगे? शास्त्रमें कहा है —

ब्राह्मणस्य शरीरं हि क्षुद्रकामाय नेष्यते।
कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानंत सुखाय च।।
अुत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती।
स हि धर्मार्थम्अुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अिस प्रकारकी तपस्या और धर्मकी ओर प्रवृत्ति यदि किसी शूद्रकुलोत्पन्न मनुष्यकी हो, तो अुसे ब्राह्मण क्यों न कहें?

७. मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसी ही बुद्धि अुसकी होती है। अिसलिअे शास्त्रोंने चोर, डाकू, कृपण, वेश्या, कसाअी आदि मनुष्योंका अन्न खानेसे हमें रोका है। सनातनी पंडित कहते हैं कि दुष्टभावके मनुष्योंका स्पर्श किया हुआ अन्न-जल ग्रहण करनेसे हममें भी अुनके संसर्गजन्य दुष्ट स्वभावके आ जानेका भय रहता है। और आप कहते हैं कि खान-पानका प्रतिबन्ध वर्ण-धर्मका कोअी आवश्यक अंग नहीं। यह बात कहां तक ठीक है?

८. जब हम लोग जनताके बीच अस्पृश्यता-निवारणका कुछ काम करने लगते हैं, तो सनातनी पंडित आपके विरुद्ध न जाने कैसी-कैसी बातें बकते हैं। और बातें तो हम अुनकी काट देते हैं, पर जब वे आश्रमके अुस म्रियमाण बछड़ेके बारेमें दलील देते हैं, तब हम अुन्हें कोअी सन्तोषप्रद अुत्तर नहीं दे सकते। अिस प्रश्न पर क्या आप कुछ प्रकाश डालेंगे?"

यह पत्र मेरे पास जून माससे पड़ा हुआ है। हरिजन-यात्रामें तो कुछ लिखना-लिखाना असंभव नहीं तो मुश्किल तो था ही। यद्यपि पत्रको आये काफी समय हो गया है, तो भी पत्रमें आये हुअे प्रश्न अुत्तर देने लायक हैं।

१. हरिजनोंको शौचादिके नियम पालनेकी शिक्षा तो अवश्य दी जाती है; किन्तु अुन्हें अैसी शिक्षा देना अेक बात है और नियम-पालनको अस्पृश्यता-निवारणकी अेक शर्त बना देना दूसरी बात है। अैसी शर्त शिक्षा-प्रचारमें घातक बन सकती है। अुनके दोषोंके जिम्मेदार वे नहीं, हम हैं। जब हम अुन्हें प्रेमसे अपना लेंगे, तब वे अपनी दूषित आदतोंको तो अपने-आप ही छोड़ देंगे। आज तो अुनके अूपर शिक्षाका

असर कम ही पड़ता है। जब अस्पृश्यता हट जायगी, तब वे अपना सुधार शीघ्र कर लेंगे। अिसका यह मतलब नहीं है कि हम मैले-कुचैले गन्दे लोगोंको देव-दर्शन करने दें अथवा अुनका स्पर्श करें। हमें तो जो कहना और करना है, वह तो अितना ही है कि कोअी जन्मसे अस्पृश्य नहीं है। कर्मसे तो हम सभी अस्पृश्य बन जाते हैं। हरिजनोंके तो हम देनदार हैं, लेनदार नहीं। वे जैसे हैं अुसी हालतमें हमें अुन्हें अपनाना है। हम अुन्हें अपनाते हैं, तो अिसमें अुनके प्रति कोअी कृपाकी बात नहीं है। हम अपना प्रायश्चित्त करके ही अुनकी गन्दी आदतोंको दूर करा सकते हैं।

२. सनातन धर्मका विशेष लक्षण वर्णाश्रम है। यों तो मैंने बहुतसी व्याख्याअें दी हैं, किन्तु वर्णाश्रमको ही सनातन धर्मका विशेष लक्षण माना जाय। श्राद्धादि न करनेसे कोअी सनातनी मिट नहीं जाता। लाखों देहाती भाअी श्राद्ध नहीं करते, तो भी सनातन-धर्मी तो वे हैं ही। यही बात मूर्ति-पूजा, अवतारादिके विषयमें भी है। मूर्ति-पूजा करोगे, अवतार मानोगे, तभी सनातनी हिन्दू कहे जाओगे अन्यथा नहीं, अैसा कोअी नियम मेरे देखनेमें नहीं आया है। मैं तो अवतारवादको अच्छी तरह मानता हूं। मूर्ति-पूजाको भी मानता हूं और करता भी हूं। लेकिन मैं अपनेको जो सनातनी मानता हूं, अुसका कारण तो मेरा वर्णाश्रमको मानना और धर्मशास्त्रोंको जैसा मैं जानता हूं अुसके अनुसार आचरण करनेका सतत प्रयत्न करना है।

३. जब मनुष्य अपने वर्णके प्रतिकूल धन्धेको अपनी आजीविकाके लिअे करने लग जाता है, तब वह वर्णका सांकर्य करता है। ब्राह्मणने आजीविकाके लिअे वकालत की अथवा झाड़ू लगाअी, तो अुसने वर्णका सांकर्य किया। अिसी तरह जब धोबी अपनी आजीविकाके लिअे वकालत करता है या झाड़ू लगाता है, तब वह वर्ण-संकरताका भागी होता है। अिस अर्थमें आजकल वर्णका लोप हुआ ही मैं मानता हूं। गीतामें 'वर्णसंकर' का सम्बन्ध विवाहके साथ बताया है, पर यह याद रहे कि दुष्टा स्त्रियोंके आचरणके साथ अैसा कहा गया है। अिसका अर्थ तो मैं यह निकालता हूं कि जब स्त्री व्यभिचारसे

सन्तानोत्पत्ति करती है, तब वर्णसंकर पैदा होते हैं। भले ही वर्णसंकरका यह अेक कारण हो, पर यही अेक कारण नहीं है, अैसा मेरा अभिप्राय है। वर्णके नियत कर्मोंका त्याग स्वयंसिद्ध वर्ण-संकरता है।

४. स्मृतियोंके नामसे जो ग्रंथ आज हम देखते हैं, वे सबके सब यथार्थ हैं, अैसा मेरा विश्वास नहीं है। स्मृतियोंमें बहुतसे श्लोक प्रक्षिप्त हैं। जो वचन सार्वभौम नैतिकताके विरुद्ध है, अुसे धर्म मानना अुचित नहीं। महाभारतादिमें हम देखते हैं कि वर्णान्तर विवाह खासी अच्छी संख्यामें होते थे। और आज तो वर्णधर्मका लोप हुआ ही मैं मानता हूं।

५. अूपरके कारणोंसे मैं यह मानता हूं कि अुच्च-नीच भावोंके समर्थनमें जो स्मृति-वचन आज दिखाअी देते हैं, वे सबके सब प्रक्षिप्त हैं। वर्णकी मान्यताका आधार अेक वैदिक ऋचा है। अुसमें चार वर्णोंकी शरीरके चार मुख्य अंगोंसे अुपमा दी गअी है। यह कोअी नहीं कहेगा कि शरीरका अेक अंग दूसरे अंगसे अूंचा है अथवा नीचा। सब अंग अेक-सरीखे ही हैं। वर्णमें समानताका मानना ही धर्म हो सकता है। अुच्च-नीचका भेदभाव निश्चय ही अभिमानमूलक है, अिसलिअे अधर्म है।

६. ब्राह्मण हो या शूद्र, जिसने स्वधर्म तज दिया है, वह पतित हो गया। पतित दशामें वह किसी भी वर्णका नहीं है। वह पुनः स्वधर्मका पालन — अपने धंधेका पालन — करके अपनी भूल सुधार सकता है।

७. सच बात यह है कि मनुष्य जैसा खाता है, वैसा अुसका स्वभाव हो जाता है, पर किसीके हाथके छुअे हुअे खानेका असर अुस पर नहीं पड़ता। किसीको अपनेसे अधम अथवा अधिक पापी मानना और अैसा कहकर अुसके हाथका छुआ हुआ अन्न-जल ग्रहण न करना साफ ही अीश्वरका अनादर है। खाद्याखाद्यके नियम अवश्य हैं। जो बाह्य शौचादिक नियमोंका पालन नहीं करते, अुनके हाथका स्पर्श किया हुआ अन्न या पानी ग्रहण न करें; किन्तु अमुक मनुष्य अमुक जातिका है अिसलिअे अुसके हाथका न खाना मेरी दृष्टिमें पाप है। रोटी-बेटी-व्यवहारका वर्णधर्मसे कोअी अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है।

८. मेरे सम्बन्धमें अनेक दोषारोपण किये जाते हैं। हरिजन-सेवक अनके अत्तर देनेका प्रयत्न न करें। मैं कैसा क्या हूं, अिसके साथ अस्पृश्यता-निवारणका कुछ भी सम्बन्ध नहीं हो सकता। किसी महान् वस्तुका निरीक्षण अुसके गुण-दोषसे ही करना चाहिये। यह सच है कि महाव्यथामें तड़पते हुअे बछड़ेको मैंने धर्म समझकर ही जहरकी पिचकारी दिलवाअी थी। मैं और किसी तरह अुसकी सेवा नहीं कर सकता था, न अुसके दुःखका निवारण ही कर सकता था। मुझे आज भी, विचार करनेके बाद भी, अुस कार्यके लिअे पश्चात्ताप नहीं है। यदि मैंने अज्ञानके वश होकर पापकर्म किया होगा, तो परमात्मा मुझे क्षमा करेगा।

हरिजनसेवक, १२–१०–'३४

१०८

घोर अज्ञान

रींगससे अेक हरिजनसेवक लिखते हैं:

"जयपुर-राज्य-युवकसम्मेलनके साथ २५–१२–'३४ को यहां पर जो खादी-प्रदर्शनीकी दुकान लगाअी गअी थी, अुस पर अेक बुनकर हरिजनका लड़का कपड़ा बेचनेको अूपर वरंडेमें बैठा था, और वरंडेके नीचे चौकमें सभा की गअी थी, जिसमें कि गांवके अन्य सवर्ण लोग थे। अुसे देखकर यहांके सवर्ण हिन्दू अिसलिअे बिगड़ गये कि अेक हरिजन लड़केको अूपर क्यों बैठने दिया, और सवर्ण लोगोंने मंदिरमें पंचायत की और यह निश्चय किया कि —

(१) खादी-प्रदर्शनी और सम्मेलनमें गांवका कोअी भी मनुष्य न जावे। अगर जायगा तो वह जाति-बाहर कर दिया जायगा।

(२) कन्या पाठशालामें लड़कियां पढ़ने न जायं, क्योंकि पाठशालाका संबंध सम्मेलनवाले लोगोंसे है।

(३) हरिजन-पाठशालाके अध्यापकको कोअी अपने मकानमें न आने दे।

पंचायतकी अितनी सख्ती होने पर भी गांवके कोअी २८ युवकोंने सम्मेलनके कार्यमें भाग लिया; और जब पंचायतने अुन पर अेक अेक रुपया जुर्माना किया, तो अुन्होंने जुर्माना देनेसे अिनकार कर दिया।

सम्मेलनके रसोड़ेमें जीमनेवाले सवर्ण भी थे और हरिजन भी। करीब तीन-चार सौ मनुष्य सभी अेक जगह जीमते थे। जबसे लोगोंने यह बात सुनी है, तबसे तो खूब ही शोर मचा रहे हैं कि 'धर्म डुबो दिया, धर्म डुबो दिया'।"

अिस बर्तावमें सिवा घोर अज्ञानके और तो कुछ दिखाअी देता नहीं। यह अुच्च-नीचका भाव दूर न हुआ तो धर्मका नाश ही समझिये। सवर्णोंके बहिष्कारसे लोग डरे नहीं, यह अेक शुभ चिह्न मालूम होता है। जिन्होंने बहिष्कार किया है अुनके अूपर किसी भी प्रकारका क्रोध न किया जाय। साथ ही, अिस बहिष्कारसे डरकर कोअी अपना कर्तव्य न छोड़े। बहिष्कार करनेवालोंमें यदि कोअी प्रतिष्ठित लोग हैं, तो अुनसे वार्तालाप भी किया जाय। संभव है कि अिस बहिष्कारका कारण कुछ और हो।

हरिजनसेवक, १५–२–'३५

१०९

प्रतिज्ञापत्रका तात्पर्य

[ग्रामोद्योग-संघके सदस्योंकी प्रतिज्ञाके अर्थमें काफी मतभेद देखकर संघके व्यवस्थापक-मंडलने सदस्योंके मार्गप्रदर्शनार्थ गांधीजीसे अेक नोट तैयार कर देनेकी प्रार्थना की थी। गांधीजीका वह नोट नीचे दिया जाता है :]

"जिस रूपमें यह प्रतिज्ञापत्र हमारे सामने है, अिरादतन् अुसी रूपमें वह बनाया गया है। यह सामान्यरूपका प्रतिज्ञापत्र है। यह अेक भद्र पुरुषकी प्रतिज्ञा है। 'भारतवर्षके ग्रामवासियोंका सब तरहसे हित साधन करनेका संघका जो अुद्देश्य है, अुसे पूरा करनेके लिअे मैं अपनी शक्ति और बुद्धिको अधिकसे अधिक अंशमें काममें लाअूंगा' — अिन शब्दोंका अर्थ करना प्रत्येक स्त्री या पुरुष सदस्यकी अपनी सत्यनिष्ठा पर छोड़ दिया गया है।

सदस्योंने केवल संघकी अुद्देश्य-सिद्धिके लिअे काम करनेकी ही नहीं, बल्कि 'संघके आदर्शोंको अपने आचरणमें अुतारने तथा गांवोंकी बनी हुअी चीजोंको ही काममें लानेकी' भी प्रतिज्ञा की है।

अिसलिअे व्यवस्थापक-मंडलका सिफारिश करनेवाला मेम्बर यह जरूर देखेगा कि सदस्यताका अुम्मीदवार अपनी प्रत्येक प्रवृत्तिमें ग्रामवासियोंका हित हृदयसे चाहता है या नहीं। अिससे यह अर्थ निकलता है कि अैसा व्यक्ति कमसे कम अपना कुछ समय नित्य गांवोंके काममें देगा। यह जरूरी नहीं कि गांवोंमें ही जाकर वह काम करेगा, पर गांवोंके लिअे काम करेगा। अिस तरह, शहरमें रहनेवाला सदस्य अमुक दिन अगर किसी आदमीके हाथ कोअी गांवकी बनी चीज बेचता है अथवा खरीदनेके लिअे अुसे समझाता है, तो यह माना जा सकता है कि अुस दिन अुसने कुछ ग्रामसेवा की है।

सिफारिश करनेवाला सदस्य यह भी देखेगा कि अुम्मीदवार, जहां तक कि संभव है, खुद गांवकी बनी हुअी चीजोंको ही काममें लाता है न — जैसे, मिलके कपड़ेकी जगह खादी, कारखानेके बने

चीनी मिट्टीके बर्तनोंकी जगह गांवोंके बने मिट्टीके बर्तन, होल्डरकी जगह बरूकी कलम, साधारण कागजके स्थान पर हाथका बना कागज, अत्यंत गन्दे और हानिकारक आधुनिक टूथ-ब्रशके स्थान पर बबूल या नीमकी रोगाणुनाशक दातुन, बाजारमें मिलनेवाली चमड़ेकी चीजोंकी जगह गांवोंके कमाये हुअे चमड़ेकी गांवोंमें बनी हुअी चीजें, मिलकी शक्करके बदले गांवोंका गुड़, मिलके चावलकी जगह हाथका कुटा पूर्ण चावल आदि।"

हरिजनसेवक, ५–४–'३५

११०

हरिजनोंके लिअे कुअें

बम्बअी सरकारने बम्बअी सूबेमें हरिजनोंके लिअे कुअें बनवानेका जो निर्णय किया है, अुसके लिअे हमें अुसे धन्यवाद देना चाहिये। कामको देखते हुअे तो यह रकम बहुत ही कम रखी गयी है। यह तो हम सबको भलीभांति विदित है ही कि कांग्रेस द्वारा स्थापित भूतपूर्व अस्पृश्यता-निवारक बोर्डकी तरफसे कअी वर्ष हुअे कि गुजरातमें हरिजनोंके लिअे कुअें बनवाये गये थे, और अब सन् १९३२ से यह काम हरिजन-सेवक-संघ कर रहा है। संघका कूप-निर्माणका कार्यक्रम काफी व्यापक है। और अब चुपचाप काम करनेवाले महान जनसेवक श्रीयुत जूठाभाअीने भी अिस सुन्दर धर्म-कार्य पर ध्यान देनेका निश्चय किया है। क्या अच्छा हो कि अिस अेक ही अुद्देश्यको लेकर काम करनेवाली अिन भिन्न-भिन्न संस्थाओंमें पूरा-पूरा सहयोग रहे। अगर सहयोगका प्रयत्न संभव न हो, तो कमसे कम श्रम और कार्यक्षेत्रका विभाग तो होना ही चाहिये। खैर, जो कुछ भी काम किया जाय अुसमें यह ध्यान रहे कि काम शीघ्रतासे हो, अच्छा हो और पैसा कमसे कम खर्च हो। सस्तेसे सस्ता काम तो तभी हो सकता है, जब हरिजन हिन्दू या सवर्ण हिन्दू अथवा दोनों ही स्वेच्छापूर्वक अिस धर्मकार्यमें अपने शारीरिक श्रमका योग दें।

हरिजनसेवक, १७–५–'३५

१११

सर्वस्व-दान

महान हरिजनसेवक श्री ज्वालाप्रसाद मंडेलिया अब अिस लोकमें नहीं है। केंद्रीय हरिजन-सेवक-संघके वे कोषाध्यक्ष थे। और फिर अुस कार्यके कोषाध्यक्ष, जो अुन्हें प्राणोंके समान प्रिय था। आजकल प्रायः जिस अर्थमें धनी शब्दका प्रयोग होता है, वह वैसे धनी नहीं कहे जा सकते थे। पर वे बिड़ला मिल्स, दिल्लीके सेक्रेटरी थे, और वहां अुन्होंने जो कुछ कमाया, जो कुछ अुनके पास था, वह सब दान कर गये। अपने जीवन-कालमें भी अुन्होंने परोपकारी कार्योंमें दिल खोलकर पैसा दिया। वे अेक जन्मसिद्ध सुधारक थे। विधवाओंका अुद्धार-कार्य अुन्हें अुतना ही प्रिय था, जितना कि हरिजनोंका, और अपनी वसीयतमें वे अिन्हीं दोनोंके लिअे अपना सर्वस्व दान कर गये हैं।

हरिजनसेवक, २–८–'३५

११२

झूठे विज्ञापन

कलकत्तेसे अेक सज्जनने अच्छे प्रसिद्ध अखबारोंमें से कुछ अैसे विज्ञापन काट-काटकर मुझे भेजे हैं, जो निरे झूठसे भरे हुअे हैं। मालूम होता है कि आजकल बंगालमें और अन्य प्रान्तोंमें भी हिन्दुस्तानी चाय पीनेके पक्षमें बड़ा प्रचंड प्रोपेगेण्डा हो रहा है। चायके अेक विज्ञापनका नमूना देखिये। यह बंगलाका अनुवाद है:

चाय पीओ चाय, हमेशा जवान दिखोगे

जलपाअीगुड़ी, १५ मअी

अुतरती अवस्थामें भी जवानी और ताकत कायम रखनेमें चाय मदद देती है, यह बात, मालूम होता है, श्रीयुत नेपालचंद्र भट्टाचार्यके अनुभवसे प्रमाणित हुअी है। भट्टाचार्यजीकी

अवस्था आज अड़तालीस वर्षकी है, पर देखनेसे अुनकी अुम्र चौंतीस सालसे अधिक नहीं जंचती। चौदह सालकी अुम्रसे अुन्होंने चाय पीना शुरू किया था। तबसे वे बराबर बिला नागा चाय पी रहे हैं। और अिधर दो सालसे वे करीब ३० प्याले चाय नित्य नियमित रीतिसे पीते हैं। अिस संबंधमें वे अपनी अेक खास विशेषता रखते हैं। चाय तैयार होते ही वे तुरन्त नहीं पीते, अुसे कुछ देर तक रखी रहने देते हैं; और सारी ही चाय नहीं पी जाते, थोड़ीसी चायदानीमें छोड़ देते हैं। अेक-अेक बारमें छः प्यालेसे लेकर दस-दस प्याले तक चाय भट्टाचार्यजी पी जाते हैं।

यह तो अैसे-अैसे विज्ञापनोंकी अेक बानगी है। अिसे पढ़ते हुअे अैसा मालूम होता है, गोया यह अखबारके अपने संवाददाताकी रिपोर्ट हो! चाय पीनेके पक्षमें यह विज्ञापन अेक अैसा दावा हमारे सामने रखता है, जिसे मनुष्यके अनुभवका कहीं भी समर्थन नहीं मिलता। देखनेमें तो अिससे अुलटा ही आता है। चायके पक्षमें वकालत करनेवाले भी बहुत ही थोड़ी चाय पीनेकी सलाह देते हैं। हिन्दुस्तानके लोग अगर चाय न पीयें, तो अिससे अुनकी कोअी हानि तो होगी नहीं। मगर दुर्भाग्यसे यह चाय और अैसी ही दूसरी पीनेकी चीजें, जो अहानिकर समझी जाती हैं, अब हम लोगोंमें जड़ जमा चुकी हैं। मेरा कहना यह है कि हमें विज्ञापन देते समय सचाअीका अुचित ध्यान जरूर रखना चाहिये। लोगोंकी, खासकर हिन्दुस्तानियोंकी यह अेक आदत बन गयी है कि किताब हो या अखबार अुसमें छपे हुअे अेक-अेक शब्दको वे 'ब्रह्मवाक्य' मान लेते हैं! अतः विज्ञापन बनानेमें अधिकसे अधिक सावधानी रखनेकी जरूरत है। अैसी-अैसी झूठी बातें, जिनकी तरफ अुक्त पत्रलेखकने मेरा ध्यान आकर्षित किया है, बड़ी ही खतरनाक होती हैं। नित्य तीस-तीस प्याले चाय पी डालना — यह क्या है! अिससे शरीर और दिमागमें भला ताजगी आयगी? अिससे तो पाचन-शक्ति कमजोर पड़ जायगी, और शरीर क्षीण हो जायगा। हलकी-सी चायके दो प्याले पी लेनेमें शायद

नुकसान नहीं होता, और मनुष्यका शरीर अितनी ही चाय पचा सकता है। फिर हिन्दुस्तानमें चायकी पत्तियां असलमें अुबाली जाती हैं, और अिस तरह अुनका सारा 'टैनिन' पानीमें खिच आता है। कोअी भी डॉक्टर यह प्रमाणित कर देगा कि मेदेके लिअे यह 'टैनिन' अच्छी चीज नहीं है। चाय पीना तो बस चीनी लोग जानते हैं। पत्तियोंको वे छन्नीमें रखकर अुन पर खौलता हुआ पानी डालते हैं। पत्तियोंको वे चायदानीमें कभी नहीं डालते। पानीमें पत्तियोंका सिर्फ रंग अुतर आता है। अुनकी वह चाय हलके पीले रंगकी दीखती है, अैसी लाल रंगकी नहीं जैसी कि हिन्दुस्तानमें साधारण रीतिसे बनाअी जाती है। तेज चाय तो जहर है।

हरिजनसेवक, ३०–८–'३५

११३

आभार

मेरे ६७ वें जन्मदिनके अुपलक्षमें मुझे अनेक बहिनों और भाअियोंने हरअेक प्रान्तसे अपनी शुभ कामना और अपने आशीर्वादके तार और पत्र भेजे हैं। अुन सबका आभार अिस दरिद्र वाणीसे तो माना ही नहीं जा सकता। अीश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि सब भाअी-बहनोंके शुद्ध प्रेमका वह मुझे पात्र बनावे और मुझे जनताका सच्चा सेवक बननेकी शुद्धि प्रदान करे। मैं यह जानता हूं कि जो तार और पत्र आये हैं अुनमें कोअी रूखी-सूखी विनयकी बात नहीं है; अुनमें तो हार्दिक भावोंका प्रदर्शन है।

अिन सब संदेशोंकी अलग अलग स्वीकृति भेजना असंभव है। अिसलिअे मैं यह आशा करता हूं कि मेरी अिस स्वीकृतिसे ही सब बहनें और भाअी संतुष्ट हो जायंगे।

हरिजनसेवक, १२–१०–'३५

११४

दो प्रश्न

हरिजन-आन्दोलनके अेक कार्यकर्ताने मुझे दो प्रश्न लिख भेजे हैं। अुनमें से पहला यह है:

"मैं अपने यहां अेक हरिजन रखता हूं। अेक दिन मेरे यहां अेक मेहमान आते हैं जो अस्पृश्यताके हामी हैं। अिस समय यदि मैं अपने नौकरसे अुन्हें पानी वगैरा दिलवा देता हूं तो अुन्हें धोखा देता हूं, और अगर नौकरसे न दिलवाकर खुद देता हूं तो नौकरका जी दुखता है। मेरे लिअे यह अेक भारी धर्म-संकट है। अैसी हालतमें क्या करना चाहिये, कुछ समझमें नहीं आता।"

अिसमें धर्म-संकटका तो सवाल ही नहीं अुठता। जब हम किसी भंगी हरिजनको अपना कुटुम्बी बनाकर रखें, तो पहलेसे ही अुसे अपने घरके सब नियम बता देने चाहिये। अुससे यह साफ-साफ कह देना चाहिये कि हमारे यहां अस्पृश्यता माननेवाले मेहमान भी आते हैं, और अुनके दिलको न दुखानेके लिअे हम खुद ही अुन्हें पानी वगैरा देते हैं या दूसरे नौकरोंसे दिला देते हैं। जो भंगी नौकर हमारी अिस आदतको जानता है, अुसे दुःख माननेका कोअी कारण नहीं रह जाता। लेकिन अुक्त प्रश्नमें यह अध्याहार है कि अिस बर्तावसे भंगीके सामने अेक नअी समस्या खड़ी हो जाती है। अिसलिअे अैसे मौकों पर हम अपने मेहमान और भंगी सेवक दोनोंके सामने अपनी आपत्तिको खोल दें, तो न तो किसीको धोखा ही होगा और न किसी प्रकारका धर्म-संकट ही आयगा।

दूसरा प्रश्न यह है:

"कुछ हरिजनोंको अेक भोज दिया जाता है, जिनमें अधिकतर चमार हैं और दो-चार राजपूत भी। भोजन बनाने और परोसनेवाले भंगी हैं। पर यह बात भोजन करनेवालोंको नहीं बताअी जाती। वे बिना जाने खाकर चले जाते हैं। अगर

अुन्हें यह बात भोजनसे पहले बता दी जाती तो वे छोड़कर चले जाते और बादमें बताअी जाती तो झगड़ा करते। अिसलिअे अुन्हें अनजानमें खिलाना क्या धोखा नहीं हुआ? यह अुचित था या अनुचित?"

यह प्रश्न अगर किसी बीती हुअी घटनाके बारेमें है, तो बिलकुल निरर्थक है। मैं भविष्यके बारेमें ही कह सकता हूं। जब हम सब प्रकारके हरिजनोंको भोजनके लिअे बुलावें, तो अुन्हें पहलेसे ही बता देना चाहिये कि भोजन बनाने और परोसनेवाले भंगी हरिजन ही होंगे। अगर हम यह बात साफ नहीं करते तो सरासर धोखा देना है। हमें यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि अस्पृश्यतारूपी जहर हरिजनोंमें भी फैला हुआ है।

हरिजनसेवक, २-११-'३५

११५

कन्या-वध

आज भी अिस हतभाग्य देशमें कन्या-वध जैसी निर्दय, अमानुषी प्रथा चल रही है, यह माननेमें कष्ट होता है। लेकिन जो पत्र मेरे सामने पड़ा है वह मुझे यह माननेको मजबूर करता है। बिहार, जिला भागलपुरके देहात अमरपुरमें राजपूत-कन्या-वध-विरोधिनी सभा स्थापित हुअी है। अिस बारेमें सभा-मंत्रीने अेक दुःखजनक खत लिखा है। अुसमें से नीचे थोड़े फिकरे दिये जाते हैं:

"भगवान बुद्धने बकरोंकी रक्षाके लिअे अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी थी। आज अुन्हींकी सन्तान अपनी सद्यःप्रसूता कन्याको मारनेमें लगी हुअी है। मनुष्यताको कलंकित करनेवाली यह कुप्रथा हम राजपूतोंमें ही है। अैसे भी घर हैं जहां अेक दारोगा, अेक तहसीलदार तथा पढ़े-लिखे युवक हैं। आज ५० वर्षोंसे अुनके घर अेक भी कन्या नहीं रखी गअी। जरा अुस

दृश्यकी कल्पना करें, जब बच्ची पैदा होते ही मां अुससे अलग हो जाती है। दूध नहीं दिया जाता है, बच्ची दम घुटकर मर जाती है। यों नहीं मरी तो नमक चटाकर अथवा तम्बाकू खिलाकर मार दी जाती है। सबमे सरल तरीका तो यह है कि अुसके मुंह-नाक पर मांसका लोथा रख दिया जाता है। कैसा घृणित तरीका है! बकरेको तो हथियारसे मारते हैं, लेकिन निस्सहाय, मुंहसे भी आवाज नहीं निकालनेवाली बच्चीको दम घुटाकर मारना — कितना अनर्थ है!

"पंजाबके जाट राजपूतों और जाट सिक्खोंमें यह कुप्रथा थी। पंजाब कौंसिलमें अुसे रोकनेके लिअे खास कानून बनवाया गया। पर हमारे यहां लोग संकोच करते हैं।"

धर्म तो सिखाता ही है कि जीवमात्र अंतमें अेक ही हैं। अनेकता क्षणिक होनेके कारण आभास मात्र है। लेकिन राष्ट्रभावना भी हमें यही पाठ देती है। हम अपनेको राजपूत अित्यादि नहीं मानते हैं; न बिहारी, पंजाबी अित्यादि। हम अपनेको हिन्दुस्तानी मानते हैं और अेक ही राष्ट्र मानते और मनाते हैं। अिसलिअे धर्म-दृष्टि या राष्ट्र-दृष्टिसे हम अेक हैं और अेकके दोषकी जिम्मेदारी हम सब पर आती है। अिस न्यायसे अिस राजपूत-कन्या-वधके लिअे हम सब, राजपूत हों या कुछ भी हों, जिम्मेदार हैं। अेक-दूसरेके दोष, अेक-दूसरेकी आपत्तिके लिअे हम अुदासीन न रहते तो कन्या-वध आज तक निभ नहीं सकता। अिसमें न धर्मका बहाना है, न कोअी आवश्यकताका। कोअी अेक युग होगा कि जब राजपूत-जीवन अनिश्चित होनेके कारण कन्या-जन्म आपत्ति माना जाता होगा; आज तो यह बहाना रहा ही नहीं है। दूसरोंकी अपेक्षा राजपूत-जीवन अधिक अनिश्चित है, अैसा नहीं कहा जा सकता है। राजपूतोंके सिर पर आज युद्धका बोझ नहीं रहा है। आज राजपूतको अपनी तलवार साथमें रखकर सोना नहीं पड़ता है। राजपूत-कौम भले ही हो, राजपूत-धर्म जैसी कोअी वस्तु नहीं रही। फिर कन्या-वध क्यों? कन्याका बोझ क्यों? बोझ तो अुन लोगों पर अवश्य पड़ता है जो

अपनी कन्याके लिअे पति खरीदते हैं और दम निकल जाय अितना दाम देना पड़ता है। अीश्वरकी कृपा है कि वे अपनी कन्याका वध करने तक नहीं पहुंचे हैं। मुझे नहीं पता कि आज राजपूत-कन्या-वधके लिअे कोअी बहाना बताया जाता है क्या? अगर अैसा कोअी बहाना है, तो नअी सभाका अिस पर प्रकाश डालना कर्तव्य है।

लेकिन बहाना हो भी सही, अुसे दूर करना धर्म होगा। कोअी बहाना अिस राक्षसी प्रथाको कायम करनेमें कभी मान्य नहीं हो सकता है। लोकमतको संगठित करके शीघ्र ही अिस प्रथाको मिटाना चाहिये। संगठन करनेका बोझ राजपूत-कन्यावध-विरोधिनी-सभा पर ही हो सकता है। लम्बे व्याख्यानोंसे प्रयत्न सफल नहीं होगा, न प्रस्तावोंसे ही होगा। अिन दोनोंकी थोड़ी आवश्यकता रहेगी। पर अत्यावश्यक वस्तु तो अिस बारेमें सविस्तर हकीकत है। अैसा नकशा बनाना चाहिये, जिसको देखनेसे ही क्षणमें पता चले कि कहां-कहां कन्या-वध होता है। गत वर्षमें कितनी बालिकाओंका वध हुआ। वधकी संख्या निकालना कठिन होगा, असंभव भी हो सकता है। बात यह है कि जितनी खबर मिल सके सब अिकट्ठी करनी चाहिये और प्रत्येक घरमें, जहां कन्या-वधकी संभावना भी हो, सभाका सन्देश पहुंचना चाहिये। सिर्फ अखबारोंमें प्रस्तावादि भेजनेका कोअी असर जो मां-बाप कन्या-वध कर रहे हैं अुन पर नहीं पड़ेगा। सभाके कार्यकर्ताओंको यह भी याद रखना आवश्यक है कि वे किसी प्रकारकी अतिशयोक्ति न करें। अविश्रान्त, सच्चे और शांत प्रयत्नसे अिस कार्यमें शीघ्र सफलता मिल सकती है, अैसा मेरा अभिप्राय और विश्वास है।

हरिजनसेवक, ४–७–'३६

११६

हिन्दू आचार

निम्नलिखित पत्र सात महीने मेरी फाअिलमें रखा रहा है:

"हालमें अहमदाबाद और आसपासके गांवोंमें मैं हरिजन-सेवाका काम कर रहा हूं। सफाअीके कामके अलावा अुनसे धर्मकी बातें भी कहता हूं। हालमें अेक हरिजन भाअीने मुझसे कहा कि 'तुम सत्य, अहिंसा, सादा जीवन आदिकी अैसी-अैसी बातें करते हो, जो न हम पूरी तरहसे कुछ समझते हैं और न अुन पर चलते हैं। अिसके लिअे तुम अमुक निश्चित बातें ही हमें समझाओ और अुन्हें आचारमें लानेका आग्रह रखो तभी हम कुछ सुधरेंगे।'

"मुझे अूपरकी बातसे यह सच जान पड़ता है कि हम हरिजनोंसे पवित्र जीवन बिताने जैसी सर्वसामान्य बातें करें, अिसकी अपेक्षा अगर हम हिन्दू धर्मकी कुछ साररूप आज्ञायें तैयार करके अुन्हें आचारमें लायें तो वे वैसा करने लगेंगे; जैसे नित्य प्रार्थना करना, स्नान करके ही जीमना, कामकी चोरी न करना, कोअी व्यसन न रखना आदि बातें जिसमें आ जायं, अिस प्रकारकी हिन्दू धर्मका सच्चा आचार बतानेवाली कुछ आज्ञायें आप तैयार कर दें तो अच्छा हो।"

अिस पत्रको मैंने अिस आशासे दबा रखा था कि अिसका जवाब खुद देनेकी अपेक्षा किसी विद्वान शास्त्रज्ञसे लिखाकर भेज दूं तो अच्छा हो। अब यह काम आचार्य आनंदशंकर भाअीने मेरी प्रार्थनासे हाथमें ले लिया है। पर जो पुस्तक तैयार होगी अुससे अूपरके प्रश्नोंका हल, जैसा कि लेखक चाहता है, वैसा नहीं होगा। अिस पुस्तकमें से वह खुद आवश्यक चीजें निकाल लेगा अैसी मेरी आशा है। अिस प्रकारकी कोअी चीज मैं यहां दे देता हूं। चूंकि हरिजनोंमें काम करते मुझे बरसों हो गये हैं, अिसलिअे मेरा अनुभव शायद प्रश्नकार जैसे सेवकोंको कुछ मदद दे सके।

मैं हरिजनोंसे हिन्दू धर्मके तत्त्वोंकी बातें नहीं करता, अुनके मंदिर अगर पृथक् होते हैं तो अुनमें चला जाता हूं। अुनके पुजारीके साथ विनोद भी करता हूं। अुस बेचारेको साधारणतया कुछ ज्ञान नहीं होता है। सवर्णोंका पुजारी सब कुछ जानता है अैसा कहनेका मेरा आशय नहीं। मगर सवर्ण पुजारी मेरी बात सुनेगा ही क्यों? हरिजन पुजारी मुझे अेक बड़ा आदमी मानता है और मेरी बात सुनता तो है; पीछे भले ही अेक कानसे सुनकर दूसरे कानसे निकाल दे। यह तो अलग बात हुअी। हरिजन मंडलीको तो मैं अिस प्रकार कहूंगा -- तुम्हें आज तक हमने दुतकारा ही है; तुम्हारी तरफ देखा भी नहीं; तुम्हारे दुःख-सुखमें भाग नहीं लिया। अिसलिअे हमारे धर्मका हमसे क्या तकाजा है, यह मैं तुम्हें बता दूं।

१. सवेरे पौ फटनेसे पहले अुठनेकी आदत न हो तो डाल लेनी चाहिये।

२. बहुतसे लोग तो अुठते ही या तो बीड़ी-चिलम फूंकने लगते हैं, या घरवालोंको यों ही अंटसंट खबरें सुनाते हैं। अैसा करनेके बजाय, बिस्तर छोड़नेसे पहले आलस्यको भगाते हुअे प्रभुका नामोच्चारण करना चाहिये और रात निर्विघ्न बीत जानेके लिअे भगवानका आभार मानना चाहिये।

३. बिस्तर छोड़ते ही बालबच्चोंको अुठा देना चाहिये और जहां लोगोंका आना-जाना न हो वहां बैठकर नीम या बबूलकी दातुन करनी चाहिये। साथमें, नमक या घरमें पिसे हुअे कोयलेसे दांतोंको अच्छी तरह घिसना चाहिये। दातुनको चीरकर अुससे जीभ साफ करें और अच्छी तरह कुल्ले करें, आंखों पर पानीके छींटे मारें, कीचड़ हो तो अुसे निकालें, और चेहरा, कान, नाक वगैरा अच्छी तरह धोयें और साफ कपड़ेसे अुन्हें पोंछें।

४. अगर शौचकी खबर हुअी हो तो, और गांवके नजदीक पाखाना न हो, और अुसके होते हुअे भी वहां जाना पसंद न हो तो दूर जाकर जहां लोगोंकी आवा-जाही न हो, वहां शौचक्रिया करनी चाहिये। मलको धूल या मिट्टीसे अच्छी तरह ढंक देना चाहिये,

और मलविसर्जनका भाग पानीसे ठीक तरहसे साफ कर देना चाहिये। मल दोनों ही अिन्द्रियोंसे निकलता है, अिसलिअे दोनोंको अच्छी तरह धोकर अुनका मैल साफ कर देना चाहिये। अिसके बाद पानी और मिट्टीसे हाथ धोने चाहिये, और लोटा भी खूब मांजकर साफ करना चाहिये।

५. यह सब नित्यक्रिया करते समय मनमें रामधुन या कोअी भजन गाते जायं, और अैसी कोअी चीज न आती हो तो केवल रामनामकी ही रटना लगी रहे।

६. घर आते आते अिस तरह पौ फटनेका समय हो जायगा। कुटुंबके लोग भी अिस बीचमें अिसी तरह शौचादिसे निवृत्त हो चुके होंगे। अिसलिअे अुनके साथ बैठकर पांच मिनटसे लेकर आध घंटे तक भगवानका भजन-कीर्तन करना चाहिये। अगर कोअी भजन वगैरा न आता हो, तो रामनाम तो सब ले ही सकते हैं।

७. अिसके बाद नाश्ता करके सबको अपने-अपने काममें लग जाना चाहिये, बालक भी काम पर न जाते हों तो पाठशाला पढ़ने चले जायं।

८. दोपरहका भोजन करनेसे पहले साफ पानीसे सारे शरीरको अच्छी तरह रगड़ कर नहाना चाहिये। धोती-साड़ी वगैरा कपड़े साफ करके धोने चाहिये। गरीब आदमी, जिन्हें कपड़े रोज बदलनेकी सुविधा न हो, लंगोटी पहनकर नहा लें। नहानेके बाद शरीरको खूब अच्छी तरह पोंछना चाहिये।

९. अिस तरह नित्यका काम-धंधा करते हुअे जब शाम हो जाय, तब खाना खानेके बाद और सोनेसे पहले अीश्वरका नाम लेना चाहिये और दिन निर्विघ्न बिता देनेके लिअे अुसका आभार मानना चाहिये।

१०. हर समय खाना खानेके बाद या अैसा कोअी भी काम करनेके बाद, जिसमें कि हाथ गन्दे होते हों, हाथ धोने चाहिये। खाना खानेके बाद कुल्ला करके मुंह साफ करना चाहिये।

११. हमें समझना चाहिये कि हमारे हरअेक कामको, हमारे हरअेक विचारको, अीश्वर देखता है, अिसलिअे अुसे तो कोअी धोखा दे ही नहीं सकता। तो फिर अुसके सिरजे हुअे अपने भाअी-बहनोंको हम किस तरह धोखा दें? भले ही वे हमारी धोखेबाजीको न जान सकें। और जान जायं तो धोखा दे ही कैसे सकते हैं?

१२. अिसलिअे हम जिसकी नौकरी करते हों अुसका काम दिल लगाकर करें, अुसे दगा न दें।

१३. और अगर किसीको धोखा न दें, तो किसीकी चोरी तो करें ही किसलिअे? खोटी तोल तोली, तो वह भी चोरी ही हुअी।

१४. हमें कोअी गाली दे या मारे या हमारी मां-बहनके साथ दुराचरण करे, तो हमें वह निश्चय ही अच्छा नहीं लगेगा। अिसलिअे हम किसीको गाली न दें, अपनी स्त्री या बाल-बच्चोंको भी न दें।

१५. न किसीको मारें-पीटें। अिसमें स्त्री और बालबच्चे भी आ गये। अिनका नाम अलगसे लेना पड़ा है, क्योंकि बहुतसे पुरुष अपनी स्त्री और बच्चोंको अपनी माल-मिलकियत समझते हैं। पर यह भारी भूल है। स्त्रीको तो हमारे धर्ममें पुरुषके समान ही माना है। अिसीसे वह अर्धांगिनी कही जाती है, सहधर्मिणी कही जाती है, देवी मानी जाती है। बालबच्चे भी हमारी मिलकियत नहीं हैं। माता-पिता अुनके रक्षक हैं, अिसलिअे अुनके प्रति भी नरमाअी, सहनशीलता और धीरज काममें लाना चाहिये।

१६. जिस प्रकार हम अपनी स्त्री या बालकोंके साथ सद्भाव रखें, अुसी प्रकार माता-पिता आदि बुजुर्गोंके साथ मान या आदरसे बरताव करें।

१७. और अूपरके १४ वें पैरामें जो बताया है अुसके अनुसार यह तो सत्य ही है कि पुरुष परस्त्रीको मां-बहिनके समान समझे, और अिसी तरह स्त्री परपुरुषको भाअी और बापके समान माने।

१८. जिस प्रकार मनुष्यमात्र अेक अीश्वरकी कृति हैं, अुसी तरह प्राणीमात्र भी अुसीकी कृति हैं; अिससे वे भी अेक कुटुंबरूप

हैं। अिसलिअे अुनके साथ भी हमें सद्भाव रखना चाहिये। अतः मिट्टी या पत्थरका भी दुरुपयोग न किया जाय। हमारे धर्ममें तो हमें अिस प्रकारकी प्रार्थना भी सिखाअी गअी है: 'हे धरती माता, तेरे अूपर हम रोज चलते हैं, तेरे ही आधार पर तो हम टिके हुअे हैं। हमारे पैरके स्पर्शके लिअे हमें तू क्षमा करना।' अैसा कहकर हम चुटकी भर धूल माथे पर चढ़ा लें।

१९. और अिससे हम अपने पशुके साथ भी ममताका बरताव करें, अुसे ठीक-ठीक खिलावें; जितना बोझ वह ले जा सके अुससे अधिक अुसके अूपर लादना नहीं चाहिये; अुसे अच्छी जगहमें रखें; अुसे मारें-पीटें नहीं।

२०. अिसी तरह जितनेकी जरूरत हो अुतने ही पेड़-पत्तोंको तोड़ें। तोड़नेमें विवेकसे काम लें। चाहे जिस तरह न काटें।

२१. जहां तक हो सके मांसाहार न करें। पर गोमांस तो लेना ही नहीं चाहिये। हमारे धर्ममें गोरक्षाके लिअे महान स्थान है।

२२. १९वें पैराके अनुसार सब जीव हमारे भाअी-बहन हैं। अिससे हमारे ऋषि-मुनियोंने सिखाया है कि गायको बतौर माताके मानकर हमें मनुष्य-जातिसे अितर समस्त जीवोंके प्रति भाअीचारेका बरताव रखना चाहिये। गायको माता मानना भी अुचित है, क्योंकि माताकी तरह वह भी हमें दूध देती है। जिसे दूध मिलता है अुसे मांस-मछलीकी जरूरत नहीं रहती। फिर गाय तो हमें बैल भी देती है, और मरनेके बाद चमड़ा, खाद, गाड़ियों वगैराके लिअे चरबी आदि चीजें भी हमें दे जाती है। अिसलिअे गायकी हत्या तो करनी ही नहीं चाहिये।

२३. और गायकी हत्या न करें तो अुसके मरनेके बाद अुसका मांस क्यों खावें? मुर्दार जानवरका मांस तो दुनियामें कोअी समझदार आदमी खाते नहीं।

२४. व्यसनमें फंसनेसे मनुष्य पागल सरीखा बन जाता है; कितनी ही बार तो अुसे बिलकुल ही भान नहीं रहता। अिसलिअे

दारू, ताड़ी, भांग, गांजा, अफीम, तमाखूको न पीना चाहिये, न खाना चाहिये।

२५. जुआ तो ठगी है और अुसमें मिला हुआ धन हरामका पैसा है। अिसलिअे जुआ नहीं खेलना चाहिये।

२६. जैसा हमें अपना धर्म प्रिय है वैसा ही दूसरोंको अपना धर्म प्यारा है। अिसलिअे हमें सब धर्मोंका आदर करना चाहिये, अुन्हें अेक समान मानना चाहिये। और अिससे हमें मुसलमान, औसाओ वगैरा अन्य धर्मावलंबियोंके साथ द्वेष या लड़ाओ-झगड़ा करना ही नहीं चाहिये।

२७. जब धर्म यह सिखाता है कि हम सब औश्वरकी संतान हैं, तो फिर अुसमें अूंच-नीच कोओ हो ही नहीं सकता। अस्पृश्यताकी तो गन्ध भी नहीं होनी चाहिये।

२८. अंतमें हमारा धर्म यह भी कहता है कि जो अपने शरीर-श्रमसे अपनी आजीविका पैदा नहीं करता, वह चोरीका अन्न खाता है। अिसलिअे सबको खेतीमें या कपड़े बनानेमें या अैसी ही मजदूरीमें लगकर अपनी रोटी पैदा करनी चाहिये, और अिसीसे अपने अपने गांवमें अनाज, खादी वगैरा खाने-पहननेकी चीजें पैदा करनी चाहिये।

अैसा मैंने अनेक बार भिन्न भिन्न अवसरों पर कहा है और अुसीको यहां लेखनीबद्ध कर दिया है। अिसमें अवसरके अनुसार और अुसके अन्तर्गत सत्य, अहिंसा आदि सनातन तत्त्वोंका अनुसरण करके और भी अैसे वचन बनाये जा सकते हैं।

हरिजनसेवक, २–१–’३७

११७

तीन प्रश्न

अेक साथीने नीचे लिखे अनुसार तीन प्रश्न पूछे हैं :

"(१) अगर आज हरिजनोंको मंदिर-प्रवेश मिल जाता है, तो कल अैसा आन्दोलन अुठ सकता है कि जहां पुजारी जा सकते हैं वहां स्वच्छ होकर सब लोग क्यों नहीं जा सकते? अिसको रोकना मुश्किल है। दलीलसे यह नहीं समझाया जा सकता।

"(२) जिस मंदिरमें हरिजनोंका प्रवेश नहीं अुस मंदिरमें अीश्वरका वास नहीं; अैसा जो कहा जाता है यह मुझे अेकांतिक लगता है। अीश्वर मंदिरोंमें ही है, अन्यत्र नहीं, यह कहना जितना मिथ्या है अुतना ही मिथ्या यह भी है कि जिस मंदिरमें हरिजन नहीं जा सकते अुस मंदिरमें अीश्वरका वास नहीं।

"(३) महात्माजी कहते हैं कि अगर अस्पृश्यताका नाश न हुआ तो हिन्दू धर्म नष्ट हो जायगा। हजारों बरसोंसे आज तक अस्पृश्यता टिकी हुअी है, तब भी हिन्दू धर्मका नाश नहीं हुआ, सो अब नाश किस प्रकार हो सकता है? जिस हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यता है अुसी हिन्दू धर्मसे महात्माजीको शांति मिली है।"

(१) श्रद्धावान मनुष्यको भविष्यमें आनेवाली कठिनाअियोंके भयसे अपना वर्तमानका कर्तव्य नहीं छोड़ना चाहिये। जैसे हम हैं, वैसे ही हरिजन हैं, अैसा समझकर बरतना अुचित है। जो दलीलें हम समझते हैं, अुन्हें हरिजन भी समझते हैं, अैसा विश्वास रखें। जितनी मर्यादाकी रक्षा सवर्ण करते हैं, अुतनीका पालन हरिजन अवश्य करेंगे। आज तकका अनुभव यही बतलाता है। सवर्ण-अवर्णका भेद

अथवा सवर्णोंके अन्दर-अन्दरका भेद वे नहीं समझेंगे; क्योंकि अैसा भेद अस्पृश्यतासूचक है, बुद्धि अुसे स्वीकार नहीं करती। बुद्धिका विषय होनेसे वह श्रद्धाका विषय नहीं हो सकता।

(२) जिस मंदिरमें हरिजनोंका प्रवेश नहीं, अुस मंदिरमें अीश्वरका वास नहीं, यह वचन अवश्य अेकांतिक है। अेकांतिक अर्थात् अमुक दृष्टिसे सत्य। अिस अर्थमें लगभग सभी वचन अेकांतिक होते हैं। पर अिससे अिस प्रकारके वचन दूषित नहीं ठहरते। व्यवहारके लिअे दूसरा रास्ता ही नहीं। भगवान कहां बसते हैं, अिस प्रश्नके अुत्तरमें श्री रामजीने कहा है कि भगवान संतके हृदयमें वास करते हैं, असंतके हृदयमें नहीं। यह वचन भी अेकान्तिक है। तो भी अिससे अुलटा या यह कहना कि 'भगवान दुर्जनके हृदयमें भी बसते हैं' अधिक शास्त्रीय भले ही हो, पर व्यवहार-दृष्टिसे हानिकारक है। हत्यारेके खंजरमें और सर्जनके नस्तरमें शास्त्रीय दृष्टिसे दोनोंमें ही अीश्वर है; पर प्राकृत और व्यवहार-दृष्टिसे अेकमें देव है, दूसरेमें असुर। अेकका प्रेरक राम है, दूसरेका रावण; अेकमें खुदा है, दूसरेमें शैतान; अेकमें ओरमज्द है, दूसरेमें अहरीमान। अिसलिअे मैं तो अपने कथनसे अब भी चिपटा हुआ हूं कि जहां हरिजनको स्थान नहीं, वहां हरिको भी नहीं।

(३) अिस वचनमें कुछ तथ्य नहीं जान पड़ता। हिन्दू धर्मका नाश तो हमारी आंखोंके सामने ही हो रहा है; और अुसका अेक और मुख्य कारण अस्पृश्यता है। जो मुर्देकी नाअीं जी रहा है, वह जीता नहीं है। मुझ जैसोंको हिन्दू धर्मसे शांति मिलती है तो अिसका कारण तो यह है कि अस्पृश्यताको मैं हिन्दू धर्मका अंग जरा भी नहीं मानता। प्रश्नकार अैसा कह सकता है कि मेरा नाशविषयक वचन भी अेकांतिक है। अैसा है ही, पर वह अचूक है। हिन्दू धर्मीका नाश हो जाय, तो हिन्दू धर्मका नाश ही समझना चाहिये। मैं अकेला अुसका साक्षी रहूं अिसका मुझे भले ही संतोष बना रहे, पर जिसका नाश हो रहा हो अुसके लिअे क्या कहा जाय?

हरिजनसेवक, २०–२–'३७

११८

हरिजनसेवकका धर्म

अेक हरिजनसेवक लिखते हैं:

"अेक प्रभावशाली राष्ट्रसेवक अैलान करते हैं कि वे अपने व्यक्तिगत आचरणोंमें हरिजनोंके साथ पूर्ण समानताका व्यवहार रखते हैं। आश्रम अित्यादिमें हरिजनोंकी बनाअी हुअी रसोअी भी बिना हिचकिचाहटके खा लेते हैं। फिर भी सर्वसाधारणके अूपर अुनके अिस आचरणका वांछित प्रभाव नहीं पड़ता। लोग कहते हैं — घरसे बाहर ये लोग कुछ भी करें; घरमें तो अैसा न करने पायेंगे। हम लोग घर-गृहस्थीमें रहनेवाले हैं; बालबच्चोंका शादी-ब्याह करना है। हम समाजके नियमोंका अुल्लंघन कैसे कर सकते हैं?

"अुक्त सेवकके अुदार मित्रगण सलाह देते हैं कि 'आप अपने घरमें भी हरिजनोंके साथ अैसा ही व्यवहार करें, जैसा अन्य स्थानोंमें करते हैं। अच्छा हो कि आप केवल यही दिखलानेके लिअे कि अपने घर व गांवमें भी आप हरिजनोंके साथ असमानताका व्यवहार नहीं करते, अपने ही गांवमें अेक सार्वजनिक सभा करके हरिजनोंसे पानी मंगाकर पीयें या अुनके हाथसे भोज्य वस्तु ग्रहण करें। अैसा देखने पर लोग अिस विषय पर विशेष रूपसे विचार करेंगे।'

"अिस पर वे सेवक अुत्तर देते हैं — 'मेरा व्यवहार तो सदा अेकसा ही होता है। घर पर या गांवमें कोअी हरिजन मुझे पानी व भोज्य वस्तु दे देगा तो ग्रहण कर ही लूंगा। पर प्रदर्शनका आयोजन करके लोगोंको चिढ़ाअूंगा नहीं।'

"पर बात तो और ही है। जो हरिजन अुक्त सेवकको आश्रममें खिलाता है अुसने भी तो यही समझ रखा है कि

> बाबू यहां पर तो हमारे हाथसे भोज्य वस्तु या पानी ग्रहण कर लेते हैं, पर घर पर अुन्हें पानी देना मेरे लिअे अनुचित है। अिस हालतमें घर पर तो बिना विशेष आयोजनके अैसा प्रसंग अुठ ही नहीं सकता।
>
> "और क्या अुपर्युक्त प्रकारके आयोजन करनेका अर्थ 'लोगोंको चिढ़ाना' हो सकता है? मैं तो अिसका अर्थ 'लोगोंका भ्रम दूर करना' समझता हूं।"

सुधारक लोगोंको कब 'चिढ़ाता' है, और कब 'लोगोंका भ्रम दूर करता है' अिसका अुत्तर देना असंभव नहीं है। अेक ही कार्यसे अथवा अेक ही वचनसे चिढ़ भी पैदा हो सकती है और भ्रम भी दूर हो सकता है। अिसका निर्णय प्रत्येक व्यक्ति पर ही छोड़ना चाहिये। अितना निश्चयपूर्वक अवश्य कह सकते हैं कि किसीको चिढ़ानेके हेतु हम कुछ न करें; और भ्रम दूर करनेकी कोशिश अवश्य करें। जब सुधारकी सब क्रिया स्वाभाविक बन जाती है, तब चिढ़ानेका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। क्योंकि स्वभावको कौन छोड़ सकता है और जब क्रिया या वचन स्वाभाविक होते हैं, तब किसीको अुससे चिढ़ पैदा नहीं होती है। अिसलिअे अच्छा तो यही है कि सुधारक अपने कर्तव्यका पालन कर्तव्य समझकर ही करें, और दूसरे किसी खयालसे न करें। अैसा करनेसे अपने-आप भ्रम दूर हो जायगा।

हरिजनसेवक, २०–२–'३७

११९

हरिजन व अितरजन

अेक सज्जन लिखते हैं:

"बिहारमें अैसी हरिजन पाठशाला है, जिसमें सवर्ण लड़कोंकी संख्या अवर्ण अर्थात् हरिजन लड़कोंकी संख्यासे अधिक है। प्रथम दृष्टिमें यह बात अुचित-सी प्रतीत होगी, लेकिन अैसा नहीं है। बिहारमें प्राथमिक शिक्षा मुफ्त नहीं दी जाती। सिर्फ हरिजन-सेवक-संघ द्वारा जो पाठशाला चलती है अुसीमें मुफ्त शिक्षा देते हैं। अिस कारण काफी हरिजनेतर लड़के वहां जाते हैं। हरिजन-सेवक-संघकी नीति स्पष्ट है कि हरिजनेतर लड़कोंसे फीस ली जाय। अिस बारेमें प्रकाश डालनेकी आवश्यकता है क्या?"

आवश्यकता अवश्य है। यदि सब हरिजन शालाओंमें ज्यादातर सवर्ण लड़के आ जायं तो भविष्यमें हरिजन लड़कोंके शिक्षारहित हो जानेका भी पूरा डर है। अिसलिअे प्रत्येक सवर्ण लड़केके पाससे कुछ न कुछ फीस लेनी ही चाहिये। यह संभव है कि सवर्ण लड़के भी हरिजन लड़कोंके जैसे ही गरीब हों। यदि अैसा है तो बिहार हरिजन-सेवक-संघको बिहार विद्यापीठके साथ मशविरा करके जितने सवर्ण लड़के पाठशालामें आवें अुनके लिअे विद्यापीठसे खर्चेका हिस्सा लेना चाहिये। विद्यापीठका क्षेत्र अमर्यादित है, हरिजन-सेवक-संघका मर्यादित है, और होना भी चाहिये। अिसलिअे सवर्ण लड़कोंको मुफ्त सिखाना हरिजन-सेवक-संघके लिअे अनुचित होगा। विद्यापीठके लिअे शायद यह धर्म होगा।

हरिजनसेवक, २०-२-'३७

१२०

दृश्य तथा अदृश्य दोष

अेक खादीसेवक लिखते हैं:

"आप कार्यकर्ताओंके सदाचार पर बहुत जोर देते आ रहे हैं। आपने अधिकतर कामवासनासे बचनेको ही बहुत महत्त्व दिया है जो कि ठीक भी है। जब कभी अिस विषयमें किसी कार्यकर्ताकी गिरावटका अुदाहरण आपके सामने आया है, आपके हृदयको सख्त चोट लगी है और आपने अुसका अुल्लेख 'हरिजन' में भी किया है। लेकिन क्या सदाचारका अर्थ केवल परस्त्रीके प्रति कामवासना न रखना ही है? क्या झूठ बोलना, अीर्ष्या व द्वेष रखना सदाचारके विरुद्ध नहीं है? चूंकि हमारा समाज भी अिन बातोंको अितनी घृणासे नहीं देखता जितनी घृणासे वह परस्त्रीके साथ संबंधको देखता है; अिसलिअे शायद आप भी अिन बातों पर अधिक जोर नहीं देते। पर ये बुराअियां अुससे कम नहीं, बल्कि बाज हालातमें तो ये कहीं अधिक हानिकारक होती हैं।

"वैसे तो पापोंकी तुलना ही क्या! परंतु हमारे आज-कलके समाजमें तो अिन चीजोंको अधिक बुरी निगाहसे नहीं देखा जाता। जब अेक जिम्मेदार मुख्य कार्यकर्ता अेक दिनमें चार-पांच सफेद झूठ बोले और किसी पर झूठे अिलजाम लगाये, तो क्या हृदय विदीर्ण नहीं हो जाता? क्या अिससे अपनेको व समाजको वह हानि नहीं पहुंचाता?"

यह प्रश्न अच्छा है। दोषोंमें अूंचनीचकी भावना नहीं होनी चाहिये। जहां तक मेरा संबंध है, मैं तो असत्यको सब पापोंकी जड़ मानता हूं। और जिस संस्थामें झूठको बरदाश्त किया जाता है, वह संस्था कभी समाजसेवा नहीं कर सकती; न अुसकी हस्ती भी

ज्यादा दिनों तक रह सकती है। लेकिन मनुष्य झूठका प्रयोग जब करता है, तब अुस झूठ पर अनेक प्रकारके रंग चढ़ते हैं। अुसका अेक प्रकार व्यभिचार है। झूठके ही रूपमें झूठ शायद ही प्रगट होता है। व्यभिचारी तीन दोष करता है। झूठका दोष तो करता ही है, क्योंकि अुसके पापको छुपाता है। व्यभिचारको दोष मानता ही है और दूसरे व्यक्तिका भी पतन करता है।

जितने और दोषोंका वर्णन लेखकने किया है वे सब गुणवाचक हैं। अिनको हम न देख सकते हैं, न शीघ्र पकड़ सकते हैं। जब वे मूर्तिमंत होते हैं, अर्थात् कार्यमें परिणत होते हैं, तभी अुनका विवेचन हो सकता है, अुनके दूर करनेका अुपाय भी तभी संभवित होता है। अेक मनुष्य किसीसे द्वेष करता है। अुसका कोअी परिणाम जब तक नहीं आता, तब तक अुसकी न कोअी टीका की जाती है न द्वेषी मनुष्यका सुधार किया जा सकता है। लेकिन जब द्वेषवश कोअी किसीको हानि पहुंचाता है, तब अुसकी टीका हो सकती है और वह दंडके योग्य भी बनता है। बात यह है कि समाजमें और कानूनमें भी व्यभिचार काफी बरदाश्त किया जाता है, अगरचे व्यभिचारसे समाजको हानि अधिक पहुंचती है। चोरको सख्त सजा मिलती है और चोर बेचारा समाजसे बहिष्कृत हो जाता है। और व्यभिचारी सफेदपोश सब जगह देखनेमें आते हैं, अुन्हें दंड तो मिलता ही नहीं। कानून अुनकी अुपेक्षा करता है। मेरा विश्वास है कि करोड़ोंकी सेवा करनेवाली संस्थामें जैसे चोरोंको, गुण्डोंको स्थान होना ही नहीं चाहिये, ठीक अिसी तरह व्यभिचारियोंको भी नहीं होना चाहिये।

हरिजनसेवक, २७–२–'३७

१२१

ब्रह्मचर्य

अेक सज्जन लिखते हैं:

> "आपके विचारोंको पढ़कर मैं बहुत समयसे मानता आया हूं कि सन्तति-निरोधके लिअे ब्रह्मचर्य ही अेकमात्र सर्वश्रेष्ठ अुपाय है; संभोग केवल संतानेच्छासे प्रेरित होकर ही होना चाहिये; बिना संतानेच्छाका भोग पाप है। अिन बातोंको सोचते हैं तो कअी प्रश्न अुपस्थित होते हैं। संभोग संतानके लिअे किया जाय यह ठीक है, पर अेक-दो बारके संभोगसे संतान न हो तो? अैसे मनुष्यको मर्यादापूर्वक किस सीमाके अन्दर रहना चाहिये? अेक-दो बारके संभोगसे संतान चाहे न हो, पर आशा कहां पिंड छोड़ती है? अिस प्रकार वीर्यका बहुत कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। अैसे व्यक्तिको क्या यह कहा जाय कि अीश्वरकी अिच्छा विरुद्ध होनेके कारण अुसे भोगका त्याग कर देना चाहिये? अैसे त्यागके लिअे तो बहुत आध्यात्मिकताकी आवश्यकता है। प्राय: अैसा भी देखनेमें आया है कि संतान सारी अुम्र न होकर अुत्तरावस्थामें हुअी है, अिसलिअे आशाका त्याग कितना कठिन है! यह कठिनाअी तब और भी बढ़ जाती है, जब दोनों स्त्री व पुरुष रोगसे मुक्त हों।"

यह कठिनाअी अवश्य है, लेकिन अैसी बातें मुश्किल तो हुआ ही करती हैं। मनुष्य अपनी अुन्नति बगैर कठिनाअीके कैसे कर सकता है? हिमालय पर चढ़नेके लिअे जैसे जैसे मनुष्य आगे बढ़ता है, कठिनाअी बढ़ती ही जाती है। यहां तक कि हिमालयके सबसे अूंचे शिखर पर आज तक कोअी पहुंच नहीं सका है। अिस प्रयत्नमें कअी मनुष्योंने मृत्युकी भेंट की है। हर साल चढ़ाअी करनेवाले नये नये पुरुषार्थी तैयार होते हैं और निष्फल भी होते हैं, फिर भी वे अिस प्रयासको छोड़ते नहीं। विषयेन्द्रियका दमन हिमालय पहाड़ पर चढ़नेसे तो कठिन है ही, लेकिन अुसका परिणाम भी कितना अूंचा है!

हिमालय पर चढ़नेवाला कुछ कीर्ति पायेगा, क्षणिक सुख पायेगा; अिन्द्रियजित मनुष्य आत्मानंद पायेगा और अुसका आनन्द दिन प्रति दिन बढ़ता जायेगा। ब्रह्मचर्य-शास्त्रमें तो अैसा नियम माना गया है कि पुरुषवीर्य कभी निष्फल होता ही नहीं, और होना ही नहीं चाहिये। और जैसा पुरुषके लिअे अैसा ही स्त्रीके लिअे भी, अिसमें कोअी आश्चर्यकी बात नहीं। जब मनुष्य अथवा पुरुष निर्विकार होते हैं तब वीर्यहानि असंभवित हो जाती है, और भोगेच्छाका सर्वथा नाश हो जाता है। और जब पति-पत्नी संतानकी अिच्छा करते हैं, तभी अेक दूसरेका मिलन होता है। और यही अर्थ गृहस्थाश्रमीके ब्रह्मचर्यका है। अर्थात् स्त्री-पुरुषका मिलन सिर्फ संतानोत्पत्तिके लिअे ही अुचित है, भोगतृप्तिके लिअे कभी नहीं। यह हुअी कानूनी बात, अथवा आदर्शकी बात। यदि हम अिस आदर्शको स्वीकार करें तो हम समझ सकते हैं कि भोगेच्छाकी तृप्ति अनुचित है, और हमें अुसका यथोचित त्याग करना चाहिये। यह ठीक है कि आज कोअी अिस नियमका पालन नहीं करते। आदर्शकी बात करते हुअे हम शक्तिका खयाल नहीं कर सकते। लेकिन आजकल भोगतृप्तिको आदर्श बताया जाता है। अैसा आदर्श कभी हो ही नहीं सकता। यह स्वयंसिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो अुसे मर्यादा नहीं होनी चाहिये। अमर्यादित भोगसे नाश होता है यह सभी स्वीकार करते हैं। त्याग ही आदर्श हो सकता है और प्राचीन कालसे रहा है। मेरा कुछ अैसा विश्वास बन गया है कि ब्रह्मचर्यके नियमोंको हम जानते नहीं हैं अिसलिअे बड़ी आपत्ति पैदा होती है, और ब्रह्मचर्य-पालनमें अनावश्यक कठिनाअी महसूस करते हैं। अब जो आपत्ति मुझे पत्रलेखकने बताअी है वह आपत्ति ही नहीं रहती, क्योंकि संततिके कारण तो अेक ही बार मिलन हो सकता है; अगर वह निष्फल गया तो दोबारा अुन स्त्री-पुरुषोंका मिलन होना ही नहीं चाहिये। अिस नियमको जाननेके बाद अितना ही कहा जा सकता है कि जब तक स्त्रीने गर्भधारण नहीं किया तब तक प्रत्येक ऋतुकालके बाद जब तक गर्भधारण नहीं हुआ है तब तक प्रतिमास अेक बार स्त्री-पुरुषका मिलन क्षंतव्य हो सकता है, और

यह मिलन भोगतृप्तिके लिअे न माना जाय। मेरा यह अनुभव है कि जो मनुष्य वचनसे और कार्यसे विकार-रहित होता है, अुसे मानसिक अथवा शारीरिक व्याधिका किसी प्रकारका डर नहीं है। अितना ही नहीं, बल्कि अैसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियोंसे भी मुक्त होते हैं और अिसमें कोअी आश्चर्यकी बात नहीं है। जिस वीर्यसे मनुष्य जैसा प्राणी पैदा हो सकता है, अुसके अविच्छिन्न संग्रहसे अमोघ शक्ति पैदा होनी ही चाहिये। यह बात शास्त्रोंमें तो कही गअी है, लेकिन हरअेक मनुष्य अिसे अपने लिअे यत्नसे सिद्ध कर सकता है। और जो नियम पुरुषोंके लिअे है वही स्त्रियोंके लिअे भी है। आपत्ति सिर्फ यह है कि मनुष्य मनसे विकारमय रहते हुअे शरीरसे विकार-रहित होनेकी व्यर्थ आशा करता है और अन्तमें मन और शरीर दोनोंको क्षीण करता हुआ गीताकी भाषामें मूढ़ात्मा और मिथ्याचारी बनता है।

हरिजनसेवक, १३–३–'३७

१२२

अेक भ्रम

"हिन्दुस्तानमें अछूतोद्धारका आन्दोलन आपसे पहले भी आर्यसमाज ५० वर्षसे कर रही है, पर जितना कार्य आपने अिसकी अुन्नतिके लिअे किया है, अुतना पहले कभी भी नहीं हुआ। अिसलिअे आप ही को अिस कार्य-पद्धतिका जन्मदाता कहना चाहिये। और साथ ही, अिसके भले और बुरेकी जिम्मेवारी भी आप ही पर निर्भर करती है।

"मैंने आपके अिस आंदोलन पर बहुत अच्छी तरह विचार किया है, पर मेरी तुच्छ सम्मतिमें तो आपके अिस आन्दोलनसे न तो अछूतोंको और न तो हिन्दू धर्मको ही कोअी ज्यादा लाभ हो रहा है। आपके अिस प्रोपेगेंडाने तमाम देशके हर खास व आममें और अछूतोंमें यह विचार फैला दिया

है कि अुच्च जातिके हिन्दू समुदाय-रूपमें भारी अत्याचारी हैं, अछूतों पर जुल्म करते है, और अुनके दुःख, कष्ट और पतनके कारण हैं। अिस विचारने अछूतोंके अन्दर अुच्च जातिके हिन्दुओं तथा हिन्दू धर्मके प्रति घृणा पैदा कर दी है। अिसीका परिणाम यह है कि आज आंबेडकर जैसे लोगोंकी धमकी हजारों हरिजनोंको धर्मविमुख बना रही है, और अुन्हें पतित होनेकी ओर प्रोत्साहित कर रही है। देखना अब यह है कि हम जितना प्रोपेगेंडा कर रहे हैं अुसमें कितनी सचाअी है, हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज अुसके लिअे कितना दोषी है।

"अगर यह कहा जाय कि अुच्च जातिके हिन्दू अिसलिअे जालिम हैं कि वे अछूतोंके साथ अन्नपानका व्यवहार नहीं रखते, अपने मंदिरोंमें अुन्हें जाने नहीं देते, अपने कुओंसे अुन्हें पानी नहीं भरने देते, तो अैसा व्यवहार तो वे अंग्रेजों, मुसलमानों, पारसियों आदि दूसरी कौमोंके साथ भी करते हैं। तो क्या यह कहा जाय कि सवर्ण हिन्दू अिन कौमों पर जुल्म कर रहे हैं?

"अगर अछूतपन धर्मसे समझा जाय तो डॉक्टर, वैद्यादि और कुछ दूसरी जातियां भी शास्त्रानुसार अछूत हैं और अुनके घरका जलपान भी मना है। पर हम देखते हैं कि हिन्दू समाज अुन्हें अछूत नहीं मानता, क्योंकि अक्सर देखनेमें आता है कि ब्राह्मण, क्षत्रियादि अुन जातियोंके जूठे बर्तन मलते हैं, कपड़े धोते हैं, और और भी तरह तरहकी नीच टहल करते हैं; अुनका साहस नहीं कि मालिकोंकी किसी भी तरह बराबरी कर सकें। अुच्च जातिके हिन्दू होते हुअे भी वे पतित हैं और नीच माने जाते हैं। कारण यह है कि वे निर्धन हैं। निर्धनता ही अछूतपनका कारण है। यह देखा गया है कि अेक धनाढ्य अछूतके साथ कोअी छुआछूतका व्यवहार नहीं करता।

"अिसलिअे अछूतोंको अुन्नत करनेके लिअे अुनकी आर्थिक अवस्थाकी अुन्नति करना बहुत जरूरी है। अिसके बगैर छुआ-

छूतका भूत मरनेका नहीं। अछूतोंके साथ रोटी खाने, मंदिरोंमें अुन्हें जाने देने या कुओंसे पानी भरने देनेसे कुछ होने-जानेका नहीं। अैसा करनेसे अुनके जीवनमें कोअी फर्क नहीं पड़ेगा, अिससे अुन्हें समताका दर्जा नहीं मिलेगा। मेरे विचारमें अछूतोद्धारका आन्दोलन अितना धार्मिक नहीं जितना कि आर्थिक है। और हमें भी यह सवाल अुसी तरह हल करना होगा, जिस तरह कि दूसरे देश अमीरी और गरीबीके प्रश्नको हल कर रहे हैं।

"राज्यकी लापरवाही और मशीनोंके कारण हमारे देशकी दस्तकारियां बिलकुल नष्ट हो चुकी हैं, हम रहे-सहे केवल काश्तकार रह गये हैं। पर अब तो यह काम भी लाभदायक नहीं है, क्योंकि हमारा मुकाबला अुन देशोंके साथ है, जहां कि आबादी २, ५ तथा १२ आदमी प्रतिवर्ग मील है, अर्थात् कैनेडा, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका तथा रूस। पर हमारे देशकी आबादी तो २०० मनुष्य प्रतिवर्ग मील है।

"अिसलिअे जमीनके कम होनेके कारण हमारे प्रस्तुत पदार्थोंका मूल्य अधिक होता है और अिससे हमारी आयमें भारी कमी आ जाती है। अूपर कमर-तोड़ टैक्स अलग हमारा कचूमर निकाल रहे हैं। भला अिस दशामें दलितोंका अुद्धार हो तो कैसे? अिसी कारण आज सारा हिन्दुस्तान बेकार और दलित होता चला जा रहा है। अछूतोंको यह बात समझानी होगी कि अुच्च जातिके हिन्दुओंके साथ खान-पान रखनेसे, अुनके मंदिरोंमें प्रवेश करनेसे तथा अुनके कुओंसे पानी भरनेसे अुन्हें रोटी नहीं मिलेगी। जब तक कि हमारे देशमें फिरसे दस्तकारियां जोर न पकड़ें, तब तक यह सब अशक्य है।

"अुनकी रुकावटके लिअे न हिन्दू धर्म दोषी है न सवर्ण हिन्दू, और न अुनके विधर्मी होनेसे ही यह प्रश्न हल होगा।"

यह पत्र मुझे गत नवम्बर मासमें मिला था। लेकिन कार्यवश अब तक मैं अिस पर कुछ लिख नहीं सका था। लेखक महोदय

लाहौरके अेक विद्वान हैं। आश्चर्यका विषय है कि वे अेक भारी भ्रमणामें पड़े हुअे हैं। त्रावणकोरके हालके चमत्कारने शायद अुनके भ्रमको दूर कर दिया हो, तो भी अैसा भ्रम बहुतसे लोगोंको रहता है। अिसलिअे अच्छा यह होगा कि अुनके पत्रका अुत्तर दिया जाय।

त्रावणकोरमें जिन हरिजनोंने मंदिर-प्रवेशके बारेमें प्रबल आन्दोलन अुठाया, वे सब पैसे-टकेसे कैसे सुखी थे। अुनके नेता त्रावणकोरके भूतपूर्व जज श्री गोविन्दन थे, और आज भी हैं। पैसा अुन्हें शांति नहीं दे रहा था। मंदिर-प्रवेशने अुन्हें शांति प्रदान की है, यह हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। महाराजा और महारानी पर वे मुग्ध हो गये हैं। महाराजा अगर अुन्हें अपना आधा राज्य भी सौंप देते, तब भी वह काम नहीं हो सकता था, जो मंदिर खोल देनेसे हो गया है। अिस चमत्कारका अर्थ यह है कि मनुष्य बहुतसी चीजोंको धनसे भी बहुत कीमती समझता है। स्वमानके लिअे मनुष्य अपना सर्वस्व चढ़ा देता है। धर्मके लिअे लोगोंने अनेक संकट सहे हैं, और मृत्यु तकको आलिंगन किया है।

विधर्मियोंसे हिन्दू जाति छुआछूतका व्यवहार रखती है, अिसमें भी घृणा तो अवश्य है ही। लेकिन विधर्मियोंको बलवान होनेके कारण अितना बुरा नहीं लगता जितना कि हरिजनोंको लगता है, जो सहधर्मी होते हुअे भी अछूत माने जाते हैं।

यह कहना भी ठीक नहीं है कि चार वर्णोंके बीचमें भी खान-पानका प्रतिबंध है। अिसमें और अछूतपनमें अैसा अन्तर है, जैसा कि हाथी और चींटीमें। अछूतोंका जाति-बहिष्कार है। अुनके पास कितना ही धन हो, यदि दस्तूरके बाहर जाकर वे कुछ करते हैं तो पीटे जाते हैं। अवश्य मेरा विश्वास है कि हरिजनोंके कष्टोंके लिअे सवर्ण हिन्दू ही जिम्मेवार हैं। अुन्होंने अधर्मको धर्म बना रखा है। अुनके प्रश्नको सिर्फ आर्थिक बना देना मौजूदा स्थितिसे अिनकार करना ही कहा जा सकता है।

लेखक महोदयके लिखनेसे कुछ अैसा प्रतीत होता है कि यद्यपि वे हिन्दू हैं, तो भी अपने समाजसे वे बाहर-से रहते हैं। ब्राह्मण कोअी

अैसे नहीं पाये जाते, जिनसे कोअी राजपूत या अन्य वर्णके हिन्दू घृणा करें। अिसके विपरीत बल्कि हम हमेशा यह देखते हैं कि ब्राह्मण या और कोअी भी अगर जान-बूझकर गरीबी पसन्द करते हैं तो धनिक भी अुन्हें पूजते हैं।

अंतमें, लेखकका पत्र विनय और ध्यानपूर्वक पढ़ते हुअे भी, अस्पृश्यताके बारेमें मैंने जो कुछ कहा है और किया है, अुसके संबंधमें मुझे कोअी पश्चात्ताप नहीं है।

हरिजनसेवक, २०–३–'३७

१२३
अिसके मानी क्या ?

"हरिजनों, अुनके मित्रों तथा सहकारियोंको अुज्जैनके महांकालेश्वरके मंदिरमें जानेकी मुमानियत करनेवाला नोटिस बोर्ड महाराजा साहब, ग्वालियरने हटा दिया है—" अिस आशयका अेक तार मुझे ग्वालियरसे मिला है।

अिसके पहले कि नोटिसके हटाये जाने पर कोअी अपनी राय जाहिर कर सके, अिस अमरके पूरे मानी जान लेना बहुत जरूरी है। अगर मंदिर-प्रवेशकी रुकावट तो कायम ही रही हो और केवल वह नोटिस ही हटा दी गयी हो, तो अिससे तो अुन जलील किये गये हरिजनों और अुनके सवर्ण साथियोंको कोअी समाधान नहीं मिल सकता। नोटिस-बोर्डको हटा हुआ देखकर यदि कोअी हरिजन भाअी असावधानीसे मंदिरमें प्रवेश करनेकी हिम्मत भी करे, तो मुमकिन है अुसे सजा भी भुगतनी पड़े। मगर अुस नोटिसके हटाये जानेके मानी अगर मंदिर-प्रवेशकी रुकावटका ही खात्मा है, तो अिस सिलसिलेमें अेक अैलान निकालकर अिस फैसलेको साफ-साफ जाहिर कर देना अुचित होगा। और अगर अेक मंदिरसे रुकावट अुठा ली जाती है,

तो रियासतके प्रबंधाधीन जो तमाम मंदिर हैं — जिनकी संख्या करीब पचासकी है — अुन सब परसे ही वह रुकावट क्यों न अुठा ली जाय ? अिसलिअे मैं आशा करता हूं कि रियासतके अधिकारी अिस मसले पर प्रकाश डालेंगे और अुस नोटिसके हटाये जानेके क्या मानी हैं, यह जनताको समझा देंगे। अपनी रिआयाके अत्यंत गरीब और लाचार लोगोंको अेक अैसे सवाल पर न्याय देनेमें, जो कमाल दर्जेका धार्मिक महत्त्व रखता हो और जिसके लिअे जरासी भी आर्थिक हानि न अुठानी पड़ती हो, राजा लोग और अुनके सलाहकार भीरु नजर आते हैं। त्रावणकोरकी अितनी बड़ी अचरज भरी मिसालमें वह देख सकते थे कि अगर वह अपने मंदिर हरिजनोंके लिअे खुले कर देते हैं तो अैसा करनेसे कोअी नाराज तो नहीं होता। हो सकता है कि राजा लोग अपने अुन मध्यम श्रेणीके हिन्दुओंसे डरते हों, जिनके साथ अुनके रोजमर्राके संबंध रहते हैं और जो अुन अनेक गरीब हरिजन या दूसरे मूक दुखियोंसे कोअी वास्ता नहीं रखते। हाथकी अुंगलियों पर गिने जानेवाले राजाओंको छोड़ दीजिये, तो बहुतसे अैसे राजा हैं जिन्हें अस्पृश्यता-निवारणके बारेमें कोअी खास धार्मिक आपत्ति भी नहीं है। राजा लोगोंकी पुरानी पदवियोंसे तो प्रगट होता है कि वे धर्मरक्षक समझे जाते हैं। फिर क्या वे हरिजनोंके लिअे मंदिर खुलवा देनेके अपने कर्तव्यको पूरा करनेमें लापरवाही ही करते रहेंगे ? अुस रोज मैंने महाराजा त्रावणकोरकी 'पद्मनाभदास' की पदवीकी ओर पाठकोंका ध्यान खींचा था। अब मुझे दी० ब० हरबिलास सारडासे मालूम हुआ है कि अुदयपुरके महाराणा भी अपने अिष्टदेव श्री अेकलिंगजीके दीवान ही कहलाते हैं और जब जब वे वहां जाते हैं तो पुजारीका काम खुद ही करते हैं। अिसलिअे मैं राजाओं और अुनके सलाहकारोंसे आदरपूर्वक लेकिन पुरअसर शब्दोंमें दरखास्त करूंगा कि वे हिम्मतके साथ और साफ-साफ शब्दोंमें अपनी-अपनी रियासतोंके मंदिर हरिजनोंके लिअे खोल देनेकी घोषणा कर दें और अपने-आपको अपने धर्मके सच्चे संरक्षक (ट्रस्टी) साबित कर दें।

हरिजनसेवक, २७–३–'३७

१२४

गोसेवामें बाधाअें

अेक पिंजरापोल गोशालाके मंत्री लिखते हैं :

"हमारे यहां गोशालामें अब तक मरे हुअे जानवर चर्मकारोंको यों ही मुफ्त दे दिये जाते थे। पर अिस साल हमारे यहां मरे हुअे पशुओंका चमड़ा मजदूरी पर अुतरवाकर बेचा गया। अिससे यहांके रूढ़िवादी लोगोंमें भारी असंतोष फैल गया है। कृपया अिस विषय पर आप अपनी राय लिखकर भेज दें, या 'हरिजनसेवक' में प्रकाशित करा दें, जिससे यहांकी जनताका यह भ्रम दूर हो जाय। क्योंकि वे अिस कार्यको धर्म और अहिंसाके विरुद्ध मान रहे हैं। और यह भी स्पष्ट हो जाय कि अिससे सनातन धर्मको कोअी हानि नहीं पहुंचती; साथ ही, यह कार्य गोशाला तथा गोरक्षाके अुद्देश्यके विपरीत नहीं है।"

मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि मृत पशुके चमड़ेका सदुपयोग करनेसे न धर्मकी हानि होती है, न सनातनी हिन्दुओंको अिससे दुःख होना चाहिये। हां, मृत पशुके चमड़ेका पूरा-पूरा अुपयोग न करनेसे अवश्य धर्म-हानि होती है, क्योंकि अिससे गोवध बढ़ता है। गायकी कीमत दिन-प्रति-दिन कम होती जाती है, अिसलिअे गाय ज्यादा बिकती है, और सीधे कतलखानोंमें चली जाती है। अगर हम गोसेवाको हिन्दू धर्मका अनिवार्य अंग समझ लें, तो न हम चर्मकारके धंधेको नीच मान सकते हैं, न चर्मकारको अछूत। गाय मरती है केवल हमारे अज्ञानसे। धर्मका नाम लेनेसे धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती, वह तो शास्त्रका रहस्य जान लेने और अुसका पालन करनेसे ही हो सकती है। मैंने कअी बार लिखा है कि भारतवर्षकी गोशालाअें यदि अपने धर्मको जान लें और अुसका भलीभांति पालन करें, तो गोवध नष्ट किया

जा सकता है, और सबको गायका दूध सुलभ हो सकता है। मेरे अिस वाक्यमें कोअी अतिशयोक्ति नहीं है। गोधन प्रायः सब हिन्दुओंके हाथमें है। यदि वे गाय न बेचने — जो गोवधका कारण है — के धर्मका पालन करें, तो गोकुशी हो ही नहीं सकती। हरअेक गोशाला आदर्श दुग्धालय अर्थात् स्वावलंबी बन जाय, और अुसमें दुग्धालय और गोवंशवृद्धिके शास्त्री कार्य करे। स्वावलंबी गोशालाको तो नित्य बढ़ना ही है। साथ ही, मृत पशुओंके चमड़ेका भी वह संस्था सदुपयोग करेगी। अिसका अर्थ यह होता है कि गोधनकी पुष्टिके साथ-साथ हमारे ज्ञानकी भी पुष्टि होगी, और अिससे हमें देशकी बेकारी दूर करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। अेक भी गोशाला अिस कार्यको करे, तो अुसका अनुकरण दूसरी गोशालाअें भी करेंगी।

हरिजनसेवक, ३–४–'३७

१२५

ब्रह्मचर्य पर नया प्रकाश

अब अेक नयी बात आप लोगोंसे कहना चाहता हूं। सोचा था कि विनोबा सुनावें। पर अब समय है, तो मैं स्वयं कह देता हूं। मेरा स्वभाव ही अैसा है कि अच्छी बात सबके साथ बांट लेता हूं। बातका आरम्भ तो बहुत वर्षों पुराना है। मैं जुलू-युद्धमें गया था। देखो, अीश्वरका खेल अिसी तरह चलता है। मेरा निश्चय हो गया कि जिसको जगतकी सेवा करनी है, अुसके लिअे ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक है। विवाहित दम्पतिको भी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। अिससे मेरा मतलब यह था कि अुन्हें प्रजोत्पादक क्रियामें नहीं पड़ना चाहिये। मैं यह समझता था कि जो प्रजोत्पादन करते हैं, वे ब्रह्मचारी नहीं हो सकते। अिसलिअे मैंने ब्रह्मचर्यका आदर्श छगनलाल आदिके सामने रखा। अुस वक्त तो मैं बिलकुल जवान था। और जवान तो सब कुछ कर सकता है। मैं आपसे कह दूं कि आप सब ब्रह्मचारी बनें

तो क्या वह होनेवाली बात है? वह तो अेक आदर्श है। अिसलिअे मैं तो विवाह भी करा देता हूं। अेक आदर्श देते हुअे भी यह तो जानता ही हूं कि ये लोग भोग भी करेंगे। प्रजोत्पादन और ब्रह्मचर्य अेक-दूसरेके विरोधी हैं, अैसा मेरा खयाल रहा।

पर अुस दिन विनोबा मेरे पास अेक अुलझन लेकर आये। अेक शास्त्रवचन है, जिसकी कीमत मैं पहले नहीं जानता था। अुस वचनने मेरे दिल पर अेक नया प्रकाश डाल दिया। अुसका विचार करते-करते मैं बिलकुल थक गया, अुसमें तन्मय हो गया। अब भी मैं अुसीसे भरा हूं। ब्रह्मचर्यका जो अर्थ शास्त्रोंमें बताया है, वह अति शुद्ध है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह है, जिसने जन्मसे ही ब्रह्मचर्यका पालन किया हो। स्वप्नमें भी जिसका वीर्य-स्खलन न हुआ हो। लेकिन मैं नहीं जानता था कि प्रजोत्पत्तिके हेतु जो संभोग करता है अुसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी क्यों माना गया है। कल यह बुलन्द बात मेरी समझमें आ गअी। जो दम्पति गृहस्थाश्रममें रहते हुअे केवल प्रजोत्पत्तिके हेतु ही परस्पर संयोग और अेकान्त करते हैं, वे ठीक ब्रह्मचारी ही हैं। आज हम जिसे विवाह कहते हैं, वह विवाह नहीं, अुसका आडम्बर है। जिसे हम भोग कहते हैं वह भ्रष्टाचार है। यद्यपि मैं कहता था कि प्रजोत्पत्तिके लिअे विवाह है, फिर भी मैं यह मानता था कि अिसका मतलब सिर्फ यही है कि दोनोंको प्रजोत्पत्तिसे डर न मालूम हो, अुसके परिणामको टालनेका प्रयत्न न हो, और भोगमें दोनोंकी सहमति हो। मैं नहीं जानता था कि अुसका अिससे भी अधिक कोअी मतलब होगा। पर यह भी शुद्ध विवाह नहीं है। शुद्ध विवाहमें तो केवल ब्रह्मचर्य ही है। शुद्ध विवाह कब कहा जाय? दम्पति प्रजोत्पत्ति तभी करें जब जरूरत हो, और अुसकी जरूरत हो तभी अेकान्त भी करें। अर्थात् संभोग प्रजोत्पादनको कर्तव्य समझकर तथा अुसके लिअे ही हो। अिसके अतिरिक्त कभी अेकान्त न करें। अेकान्तवास भी न करें। यदि अेक पुरुष अिस प्रकार हेतुपूर्वक संभोगको छोड़कर स्थिरवीर्य हो, तो वह नैष्ठिक ब्रह्मचारीके बराबर है। सोचिये, अैसा अेकान्तवास जीवनमें कितनी बार हो सकता है? वीर्य-

वान नीरोग स्त्री-पुरुषोंके लिअे तो जीवनमें अेक ही बार अैसा अवसर हो सकता है। अैसे व्यक्ति क्यों नैष्ठिक ब्रह्मचारीके समान न माने जायं? जो बात मैं पहले थोड़ी-थोड़ी समझता था वह आज सूर्यकी तरह स्पष्ट हो गअी है। जो विवाहित हैं, अिसे ध्यानमें रखें। पहले भी मैंने यह बात बताअी थी। पर अुस समय मेरी अितनी श्रद्धा नहीं थी। अुसे मैं अव्यावहारिक समझता था। आज व्यावहारिक समझता हूं। पशुजीवनमें दूसरी बात हो सकती है। लेकिन मनुष्यके विवाहित जीवनका यह नियम होना चाहिये कि कोअी भी पति-पत्नी बिना आवश्यकताके प्रजोत्पत्ति न करें और बिना प्रजोत्पादनके हेतुके संभोग न करें।*

हरिजनसेवक, ३–४–'३७

१२६

धर्म-संकट

अेक सज्जन लिखते हैं:

"करीब ढाअी साल हुअे, हमारे शहरमें अेक घटना हो गअी थी, जो अिस प्रकार है।

"अेक वैश्य गृहस्थकी १६ बरसकी अेक कुमारी कन्या थी। अिस लड़कीका मामा, जिसकी अुम्र लगभग २१ वर्षकी थी, स्थानीय कॉलेजमें पढ़ता था। यह तो मालूम नहीं कि कबसे अिन दोनों मामा और भांजीमें प्रेम था, पर जब बात खुल गअी तो अिन दोनोंने आत्महत्या कर ली। लड़की तो फौरन ही जहर खानेके बाद मर गअी, पर लड़का दो रोज बाद अस्पतालमें मरा। लड़कीको गर्भ भी था। अिस बातकी शुरू-शुरूमें तो खूब चर्चा चली। यहां तक कि अभागे मां-बापको शहरमें रहना भारी हो गया। पर वक्तके साथ-साथ यह बात भी दब गअी

* गांधी-सेवा-संघके द्वितीय अधिवेशनके विवरणसे।

और लोग भूलने लगे। कभी-कभी जब अैसी मिलती-जुलती बात सुननेको मिलती है, तब पुरानी बातोंकी भी चर्चा होती है और यह वाकया भी दोहरा दिया जाता है। पर अुस जमानेमें, जब सभी करीब-करीब लड़कीको और लड़केको भी बुरा-भला कह रहे थे, मैंने यह राय अर्ज की थी कि अैसी हालतमें समाजको विवाह कर लेनेकी अिजाजत दे देनी चाहिये। अिस बातसे समाजमें खूब बवण्डर अुठा। आपकी अिस पर क्या राय है?"

मैंने स्थानका और लेखकका नाम नहीं दिया है, क्योंकि लेखक नहीं चाहते कि अुनका अथवा अुनके शहरका नाम प्रकाशित किया जाय। तो भी अिस प्रश्न पर जाहिर चर्चा आवश्यक है। मेरी तो यह राय है कि अैसे सम्बन्ध जिस समाजमें त्याज्य माने जाते हैं, वहां विवाहका रूप वे यकायक नहीं ले सकते। लेकिन किसीकी स्वतंत्रता पर समाज या सम्बन्धी आक्रमण क्यों करें? ये मामा और भांजी सयानी अुम्रके थे, अपना हित-अहित समझ सकते थे। अुन्हें पति-पत्नीके सम्बन्धसे रोकनेका किसीको हक नहीं था। समाज भले ही अिस सम्बन्धको अस्वीकार करता, पर अुन्हें आत्महत्या करने तक जाने देना तो बहुत बड़ा अत्याचार था।

अुक्त प्रकारके सम्बन्धका प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। अीसाअी, मुसलमान, पारसी अित्यादि कौमोंमें अैसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं माने जाते हैं — हिन्दुओंमें भी प्रत्येक वर्णमें त्याज्य नही हैं। अुसी वर्णमें भी भिन्न प्रान्तमें भिन्न प्रथा है। दक्षिणमें अुच्च माने जानेवाले ब्राह्मणोंमें अैसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं, बल्कि स्तुत्य भी माने जाते हैं। मतलब यह है कि अैसे प्रतिबन्ध रूढ़ियोंसे बने हैं। यह देखनेमें नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णयसे बने हैं।

लेकिन समाजके सब प्रतिबन्धोंको नवयुवक वर्ग छिन्न-भिन्न करके फेंक दे, यह भी नहीं होना चाहिये। अिसलिअे मेरा यह अभिप्राय है कि किसी समाजमें रूढ़िका त्याग करवानेके लिअे लोकमत तैयार

करनेकी आवश्यकता है। अिस बीचमें व्यक्तियोंको धैर्य रखना चाहिये। धैर्य न रख सकें तो बहिष्कारादिको सहन करना चाहिये।

दूसरी ओर, समाजका यह कर्तव्य है कि जो लोग समाज-बन्धन तोड़ें, अुनके साथ निर्दयताका बरताव न किया जाय। बहिष्कारादि भी अहिंसक होने चाहिये। अुक्त आत्महत्याओंका दोष, जिस समाजमें वे हुअीं, अुस पर अवश्य है, अैसा अूपरके पत्रसे सिद्ध होता है।

हरिजनसेवक, १–५–'३७

१२७

विवाहकी मर्यादा

श्री हरिभाअू अुपाध्याय लिखते हैं:

"'हरिजनसेवक' के अिसी अंकमें 'धर्म-संकट' नामक आपका लेख पढ़ा। अिसमें आपने लिखा है कि 'अुक्त प्रकारके (अर्थात् मामा-भांजीके सम्बन्ध जैसे) सम्बन्धका प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। . . . अैसे प्रतिबन्ध रूढ़ियोंसे बने हैं। यह देखनेमें नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णयसे बने हैं।'

"मेरा अनुमान यह है कि ये प्रतिबन्ध शायद सन्तानोत्पत्तिकी दृष्टिसे लगाये गये हैं। अिस शास्त्रके ज्ञाता अैसा मानते हैं कि विजातीय तत्त्वोंके मिश्रणसे संतति अच्छी होती है। अिसलिअे सगोत्र और सपिण्ड कन्याओंका पाणिग्रहण नहीं किया जाता।

"यदि यह माना जाय कि यह केवल रूढ़ि है, तो फिर सगी और चचेरी बहनोंके सम्बन्ध पर भी कैसे आपत्ति अुठाअी जा सकती है? यदि विवाहका हेतु सन्तानोत्पत्ति ही है और सन्तानोत्पत्तिके ही लिअे दम्पतिका संयोग करना योग्य है, तो

फिर वर-कन्याके चुनावके औचित्यकी कसौटी सुप्रजननकी क्षमता ही होनी चाहिये। क्या और कसौटियां गौण समझी जायं? यदि हां तो किस क्रमसे, यह प्रश्न सहज अुठता है। मेरी रायमें वह अिस प्रकार होना चाहिये:

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम
(२) सुप्रजननकी क्षमता
(३) कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा
(४) समाज और देशकी सेवा
(५) आध्यात्मिक अुन्नति

आपका अिस सम्बन्धमें क्या मत है?

"हिन्दू शास्त्रोंमें पुत्रोत्पत्ति पर जोर दिया गया है। सधवाओंको आशीर्वाद दिया जाता है, 'अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव'। आप जो यह प्रतिपादन करते हैं कि दम्पति संतानके लिअे संयोग करें, तो अिसका क्या यही अर्थ है कि सिर्फ अेक ही संतान अुत्पन्न करें, फिर वह लड़का हो या लड़की? वंश-वर्धनकी अिच्छाके साथ ही 'पुत्रसे नाम चलता है' यह अिच्छा भी जुड़ी हुअी मालूम होती है। केवल लड़कीसे अिस अिच्छाका समाधान कैसे हो सकता है? बल्कि अभी तक समाजमें 'लड़कीके जन्म' का अुतना स्वागत नहीं होता, जितना कि लड़केके जन्मका होता है। अिसलिअे यदि अिन अिच्छाओंको सामाजिक माना जाय तो फिर अेक लड़का और अेक लड़की —अिस तरह दो संतति पैदा करनेकी छूट देना क्या अनुचित होगा?

"केवल संतानोत्पादनके लिअे संयोग करनेवाले दम्पति ब्रह्मचारीवत् ही समझे जाने चाहिये — यह ठीक है। यह भी सही है कि संयत जीवनमें अेक ही बारके संयोगसे गर्भ रह जाता है। पहली बातकी पुष्टिमें अेक कथा प्रचलित है:—

वसिष्ठकी कुटियाके सामने अेक नदी बहती थी। दूसरे किनारे विश्वामित्र तप करते थे। वसिष्ठ गृहस्थ थे। जब भोजन

पक जाता तो पहले अरुन्धती थाल परोसकर विश्वामित्रको खिलाने जाती, बादको वसिष्ठके घर पर सब लोग भोजन करते। यह नित्यक्रम था। अेक रोज बारिश हुअी और नदीमें बाढ़ आ गअी। अरुन्धती अुस पार न जा सकी। अुसने वसिष्ठसे अिसका अुपाय पूछा। अुन्होंने कहा — 'जाओ, नदीसे कहना, मैं सदा-निराहारी विश्वामित्रको भोजन देने जा रही हूं, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धतीने अुसी प्रकार नदीसे कहा और अुसने रास्ता दे दिया। तब अरुन्धतीके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि विश्वामित्र रोज तो खाना खाते हैं, फिर निराहारी कैसे हुअे? जब विश्वामित्र खाना खा चुके, तब अरुन्धतीने अुनसे पूछा, 'मैं वापिस कैसे जाअूं, नदीमें तो बाढ़ है?' विश्वामित्रने अुलटकर पूछा — 'तो आअी कैसे?' अरुन्धतीने अुत्तरमें वसिष्ठका पूर्वोक्त नुसखा बतलाया। तब विश्वामित्रने कहा — 'अच्छा, तुम नदीसे कहना, सदा-ब्रह्मचारी वसिष्ठके यहां लौट रही हूं; नदी, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धतीने अैसा ही किया और अुसे रास्ता मिल गया। अब तो अुसके अचरजका ठिकाना न रहा। वसिष्ठके सौ पुत्रोंकी तो वह स्वयं ही माता थी। अुसने वसिष्ठसे अिसका रहस्य पूछा कि विश्वामित्रको सदा-निराहारी और आपको सदा-ब्रह्मचारी कैसे मानूं? वसिष्ठने बताया — 'जो केवल शरीर-रक्षणके लिअे ही अीश्वरार्पण बुद्धिसे भोजन करता है वह नित्य भोजन करते हुअे भी निराहारी ही है और जो केवल स्वधर्म पालनके लिअे अनासक्तिपूर्वक सन्तानोत्पादन करता है, वह संयोग करते हुअे भी ब्रह्मचारी ही है।'

"परन्तु अिसमें और मेरी समझमें तो शायद हिन्दू शास्त्रमें भी केवल अेक सन्तति — फिर वह कन्या हो या पुत्र — का विधान नहीं है। अतअेव यदि आपको अेक पुत्र और अेक पुत्रीका नियम मान्य हो, तो मैं समझता हूं कि बहुतसे दम्पतियोंको समाधान हो जाना चाहिये। अन्यथा मुझे तो अैसा लगता है कि बिना विवाह किये अेक बार ब्रह्मचारी रह जाना शक्य हो

सकता है, परन्तु विवाह करने पर केवल संतानोत्पादनके लिअे, और वह भी प्रथम संततिके ही लिअे संयोग करके फिर आजन्म संयमसे रहना अुससे कहीं कठिन है। मेरा तो अैसा मत बनता जा रहा है कि 'काम' मनुष्यमें स्वाभाविक प्रेरणा है। अुसमें संयम सुसंस्कारका सूचक है। 'संततिके लिअे संयोग' का नियम बना देनेसे सुसंस्कार, संयम या धर्मकी तरफ मनुष्यकी गति होती है, अिसलिअे यह वांछनीय है। संतानोत्पत्तिके ही लिअे संयोग करनेवाले संयमीका मैं आदर करूंगा, कामेच्छाकी तृप्ति करनेवालेको भोगी कहूंगा, पर अुसे पतित नहीं मानना चाहता, न अैसा वातावरण ही पैदा करना ठीक होगा कि पतित समझकर लोग अुसका तिरस्कार करें। अिस विचारमें मेरी कहीं गलती होती हो तो बतावें।"

विवाहमें जो मर्यादा बांधी गअी है, अुसका शास्त्रीय कारण मैं नहीं जानता। रूढ़िको ही, जो मर्यादाकी वृद्धिके लिअे बनाअी जाती है, नैतिक कारण माननेमें कोअी आपत्ति नहीं है। संतान-हितकी दृष्टिसे ही अगर भाअी-बहनके सम्बन्धका प्रतिबन्ध योग्य है तो चचेरी बहन अित्यादि पर भी प्रतिबन्ध होना चाहिये। लेकिन भाअी-बहनके सम्बन्ध या अैसे सम्बन्धके अतिरिक्त कोअी प्रतिबन्ध धर्ममें नहीं माना जाता। अिसलिअे रूढ़िका जो प्रतिबन्ध जिस समाजमें हो, अुसका अनुसरण अुचित मालूम देता है। नैतिक विवाहके लिअे जो पांच मर्यादाअें हरिभाअूजीने रखी हैं, अुनका क्रम बदलना चाहिये। पारस्परिक आकर्षण और प्रेमको अन्तिम स्थान देना चाहिये। अगर अुसे प्रथम स्थान दिया जाय तो दूसरी सब शर्तें अुसके आश्रयमें जानेसे निरर्थक बन सकती हैं। अिसलिअे अुक्त क्रममें आध्यात्मिक अुन्नतिको प्रथम स्थान देना चाहिये। समाज और देशसेवाको दूसरा स्थान दिया जाय। कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधाको तीसरा। पारस्परिक आकर्षण और प्रेमको चौथा। अिसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह अिन प्रथम तीन शर्तोंका अभाव हो, वहां पारस्परिक प्रेमको स्थान नहीं मिल सकता। अगर प्रेमको प्रथम स्थान दिया जाय, तो वह

सर्वोपरि बनकर दूसरोंकी अवगणना कर सकता है और करता है, अैसा आजकलके व्यवहारमें देखनेमें आता है। प्राचीन और अर्वाचीन नवलकथाओंमें (अुपन्यासोंमें) भी यह पाया जाता है। अिसलिअे यह कहना होगा कि अुपर्युक्त तीन शर्तोंका पालन होते हुअे भी जहां पारस्परिक आकर्षण नहीं है वहां विवाह त्याज्य है। सुप्रजननकी क्षमताको शर्त न माना जाय। क्योंकि यही अेक वस्तु विवाहका कारण है, विवाहकी शर्त नहीं।

हिन्दू शास्त्रोंमें पुत्रोत्पत्ति पर अवश्य जोर दिया गया है। यह अुस कालके लिअे ठीक था, जब समाजमें शस्त्र-युद्धको अनिवार्य स्थान मिला हुआ था, और पुरुषवर्गकी बड़ी आवश्यकता थी। अुसी कारणसे अेकसे अधिक पत्नियोंकी भी अिजाजत थी और अधिक पुत्रोंसे अधिक बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टिसे देखें तो अेक ही संतति 'धर्मज' या 'धर्मजा' है। मैं पुत्र और पुत्रीके बीच भेद नहीं करता हूं, दोनों अेक समान स्वागतके योग्य हैं।

वसिष्ठ विश्वामित्रका दृष्टान्त साररूपमें अच्छा है। अुसे शब्दशः सत्य अथवा शक्य माननेकी आवश्यकता नहीं। अुससे अितना ही सार निकालना काफी है कि सन्तानोत्पत्तिके ही अर्थ किया हुआ संयोग ब्रह्मचर्यका विरोधी नहीं है। कामाग्निकी तृप्तिके कारण किया हुआ संयोग त्याज्य है। अुसे निन्द्य माननेकी आवश्यकता नहीं। असंख्य स्त्री-पुरुषोंका मिलन भोगके ही कारण होता है, और होता रहेगा। अुससे जो दुष्परिणाम होते रहते हैं, अुन्हें भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य अपने जीवनको धार्मिक बनाना चाहता है, जो जीवमात्रकी सेवाको आदर्श समझकर संसार-यात्रा समाप्त करना चाहता है, अुसके लिअे ही ब्रह्मचर्यादि मर्यादाका विचार किया जा सकता है। और अैसी मर्यादा आवश्यक भी है।

हरिजनसेवक, १५-५-'३७

१२८

मेरी भूल

१ मअीके 'हरिजनसेवक' में 'धर्म-संकट' शीर्षक लेखमें मैंने लिखा है कि मामा-भांजीके विवाहसम्बन्ध दक्षिणमें अुच्च माने जानेवाले ब्राह्मणों तकमें त्याज्य नहीं हैं, बल्कि स्तुत्य भी माने जाते हैं — अीसाअी, मुसलमान, पारसी अित्यादि कौमोंमें भी अैसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं माने जाते। प्रो० बलवन्तराय ठाकोरने अिस सम्बन्धमें अेक दिलचस्प पत्र लिखकर मेरी अिस गलतीको सुधारा है, और अुन्होंने बताया है कि मामा-फूफीके लड़के-लड़कीके बीच दक्षिणमें विवाहसम्बन्ध हो सकता है, पर मामा-भांजीमें नहीं। मुसलमानोंमें अैसा सम्बन्ध मना है, अैसा कवि चमन बतलाते हैं। अिन भूल-सुधारोंके लिअे मैं अिन दोनों सज्जनोंका आभार मानता हूं। मामा-फूफीके लड़के-लड़कीके सम्बन्धका मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान था। तो मामा-भांजीके बीच भी सम्बन्ध होता होगा, अैसा अनुमान निकालकर मैंने निश्चयात्मक वाक्य लिख दिया। अिसके लिअे मैं अपनेको अक्षंतव्य समझता हूं। अैसे विषयमें अैसे अनुमानोंके लिअे स्थान नहीं होता, यह मुझे समझ लेना चाहिये था। यदि अनुमान निकाला तो शंकाको स्थान देना चाहिये था। पर मैंने तो निःशंक रीतिसे, जिसका मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान न था अुसे अिस तरह लिख मारा मानो वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। अिसमें मेरे सत्यके आग्रहको लांछन लगा है। अिसकी माफी पाठकोंसे तो मांगता ही हूं। वे तो अुदारतापूर्वक माफी दे देंगे, पर मेरी अंतरात्मा यों झटसे माफ करनेवाली नहीं। अनुमान-प्रमाण निकालनेमें बहुत सावधानीसे काम लेना पड़ता है, यह सार—मर्म अपनी अिस भूलमें से मैं अधिक स्पष्टता-पूर्वक निकालता हूं, और अिसके बाद अब अैसी भूलें न करनेमें अधिक सावधान रहनेका प्रयत्न करूंगा।

हरिजनसेवक, १२–६–'३७

१२९

क्या किया जाय?

नीचे लिखा पत्र व नोटिस और दरख्वास्त तीनों ही चीजें पढ़ने योग्य हैं :

"अिसके साथ जो छपी हुअी नोटिस है वह महीने भर पहले निकाली गअी थी। परिणामस्वरूप, बहुतसी दरख्वास्तें आ रही हैं, जिनमें से नमूनेकी अेक दरख्वास्त अिसके साथ है। सभीमें प्रायः यही शिकायतें हैं कि कम मजदूरी पर काम लिया जाता है, अिनकार करने पर मारा-पीटा जाता है, गालियां दी जाती हैं और झूठी-झूठी तोहमतें लगाकर पुलिस और अदालतकी मारफत परेशान किया जाता है। जबानी शिकायत करनेवाले भी आते हैं, और अैसी तरहकी बात सुनाते हैं। जमींदार प्रायः असामियोंको तंग तो करते रहते हैं, लेकिन ब्राह्मण क्षत्रियको अधिक तंग नहीं कर पाते, क्योंकि वह बदला चुका लेते हैं। यहां अेक जाति अहीर है, जो गाय-भैंस पालनेका धंधा करती है। वह कुछ सरकश होती है। अुसे जमींदार आदि नहीं सताते, क्योंकि बदलेमें पिटने या घर वगैरा फुंकनेका डर रहता है। पर चमारोंको मारने और गाली देनेमें अैसी आशंका नहीं रहती। चमार अपनेको अिस मामलेमें बहुत हीन समझता है। दोके बदले अेक मारनेका साहस भी वह नहीं रखता। और अपनी आर्थिक दशाके कारण वह सरकारसे भी फरियाद नहीं कर पाता। अेक फरियादके करनेमें २०-२५ रुपयेका खर्च हो जाता है। दो-चार पेशियां मामूली बात है और अितनेमें २०-२५ रुपये लग जाना बहुत सहज है, जो अुसके बूतेके बाहरकी बात है।

"कहीं-कहींके कोअी-कोअी हाकिम तो शायद अिन दरख्वास्तोंको थानेदारोंके पास भेजकर अिन जुल्मोंकी जांच करा लें, पर प्रायः तो यही कहेंगे कि बाकायदा दरख्वास्त

दिलवाअिये। और अुनके बाकायदामें गरीबकी मौत है। मार और गालियोंका प्रतिकार कराने जानेमें अुससे ज्यादा गालियां और झिड़कियां नसीब होंगी। और अुचित-अनुचित खर्चका तो कुछ पूछना ही नहीं।

"अगर चमार जरा कड़ा पड़ने लगे, अर्थात् कहीं कहीं मारनेके बदलेमें वह भी मारने लगे तो अुस पर जुल्म करने-वालोंको कुछ भय हो सकता है। आपका अिस मामलेमें अुनके लिअे जो आदेश हो, वह 'हरिजनसेवक' के द्वारा प्रगट हो तो और जगहोंके हरिजनोंके लिअे भी वह मार्गप्रदर्शक होगा।"

हरिजनोंको सूचना

"यों तो सारे हिन्दुस्तानको ही गरीबीने जकड़ रखा है। मगर हरिजन तो हर जगह खास तौरसे अुसके शिकार हैं। अिन्साफ तो यह है कि गरीबीकी वजहसे अुनके साथ अधिक दया की जाय। पर होता है अिसका अुलटा। अुनसे सख्त काम लिया जाता है और मजदूरी कम दी जाती है। अिसकी शिकायत अक्सर सुनी गयी है कि बेगारमें अुन्हींको पकड़ा जाता है और अुनके अिनकार करने पर अुन्हें मारा-पीटा जाता है। कानूनके मुताबिक यह सब नाजायज है। यहांके हरिजन-सेवक-संघने यह अिन्तजाम किया है कि अिस जिलेमें हरिजनों पर जहां कहीं अिस प्रकारके अत्याचार हों वहांसे पूरी और सच्ची खबर पाने पर अुसका माकूल अिन्तजाम किया जायगा, जिससे कि अिस तरहके जुल्म बन्द हो जायें। अिस तरहके जुल्मोंकी खबरें . . . पते पर भेजनी चाहिये।"

अेक दरख्वास्त

"हम गरीब अछूतों पर . . . ने घोर अत्याचार मचा रखा है। ये दोनों जमींदार हम दीन हरिजनोंसे आधे आने पर जेठकी कड़ी धूपमें आधी छटांक चना खिलाकर १२ बजे तक खेत खुदवाते हैं, और जो कम मजदूरीकी वजहसे जानेसे अिनकार

करता है, अुसे घासमें झुकाकर अुसकी पीठ पर अींटें रखवा देते और पिटवाते हैं। यह सजा हम गरीब हरिजनोंको अक्सर मिलती रहती है और रोज दो-चार हरिजन अिन लोगोंसे गालियां, लाठियां और थप्पड़ें खाते रहते हैं। अुस दिन अेक भाअीको काम न करने पर . . . ने अपने दरवाजे पर बुलवाकर, अुसके पैरोंको तीन फुटके अन्तर पर करवाकर झुका दिया और पीठ पर अींटें रखवा दीं। १० बजेसे १२ बजे तक कड़ाकेकी धूपमें अुसे यह सख्त सजा दी गयी।

"जमींदारोंने हमारे अेक हरिजन भाअीसे आधी छटांक चने पर दो दिन तक खेतकी खुदाअीका काम लिया। तीसरे दिन जब अुसने जानेसे अिनकार किया और कहा कि 'बाबू, हमारे अूपर पांच प्राणियोंका भार है, अितनेमें कैसे गुजर होगी?' तो बस, अिसी पर अुसे तीन लाठियां अैसी मारीं कि वह जमीन पर गिर पड़ा। असाढ़का महीना है और हमें भी खेत पर जाना है। पर ये लोग हमें बैलोंकी तरह पीट-पीटकर हमसे बेगार लेते हैं। यह अर्जी हम लोग लुक-छिपकर दे रहे है। हम दीन हरिजनोंकी जल्द सुध ली जाय, वर्ना अुन सबको अिसका पता लग जाने पर हमारे अूपर बहुत बुरी बीतेगी।"

मैंने नाम व पते छोड़ दिये हैं। जिन भाअीने यह पत्र लिखा है वे अहिंसाके पुजारी हैं। प्रश्न अुनका बिलकुल ठीक है। जो जालिमका सामना करता है वह कुछ न कुछ बच जाता है, और जिसमें सामना करनेकी शक्ति ही नहीं वह पीटा जाता है। अिस स्थितिमें अहिंसावादी क्या करे? सताये हुअेको यह शिक्षा (सलाह) दे कि वह जुल्म करनेवालेको पीटे, या कमसे कम अदालतमें तो मामला ले जाय? दोनों बातें कानूनके अनुकूल हैं। जिसे गैरकानूनी तौर पर पीटा जाता है अुसे अपनी रक्षाके लिअे सामना करनेका अधिकार कानून देता है। कोर्टमें जानेका तो अुसे अधिकार है ही।

लेकिन अहिंसावादी अैसी शिक्षा (नसीहत) नहीं देगा। वह समझता है कि मारका बदला मारसे लेनेसे जुल्मको मिटानेका सच्चा

मार्ग जगतको नहीं मिलता। यह मार्ग दुनियाने आज तक ग्रहण तो किया है, लेकिन अिससे जुल्म कम नहीं हुआ — रूपान्तर अुसका भले ही हो गया हो।

अहिंसावादी तो अुत्पीड़ितोंको असहयोगकी शिक्षा देगा। कोअी आदमी किसीकी गुलामी करनेके लिअे मजबूर नहीं किया जा सकता। अिसलिअे जिन हरिजनों पर सख्तियां होती हों, अुन्हें यह सीखना चाहिये कि जुल्म ढानेवाले जमींदारोंकी जमीनोंको छोड़ दें। जमीनें छोड़कर कहां जायं यह प्रश्न स्वभावत: अुठता है। हरिजनसेवकका धर्म है कि वह अैसे निराधारोंके लिअे कोअी न कोअी धन्धा तलाश कर दे। अिसमें कठिनाअी नहीं होनी चाहिये। अहिंसाका मार्ग कठिन तो है, लेकिन अुसका परिणाम स्थायी और दोनोंके लिअे ही शुभ होता है। मारका बदला मारसे लेना तो चलता ही आया है। किन्तु अुससे जगतमें न सुख बढ़ा है, न अन्याय व जुल्म ही दूर हुआ है। अुसे मिटानेकी कुंजी तो अहिंसा ही है, अैसा मेरा अनुभव है।

जो मैंने अूपर बताया है वह अन्तिम अिलाज है। लेकिन मारका जवाब मार नहीं है, अितना निश्चय कर लेनेके बाद और असहयोगकी शिक्षा देनेके पहले अहिंसावादी सेवक जमींदारोंके पास जायगा, और अुन्हें अुनका धर्म समझानेकी कोशिश करेगा। सम्भव है कि जमींदार कुछ पिघल जायं। अैसे जुल्मोंके बारेमें लोकमत पैदा किया जा सकता है। जब जालिम मूढ़ बन जाता है, किसीकी बात सुनता ही नहीं है, तब असहयोग यानी अुसका त्याग सर्वोत्कृष्ट अुपाय है।

अैसी शंका न की जाय कि जब दलित चमार असहयोग करेंगे, तो दूसरे अुस जालिमसे मिल जायंगे। अिस समय तो सिर्फ दु:खियोंका ही प्रश्न है। दूसरे मिलेंगे तो अुन्हें भी असहयोग सिखाया जा सकता है।

हरिजनसेवक, ३–७–'३७

१३०

तिरंगा राष्ट्रीय झंडा

तिरंगे राष्ट्रीय झंडेके बारेमें कानपुरसे अेक सज्जन लिखते हैं :

"राष्ट्रपति पंडित जवाहरलालजीकी आज्ञानुसार हमारे नगरमें भी पहली अगस्तको राष्ट्रीय झंडा फहराया गया था। अुस दिन तथा अुसके बाद कुछ दुःखद दृश्य देखनेमें आये। अिसीसे मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूं।

"जो झंडा अुस दिन फहराया गया था, अुसे लोगोंने चाहे जिस तरहका अपनी पसंदके माफिक बना लिया था। आकार प्रकार या रंग अेक सरीखे थे ही नहीं। कुछ झंडे चौरस थे तो कुछ लम्बे आकारके। कुछ झंडोंका रंग हलका था, तो कुछका खूब गहरा। कुछमें चरखेका निशान था और कुछमें नहीं।

"आज पन्द्रह दिन ही हुअे हैं, पर अिन झंडोंकी बहुत बुरी दशा हो गअी है। रंग कच्चा होनेसे सफेद हिस्सा तो अुनका दीखता ही नहीं, वह कुछ हरा और कुछ पीला हो गया है। कुछ झंडे तो मैले चीथड़े-से लगते हैं। खादी भंडारसे लाये हुअे झंडोंकी भी यही दशा हुअी है।

"झंडेका प्रश्न दिन-दिन महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है। अिसलिअे प्रबन्ध अैसा होना चाहिये कि अेकसे आकार और रंगके झंडोंका ही अुपयोग किया जाय। रंग पक्का होना चाहिये, ताकि सब ऋतुओंमें वह अेकसा बना रह सके।

"मुझे तो अैसा लगता है कि झंडे अेक ही केन्द्रसे तैयार कराये जायं और वहींसे बेचे जायं। राष्ट्रीय झंडे खानगी रीतिसे न बन सकें, अैसा प्रचार करना चाहिये।"

अिस पत्रमें जैसा लिखा है यदि वैसा हुआ हो तो यह शोचनीय बात है। यह झंडा आज सत्रह सालसे काममें लाया जाता है। किसी भी राष्ट्रके झंडेका मूल्य तभी है, जब वह अेक निश्चित नियमके अनुसार तैयार किया गया हो। यह नियम प्रत्यक वस्तुके साथ लागू होता है। बाजारमें हम कोअी भी चीज खरीदने जाते हैं तो अुसका रंग, रूप और आकार देखकर अुसे खरीदते हैं, और जैसी चीज हमें चाहिये वैसी मिलने पर ही अुसके अूपर हम लोग पैसा खर्च करते हैं। तो फिर जिस राष्ट्रीय झंडेकी खातिर लोग प्राण तक अर्पण कर देते हैं, अुसकी कितनी अधिक कीमत नहीं होगी? यदि अुसकी अितनी अधिक कीमत है तो अुसे हम चीथड़ोंका या अपनी मरजीके माफिक न बनायें। अैसा करके तो हम अपने झंडेका अपमान करते हैं। परन्तु अेक-सरीखे झंडे मिलेंगे कहांसे? कानपुरके अिन सज्जनने जो तजवीज सुझाअी है वह ठीक है। किसी अेक ही जगह बनवानेसे झंडे अेक-सरीखे बन सकेंगे। जैसे टकसालमें सिक्के बनते हैं अथवा जैसे कारखानेमें अनक चीजें बनती हैं, अिसी तरह अगर यह झंडे लाखोंकी संख्यामें बनवाये जायं तभी सस्ते और अेक समान बन सकते हैं। यह काम चरखा-संघ और कांग्रेस कार्यालयकी मार्फत ही हो सकता है, क्योंकि शुद्ध नमूना और रंग वगैराका वर्णन वहींसे निकल सकता है।

हरिजनसेवक, ११–९–'३७

१३१
शिमलामें हरिजनसेवा

शिमलामें गत पांच बरससे वाल्मीकि (हरिजन) युवक-संघ काम कर रहा है। अिस संघके संचालक पंडित विश्वनाथन् हैं। मंत्री लाला लखमणसिंह समोतरा हैं, जो खुद वाल्मीकि हरिजन हैं। दोनों ही अवैतनिक रूपसे काम करते हैं। संघकी तरफसे गर्मियोंमें अेक रात्रि-पाठशाला चलती है, जिसमें सब कौमोंके बालक दाखिल हो सकते हैं। पाठशालाके २१ विद्यार्थियोंमें ८ सवर्ण हिन्दू हैं। अिस पाठशालामें तीन हरिजन अध्यापक हैं, जो सब वर्णोंके विद्यार्थियोंको पढ़ाते हैं। अिनके अतिरिक्त दो सवर्ण हिन्दू और सिक्ख अध्यापक भी हैं। आचार्य हरिजन हैं। संघ केवल सेवाभावसे बिना फीस लिये काम करनेवाले डॉक्टरों द्वारा दवा वगैराकी सहायता मुफ्त देता है।

अेक आपसका सहकारी कोष भी है। अिसमें पैसा रुपया ब्याज पर कर्जा दिया जाता है। अिस हिसाबसे सूदकी दर १८ प्रतिशत हुअी। यह बहुत ज्यादा है। यह दर छ प्रतिशत या ज्यादासे ज्यादा आठ प्रतिशतसे अधिक नहीं होनी चाहिये। अिसका अर्थ यह तो है ही कि रुपया अुधार देनेमें अधिक सावधानी रखी जायगी। अिससे लाभ ही होगा। अुधार दिये हुअे रुपयेका अुपयोग किस प्रकार हो रहा है अिसकी देखभाल रखनी चाहिये।

संघका अेक वाचनालय भी है। संघके मकानमें अक्सर गरीब निराश्रित हरिजनोंके कुछ रात ठहरनेका भी प्रबन्ध रहता है। मैं चाहता हूं कि अिस संघको अपने सेवाकार्यमें पूरी सफलता मिले।

हरिजनसेवक, ९-१०-'३७

१३२

अेक सुन्दर हरिजनसेवकका देहान्त

हरिजन-आन्दोलन अितनी तेजीसे शुरू हुआ, अुसके पहलेसे ही मणिलाल कोठारीको मैं जानता था। और जबसे मेरा अुनसे परिचय हुआ तभी मैंने यह देख लिया था कि अुनमें छूतछातकी जरा भी गन्ध नहीं थी। हरिजनोंको सहायता करते हुअे जो जोखिम अुठानी चाहिये अुसे अुठानेको वे हमेशा तैयार रहते थे। अगर यह कहा जाय कि अच्छे कामोंके लिअे पैसा अिकट्ठा करनेकी अुनमें लगभग अद्वितीय शक्ति थी, तो अिसमें कोअी अतिशयोक्ति नहीं। अुनमें यों तो बहुतसी शक्तियां थीं, किन्तु पारमार्थिक कार्योंके लिअे धन-संग्रह करनेकी अुनमें जो शक्ति थी, अुसके लिअे तो लोग हमेशा ही अुन्हें याद करेंगे। हरिजन-कार्यके लिअे अुन्होंने काफी पैसा अिकट्ठा किया था, और हिम्मतके साथ मुझसे कहा था कि अगर मैं अच्छा हो जाअूं, तो जितना पैसा आपको चाहिये अुतना ला दूंगा। पैसा अिकट्ठा करा देनेके लिअे जहां-तहांसे अुनके पास मांगें आती ही रहती थीं। मणिलाल तीव्र लगनके आदमी थे। कोअी भी पारमार्थिक काम हो, वह अुन्हें अपनी तरफ खींच सकता था। सेवा करनेका अुनका लोभ अुन्हें चाहे जिस जोखिममें अुतार सकता था। अुनकी कमी अुनके कुटुम्बको तो खटकेगी ही, हरिजनोंको भी खटकेगी; पर दूसरे अनेक सेवा-क्षेत्रोंमें अुनके अभावकी बहुत समय तक याद रहेगी, अिसमें सन्देह नहीं।

अीश्वर अुनकी आत्माको शांति प्रदान करे।

हरिजनसेवक, २३-१०-'३७

१३३

'मिस्टर' और 'अेस्क्वायर'

बनाम

श्री, मौलवी, मौलाना, जनाब आदि

कुछ मित्रोंने मुझसे कहा कि बम्बअीमें श्री जिन्नासे मिलनेके लिअे जानेसे पहले मैंने जो वक्तव्य दिया था, अुसमें 'जिन्ना' के पहले 'श्री' रखनेसे अुन्हें जरूर बुरा लगा होगा। मैं अिससे पशोपेशमें पड़ गया और कहा कि अगर अुन्हें बुरा लगता, तो वे शिष्टताके साथ मुझे अुसका अिशारा कर देते, ताकि मैं अुनसे माफी मांग लेता और फिर अुसी विशेषणका प्रयोग करता, जो अुन्हें सबसे ज्यादा पसन्द होता। पाठकोंको याद होगा कि असहयोग जब जोरोंसे चल रहा था, अुन दिनों 'मिस्टर' और 'अेस्क्वायर' का प्रयोग कांग्रेसजनों और राष्ट्रीय अखबारोंने छोड़ दिया था और धर्मका कोअी भेदभाव किये बगैर सबके लिअे अधिकतर 'श्री' का ही प्रयोग किया जाता था। यह रिवाज अब यद्यपि बहुत कुछ कम हो गया है, पर मैंने अुसको कभी नहीं छोड़ा। क्योंकि अपनी बुरी आदतके सिवा, बल्कि मैं कहूंगा कि अपनी दासमनोवृत्तिके बगैर, भारतीय नामोंके आगे या पीछे हम 'मिस्टर' और 'अेस्क्वायर' का प्रयोग कभी न करते। युरोपमें कोअी अंग्रेज किसी विदेशीके नामके साथ कभी 'मिस्टर' या 'अेस्क्वायर' नहीं लगाता, बल्कि अुनके अपने अपने देशोंमें प्रचलित विशेषणोंका ही प्रयोग करता है। अिस प्रकार हिटलरको कभी 'मिस्टर' नहीं कहा जाता; वह तो हर हिटलर ही कहलाता है। अिसी प्रकार, मुसोलिनीके साथ मिस्टर या हरके बजाय 'सिन्योर' ही लगाया जाता है। नामके आगे-पीछे लगानेके अपने विशेषणको हमने क्यों छोड़ दिया होगा, यह मैं नहीं जानता। लेकिन प्रचलित आदतसे अेक क्षणके लिअे भी अलग होकर विचार करें, तो हमें मालूम पड़ जाना चाहिये

कि भारतीय नामोंके आगे या पीछे 'मिस्टर' और 'अेस्क्वायर' का प्रयोग बड़ा हास्यास्पद लगता है।

मगर यह बात मुझे माननी होगी कि आपसके सन्देहके अिन दिनोंमें मुसलमान नामोंके पहले 'श्री' का प्रयोग शायद हमारे मुसलमान दोस्तोंको अच्छा न लगे। मुसलमान मित्रोंके साथ मैंने अिस बारेमें बातचीत की है। अुन्होंने कहा कि साधारणत: मौलवी शब्द अिसके लिअे काम आता है। दक्षिणमें मैंने अक्सर 'जनाब' का प्रयोग होते देखा है। जो भी हो, मैं यह कह सकता हूं कि हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके नामोंके पहले 'श्री' शब्दका प्रयोग करनेमें अुनके प्रति अधिकाधिक मित्रताके सिवा मेरे मनमें और कोअी भाव नहीं रहा है। मुझे तो जब कोअी 'मिस्टर' कहता है, तो बड़ी झूंझल आती है। हिन्दुओंमें प्रचलित प्रथा तो नामके अन्तमें 'जी' का प्रयोग करनेकी है। 'साहब' भी 'जी' का ही पर्यायवाची है। मुझे याद है कि स्वर्गीय हकीम अजमलखांको मैं हमेशा हकीमजी कहा करता था। कुछ मुसलमान मित्रोंने मुझसे कहा कि मुसलमान 'साहब' को ज्यादा पसन्द करेंगे। अिससे पहले मुझे अिस तरजीहका कोअी पता नहीं था। लेकिन अिस संशोधनके बादसे अनजाने 'जी' का प्रयोग हुआ हो, अुसके अलावा मैंने अुन्हें हमेशा हकीम साहब ही कहा। 'मिस्टर' अजमलखां तो मैं अुन्हें अपनी नंगी पीठ पर भीगी हुअी बेतोंकी मारके डरके सामने भी नहीं कह सकता। मालूम यह होता है कि अंग्रेजी शिक्षा पानेके बाद ही हम 'मिस्टर' और 'अेस्क्वायर' बने हैं!!! क्या अिस सांचेमें ढले हुअे पाठक भारतमें प्रचलित शुद्ध नामोंकी सूची देकर मुझे और मेरे जैसे आदमियोंकी मदद करेंगे?

हरिजनसेवक, २९-१०-'३८

१३४

जयपुरकी स्थिति

मालूम होता है कि जयपुरके अधिकारी अुस समय तक खुश न होंगे, जब तक कि वे जयपुरके देशभक्तोंके होशहवास अच्छी तरह दुरुस्त न कर देंगे। क्योंकि अब अुन्होंने जयपुर राज्य प्रजा-मंडलको, जिसके कि जमनालालजी प्रेसिडेण्ट हैं, गैरकानूनी घोषित कर दिया है। जयपुरकी कौंसिल ऑफ स्टेटके प्रेसिडेण्टके नाम लिखे अपने पत्रको जमनालालजीने प्रकाशित कर दिया है। अुम्मीद थी कि वह पत्र अधिकारियोंको अपना पुराना हुक्म वापिस लेनेकी प्रेरणा करेगा, मगर जयपुर कौंसिल (जिसके बारेमें भूलसे पिछले सप्ताह मैंने यह लिखा था कि अुसमें सब बाहरके ही आदमी हैं, मगर अब मुझे मालूम हुआ है कि अुसके चार सदस्य जयपुर राज्यके ही हैं), प्रगट रूपसे अिस बातके लिअे अुतारू दीखती है कि अुन सब कार्योंका अस्तित्व ही मिटा दिया जाय, जिनसे जमनालालजी और अुनके सहयोगियोंका सम्बन्ध है, फिर वे चाहे सामाजिक हों, या मानव-सेवाके अथवा अैसे ही कोअी और।

अधिकारियोंका अुन लोगोंसे, जिनको वे पसंद नहीं करते, पेश आनेका यह अेक नया तरीका है। मैं केवल आशाके विरुद्ध आशा कर सकता हूं कि जयपुरके अधिकारी अखिल भारतीय संकटको अुत्पन्न करनेमें जल्दबाजीसे काम न लेंगे। क्योंकि अिस बातके तीन कारण हैं, जिससे जयपुरका सवाल वह महत्त्व धारण कर लेगा।

जमनालालजी खुद ही अेक संस्था हैं। अिसके अलावा वे कांग्रेसके खजानची और अुसकी वर्किंग कमेटीके मेम्बर भी हैं। फिर जयपुरमें जो तरीका अख्तियार किया जा रहा है, वह अितना भीषण है कि पूरी शक्तिके साथ अुसका मुकाबला करना ही चाहिये। क्योंकि अुसका मुकाबला न किया गया तो रियासतोंमें होनेवाली अैसी हरअेक हलचलका ही अन्त हो जायगा, जिसका प्रजाकी वैध राजनीतिक आकांक्षाओंसे जरा भी कोअी सम्बन्ध हो।

जयपुरके बारेमें विचित्र बात यह है कि वहां असली शासन महाराजका नहीं बल्कि अेक अूंचे अंग्रेज अधिकारीका है। क्या अिसका मतलब यह है कि वे केन्द्रीय सत्ताकी अिच्छानुसार चलते हैं? अगर अैसा न हो तो क्या कोअी अंग्रेज दीवान अैसी नीति पर चल सकता है, जो खुद राज्यके लिअे विनाशक हो? मैं समझता हूं कि जयपुरका खजाना अितना भरा-पूरा है कि सर्वनाशके आधुनिक हथियारोंका सहारा लेनेके बावजूद प्रजा आत्मसमर्पण न करे और राज्यका लगातार बहिष्कार करती रहे, तो भी अुससे हर हालतमें राज्यका काम चलता रहेगा। लेकिन यह वक्त है कि राजा लोग और केन्द्रीय सरकार अिस सम्बन्धमें अपनी कोअी समान नीति बना लें। या जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, यह समझा जाय कि जयपुरने जो तरीका अख्तियार किया वही अुनकी समान नीति है? मैं तो केवल यही अुम्मीद कर सकता हूं कि अैसा नहीं है।

हरिजनसेवक, २१-१-'३९

१३५

औंधका शासन-विधान

औंध राज्यके लिअे जो नया शासन-विधान हालमें बनाया गया है, अुसमें कितनी ही चौंका देनेवाली चीजें हैं। पर अिस टिप्पणीमें तो मैं अुसके मताधिकार और न्यायकी अदालतें अिन दोके विषयमें ही लिखना चाहता हूं।

अब तक मैं यह मानता और कहता आया हूं कि हरअेक वयस्क आदमीको — फिर वह निरक्षर हो या साक्षर — मत देनेका अधिकार होना चाहिये। लेकिन कांग्रेस विधानको जिस तरह अमलमें लाया जा रहा है, अुसका निरीक्षण करते करते मेरी राय बदल गअी है। अब मैं यह मानने लगा हूं कि मताधिकारके लिअे अक्षरज्ञानका होना आवश्यक है। अिसके दो कारण हैं। मत बतौर अेक खास अधिकारके माना जाय, और अुसके लिअे कुछ योग्यता आवश्यक समझी जाय।

सादीसे सादी योग्यता अक्षरज्ञानकी — लिखना-पढ़ना आ जानेकी — है। और अक्षरज्ञानवाले मताधिकारके विधानके अनुसार बना हुआ मंत्रि-मंडल यदि मताधिकारसे वंचित निरक्षर प्रजाजनोंके हितकी चिन्ता रखनेवाला होगा, तो अत्यावश्यक अक्षरज्ञान तो देखते-देखते आ जायगा। औंधके शासन-विधानमें प्राथमिक शिक्षाको निःशुल्क और अनिवार्य बना दिया गया है। श्रीमंत आप्पा साहबने मुझे यह विश्वास दिलाया है कि वे अिस बातकी फिक्र रखेंगे कि औंध राज्यमें से छ महीनेके अन्दर ही निरक्षरता नष्ट हो जाय। अिसलिअे मुझे आशा है कि मताधिकारके लिअे अक्षरज्ञानकी जो योग्यता निश्चित की गअी है, अुसका औंध राज्यमें कोअी विरोध नहीं होगा।

प्रचलित प्रथामें दूसरा फेरफार यह किया गया है कि नीचेकी अदालतमें न्यायको मुफ्त और बहुत सादा बना दिया है। लेकिन आलोचक शायद नाराज होंगे, न्यायके अिस मुफ्तपने और सादगीके कारण नहीं, बल्कि दूसरी अेक बातसे। वह यह कि बीचकी तमाम अदालतोंको अुड़ा दिया गया है, और पक्षकारों और आरोपियोंका भाग्य अेक ही आदमीकी अूंची अदालतके हाथमें सौंप दिया गया है। पौन लाखकी जनसंख्यामें बहुतसे न्यायाधीशोंका होना अनावश्यक है और अशक्य भी है। और अगर योग्य प्रकारके मनुष्यको मुख्य न्यायाधीश बना दिया जाय, तो यह संभव है कि वह बड़ी-बड़ी तनखाहवाले न्यायाधीशोंके मंडल जितना ही शुद्ध न्याय दे। न्यायका स्वरूप अितना सादा कर देनेमें कल्पना यह रही है कि अदालतोंका अटपटा और लम्बा-चौड़ा काम नष्ट कर दिया जाय, और बड़े-बड़े कानूनोंके पोथों और ब्रिटिश अदालतोंमें काममें आनेवाले कायदेकी रिपोर्टोंका अुपयोग भी निकाल दिया जाय।

हरिजनसेवक, २८–१–'३९

१३६

दानकी जगह काम

जो भूखे और बेकार हैं, अुन्हें भगवान केवल अेक ही विभूतिके रूपमें दर्शन देनेकी हिम्मत कर सकते हैं; वह विभूति है काम और अन्नके रूपमें वेतनका आश्वासन।

नंगोंको जिनकी जरूरत नहीं है अैसे कपड़े देकर मैं अुनका अपमान नहीं करना चाहता। मैं अुसके बदले अुन्हें काम दूंगा, क्योंकि अुसीकी अुन्हें सख्त जरूरत है। मैं अुनका आश्रयदाता बननेका पाप कभी नहीं करूंगा। लेकिन यह महसूस करने पर कि अुनको तबाह करनेमें मेरा भी हाथ रहा है, मैं अुन्हें समाजमें सम्मानका स्थान दूंगा। अुन्हें जूठन या अुतरन तो हरगिज नहीं दूंगा। मैं अुन्हें अपने अच्छेसे अच्छे खाने और कपड़ेमें हिस्सेदार बनाअूंगा और अुनके परिश्रममें खुद योग दूंगा।

बिना प्रामाणिक परिश्रमके किसी भी चंगे मनुष्यको मुफ्तमें खाना देना मेरी अहिंसा बरदाश्त ही नहीं कर सकती। अगर मेरा वश चले तो जहां मुफ्त खाना मिलता है अैसा प्रत्येक 'सदावर्त' या 'अन्नछत्र' मैं बन्द करा दूं। अुनकी बदौलत राष्ट्रका पतन हुआ है, और आलस्य, सुस्ती, दंभ तथा गुनहगारीको बढ़ावा मिला है।

हरिजनसेवक, २५–२–'३९

१३७
सनातनी कौन है?

सनातनी वह है जो सनातन धर्मका पालन करे। महाभारत — शांतिपर्व — में सनातन धर्मकी व्याख्या अिस प्रकार की गअी है:

सत्यं दानस् तपः शौचं संतोषो ह्रीः क्षमार्जवम्;
ज्ञानं शमो दया ध्यानम् अेष धर्मः सनातनः।
अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा;
अनुग्रहश् च दानं च सतां धर्मः सनातनः।

चूंकि मैं अिन नियमों पर यथाशक्ति चलनेका प्रयत्न करता रहा हूं, अिसलिअे मुझे अपने-आपको सनातनी कहनेमें संकोच नहीं होता। पर अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके दिनोंमें मेरे विरोधियोंको मेरा यह नाम बुरा लगा और वे अपनेको ही सनातनी बताते थे। मैंने नाम पर अुनसे झगड़ा नहीं किया। अिसलिअे मैंने विरोधियोंको अुसी नामसे पुकारा है, जो अुन्होंने अपने लिअे पसन्द कर लिया। अब मुझे सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, पंजाबकी तरफसे अेक पत्र मिला है। अिसमें अिस बात पर नाराजगी जाहिर की गयी है कि मैं अपने विरोधियोंको सनातनी बताकर यह अर्थ क्यों निकलने देता हूं कि सभी सनातनी अछूतपनको मानते हैं, और अुन्हें बुरीसे बुरी गालियां देनेमें आनंद आता है। आगे चलकर अिस खतमें लिखा है:

"सच पूछिये तो अिसमें हमें बड़ा दुःख हुआ और हमें अन्देशा है कि पंजाबमें हमारे धार्मिक और सामाजिक कार्यको हानि पहुंचेगी।

"महात्माजी, आप दक्षिणके पास होनेके कारण हम अुत्तर-वालोंसे दक्षिणके सनातनियोंको ज्यादा जानते हैं। यहां पंजाबमें तो हम लोग हरिजनोंको मंदिर-प्रवेश और दूसरी सहूलियतें देनेकी हिमायत करते रहे हैं। हमने अिस तरह व्यवस्थाअें भी अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभाकी परिषद्से ले ली हैं। हमारा संगठन, सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा पंजाब, जिसकी

६०० शाखाअें और ३०० महावीर दल हैं, खुद अिसी दिशामें काम कर रही है। अिस प्रांतमें बहुत कम मन्दिर अैसे हैं जिनके महन्त या पुजारी लोग हरिजनोंको देवदर्शनका अधिकार देनेसे अिनकार करते हों।

"आप बखूबी सोच सकते हैं कि आपके लेखका हमारे काम पर क्या असर हो सकता है। अपढ़ जनता अेक तरहके सनातनी और दूसरी तरहके सनातनीमें फर्क नहीं कर सकती, अिसलिअे अुसने हमें आपका विरोधी समझ लिया है। हमारे वक्तव्यों और खंडनोंसे कोअी लाभ नहीं। हमारे सैकड़ों व्याख्यानोंसे आपकी बातका असर ज्यादा होता है। हमने पंडित मदनमोहनजी मालवीय और गोस्वामी गणेशदत्तजीके नेतृत्वमें हरिजन-अुद्धारका काम किया है और अब भी कर रहे हैं।

"मेरी प्रार्थना है कि जो लोग हरिजन-आन्दोलनके विरोधी हैं अुनके लिअे कोअी और शब्द निकालिये। 'सनातनी' शब्द तो जंचता नहीं।"

लेखकका यह समझना गलत है कि मैं अुत्तरके सनातनियोंको नहीं जानता। अगर काशीको अुत्तरमें गिना जा सकता हो तो वहांसे तो बड़े हठी सुधार-विरोधी निकले हैं। लेखक भाअी पंजाबके सनातनियोंकी ही बात करते तो ज्यादा मुजायका न होता। मगर मुझे यह खयाल नहीं आ सकता था कि जिस सीमित अर्थमें मैं वह शब्द अिस्तेमाल कर रहा था अुसे कोअी नहीं समझ सकेगा। मुझे लगता है कि मेरे सुधार-विरोधियोंको सनातनी बतानेसे जितना बिगाड़ हुआ है अुससे लेखकने ज्यादा समझ लिया है। अवश्य ही, पंजाबके सनातनियोंको अपनी खुदकी स्थिति साफ करनेमें तो कोअी कठिनाअी न होनी चाहिये। कुछ भी हो, वे अिस लेखको अपने समर्थनमें काम ले सकते हैं। असलमें दक्षिणके भी सारे सनातनी सुधारके या मेरे विरोधी नहीं हैं। हरिजन-यात्रामें ही मुझे पता लग गया था कि मैं कहीं भी गया तो वहां पर मेरे विरोधी आटेमें नमकके बराबर ही थे। बादके अिन बरसोंमें तो अुनकी संख्या और भी घटी है। हिन्दुओंका

भारी बहुमत पक्षमें न होता तो राजाजीका हरिजन-मंदिर-प्रवेश कानून पास नहीं हो सकता था। न यह संभव था कि सनातनियोंका विरोध कुछ भी व्यापक होता तो दक्षिणके बड़े-बड़े मंदिर हरिजनोंके लिअे खोल दिये जाते। अिसलिअे जब मैं सनातनियोंके विरोधकी बात करता हूं, तो अुसका मतलब अुन मुट्ठीभर लोगोंसे ही हो सकता है, जो सनातनी कहलानेमें खुश होते हैं और जिनका धंधा ही अस्पृश्यताके सुधारका विरोध करना और मुझे कोसना हो गया है। मैं यही प्रार्थना कर सकता हूं कि किसी दिन अुनकी आंखें खुलें और वे भी अुस सुधारके पक्षमें हो जायं, जो हिन्दू धर्मको कमसे कम अस्पृश्यताके कलंकसे तो पाक करके ही छोड़ेगा।

सेगांव, १९–१२–'३९
हरिजनसेवक, २३–१२–'३९

१३८

डाकका थैला

राजनीति और धर्म

प्र० — अपनी 'आत्मकथा' में आपने कहा है कि धर्मसे भिन्न राजनीतिका आप खयाल भी नहीं कर सकते। क्या अब भी आपका अैसा ही खयाल है? यदि हां, तो भारत जैसे विविध धर्मोंवाले देशमें कैसे आप अेक सामान्य राजनीतिक नीतिके ग्रहण किये जानेकी आशा करते हैं?

अु० — बेशक, मैं अब भी धर्मसे भिन्न राजनीतिकी कल्पना नहीं कर सकता। वास्तवमें धर्म तो हमारे हरअेक कार्यमें व्यापक होना चाहिये। यहां धर्मका अर्थ कट्टर-पंथसे नहीं है। अुसका अर्थ है विश्वकी अेक नैतिक सुव्यवस्थामें श्रद्धा। वह अदृष्ट है, अिसलिअे वास्तविकता अुसकी कम नहीं हो जाती। यह धर्म हिन्दू धर्म,

अिस्लाम, औसाअी धर्म आदि सबसे परे है। यह अुन धर्मोंका अुच्छेद नहीं, बल्कि समन्वय करता है और अुन्हें वास्तविक धर्म बनाता है।

प्र० — क्या यह ठीक है कि कुछ सिक्खोंको, जो कुछ मामलोंमें आपकी सलाह लेने आये थे, आपने यह सलाह दी थी कि गुरु गोविन्दसिंहने तो अुपदेश दिया था कि तलवारसे काम लो, पर मैं तो अहिंसाका समर्थक हूं, अिसलिअे सिक्ख अिन दोनोंमें से केवल अेक ही मार्ग ग्रहण कर सकते हैं?

अु० — अिस प्रश्नमें अगर शरारत नहीं तो कमसे कम पूछा गया है बुरी तरहसे। मैंने सिक्खोंसे जो कुछ कहा था वह यह था कि अगर अुनका यह खयाल है कि गुरु गोविन्दसिंहने अहिंसामें सोलहों आने श्रद्धा रखनेकी शिक्षा नहीं दी है तो वे अुस समय तक अपनेको वाजिब तौर पर कांग्रेसी नहीं कह सकते जब तक कि कांग्रेसका मौजूदा ध्येय बना हुआ है। मैंने यह भी कहा था कि अैसी दशामें वे कांग्रेसमें शामिल हुअे या अुसमें रहे तो वे अपनी स्थितिको विषम बना डालेंगे और संभवत: अपने कार्यको भी हानि पहुंचायेंगे।

अहिंसा, अिस्लाम और सिक्ख धर्म

प्र० — सब धर्मोंका आदर करनेका अुपदेश देकर आप अिस्लामकी ताकतको तोड़ते हैं। आप पठानोंकी बन्दूकें छीनकर अुन्हें नामर्द बना देना चाहते हैं। अिस हालतमें हममें और आपमें मेल तो कहीं हो ही नहीं सकता।

अु० — मैं नहीं जानता कि खिलाफतके दिनोंमें अिस संबंधमें आपके क्या विचार थे। मैं आपको हाल ही का थोड़ा अितिहास बता दूं। खिलाफत आंदोलनकी नींव मैंने ही डाली थी। अलीबंधुओंकी रिहाअीके लिअे जो हलचल हुअी थी अुसमें भी मेरा हाथ था। अिसलिअे जब अलीबंधु रिहा हुअे तो वे और ख्वाजा अब्दुल मजीद, श्वैब कुरेशी, मुअज्जमअली और मैं हम सब मिले और कार्यकी अेक योजना निकाली जिसे सब लोग जानते हैं। अुन सबके साथ

मैंने अहिंसाके सब पहलुओं पर चर्चा की और अुन्हें बताया कि सच्चे मुसलमानोंकी भांति अगर वे अहिंसाको स्वीकार न कर सकें तो मेरे लिअे अुनके पास कोअी जगह नहीं रहेगी। वे मेरी बातके कायल तो हो गये मगर अुन्होंने कहा कि बिना हमारे अुलेमाओंकी ताअीदके हम अिस पर अमल न कर सकेंगे। और अिसलिअे स्वर्गीय प्रिंसिपल रुद्रके मकान पर कुछ अुलेमा जमा हुअे। प्रिंसिपल रुद्रके जीवनकालमें मैं जब जब दिल्ली आता था, अुन्हींके घर पर ठहरता था। अिन अुलेमाओंमें और और लोगोंके साथ मौलाना अबुल कलाम आजाद, मरहूम मौलाना अब्दुल बारी, मौलाना अब्दुल मजीद और मौलाना आजाद सुभानी भी थे। ये नाम मैं अपनी याददाश्तसे ही लिख रहा हूं। पहले दो की तो मुझे अच्छी तरह याद है। बाकी अुस समय न भी रहे हों तो बादमें शामिल जरूर हो गये थे। मौलाना अबुल कलाम आजादने अिस बहसमें प्रमुख भाग लिया था। सबने यह फैसला किया कि अहिंसामें विश्वास करना अिस्लाममें जायज ही नहीं, बल्कि जरूरी भी है, क्योंकि अिस्लाममें अहिंसाको हमेशा हिंसासे ज्यादा पसन्द किया गया है। यह बात गौर करनेके काबिल है कि सन् १९२० में जब कांग्रेसने अहिंसाको स्वीकार किया, अुससे पहलेकी यह घटना है। मुसलमानोंके कअी बड़े-बड़े जलसोंमें मुस्लिम विद्वानोंने अहिंसा पर बहुतसे व्याख्यान और अुपदेश दिये। बादमें बिना किसी दुविधाके सिक्ख भी आये और अुन्होंने अहिंसा पर मेरे विचारोंको कान लगा कर सुना। वे महान और गौरवशाली दिन थे। अहिंसा तो संक्रामक ही साबित हुअी। अुसके जादूसे जनतामें अितनी जागृति हुअी जितनी पहले अिस देशमें कभी नहीं देखी गयी थी। सब कौमोंने अनुभव किया कि वे अेक हैं और अुन्होंने सोचा कि अहिंसासे अुन्हें अेक अैसी ताकत मिल गयी है जिसका मुकाबिला कोअी कर नहीं सकता। वे अुजले दिन गये और अब अूपरके जैसे सवालोंका जवाब देनेके लिअे मुझे गंभीरतासे बाध्य होना पड़ रहा है। अहिंसामें वह श्रद्धा मैं आपको नहीं दे सकता जो कि आप अुसमें नहीं रखते हैं। वह श्रद्धा तो अीश्वर ही आपको दे सकता है। मेरी श्रद्धा तो अब भी वैसी ही

अचल है। आप और आप जैसे दूसरोंके मेरी प्रवृत्तियों पर सन्देह करनेके बावजूद भी मेरा यह दावा है कि अेक-दूसरेके धर्मके प्रति आदर अेक शांतिदायक समाजमें स्वाभाविक रूपसे ही होता है। विचारोंका खुला घात-प्रतिघात और किसी भी दशामें असंभव है। धर्म हमारे स्वभावकी बर्बरताको संयत करनेके लिअे है, अुसे ढीला छोड़ देनेके लिअे नहीं। अीश्वर केवल अेक है, यद्यपि नाम अुसके अनेक हैं। क्या आप यह आशा नहीं करते कि मैं आपके धर्मका आदर करूं? यदि आप यह आशा करते हैं, तो क्या मैं आपसे नहीं चाह सकता कि आप भी मेरे धर्मका आदर करें? आप कहते हैं कि मुसलमानोंकी हिन्दुओंके साथ कुछ भी समानता नहीं है। आपके अिस अलगावके बावजूद भी संसार धीरे-धीरे विश्वव्यापी भाअीचारेकी ओर कदम बढ़ा रहा है। वहां जाकर मानवजाति अेक राष्ट्र हो जायगी। सामान्य लक्ष्यकी ओर जो कूच हो रहा है, अुसे न तो आप ही रोक सकते हैं, न मैं रोक सकता हूं। पठानोंको नामर्द बनानेका जवाब तो बादशाह खानसे मिलेगा। हमसे मिलनेसे पहले ही अुन्होंने अहिंसाको स्वीकार कर लिया था। अुनका विश्वास है कि पठानोंका अहिंसाके द्वारा ही कुछ भविष्य बन सकता है। अहिंसा न होगी तो और नहीं तो अुनकी आपसी खूंरेजी ही अुन्हें आगे बढ़नेसे रोके रहेगी। और अुनका खयाल है कि अहिंसाको स्वीकार करनेके बाद ही पठान सीमाप्रान्तमें जम सके हैं और अीश्वरके सेवक — खुदाअी खिदमतगार बने हैं।

और भी निन्दा

प्र० — अलीबंधुओंने जो अमानुल्लाको भारत पर हमला करनेके लिअे आमंत्रित करने और मुस्लिम राज स्थापित करनेका षड्यंत्र रचा था, अुसमें साथ देनेसे आप नहीं हिचकिचाये। आपने मौलाना मुहम्मदअलीके तारका मसविदा भी बनाया था, जिसमें अुस वक्तके अमीरको यह सलाह दी गयी थी कि वह अंग्रेजोंके साथ कोअी समझौता न करें। कहा जाता है कि स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानंदजीने यह मसविदा देखा था। और अब आप चाहते हैं कि सिन्धके हिन्दू

अपने मुसलमान आक्रांताओंके सामने सब कुछ समर्पित कर दें और यह मांग पेश न करें कि सिंध बम्बअी सूबेके साथ मिला दिया जाय, जो कि सिन्धमें न्यायपूर्ण शासनकी पुनरावृत्तिका अेकमात्र अुपाय है। आप यह अनुभव क्यों नहीं करते कि ज्ञान और प्रगतिके अिस युगमें अल्पसंख्यक जो आशा करते हैं वह अुनके अुचित अधिकारोंका असली संरक्षण है, अुनके पूर्ण होनेका पवित्र अुपदेश नहीं।

अु० — अैसे बहुतसे पत्र मेरे पास आये हैं। अब तक मैंने अुन्हें दरगुजर ही किया है। लेकिन अब मैं देखता हूं कि यह बात हिन्दू महासभामें पहुंचकर बढ़-चढ़ गयी है। अेक क्रुद्ध सम्वाददाता तो धमकी देते हैं कि अुन जैसे आदमी अितने प्रामाणिक स्थानसे कही गयी बात पर जरूर विश्वास करने लगेंगे। अिसलिअे अपनी प्रतिष्ठाकी खातिर मुझे अिस सवालका जवाब देना ही होगा। लेकिन मेरे अिन सम्वाददाताको जानना चाहिये कि अपने बारेकी हरअेक अफवाह या लेखकी तोड़-मरोड़का प्रतिवाद करने बैठूं तो जीवन मुझे दूभर हो जायगा। जिसकी रक्षाके लिअे अैसी कच्ची दीवालकी जरूरत है, वह प्रतिष्ठा ही क्या? जहां तक कि अमीरके साथ मेरे षड्यंत्रका संबंध है, मैं कह सकता हूं कि अुसमें लेशमात्र भी सत्य नहीं है। और, मुझे मालूम है कि अलीबन्धुओंके सामने जब यह आरोप आया था तो दृढ़तासे अुन्होंने अुससे अिनकार किया था और मैंने अुनका पूरा विश्वास किया। मुझे याद नहीं है कि मौलाना मुहम्मदअलीकी ओरसे अुस समयके अमीरके लिअे मैंने तारका कोअी मसविदा तैयार किया था। जिस तारकी बात कही गयी है, अुसमें यों तो कोअी दोष नहीं है और अुससे जो अनुमान लगाया गया है अुसका भी कोअी मौका नहीं है। स्वर्गीय स्वामीजीने वह बात मुझसे कभी नहीं पूछी। मृत व्यक्तियोंके खिलाफ अुस समय तक कुछ कहना अनुचित है जब तक कि अुसके समर्थनके लिअे कोअी निश्चयात्मक प्रमाण न हो और अुसका कहना संगत हो। यह सारी कथा 'यंग अिंडिया' के मेरे लेखोंको लेकर खड़ी की गयी है। अुनसे जो अनुमान लगाये गये हैं, अुनका कोअी भी औचित्य नहीं है। अंग्रेजोंको बाहर निकाल

देनेके अभिप्रायसे भारत पर हमला करनेके लिअे मैं किसी सत्ताको आमंत्रित करनेका गुनाह नहीं करूंगा। पहली बात तो यही कि वह मेरे अहिंसा धर्मके विरुद्ध है। दूसरे यह कि अंग्रेजोंकी बहादुरी और शस्त्रोंके प्रति मुझे अितना मानका भाव है कि मैं नहीं सोच सकता कि भारत पर कोअी भी आक्रमण तब तक सफल हो सकेगा जब तक कि बहुतसी जबरदस्त ताकतें ही न मिल गयी हों। कुछ भी हो, मैं नहीं चाहता कि ब्रिटिश राज खतम हो तो अुसकी जगह और कोअी दूसरा विदेशी राज आ जाय। मैं तो खालिस स्वराज्य चाहता हूं, फिर चाहे अुसमें खामियां भी हों। आज भी मेरी स्थिति वैसी ही है जैसी कि अुस समय थी जब मैंने 'यंग अिंडिया' के अुन वाक्योंको लिखा था, जिन्हें मेरे विरुद्ध प्रयुक्त करनेकी कोशिश की जा रही है। मैं अपने पाठकोंको यह भी याद दिला दूं कि मैं गुप्त तरीकोंमें विश्वास नहीं करता।

सिंधके लिअे अब भी मेरी वही सलाह है। सिन्धका बम्बअी प्रान्तके साथ मिलानेका प्रस्ताव चाहे और आधारों पर ठीक हो या न हो, लेकिन अिस आधार पर तो निश्चय ही वह ठीक नहीं कि अिस अेकीकरणसे सिंधवासियोंके जान और मालको अधिक संरक्षण मिलेगा। प्रत्येक भारतवासीको, फिर वह हिन्दू हो या और कोअी, अपने आप अपनी रक्षा करनेकी कला सीखनी चाहिये। सच्चे लोकतंत्रकी यह शर्त है। सरकारका तो संरक्षण देना अेक कर्तव्य है। लेकिन कोअी भी सरकार अुन लोगोंकी रक्षा नहीं कर सकती, जो सरकारके अुन्हें संरक्षण देनेके कर्तव्यमें हाथ नहीं बंटायेंगे।

दिल्ली आते समय रेलमें, ४–२–'४०

हरिजनसेवक, १०–२–'४०

१३९

प्रश्न-पिटारी

अेक घरेलू कठिनाअी

प्र० — मैं विवाहित हूं। मेरी पत्नी अेक अच्छी स्त्री है। हमें बच्चे भी हैं। अभी तक हम लोग शान्तिपूर्वक साथ-साथ रहे हैं। दुर्भाग्यवश पत्नीकी जान-पहचान अेक अैसी औरतसे हुअी, जिसे अुसने अपना गुरु बना लिया है। अुसने अुस स्त्रीसे गुरुमन्त्र लिया है और अब मेरी पत्नीका जीवन मेरे लिअे बिलकुल अज्ञात या प्रच्छन्न हो गया है। अिसकी वजहसे हमारे बीच अुदासीनताका भाव पैदा हो गया है। मुझे समझमें नहीं आता है कि मैं क्या करूं। तुलसीदास द्वारा चित्रित राम मेरे आदर्श नायक हैं। क्या मुझे वही करना चाहिये जो रामने किया था, यानी क्या मैं अपनी पत्नीसे सब तरहका संबंध तोड़ लूं?

अु० — तुलसीदासने हमें सिखाया है कि हमें समर्थ लोगोंका अन्धानुकरण न करना चाहिये। महापुरुष या समर्थ लोग, जो काम बिना किसी हानिके कर सकते हैं, वह हम नहीं कर सकते। सीताके प्रति रामके प्रेमका खयाल करो। तुलसीदास हमें बताते हैं कि स्वर्णमृगके दर्शनके पहले ही वास्तविक सीता रामके आदेशसे लुप्त हो गअी थीं और अुनकी छायामात्र रह गअी थी। यह बात लक्ष्मण तकसे छिपाअी गअी। कविने आगे और बताया है कि रामके सामने दैवी हेतु था। स्वर्णमृगके प्रकट होनेके बाद रामने सीताकी अिसी छायासे काम लिया था। फिर भी सीताने कभी रामके किसी कार्यका विरोध नहीं किया। संसारी पुरुषके विषयमें अिस प्रकारकी सारी बातोंका अभाव होता है, जैसा कि आपके मामलेमें है। अिसलिअे मेरी सलाह है कि अपनी पत्नीके साथ निबाहो और तब तक अुसके बीच हस्तक्षेप न करो जब तक कि अुसके आचरणके विरुद्ध आपको शिकायत करनेकी कोअी वजह न हो। अगर आपने किसीको अपना 'गुरु' बनाया होता, अुससे 'गुरुमंत्र' लिया होता और अगर आप यह भेद अपनी पत्नी पर प्रगट न करते, तो मुझे विश्वास है कि आप भी भेद बतानेसे अिनकार करने पर अपनी

पत्नी द्वारा हस्तक्षेप किये जानेको पसन्द न करते। मैं मानता हूं कि पति-पत्नीके बीच कोओी भेद या गोपनीयता नहीं होनी चाहिये। विवाह-बंधनके प्रति मेरे मनमें बड़ी अूंची धारणा है। मैं मानता हूं कि पति-पत्नी अेक-दूसरेमें अपनेको विलीन कर देते हैं। वे दो शरीरोंमें अेक प्राण व अेकमें दो शरीर है। पर ये बातें यांत्रिक रूपमें नहीं लागू की जा सकतीं। अिसलिअे जब आप अेक अुदार विचारके पति हैं तो आपको अपनी पत्नीको भेद बतानेमें अुसकी हिचकिचाहटकी कद्र करनेमें कोओी कठिनाओी न होनी चाहिये।

कलकत्ता जाते हुअ रेलमें, १६–२–'४०

हरिजनसेवक, २४–२–'४०

१४०

प्रश्न-पिटारी

व्यर्थकी रटाओी

प्र० — अिस बातमें सब सहमत हैं कि खाली जबानसे प्रार्थनाका रोज-रोज दुहराया जाना निरर्थकसे भी बुरा है। अुसका प्रभाव आत्मा पर सुलानेवाला पड़ता है। मुझे बहुधा अचरज होता है कि आप क्यों रोजकी दिनचर्या बनाकर सुबह-शाम ग्यारह महाव्रतोंके दोहराये जानेको प्रोत्साहन देते हैं। क्या अिसका हमारे बच्चोंकी नैतिक चेतनाको शिथिल करनेवाला असर नही पड़ सकता? क्या अिन महाव्रतोंकी शिक्षा देनेका और कोओी अच्छा तरीका नहीं है?

अु० — बार बार दोहरानेकी क्रिया अगर यांत्रिक ही न हो तो अुससे अद्‌भुत परिणाम होता है। अिसी कारण मैं मालाको अंधविश्वासकी चीज नहीं समझता। अिससे चंचल मनको स्थिर करनेमें मदद मिलती है। मगर व्रतोंको रोज दोहरानेकी बात अलग है। अिससे साधकको नित्य अुठते और सोते समय स्मरण होता है कि अुसने ११ व्रत लिये हैं और अुन्हींके अनुसार अुसे आचरण करना है। अवश्य ही यदि कोओी

अिस भ्रममें कि खाली रटनेसे ही पुण्य मिल जायेगा, जबानसे व्रतोंको दोहराते हैं तो अुसका असर जाता रहेगा। आप यह पूछ सकते हैं, "व्रतोंको दोहरानेकी जरूरत ही क्या? आप जानते हैं कि आपने व्रत लिये हैं और आपसे अुनके पालनकी आशा रखी जाती है।" अिस दलीलमें जोर है। पर अनुभव बताता है कि जान-बूझकर रटनेसे निश्चयको बल मिलता है। दुर्बल शरीरके लिअे बलवर्द्धक औषधियां जो काम देती हैं, दुर्बल मन और आत्माके लिअे वही काम व्रत देते हैं। तन्दुरुस्त शरीरके लिअे जैसे ताकतकी दवाओंकी जरूरत नहीं होती, ठीक अुसी तरह सबल मन व्रतों और अुनके नित्यस्मरणके बिना अपना स्वास्थ्य कायम रख सकता है। पर व्रतोंका ध्यानपूर्वक विचार करनेसे मालूम हो जायेगा कि हममें से अधिकांश अितने दुर्बल हैं कि हमें अिनकी सहायताकी आवश्यकता रहती है।

सेवाग्राम, १–४–'४०
हरिजनसेवक, ६–४–'४०

१४१

प्रश्न-पिटारी

गोमांस

प्र० — अेक बहुत जरूरी सवाल है, जिसके बारेमें आपको मुस्लिम जनताके दिलको संतोष दिलाना चाहिये। वह यह है कि क्या हिन्दू बहुमतके राज्यमें मुसलमानोंको गोमांस खानेकी अिजाजत होगी? गोमांस तो मुसलमानोंकी कौमी खुराक है। अगर अिस सवालका आप संतोषजनक जवाब दे सकें तो काफी गांठें खुल जायेंगी।

अु० — मुझे मालूम नहीं कि यह सवाल क्यों अुठा है, क्योंकि जिन प्रान्तोंमें कांग्रेसने हुकूमत की है, वहां अुसने मुसलमानोंको गोमांस खानेमें कोअी रुकावट नहीं डाली। यह सवाल गलतफहमीसे भी भरा हुआ है। हिन्दू बहुमतका राज्य तो हो ही नहीं सकता। यदि

स्वतंत्र हिन्दुस्तानमें हम लोग अेक-दूसरेके साथ अमनसे रहना चाहते हैं, तो जो विभाग होंगे वे राजनीतिक विभाग होंगे, धार्मिक नहीं; क्योंकि अुनके पैदा होनेका कारण मजहब नहीं होगा। आज भी, काफी मजहबी मतभेद होते हुअे, हमारी राजनीतिक पार्टियोंके सदस्य अक्सर भिन्न भिन्न धर्मके होते हैं। फिर यह कहना भी ठीक नहीं है कि गो-मांस मुसलमानोंका राष्ट्रीय आहार या कौमी खुराक है। पहली बात तो यह है कि हिन्दुस्तानके मुसलमान हिन्दुस्तानी हैं, कोअी जुदी कौम नहीं। दूसरी यह कि गोमांस अुनका मामूली खाना नहीं है, अुनकी खुराक तो सबकी खुराक है। अलबत्ता, मुसलमानोंमें अैसे बहुत कम हैं, जिन्होंने मांस खाना मजहबके लिहाजसे छोड़ दिया है। अिसलिअे वह जब मिले तो हरअेक किस्मका मांस खा लेते हैं और अिसमें गोमांस भी शामिल है। लेकिन असल बात तो यह है कि गरीबीके कारण सालमें ज्यादातर तो जनताको मांस मिलता ही नहीं।

अगर यह काल्पनिक प्रश्न है, तो भी अुत्तर देना आवश्यक है। मैं हिन्दू हूं, पक्का निरामिषभोजी हूं और गायको पूजता हूं, जैसे मैं अपनी माता — अफसोस कि वह आज अिस जगतमें नहीं है — को पूजता हूं। साथ ही, मेरी यह पक्की राय है कि अगर वे चाहें तो मुसलमानोंको गाय मारनेका अधिकार होना चाहिये। अुन्हें सफाअीके नियमका पालन करना होगा। और यह काम अैसे करना होगा जिससे हिन्दुओंकी भावनाओंको ठेस न पहुंचे। यह अधिकार मुसलमानोंके लिअे आवश्यक है, अगर हम आपसमें मित्रताके साथ रहना चाहते हैं। अन्तमें मैं समझता हूं कि अिस तरहसे हम गायको बचायेंगे भी। सन् १९२१ में खुद मुसलमान भाअियोंकी कोशिशसे हजारों गायोंकी जानें बच गअी थीं।

आज तो आकाश काले बादलोंसे घिरा हुआ है। पर मैं अुम्मीद नहीं छोडूंगा कि ये बादल तितर-बितर हो जायेंगे और हमारे अभागे देशमें सांप्रदायिक अैक्य जरूर पैदा होगा। यदि मुझसे कोअी पूछे कि मैं अिसका कोअी सबूत दूं, तो मेरा जवाब यह होगा कि मेरी आशाकी बुनियाद तो श्रद्धा है और श्रद्धाको सबूतकी कोअी जरूरत नहीं।

फांसीकी प्रथा

प्र० — क्या आपकी रायमें फांसीकी सजा अहिंसाके असूलके विरुद्ध है? यदि अैसा है, तो स्वतंत्र हिन्दुस्तानमें आप अुसके बदलेमें कौनसी सजा रखेंगे?

अु० — फांसीकी सजाको तो मैं अहिंसाके विरुद्ध समझता हूं। केवल ओीश्वरको, जो जीवन देता है, जान लेनेका अधिकार है। अहिंसा तो सभी सजाओंकी विरोधी है। जो राज्य अहिंसाके आधार पर अपना शासन चलाता है, वहां तो हत्या करनेवालेको भी अैसी जगह भेजना चाहिये, जहां अुसका मानसिक और नैतिक सुधार हो सके। हरअेक गुनाह अेक किस्मकी बीमारी है और अिसका अिलाज भी अिस दृष्टिसे होना चाहिये।

ओीश्वरकी अिच्छा

प्र० — साधारण मनुष्य अपनी अिच्छा और ओीश्वरकी अिच्छाके बीचका भेद किस तरह पहचाने?

अु० — ओीश्वरकी अिच्छा पहचानना बहुत कठिन बात है, जिसके लिअे अुचित शिक्षाकी आवश्यकता है। अिसलिअे सिवा अिसके कि पक्का सबूत हो, जो अिच्छा पैदा होती है अुसे मनुष्य अपनी ही समझे, ओीश्वरकी नहीं।

कांग्रेसके प्रति गुनाह है?

प्र० — स्वतंत्रता-दिवसके जलसोंमें बाज कांग्रेस कमेटियोंने आदमपुर दोआबामें राष्ट्रीय झंडे अशुद्ध खादी और कागजके बनाकर बेचे। जब मैंने अुनसे प्रार्थना की कि अैसा नहीं करना चाहिये, तो अुन्होंने जवाब दिया कि यदि हम शुद्ध खादीके झंडे बेचें तो अेक अेक पैसेमें नहीं बेच सकते। अिस तरह तो हम कुछ मुनाफा अपने लिअे भी कर सकते हैं।

किसी-किसी जगह तो मैंने मिलके कपड़ेके झंडे भी देखे और अुन पर चरखेका चित्र नहीं था। मेरा अभिप्राय तो यह है कि चरखा

और खादी हमारे झंडेकी आत्मा है और जिस झंडे पर चरखेका चित्र न हो और जो अप्रमाणित खादी या कागजका बना हुआ हो, वह राष्ट्रीय झंडा कहलाया नहीं जा सकता।

अु० — आप जो कहते हैं वह बिलकुल ठीक है। जिन्होंने अैसे झंडोंका अुपयोग किया है, जैसा कि आपने लिखा है, अुन्होंने कांग्रेसका अपमान किया है। अुन्होंने झंडेका आदर नहीं किया। झंडा तो अेक खास नमूनेका होता है। अगर हमीं अपने झंडेकी अिज्जत नहीं करेंगे, तो औरोंसे क्या अुम्मीद रख सकते हैं? आपके बयानसे मुझे अैसा लगता है कि अच्छा हो अगर हमारे केन्द्रीय दफ्तरमें भिन्न-भिन्न नापके झंडे बनाकर रखे जायं और अप्रमाणित झंडेका अुपयोग करनेका किसीको अधिकार नहीं होना चाहिये।

हरिजनसेवक, २७-४-'४०

१४२

प्रश्न-पिटारी

हरिजन-सेवा और कौमी अेकता

प्र० — आप हरिजन-सेवाका काम कर सकते हैं, खादी और ग्रामोद्योगके कामके लिअे संगठन कर सकते हैं, मगर जब हिन्दू-मुस्लिम-अैक्यका प्रश्न आता है, तो अुसे टालनेके लिअे आप अनेक बहाने गढ़ लेते हैं; क्योंकि दरअसल आप यह काम करना ही नहीं चाहते।

अु० — यह अिलजाम मुझ पर कअी अपरिचित पत्र लिखनेवालोंने लगाया है। मगर हालमें यह अिलजाम मेरे साथ गाढ़ परिचय रखनेवाले अेक मुसलमान सज्जनने अुग्रतासे दोहराया है और अिस प्रश्नका हल 'हरिजन' में करनेके लिअे तकाजा किया है। हरिजनों और मुसलमानोंकी तुलना की ही नहीं जा सकती। हरिजनोंकी तो जो भी मदद की जा सके अुसकी अुनको जरूरत है। हरिजन-कार्य तो परोपकारका काम

है। मुसलमानोंको मेरे परोपकारकी जरूरत नहीं। वह अेक ताकतवर कौम है। अगर कोअी हरिजनोंकी तरह अुनकी सेवा करने लगे, तो अुसे वह अपना अपमान समझेंगे। खादी और ग्रामोद्योगकी मिसाल मेरे विरोधमें खड़ी करनेमें तो विचार-शून्यता जाहिर होती है। ये प्रवृत्तियां तो जो कोअी भी अुनसे फायदा अुठाना चाहें अुन सबकी मददके लिअे संगठित की गअी हैं और सचमुच तो हिन्दू, मुस्लिम और दूसरे लोग भी अिनसे फायदा अुठा रहे हैं। कौमी अैक्यके बारेमें मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया है, और कर रहा हूं। भले ही मुझे सफलता न भी मिली हो, मगर मेरे मनमें जरा भी शक नहीं कि मेरा प्रयत्न ठीक दिशामें चल रहा है और अन्तमें यह हमें मंजिल पर जरूर पहुंचायेगा।

प्र० — आपको बीदरकी घटनासे बहुत दर्द हुआ है। जिनका नुकसान हुआ है अुनके लिअे आप न्यायकी मांग करते हैं। और आप चाहते हैं कि हैदराबादसे बाहर रहनेवाले मुसलमान अुन्हें न्याय दिलायें। अगर मुसलमानोंके साथ बुरा सलूक हो, जैसा कि बिहारमें हुआ, तब भी आपको अितना ही दर्द होगा?

अु० — मैं नहीं जानता कि यहां बिहारकी कौनसी घटनाकी तरफ अिशारा है। मैं यहां अितना ही कह सकता हूं कि मेरे पास मुसलमानों पर हिन्दुओंकी ज्यादतीका अेक भी अैसा किस्सा नहीं आया, जिसकी मैंने पूरी तरह जांच-पड़ताल न करवाअी हो। खिलाफतके दिनोंसे मैं हमेशा अैसा करता आया हूं। मुझे हमेशा सत्यको ढूंढ़ निकालनेमें, या जिन पर ज्यादती हुअी हो अुन लोगोंको सन्तोष देनेमें भले ही सफलता न हुअी हो, पर मैंने अिसीके लिअे पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। बिहारके विषयमें जो अिलजाम लगाया गया है वह अितना अस्पष्ट है कि अुस बारेमें अिससे ज्यादा खुलासा मैं नहीं दे सकता। अगर कोअी खास मिसाल मेरे सामने रखी जाये, तो मैं कह सकूंगा कि अुसके बारेमें मैंने क्या किया था। मगर घड़ी भरके लिअे मान लिया जाय कि मैंने न्याय देनेके अपने धर्म-पालनमें चूक की, या मुझे मुसलमानों पर हिन्दुओंके अन्याय करनेसे अुतना दर्द नहीं होता जितना कि हिन्दुओं

पर मुसलमानोंके अन्याय करनेसे, तो क्या अिस बिना पर बीदरके बारेमें रियासत बेदरकारी बता सकती है? मैं तो कह चुका हूं कि आज तक जितने भी हिन्दू-मुस्लिम फसाद हुअे हैं, अुन सबमें बीदरसे टक्कर खानेवाली अेक भी मिसाल मुझे नहीं मिलती है। मेरी मांग तो अितनी ही है कि अेक अैसी अदालतके द्वारा पूरा न्याय दिया जाये, जिसकी तटस्थताको सब लोग स्वीकार करते हों। जिन लोगोंका नुकसान हुआ है, अुन्हें हरजाना मिले। बीदरके बारेमें मैं जो मांगता हूं वह अैसी सब घटनाओंके लिअे भी है।

कोअी अुलझन नहीं

प्र० — हिन्दुस्तानकी परिस्थितिके बारेमें अब भी जनताके मनमें काफी अुलझन है। अिसे कैसे दूर किया जा सकता है?

अु० — अुलझन तो तभी दूर हो जानी चाहिये थी, जब कांग्रेसी मंत्रियोंने अिस्तीफा दिया। वे जनताके चुने हुअे प्रतिनिधि थे। आश्चर्य-जनक मेहनत और काबिलियतके साथ वे अपने काममें जुट गये थे, जिसके लिअे गवर्नरोंने भी अुनकी मुक्तकंठसे तारीफ की। न अुन्होंने खुद आराम लिया, न अपने मातहतोंको लेने दिया। जनताकी हालत सुधारनेके लिअे अुन्होंने अपने सामने निश्चित कार्यक्रम रखा था। आफिस छोड़ते वक्त अुन्हें काफी दुःख हुआ होगा। लेकिन यह अनुभव करके अुन्हें ताज्जुब हुआ कि जिस प्रांतीय स्वराज्यको सर सेम्युअल होरने अूंची आवाजसे सही और मुकम्मिल बतलाया था, वह क्षणभरमें मिट्टीमें मिल गया। लोकप्रिय मंत्रियोंकी स्थिति केवल रजिस्टरी कारकुनोंकी जैसी हो गअी, जिनका काम यही रह गया कि लड़ाअीके मामलेमें वे केन्द्रीय सरकारकी अिच्छाओं पर अमल करें। अिस महत्त्व-पूर्ण मसले पर अुनके साथ जाब्ते या गैरजाब्तेसे कोअी सलाह-मशवरा नहीं किया गया। अिस्तीफा तो फिर लाजिमी था ही। यह अुनकी कार्रवाअी अपनी हद तक मुकम्मिल थी, पर अुसका महत्त्व जितना महसूस होना चाहिये था अुतना नहीं हुआ। क्योंकि कांग्रेस अहिंसाको अपना चुकी है।

कांग्रेस जिम्मेदार नहीं

प्र० — बहुतसे लोगोंका यह विश्वास है कि कांग्रेसने ही बंटवारेकी तजवीजके बारेमें मुस्लिम लीगको अुत्तेजित किया है। क्या यह सही बात है?

अु० — मैं अैसा नहीं मानता। लेकिन अगर किया हो, तो भी अुससे निश्चित लाभ हुआ है। यह अच्छा हुआ कि जो भीतर था वह बाहर निकल आया। अब मसलेसे पेश आना ज्यादा आसान होगा। वह अपने आप ही सुलझ जायेगा। अेक निश्चित लाभ तो यह है कि राष्ट्रीय मुसलमान अपने फर्जके बारेमें जाग्रत हो गये हैं।

सेवाग्राम, ६–५–'४०

हरिजनसेवक, ११–५–'४०

१४३

हिन्दी-पाठकोंसे

जबसे मैंने 'हरिजनबंधु'में गुजराती लिखना शुरू किया है, तबसे भले मीठे लफ्जोंमें सही, लेकिन पाठकोंकी तरफसे शिकायतें आ रही हैं कि मैंने गुजरातीका पक्षपात किया है। मैंने अिस शिकायतका अुत्तर तो दिया, मगर पाठकोंको अुससे संतोष नहीं है। अिसलिअे वियोगीजी लिखते हैं कि कुछ-न-कुछ तो 'हरिजनसेवक'के लिअे ही मुझे लिखना चाहिये। अिस बारेमें मुझे समझानेकी आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि राष्ट्रभाषामें लिखना मुझे प्रिय है। अिसलिअे अितना ही कहूं कि मैं कोशिश करूंगा।

कांग्रेसने राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीको माना है। हिन्दुस्तानी वह भाषा है जो अुत्तरमें हिन्दू-मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या अुर्दू लिपिमें लिखते हैं। मेरी कोशिश अैसी हिन्दुस्तानीमें लिखनेकी रहेगी।

हरिजनसेवक, २४–८–'४०

१४४

प्रश्न-पिटारी

जीवन-निर्वाह

प्र० — आपने अेक बार 'हरिजन' में लिखा था कि गांवमें ग्रामवासियोंके अन्दर आपसमें सूत कतवाकर खरीदनेमें जीवन-निर्वाह मजदूरीका सवाल नहीं आता और चरखा-संघ असमें हस्तक्षेप न करे। परन्तु क्या अैसा खादीधारी कांग्रेसके नियमानुसार प्रमाणित खादीधारी होकर प्रतिनिधि बन सकता है?

गांवमें ग्रामसेवक अिस पर क्या करेगा? वह तो जीवन-निर्वाह मजदूरीका प्रचार करता है और गांवमें कअी लोग चरखा-संघकी खादी खरीदते हैं। परन्तु अैसे बहुतसे हैं जिनके लिअे जीवन-निर्वाह मजदूरी देकर खादी पहनना संभव नहीं है और साथ-साथ कत्तिनको भी बेकारीसे रिहाअी मिलती है और गांवमें खादी स्थायी-सी बन जाती है। ग्रामसेवक अिसे प्रोत्साहित करेगा क्या? अिस पर आप अपनी सविस्तार राय जाहिर करें।

अु० — अेक बात याद रखनेसे अैसे प्रश्न पैदा नहीं हो सकते। वाक्यका अर्थ भी अैसा न किया जाय, जिससे वक्ताका हेतु निष्फल हो जाय। अिस न्यायसे दोनों प्रश्न देखें। जिधर मजदूरी दी नहीं जाती और अपने आप ही कोअी कात लेते हैं अुनको प्रतिबंध नहीं होना चाहिये। हां, अितना आवश्यक है कि कोअी स्वावलम्बनका बहाना निकालकर खादीके नियमका भंग न करें।

जो ग्रामसेवक है अुसे भी वही नियम लागू होता है। आपके प्रश्नमें अेक कठिन वस्तु है सही। कत्तिनको काम चाहिये। जीवन-निर्वाह मजदूरी अुसे नहीं मिल सकती है। सेवक भी अितनी मजदूरी देकर निजी कामके लिअे खादी नहीं पहन सकता। अैसी हालतमें खादी तो वह अवश्य बनवावे, कत्तिनोंको काम भी दे, लेकिन वह कांग्रेसका सदस्य न बने। बाहर रहकर कांग्रेसकी सेवा करे। बाहर रहनेवाले बाज वक्त ज्यादा सेवा करते हैं और लालचसे मुक्त रहते

हैं। अिस तरह नियमके बाहर जो खादी बने, अुसे देहातके बाहर नहीं ले जाना चाहिये। खादीका अुपयोग अुसी देहातमें हो जाना चाहिये। अगर अुसे बाजारमें निकालें, तो नियमका भंग होगा और खादीको धक्का लगेगा। कत्तिनोंकी मजदूरी बढ़ाकर चरखा-संघ बड़ी कठिनाअियोंके बीचमें से अपना रास्ता निकाल रहा है। कहीं भी बगैर मांगके अेकाअेक हजारों मजदूरोंकी मजदूरी अेक या दो पैसेसे आठ या बारह पैसे की गअी है, अैसा मैंने नहीं सुना है।

चरखा-संघके मुलाजिम

भिवानी कांग्रेस कमेटीके मंत्री पूछते हैं :

प्र० — जो सज्जन चरखा-संघके खादी-आश्रममें मुलाजिम हैं, क्या अुनके लिअे कोअी हिदायत आपकी तरफसे अैसी है कि वे सत्याग्रहके फारम पर दस्तखत न करें? बाकी तमाम नियम सत्याग्रहियोंके वे सज्जन पूरे करते हैं, सिर्फ वे चरखा-संघकी अिजाजतके बिना जेल नहीं जा सकते, अिसलिअे सत्याग्रहके फारम पर दस्तखत नहीं कर सकते। क्या वे कांग्रेस वर्किंग कमेटीके मेंबर रह सकते हैं या अुनको अलग हो जाना चाहिये?

अु० — चरखा-संघका नियम जैसा कि आप पूछते हैं, अैसा ही है। मुलाजिम दो काम अेकसाथ नहीं कर सकते। चरखा-संघका काम भी कांग्रेसका ही है। चरखा-संघका काम बिगाड़कर कोअी मुलाजिम जेल नहीं जा सकता। अिसलिअे जैसा कि आप लिखते हैं अैसा नियम है। जाहिर है कि यदि अैसा नियम योग्य है, तो कोअी मुलाजिम कांग्रेस कमेटीमें नहीं रह सकते। क्योंकि कमेटी गिरफ्तार हो सकती है और कमेटी चाहे तो अुस सदस्यको हुक्म कर सकती है कि वह जेल जाये।

अप्रमाणित खादी

वही मंत्री महोदय यह भी पूछते हैं :

प्र० — कांग्रेस कमेटीकी वर्किंग-कमेटीके मेम्बर अप्रमाणित खादी बेचते हैं, लेकिन वे कताअी-बुनाअीकी मजदूरी चरखा-संघके मुताबिक

देकर खद्दर बनवाते हैं। सिर्फ अुनके पास प्रमाणपत्र नहीं है। क्या कांग्रेस वर्किंग कमेटीके मेम्बर रहते हुअे अैसा करना कांग्रेस-शासनके अन्दर है या अुनको अलग हो जाना चाहिये?

अु० — मेरा अभिप्राय है कि वह कांग्रेस कमेटीके सदस्य नहीं हो सकते। यदि यह सही है कि वह सज्जन मजदूरी नियमके मुताबिक देते हैं, तो क्या वजह है कि वह चरखा-संघसे प्रमाणपत्र नहीं लेते?

नास्तिक आस्तिक कैसे बने?

प्र० — नास्तिकवादीका अीश्वर और धर्मके प्रति विश्वास कैसे बैठाया जाय?

अु० — अिसका अेक ही अुपाय है। अीश्वरभक्त अपनी पवित्रता और अपने कर्मोंके प्रभावसे नास्तिक भाअी-बहनोंको आस्तिक बना सकता है। यह काम बहससे नहीं हो सकता। अगर अैसा हो सकता तो जगतमें अेक भी नास्तिक न रहता, क्योंकि अीश्वरके अस्तित्व पर अेक नहीं अनेक पुस्तकें लिखी गअी हैं। अिसलिअे आज अेक भी नास्तिक नहीं होना चाहिये। लेकिन देखते हैं अुससे अुलटा। पुस्तकें भी बढ़ती रहती हैं और नास्तिकोंकी संख्या भी बढ़ती चली जाती है। हकीकतमें जो नास्तिक माने जाते हैं या अपनेको मनवाते हैं वे नास्तिक नहीं हैं और जो आस्तिक माने जाते हैं वे आस्तिक नहीं हैं। नास्तिक कहते हैं, "अगर तुम आस्तिक हो तो हम नास्तिक हैं।" अैसा कहना ठीक भी है, क्योंकि अपनेको आस्तिक माननेवाले सब सचमुच आस्तिक नहीं होते। अीश्वरका नाम या तो रूढ़िवश होकर लेते हैं या जगतको धोखा देनेके लिअे। अैसे लोगोंका प्रभाव नास्तिकों पर कैसे पड़ सकता है? अिसलिअे आस्तिक विश्वास रखें कि यदि वे सच्चे हैं, तो अुनके नजदीक नास्तिक नहीं होंगे। सारे जगतकी वे फिक्र न करें। अगर कोअी नास्तिक जगतमें हैं तो वे भी अीश्वरकी दयासे होते हैं न? अीश्वर चाहता तो जगतमें कोअी नास्तिक होता ही नहीं। कहा गया है कि अीश्वरका नाम लेनेवाले आस्तिक नहीं, परन्तु अीश्वरके काम करनेवाले आस्तिक हैं।

क्या निष्फल होगी ?

प्र० — आप कहते हैं कि आज कांग्रेसमें पूरी अहिंसक शक्ति नहीं है। तो अगर कांग्रेस आज सत्याग्रहकी हलचल शुरू करे, तो असे निष्फल ही होना है न ?

अु० — कांग्रेसकी जैसी लौकिक संस्था कभी पूर्णतया अहिंसक नहीं बन सकती, क्योंकि सब सदस्य अेक समान अहिंसक नहीं हो सकते। मगर कांग्रेसके पास पूर्ण अहिंसाको पहचाननेवाले और पूर्ण अहिंसाका पालन करनेवाले सदस्य हों, तो अुनकी सरदारीके नीचे कांग्रेस अवश्य सफल सत्याग्रह कर सकती है। कांग्रेसने आज तक तो अैसा करके दिखा भी दिया है।

सेवाग्राम, २६–८–'४०

हरिजनसेवक, ३१–८–'४०

१४५

पाठकोंसे

जब तय हुआ कि 'हरिजनसेवक' में भी मुझे लिखना है, तो मैंने सोचा कि 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु' और 'हरिजनसेवक' तीनों अेक ही जगह छपनेसे मुझे सुभीता होगा। श्री वियोगी हरिने भी यह सूचना पसंद की। कअी महीनोंसे 'हरिजनसेवक' के बारेमें अुनका भार हलका करनेकी बात चल रही थी। अुनका प्रधान याने अेक ही कार्य हरिजन-निवासको हरिजनोंका आदर्श शिक्षालय बनाना है। अुनको अिस दिशामें काफी सफलता भी मिली। 'हरिजनसेवक' का भार अुन पर खासा पड़ता था। अुसे कम करनेकी कोशिश चल रही थी। अुसमें कुछ सफलता भी मिली थी। अब 'हरिजनसेवक' शाया करनेका स्थान बदलनेसे वह और भी कम होगा। अुनको 'हरिजनसेवक' के कामसे सर्वथा मुक्ति तो नहीं मिल सकती है। दूसरे भी संपादक वे ही रहेंगे। अुससे भी मुक्ति देनेकी मैंने कोशिश

तो की। अच्छा हुआ मुझे सफलता न मिली। 'हरिजनसेवक' वियोगीजीकी कृति है। अुनके ही अुत्साहसे चलता था। ग्राहक भी वे ही बनाते थे। अिसलिअे अुचित है कि 'हरिजनसेवक' से अुनका सम्बन्ध कुछ न कुछ बना रहे। अुनके लेख तो 'हरिजनसेवक' में आते ही रहेंगे।

'हरिजनसेवक' की भाषा अवश्य बदलेगी। मेरा हिन्दुस्तानीका ज्ञान बहुत कच्चा है, अुसका अभ्यास कुछ भी नहीं। बोलते सुनते जो सीख सका वही है। अिसलिअे व्याकरणके दोष मेरी भाषामें रह जायेंगे। अैसे दूसरे भी साथी हैं जो लिखते रहेंगे। अिस त्रुटिको पाठक लोग अुदारतासे बरदाश्त करेंगे, अैसी आशा रखता हूं। अिसका अर्थ यह होता है कि 'हरिजनसेवक' कोअी भाषाकी दृष्टिसे नहीं लेंगे। जो लेंगे या पढ़ेंगे वे अुसमें जो विचार आयेंगे अुन्हें जाननेके लिअे। पाठकोंके आग्रहके वश होकर मैंने 'हरिजनसेवक' में भी लिखनेका निश्चय किया है। गुजराती लेखोंके अनुवादसे हिन्दी-हिन्दुस्तानी बोलनेवाली जनता संतुष्ट रहेगी, अैसा मैंने मान लिया था। लेकिन अितनेसे अुसकी तृप्ति नही हुअी। अेक बात है सही। जब अनुवाद दिल्लीमें होता था, अुस पर मेरा अंकुश नहीं रहता था। अब निश्चय यह हुआ है कि अनुवाद भी मेरी देखभालके नीचे होंगे। अिसलिअे जो अनर्थ कअी बार 'हरिजनसेवक' में रह जाते थे, वे अब नहीं रहेंगे या नहीं-से हो जायेंगे।

सेवाग्राम, २–९–'४०
हरिजनसेवक, ७–९–'४०

१४६

प्रश्न-पिटारी

खादी और पवित्रता

प्र० — मेरे पास खादी तो है, लेकिन मेरा हृदय पवित्र नहीं है। अिस हालतमें खादी कैसे पहनी जाय?

अु० — आप अखबार नहीं पढ़ते हैं क्या? मैंने हजारों बार लिखा है, कहा है कि खादी लिबासके रूपमें तो सबके लिअे है। शराबी, व्यभिचारी, चोर, डाकू सब पहनें। लेकिन खादीमें अेक अधिक गुण माना गया है। वह हमारी स्वतंत्रताकी निशानी है। अिसलिअे जो स्वतंत्रता हासिल करना चाहें अुनको तो खादी पहनना ही है। अुनके लिअे आप जो कुछ कहते हैं वह सही है; क्योंकि सत्याग्रहीका हृदय पवित्र होना चाहिये। वह शराब नहीं पीयेगा, न व्यभिचारी होगा और अुसके लिअे खादीका लिबास फर्ज है।

अेक लक्षण

प्र० — आप कहते हैं कि अहिंसकको सब कुछ खो देनेके लिअे तैयार रहना चाहिये, चूंकि अुनका सम्बन्ध आत्मासे नहीं है, किन्तु शरीरसे है। यदि हम सब कुछ खोनेको हर घड़ी तैयार रहें, तो फिर हिंसक या अहिंसक युद्धकी आवश्यकता ही क्या? युद्ध तो अिसीलिअे करना पड़ता है न कि हम अपने धन-जनको आक्रमणकारीके हमलेसे बचायें?

साथ ही आप यह भी कहते हैं कि यदि अपने धन-जनकी हिफाजतकी अिच्छा हमारे मनमें होगी, तो हमारी अहिंसा अशुद्ध हो जायगी। अिन दोनोंका मेल कैसे होगा?

अु० — आपका प्रश्न बहुत अच्छा है। मैंने जो लिखा है वह अहिंसक सेनाके लिअे है। हिन्दुस्तानको ही लीजिये। करोड़ों लोग

अहिंसक सेनामें भर्ती नहीं होंगे। लेकिन अुनकी रक्षाके लिअे जो सत्याग्रही बनेंगे, अुनको सर्वस्वका मोह छोड़ना होगा।

धर्म-संकट

प्र० — मैं अेक बार स्टेशनसे दूर रेलवेके नजदीकसे जा रहा था। मैंने अेक नवयुवकको ठीक रेलवेके पास खड़ा हुआ देखा। मुझे शक आया कि वह रेलगाड़ीसे कटकर आत्म-हत्या करना चाहता है। अिसलिअे मैंने अुसे वहांसे हट जानेको कहा। वह थोड़े ही मेरी माननेवाला था? मैंने बहुत मिन्नत की। लेकिन अुसने अेक न सुनी। मैंने अुसकी जान बचानेका निश्चय किया। मैंने अुससे लड़ाअी की। अुसे कुछ खून निकला। मुझे थकान मालूम होने लगी। लेकिन रेलगाड़ीके चले जाने तक मैंने अुसको पकड़े रखा। अगर मैं नहीं लड़ता तो वह मरनेवाला था ही। मैंने क्या किया — हिंसा या अहिंसा? जब मैंने लड़ाअी शुरू की, तब मुझे कुछ खयाल नहीं था कि मैं हिंसा कर रहा हूं या अहिंसा। और अब भी कुछ निर्णय नहीं कर सकता हूं।

अु० — अच्छा ही हुआ कि आपने अुस समय हिंसा-अहिंसाका खयाल नहीं किया। जगत अिस तरह नहीं चलता है। अभ्याससे हमारेमें अेक आदत हो जाती है। मुझे तो कुछ शक नहीं कि आपका वह कार्य अहिंसक और बहादुरीका था। आपने अुस नवयुवककी जान बचाअी, अिसलिअे आप अुसके सच्चे दोस्त सिद्ध हुअे। जैसे अेक सर्जन अपने मरीजकी जान बचानेके लिअे मरीजको दर्द होते हुअे भी चीर-फाड़ करके अुसे बचाता है, अैसा आपने किया। धन्यवाद।

सेवाग्राम, २–९–'४०

हरिजनसेवक, ७–९–'४०

१४७

प्रश्न-पिटारी

देशीराज्योंमें

प्र० — क्या देशीराज्योंमें कांग्रेसके सदस्य ही न बनाये जायं?

अु० — यह प्रश्न बार-बार पूछा जाता है। मैंने तो शुरूसे ही राय दी है कि देशीराज्योंमें कांग्रसके सदस्य बनाना हर तरहसे अनुचित है। अैसा करनेमें घर्षणकी संभावना रहती है और संतोषकारक संगठन भी नहीं हो पाता। देशीराज्यवाले जो कांग्रेसके सदस्य बनना चाहते हैं, वे ब्रिटिश हिन्दुस्तानमें अपने नजदीककी कांग्रेस कमेटीके सदस्य बनें। अच्छा तो यह होगा कि देशीराज्यवाले अपने ही राज्यमें बन सके अितना काम करें। वह तो ज्यादातर रचनात्मक ही हो सकता है। अुसीके मारफत सच्ची जागृति और देशभावना पैदा हो सकती है। कांग्रेसके सदस्य बननेके बदले कांग्रेसी वृत्तिवाले और कांग्रेसी भावनावाले बननेसे ज्यादा और सच्चा काम हो सकता है, अैसा मेरा मत है।

चरखा-संघके कार्यकर्ता

प्र० — यदि बनाये जायं तो चरखा-संघके अथवा प्रजामण्डलके कार्यकर्ता अिस कामको न करें? सहयोग भी न दें?

अु० — दोनों संस्थाअें अपने-अपने क्षेत्रसे बाहर न जायं। चरखा-संघको तो मना है ही। चरखा-संघ कांग्रेसकी कृति है, लेकिन अुसका राज्य-प्रकरणसे किसी प्रकारका संबंध नहीं। यह पारमार्थिक और आर्थिक संस्था है। अैसी संस्थाके मारफत दो काम नहीं लिये जा सकते। प्रजा-मण्डलके लिअे दूसरी नीति है। परिणाम अेक ही है। प्रजामण्डल कठिनाअियोंका सामना करके अपना काम करते हैं। अुन पर कांग्रेसके सदस्य बनानेका बोझ डालनेमें मैं बड़ा खतरा देखता हूं।

जब सदस्य न बनायें तो सहयोग कैसे दें? अगर सहयोगका अर्थ मानसिक सहानुभूति किया जाय तो वह तो मिलेगा ही। तीनों संस्थाओंके कार्यक्षेत्र अंकित हैं। अपने सच्चे कामसे ही वे अेक-दूसरेकी सहायता कर सकते हैं। फिर यह है भी स्वाभाविक। अेक ही भावना तीनोंको प्रेरित करती है। अगर कांग्रेस राज्य-प्रकरणमें सफल हो तो चरखा-संघ और प्रजामण्डलोंको अुस सफलतासे लाभ होगा ही। अिसीलिअे चरखा-संघकी सफलतासे कांग्रेसकी सेवा होती है। अेक भी प्रजामण्डल अपने कार्यमें सफल हो तो अितनी हद तक कांग्रेसको अवश्य बल मिलेगा। लेकिन अपने क्षेत्रके बाहर जायेंगे तो नुकसान होना संभव है।

सेवाग्राम, ९–९–'४०

हरिजनसेवक, १४–९–'४०

१४८

पाठकोंसे

'हरिजनसेवक' का प्रथम अंक जो पूनासे प्रकाशित हुआ, अुसमें काफी छपाअीकी गलतियां रह गअी हैं। पाठकगण क्षमा करेंगे। पूनामें हिन्दुस्तानी जाननेवाले कम मिलते हैं। यूं तो गुजराती जाननेवाले भी कम ही हैं। 'हरिजन' किस हालतमें शुरू हुआ यह पाठक जानते हैं। 'हरिजनबंधु' पूनासे प्रकाशित करनेमें बहुत आपत्ति न आअी, क्योंकि मेरे पास गुजराती काम करनेवाले साथी मौजूद थे। हिन्दुस्तानी काम करनेवाले जगह जगह बिखरे हुअे हैं। लेकिन मैं आशा करता हूं कि 'हरिजनसेवक' की छपाअी जल्दी ठीक हो जायगी और गलतियां कम होती जायंगी। 'हरिजनसेवक' की भाषामें रस लेनेवाले अगर अपनी टीका मुझे भेजेंगे तो अुनका अुपकार होगा।

संपादक रहना वियोगीजीने तारसे स्वीकार तो कर लिया था, लेकिन वे लिखते हैं कि अुनको मुक्ति मिलनेसे ज्यादा संतोष होगा।

बिना जिम्मेदारीके संपादक रहनेमें वे नैतिक दोष मानते हैं। वे अैसा भी कहते हैं कि अुन्हें लिखनेकी फुरसत भी कम मिलेगी। अुनका दृष्टि-बिन्दु मैं समझता हूं। अुसकी मेरे नजदीक कीमत भी है। अिसलिअे अुनको मुक्ति दी है। प्यारेलालने मेरी बात मान ली और संपादक होना स्वीकार किया। अुनका स्वभाव जानते हुअे मैं अुन्हें मुक्त रखना चाहता था। लेकिन मेरे निकटवर्ती साथियोंमें से वही संपादक-पद ग्रहण करने योग्य हैं। वह अुर्दू अच्छी तरह जानते हैं, हिन्दीका भी अभ्यास है। अिसलिअे हिन्दुस्तानी संपादककी जिम्मेदारी अुठानेकी अुनमें शक्ति है। वे 'यंग अिंडिया' के संपादक रह चुके हैं। यह सब होते हुअे भी पाठकोंकी अुदारताकी और टीकाके रूपमें अुनकी मददकी मुझे जरूरत रहेगी।

मुख्य वस्तु हेतु-सिद्धि है। 'हरिजनसेवक' प्रकाशित करनेका हेतु तो यही है कि हिन्दुस्तानी जाननेवाली जनताके सामने सत्याग्रहके सब पहलू रखे जायें। सत्याग्रहका अर्थ सिर्फ सिविल-नाफरमानी नहीं। अुससे कअी गुना महत्त्वकी वस्तु तरह तरहका रचनात्मक कार्यक्रम है। अुसके सिवा सिविल-नाफरमानी कोअी चीज नहीं है। यह तेरह अंगोंवाला कार्यक्रम क्या है, कैसे चलाया जा सकता है, अुसकी प्रगति कैसे हो रही है, यह सब 'हरिजनसेवक' द्वारा बतानेकी चेष्टा की जायगी। पहले भी कार्य तो वही था, लेकिन मेरी सीधी देखभालमें नहीं होता था। अब यथासंभव मेरी देखभाल रहेगी। 'हरिजनसेवक' का मूल अुद्देश्य — हरिजनसेवा — कभी भूला नहीं जायगा। क्योंकि छुआ-छूतका भूत जब तक हममें भरा है, तब तक स्वराज आकाश-पुष्प-सा रहेगा।

अब पाठक समझेंगे कि भाषाको मैंने क्यों गौण-पद दिया है। भाषाकी कोअी स्वतंत्र कीमत नहीं है। भाषा न शब्दजाल है, न शब्दाडम्बर। विचारोंको प्रकट करनेका अेक बड़ा साधन अवश्य है। विचारमें कुछ शक्ति होगी, कुछ कहने लायक बात होगी, या लेखकके पास पाठकोंके लिअे कुछ अुपयोगी सूचना या संदेशा होगा, तो भाषा कैसी भी हो पाठकके हृदयमें वह अवश्य प्रवेश करेगी।

तेरह प्रकारका कार्यक्रम

अुपरोक्त कार्यक्रम नीचे दिया जाता है:

(१) हिन्दू-मुस्लिम या कौमी अेकता
(२) अस्पृश्यता-निवारण
(३) मादक पदार्थोंका त्याग
(४) चरखा व खादी
(५) दूसरे ग्रामोद्योग
(६) ग्राम-सफाअी
(७) नअी या बुनियादी तालीम
(८) प्रौढ़-शिक्षण
(९) स्त्री-जातिकी अुन्नति
(१०) आरोग्य और स्वच्छताकी तालीम
(११) राष्ट्रभाषा (हिन्दुस्तानी) का प्रचार
(१२) स्वभाषा या मातृभाषाका प्रेम
(१३) आर्थिक समानता

सेवाग्राम, ८–९–'४०

हरिजनसेवक, १४–९–'४०

१४९

सत्याग्रहमें अुपवासका स्थान

मैं देखता हूं कि सत्याग्रहके सिलसिलेमें मेरे अनशनकी बात अखबारोंमें आ चुकी है। भारतभूषण मालवीयजी महाराज मुझ पर बहुत प्रेम करते हैं। मेरे स्वास्थ्य, मेरी राजनीति और मेरे बाह्याचार और अंतराचारके बारेमें हमेशा फिकर करते रहते हैं। हमारे बीच जो मत-भेद होता है, अुसे हम दोनों सहन कर लेते हैं। अुससे हमारे घनिष्ठ संबंधमें तनिक भी फर्क नहीं आता। सेवाग्राम छोड़नेके अेक दिन पहले ही अुनका खत मुझे मिला था। अुसमें वर्तमान दशामें मेरा कर्तव्य क्या होना चाहिये, अुस बारेमें लिखते हुअे अुनके अन्तिम शब्द ये थे : "अनशन तो किसी हालतमें न किया जाय।"

मुझे कबूल करना चाहिये कि अनशनकी अुनकी बातमें अेक अंश तक सत्य है। मैंने मित्रोंसे कहा था कि मेरे जीवनमें शायद अेक और अनशन है और वह शीघ्र भी आ सकता है। बात यह है कि जहां तक मुझे स्मरण है मेरा अेक भी जाहिर अुपवास खास अिरादेसे नहीं हुआ है। वह ओश्वरकी दी हुओ बख्शिश थी। सब अुपवासोंका परिणाम अच्छा ही था। जो हो, मुझे अुन अुपवासोंके बारेमें पश्चात्ताप नहीं। मुझे आशा है कि पाठक यह पढ़कर चिंतित नहीं होंगे। अगर अनशनको आना है तो आवेगा। और अिससे भला ही होनेवाला है। ओश्वरको मंजूर होगा वही होगा।

अब सत्याग्रहमें अुपवासकी मर्यादाके बारेमें दो शब्द कहूं। आज-कल सत्याग्रहके नामसे काफी अुपवास होते हैं जो जाहिरमें आये हैं। अुनमें से बहुत तो निरर्थक थे, कओी दूषित थे। अुपवास अेक प्रचंड शस्त्र है। अुसका शास्त्र है। पूर्ण शास्त्र कोओी जानता नहीं। अशास्त्रीय ढंगसे अुपवास करनेवालोंको तो हानि होती ही है, लेकिन और लोगोंको भी नुकसान पहुंच सकता है। अिसलिअे बगैर अधिकारके

किसीको अुपवास नहीं करना चाहिये। अुसी व्यक्तिके सामने अुपवास हो सकता है, जिसका अुपवासके निमित्तके साथ संबंध हो और जो अुपवासीके साथ संबंध रखता हो। अैसा अुपवास भक्त फूलसिंहजीका था। अुनका संबंध मोठवालोंके साथ अच्छा था। वहांके हरिजनोंकी सेवा अुन्होंने काफी की थी। वहांका अत्याचार प्रसिद्ध ही था। सब अुपाय न्याय पानेके लिअे हो चुके थे। अुपवासके सिवा कोअी चारा नहीं था। अुपवास सफल हुआ। लेकिन सफलता निष्फलता तो अीश्वरके अधीन है। वह यहां अप्रस्तुत है। अैसे ही मेरे सब जाहिर अुपवास थे। अुनमें से राजकोटका शिक्षाप्रद है। अुसकी काफी निन्दा हुअी थी। वह अुपवास शुरूमें सर्वथा निर्दोष और आवश्यक था। दोष बादमें आया। वह था मेरी यह मांग करना कि वाअिसरॉय दखलअन्दाजी करें। अगर मैं वह नहीं मांगता तो मुझे विश्वास है कि परिणाम अच्छा ही होता। यों भी परिणाम अच्छा ही हुआ। लेकिन क्योंकि भगवान मेरी आंख खोलना चाहता था, अुसने मुंहमें डाली हुअी रोटी छीन ली। सत्याग्रहके अभ्यासके लिअे राजकोटका अुपवास बहुत अुपयुक्त है। यदि अुपवासके बारेमें मैंने जो सिद्धान्त बताया है वह स्वीकार कर लिया जाय, तो राजकोटके अुपवासकी आवश्यकताके बारेमें शंकाको स्थान नहीं। लेकिन निर्दोष अुपवास असावधानीसे कैसे दूषित हो सकता है, यह बतानेमें राजकोटके अुपवासका महत्त्व है। अुपवासीमें स्वार्थका, रोषका, अविश्वासका, अधीरताका प्रवेश होना नहीं चाहिये। मेरे अिस अुपवासमें ये सब दोष आ गये थे, अैसा माननेमें कुछ अतिशयोक्ति नहीं होगी। अुपवास फलके लिअे था। क्योंकि अुसके छूटनेकी शर्त मरहूम ठाकुरसाहबके कुछ करने पर निर्भर थी। अिसलिअे फल-सिद्धिमें मेरा स्वार्थ था, दोष था। अन्यथा मैं वाअिसरॉयकी ओर नहीं देखता, प्रेम मुझे रोक लेता। मैं जिसको पुत्रवत् मानता हूं अुसकी शिकायत अुसके सरदारके पास क्यों करूंगा? अविश्वास तो था ही कि ठाकुरसाहब मेरे प्रेमको नहीं पहचानेंगे। और अुपवास जल्दी खतम होनेकी अधीरता मुझमें थी। अिन सब दोषोंके कारण अुपवास दूषित हुआ। राजकोटके अुपवासके परिणामोंका विचार यहां

अप्रस्तुत होनेके कारण अुसकी चर्चा मैं छोड़ देता हूं। राजकोटके अुदाहरणसे हमको -- अुपवासीको -- कैसे सावधान रहना है अुसका पता चलता है। और शुद्धतम अुपवास भी थोड़ीसी असावधानीसे दूषित कैसे हो सकता है यह हमने सीख लिया। अिसीमें से हमने पाया कि सत्याग्रही अुपवास करनेवालोंमें सत्य और अहिंसाकी मात्रा तो भरपूर होनी चाहिये। अुसके अुपरांत सत्याग्रहीमें आत्मविश्वास होना चाहिये कि भगवान अुपवास करनेकी शक्ति दे देगा और अुपवास सर्वथा निर्दोष है। जरा भी शंका हो तो अुपवास त्याज्य है। अुपवासीमें अखूट धैर्य, दृढ़ता, अेकाग्रता, शांति होने चाहिये। ये सब गुण अेकाअेक नहीं आते हैं। अिसलिअे जिसका जीवन यमनियमादिके पालनसे शुद्ध नहीं है, वह सत्याग्रही अुपवास नहीं कर सकता है।

याद रखना चाहिये कि यहां शरीर-शुद्धि और आत्मशुद्धिके अुपवासकी चर्चा नहीं की गयी है। शरीर-शुद्धिके अुपवास नैसर्गिक वैद्योंकी सलाहसे ही हो सकते हैं। आत्मशुद्धिके अुपवास महापापी भी कर सकते हैं। और अैसे अुपवासके लिअे तो हमारे यहां साहित्यका सागर भरा है। आत्मशुद्धिके अुपवासको आजकल हम भूल ही गये हैं। जो करते हैं वे देखादेखीसे अथवा रूढ़िवश होकर करते हैं। अिसलिअे अैसे अुपवाससे हम लाभ नहीं अुठा पाते। जो सत्याग्रही अुपवास करना चाहते हैं अुनके लिअे आत्मशुद्धिके अुपवासका जाती अनुभव आवश्यक समझा जाय। शारीरिक भी लाभदायी तो है। अंतमें सब अुपवासकी जड़ तो अेक ही है -- शुद्धि।

सेवाग्राम, ८-१०-'४०

हरिजनसेवक, १२-१०-'४०

१५०

पाठकोंसे

जब मैंने 'हरिजनसेवक' मौकूफ करनेका निश्चय जाहिर किया तब आशा तो यह थी कि वह अेक ही हफ्तेके लिअे मौकूफ रहेगा। आशाका आधार था वाअिसरॉय साहबसे मेरा पत्रव्यवहार। वह आधार निष्फल साबित हुआ है। अिसलिअे अभी तो 'हरिजनसेवक' मौकूफ ही रहेगा।

यह बुरा परिणाम है, अैसा माननेका कोअी कारण नहीं है। अैसा थोड़ा ही है कि जिसे हम बुरा मानते हैं वह बुरा ही है? भला बुरा मनमानी बात है। सचमुच क्या कैसा है, सो तो ओश्वर ही जानता है।

सत्याग्रह कड़ी परीक्षा है — सत्याग्रहीके लिअे और विरोधीके लिअे। अिन दोनोंमें भेद है सही। सत्याग्रही परीक्षासे अुत्तरोत्तर आत्म-शुद्धिमें और शक्तिमें आगे बढ़ता है। सत्याग्रह जैसे जोर पकड़ता है, विरोधीके दोष ज्यादा प्रकट होते हैं। अिसका प्रत्यक्ष अुदाहरण तो आज हमारी आंखोंके सामने है। मेरा अभिप्राय है कि वाअिसरॉय साहबके निर्णयसे सत्याग्रहियोंकी शुद्धि और शक्ति बढ़ी है — बढ़नी ही चाहिये। अगर यह पृथक्करण ठीक है तो अिस परिणामको अशुभ माननेका कोअी कारण नहीं।

लेकिन यह अवसर न अंग्रेजोंके गुण-दोष दिखानेका है, न परिणामके शुभ-अशुभ होनेकी तुलना करनेका। मैं तो सिर्फ 'हरिजनसेवक' मौकूफ रखनेका कारण पाठकोंको बतलाना चाहता हूं। मेरे सामने दो मार्ग थे—अेक तो सरकारके बंधनको स्वीकार करके कुंठित स्थितिमें 'हरिजन-सेवक' चलानेका और दूसरा बंधनको अस्वीकार करते हुअे 'हरिजन-सेवक' मौकूफ करनेका। सामान्य नीति तो यह है कि अकड़कर कोअी अंगुली भी मांगे तो अुसे ठुकरा देना। अिस नीतिका आधार हिंसा

है। दूसरा मार्ग है अंगुली मांगनेवालेको सारा हाथ ही दे देना। अिस नीतिका आधार अहिंसा है। हिंसक अनित्य वस्तुके संग्रह और अुसकी रक्षामें अपनी ताकत खर्च करता है और नित्य वस्तुको भूलता है अथवा गौण समझता है। अहिंसक अनित्यका त्याग करता है, या त्यागके लिअे तैयार रहता है और नित्यके लिअे मर मिटता है। अिसीका नाम सत्याग्रह है। यहां 'हरिजनसेवक' अनित्य वस्तु है, क्षणिक साधन-मात्र है। अिसलिअे अंगुली-हस्तकी नीति ग्राह्य है। सरकार कहती है प्रतिबंधमें रहकर अखबार चला सकते हो। सत्याग्रही कहता है प्रतिबंध कबूल करनेसे बेहतर यह है कि अखबार ही बन्द कर दूं। अैसा करके वाणी-स्वातंत्र्य और स्वराज्यरूपी नित्य वस्तुकी रक्षाके लिअे सत्याग्रही ज्यादा ताकत हासिल करता है। मेरे लिअे दूसरा मार्ग था ही नहीं। रचनात्मक कार्य जिसका प्रतीक है, अुसे गुमाकर तो मैं रचनात्मक कार्य नहीं चला सकता था। अुसकी कीमत अहिंसाका प्रतीक होनेमें है। अगर मैं अिस मौके पर अहिंसाका प्रचार न कर सकूं, तो मेरे लिअे अन्य वस्तु निकम्मी-सी बन जाती है।

अब देखें अंगुली-हस्त नीति कैसे काम करती है। अंगुली मांगने-वाला समझता है कि अुसके लिअे अुसे लड़ना पड़ेगा। लेकिन सत्याग्रही तो अंगुलीके बदलेमें अपना हाथ भी दे देता है। अपनी कल्पनासे बाहरकी वस्तु देखकर मांगनेवाला आश्चर्यचकित होता है, शायद क्षणभर घबराहटमें भी पड़ जाता है। अगर अैसा ही अनुभव करता रहे तो वह पिघले भी। वह पिघले या न पिघले, सत्याग्रही तो अनित्य वस्तुका त्याग करके नित्यकी रक्षाके लिअे सशक्त होता है, शुद्ध होता है, अनित्य-मात्रका त्याग करनेकी पूरी तैयारी बताता है। अिस दृष्टिसे 'हरिजनसेवक' मौकूफ करना सर्वथा अुचित प्रतीत होता है।

आशा है पाठक भी अैसा ही मानेंगे। सचमुच अगर वे अिस त्यागका रहस्य समझे हैं, तो अुन्हें 'हरिजनसेवक' के अभावमें कुछ आपत्ति नहीं होनी चाहिये। यों तो अुनके साथ जो वार्तालाप मैं प्रति सप्ताह करता था अुसके छूटनेका मुझे अवश्य दुःख है। और मैं मानता हूं

कि पाठकोंको भी होगा। लेकिन अगर त्याग धर्म है — और है ही — तो अिस धर्मके पालनमें सुख और संतोषका अनुभव होना चाहिये। पाठकगण समझें कि तेरह प्रकारका कार्यक्रम जो मैंने अुनके सामने रखा है, अुससे अधिक मैं कुछ नहीं रख सकूँगा। अुसमें अितनी वृद्धि वे करें कि जो अुनका अन्तरात्मा कहे अुससे अुलटे वे कभी न चलें, भले अुसमें अपनी देहका और सर्वस्वका नाश क्यों न हो। पाठकगण याद रखें कि वाणी और लेखनीमें जो शक्ति है, अुससे कअी गुनी अधिक शक्ति आचारमें — अमलमें है। वे मेरे आजके आचारसे और अब जो कुछ भी करूं अुससे जो ज्ञान पा सकते हैं पावें।

अब व्यावहारिक बात। पाठकोंके कुछ पैसे ‘हरिजनसेवक’ कार्यालयमें जमा हैं। जिनके हैं वे अपने पैसे पानेके अधिकारी हैं। अैसे सज्जन ‘हरिजनसेवक’ कार्यालय, पूनासे अपने पैसे मंगवा सकते हैं। छः महीनेके अन्दर अन्दर अगर ‘हरिजनसेवक’ प्रकट हो सकेगा तो जिनके पैसे जमा हैं अुनको मिलता रहेगा। छः मास तक प्रतिबंध नहीं छूटेगा तो ‘हरिजनसेवक’ हमेशाके लिअे मौकूफ किया जावेगा। बन्द करनेमें जो खर्च होगा अुसे बाद करके जो रहेगा वह जिनको चाहिये अुनको भेजा जायगा। अन्यथा सब बचत, तीनों अखबारोंकी, हरिजन-सेवक-संघको हरिजन-सेवाके लिअे भेज दी जायगी।

तब तकके लिअे वन्देमातरम्।

सेवाग्राम, २–११–’४०

हरिजनसेवक, ९–११–’४०

१५१
आश्रमकी प्रार्थना

आश्रमकी प्रार्थनाका काफी प्रचार हुआ है। अुसका विकास अपने आप होता रहा है। 'आश्रम-भजनावलि' के अनेक संस्करण निकल चुके हैं। अुसकी मांग बढ़ रही है। प्रार्थनाकी अुत्पत्ति कृत्रिम रूपसे नहीं हुअी। अुसमें जिन श्लोकों और भजनोंको स्थान प्राप्त हुआ है, अुन सबका अपना अेक अितिहास है।

भजनोंमें सभी धर्मोंको अनायास ही स्थान मिला है। मुस्लिम सूफियों और फकीरोंके भजन अुनमें हैं; गुरु नानकके और अीसाअियोंके भजन भी हैं।

आश्रममें चीनवाले रह चुके हैं, ब्रह्मदेशके साधु और लंकाके गृहस्थ भी रह चुके हैं। मुसलमान, पारसी, यहूदी, अंग्रेज वगैरा भी रहे हैं। अिसी तरह सन् १९३५ में कुछ जापानी साधु मेरे पास मगनवाड़ी (वर्धा) में आकर रहने लगे थे। अुनमें से अेक अभी-अभी तक मेरे पास ही थे। जापानके साथ लड़ाअीकी घोषणा होने पर वे गिरफ्तार कर लिये गये। रोज सुबह-शाम वे अपनी प्रार्थना, ढोलकी आवाजके साथ, चलते-फिरते किया करते थे। सेवाग्रामके वे अेक आदर्श व्यक्ति थे। आश्रमके दैनिक कार्योंमें अुत्साहपूर्वक हाथ बंटाते थे। मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी किसीके साथ अुनका झगड़ा हुआ हो। बेमतलब किसीसे बातें करते मैंने अुन्हें नहीं देखा। अुन्होंने अपने भरसक हिन्दीका अभ्यास किया। व्रत-पालनमें वे सदा जाग्रत रहे। आश्रमकी शामकी प्रार्थना अुनके नित्यजपके मंत्रसे शुरू हुआ करती थी। मंत्र था :

'नम्यो हो रेंगे क्यों'

अर्थात्, सद्धर्मके प्रवर्तक भगवान बुद्धको नमस्कार हो।

जब पुलिस अुन्हें गिरफ्तार करने आयी, तो जिस व्यवस्था, शीघ्रता और तटस्थतासे तैयारी करके वे मुझसे मिलने आये, अुसे मैं

भूल नहीं सकता। बिदाअीके समय अपने ढोलके साथ वे मेरे सामने आ खड़े हुअे, अपने प्रिय मंत्रका अुच्चार किया और बिदा चाही। मैंने सहज भावसे उन्हें कह दिया: 'आप जा रहे हैं, लेकिन आपका मंत्र आश्रमकी प्रार्थनाका अेक अविभाज्य अंग रहेगा।' तबसे अुनकी गैरहाजिरीमें आश्रमकी प्रार्थना अिसी मंत्रसे शुरू होती है। मेरे लिअे यह मंत्र साधु केशोकी पवित्रता और अेकनिष्ठाका स्मारक है। अतः अिसमें खास शक्ति है।

जिन दिनों साधु केशो यहां थे, बीबी रेहाना तैयबजी कुछ दिनोंके लिअे रहने आअीं। वह चुस्त मुसलमान हैं। मुझे पता न था कि वह कुरान-शरीफकी अच्छी जानकार है। जिस वक्त गुजरात-रत्न अब्बास तैयबजी साहबका अिन्तकाल हुआ, अुनके कमरेसे रोनेकी आवाज न अुठी, बल्कि बीबी रेहानाके कुरान-शरीफके पाठकी गूंजसे कमरा भर गया। तैयबजी साहब मरे ही कब थे? वे तो अपने कामोंके रूपमें हमेशा ही जिन्दा हैं।

जब रेहानाबहन आ गअीं, तो मैंने मजाकमें कहा: "तुम आश्रम-वालोंको मुस्लिम बनाओ, मैं तुम्हें हिन्दू बनाअूंगा।" संगीत तो अुनका अुत्कृष्ट है ही — अुनके पास सब प्रकारके भजनोंका भण्डार भी है। वह हमें नितनये भजन सुनाती थीं। कुरानकी मीठी-मीठी, अूंचे अर्थों-वाली आयतें भी सुनाया करती थीं। मैंने कहा: "कुछ आयतें यहां जो सीखना चाहें अुन्हें सिखाती जाओ।" अुन्होंने सिखाना शुरू कर दिया। फिर क्या पूछना था? सबके साथ समरस हो गअीं। भक्तोंने जो आयतें सीखीं, अुनमें सबसे मशहूर 'अल् फातेहा' है। यों, यह आयत भी प्रार्थनामें दाखिल हुअी। रेहाना बहन अपने काम पर चली गअीं, मगर अपनी याद छोड़ गअीं। अिस आयतका मतलब है:

"मैं पापात्मा शैतानसे बचनेके लिअे परमात्माकी शरणमें जाता हूं।"

"अीश्वर अेक है, वह सनातन है, निरालंब है, अज है, अद्वितीय है। वह सबको पैदा करता है, अुसे कोअी पैदा नहीं करता।

"प्रभो, तेरे ही नामसे मैं सब शुरू करता हूं। तू दयाका सागर है, तू मेहरबान है, तू सारे विश्वका सरजनहार है। मालिक है। हम तेरी ही आराधना करते हैं, तेरी मदद मांगते हैं। तू ही अन्तमें न्याय करेगा। तू हमें सीधा रास्ता दिखा — अुन लोगोंका रास्ता, जो तेरी कृपादृष्टिके पात्र बने हैं; अुनका नहीं, जो तेरी अप्रसन्नताके पात्र बने हैं और मार्ग भूले हैं।"

अेक मित्र, जो खुद चुस्त हिन्दू हैं, और मेरे हिन्दू होनेके दावेसे अिनकार भी नहीं करते, मीठा अुलाहना देते हुअे कहते हैं: "अब तो आपने आश्रममें 'कलमा' भी शुरू करा दिया। अब बाकी क्या रहा?" यह लेख अुन्हींकी अिस शंकाके अुत्तरमें लिखा गया है। साधु केशोके जापानी मंत्र और कुरानकी आयतसे मेरा और आश्रमके हिन्दुओंका हिन्दुत्व अूपर अुठा है। आश्रमके हिन्दुत्वमें सब धर्मोंके प्रति समानताका भाव रहा है। जब खानसाहब मेरे पास आते हैं, तो रोज प्रार्थनामें भावपूर्वक शरीक होते हैं। रामायणका स्वर अुन्हें मीठा लगता है। गीताका अर्थ वे ध्यानसे सुनते हैं। अुनका मुस्लिमपन अिससे कम नहीं हुआ। क्या मैं कुरानको अुतनी ही अिज्जतसे न पढ़ूं? न सुनूं? विनोबा और प्यारेलालने जेलमें स्वयं बड़ी मेहनत और मुहब्बतके साथ कुरान सीखा। अरबीका अध्ययन किया। अुन्होंने कुछ गंवाया नहीं; काफी कमाया है। हिन्दू-मुस्लिम अेकता अैसी ही कोशिशोंसे होगी। और किसी तरह कभी नहीं। रामके नाम हजारों नही, अरबों हैं, अगणित हैं। अल्लाह कहो, खुदा कहो, रहीम कहो, रहमान कहो, रज्जाक कहो, रोटी देनेवाला कहो, सब अुसीके नाम हैं।

सेवाग्राम, २–२–'४२
हरिजनसेवक, ८–२–'४२

१५२

वैयक्तिक या सामुदायिक ?

श्री जमनालालजीने गोसेवाका महान बोझ अपने सिर अुठाया है। अिस बारेमें गोसेवा-संघकी सभाके सामने अेक महत्त्वका प्रश्न यह था कि गोपालन वैयक्तिक हो या सामुदायिक ?

मैंने राय दी कि सामुदायिक हुअे बगैर गाय बच ही नहीं सकती, और अिसलिअे भैंस भी नहीं बच सकती। हरअेक किसान अपने घरमें गाय-बैल रखकर अुनका पालन भलीभांति और शास्त्रीय पद्धतिसे नहीं कर सकता।

गोवंशके ह्रासके दूसरे अनेक कारणोंमें व्यक्तिगत गोपालन भी अेक कारण हुआ है। यह बोझ वैयक्तिक किसानकी शक्तिके बिलकुल बाहर है।

मैं तो यहां तक कहता हूं कि आज संसार हरअेक काममें सामुदायिक रूपसे शक्तिका संगठन करनेकी ओर जा रहा है। अिस संगठनका नाम सहयोग है। बहुतसी बातें आजकल सहयोगसे हो रही हैं। हमारे मुल्कमें भी सहयोग आया तो है, लेकिन वह अैसे विकृत रूपमें आया है कि अुसका सही लाभ हिन्दुस्तानके गरीबोंको बिलकुल नहीं मिला।

हमारी आबादी बढ़ती जा रही है और अुसके साथ व्यक्तिगत रूपसे किसानकी जमीन कम होती जा रही है। नतीजा यह हुआ है कि प्रत्येक किसानके पास जितनी चाहिये, अुतनी जमीन नहीं है। जो है वह अुसकी अड़चनोंको बढ़ानेवाली है।

अैसा किसान अपने घरमें या खेत पर निजके गाय-बैल नहीं रख सकता। रखता है तो अपने हाथों अपनी बरबादीको न्यौता देता है। आज हिन्दुस्तानकी यही हालत है। धर्म, दया या नीतिकी परवा न करनेवाला अर्थशास्त्र तो पुकार-पुकार कर कहता है कि आज हिन्दुस्तानमें लाखों पशु मनुष्यको खा रहे हैं। क्योंकि वे अुसे कुछ लाभ

नहीं पहुंचाते, फिर भी अुन्हें खिलाना तो पड़ता ही है। अिसलिअे अुन्हें मार डालना चाहिये। लेकिन धर्म कहो, नीति कहो या दया कहो; ये हमें अिन निकम्मे पशुओंको मारनेसे रोकते हैं।

अिस हालतमें क्या किया जाय ? यही कि जितना प्रयत्न पशुओंको जिन्दा रखने और अुन्हें बोझ न बनने देनेका हो सकता है, किया जाय। अिस प्रयत्नमें सहयोगका अपना बड़ा महत्त्व है।

सहयोगसे यानी सामुदायिक पद्धतिसे पशुपालन करनेसे :

१. जगह बचेगी। किसानको अपने घरमें पशु नहीं रखने पड़ेंगे। आज तो जिस घरमें किसान रहता है, अुसीमें अुसके सारे मवेशी भी रहते हैं। अिससे हवा बिगड़ती है और घरमें गन्दगी रहती है। मनुष्य पशुके साथ अेक ही घरमें रहनेके लिअे पैदा नहीं हुआ। अैसा करनेमें न दया है, न ज्ञान है।

२. पशुओंकी वृद्धि होने पर अेक घरमें रहना असंभव हो जाता है। अिसलिअे किसान बछड़ेको बेच डालता है, और भैंसे या पाड़ेको मार डालता है, या मरनेके लिअे छोड़ देता है। यह अधमता है।

३. जब पशु बीमार होता है, तब व्यक्तिगत रूपसे किसान अुसका शास्त्रीय अिलाज नहीं करवा सकता। सहयोगसे चिकित्सा सुलभ होती है।

४. प्रत्येक किसान सांड़ नहीं रख सकता। लेकिन सहयोगके आधार पर बहुतसे पशुओंके लिअे अेक अच्छा सांड़ रखना सहल है।

५. व्यक्तिशः किसान गोचरभूमि तो ठीक, पशुओंके लिअे व्यायामकी यानी हिरने-फिरनेकी भूमि भी नहीं छोड़ सकता। किन्तु सहयोग द्वारा ये दोनों सुविधाअें आसानीसे मिल सकती हैं।

६. व्यक्तिशः किसानको घास अित्यादि पर बहुत खर्च करना होगा। सहयोग द्वारा कम खर्चमें काम चल जायगा।

७. व्यक्तिशः किसान अपना दूध आसानीसे नहीं बेच सकता। सहयोग द्वारा अुसे दाम भी अच्छे मिलेंगे और वह दूधमें पानी वगैरा मिलानेसे भी बच सकेगा।

८. व्यक्तिशः किसानके पशुओंकी परीक्षा असंभव है। किन्तु गांव भरके पशुओंकी परीक्षा आसान है। और अुनकी नस्ल-सुधारका अुपाय भी आसान है।

९. सामुदायिक या सहकारी पद्धतिके पक्षमें अितने कारण पर्याप्त होने चाहिये। सबसे बड़ी और प्रत्यक्ष दलील यह है कि वैयक्तिक पद्धतिके कारण ही हमारी और हमारे पशुओंकी दशा आज अितनी दयनीय हो अुठी है। अिसे बदलकर ही हम बच सकते हैं और पशुओंको बचा सकते हैं।

मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जब हम अपनी जमीन भी सामुदायिक पद्धतिसे जोतेंगे, तभी अुससे पूरा फायदा अुठा सकेंगे। बनिस्बत अिसके कि गांवकी खेती अलग-अलग सौ टुकड़ोंमें बंट जाय, क्या यह बेहतर नहीं कि सौ कुटुम्ब सारे गांवकी खेती सहयोगसे करें और अुसकी आमदनी आपसमें बांट लिया करें? और, जो खेतीके लिअे ठीक है, वही पशुके लिअे भी समझा जाय।

यह दूसरी बात है कि आज लोगोंको सहयोगी पद्धति पर लानेमें कठिनाअी है। कठिनाअी तो सभी सच्चे और अच्छे कामोंमें होती है। गोसेवाके सभी अंग कठिन हैं। कठिनाअियां दूर करनेसे ही सेवाका मार्ग सुगम बन सकता है। यहां तो बताना यह था कि सामुदायिक पद्धति क्या चीज है, और वह वैयक्तिकसे अितनी अच्छी क्यों है? यही नहीं, बल्कि वैयक्तिक गलत है, सामुदायिक सही है। व्यक्ति अपने स्वातंत्र्यकी रक्षा भी सहयोगको स्वीकार करके ही कर सकता है। अतअेव यहां सामुदायिक पद्धति अहिंसात्मक है, वैयक्तिक हिंसात्मक।

सेवाग्राम, ८–२–'४२
हरिजनसेवक, १५–२–'४२

१५३

अंधोंको आंख

मोगाके डॉक्टर मथुरादासके नेत्रयज्ञ मैंने कभी देखे नहीं थे। अुनकी कलाके बारेमें काफी सुना था। पिछले महीनेके अन्तमें स्वर्गीय जमनालालजीके निमंत्रणसे डॉक्टर मथुरादास अपने साथियोंको लेकर वर्धा आये थे। दो दिनमें अुन्होंने करीब तीन सौ अंधोंको आंखें दीं।

अिस यज्ञका आरंभ रेवाड़ीके भगवद्भक्ति आश्रमसे हुआ है। आश्रमके साथ जमनालालजीका संबंध होनेके कारण अिस बार अुन्होंने वर्धामें यह यज्ञ करवाया। डॉक्टर मथुरादासकी कला और परिश्रमको देख कर मेरा सिर झुक गया। वे अेक मिनटमें अेक आंखका मोतियाबिन्दु निकालते हैं। शायद ही कभी अफल होते होंगे। यह सारा काम वे मुफ्त करते हैं और हजारोंको आंख देते हैं।

डॉक्टरजीका कहना है कि नाक काटनेकी 'बीमारी' की तरह मोतियाबिन्दुकी बीमारी भी हिन्दुस्तानमें ही ज्यादा देखनेमें आती है। अिसलिअे अिस तरहके ऑपरेशन करनेवालोंमें, सारी दुनियाके अंदर, डॉक्टरजीका स्थान बहुत अूंचा है। अब तो डॉक्टरजीका अनुसरण दूसरे भी कर रहे हैं; और होना भी यही चाहिये। डॉक्टर और वैद्य तो परोपकारके पुतले होने चाहिये।

जिस तरह व्यापारी अपने व्यापारके लिअे मुस्तैद रहता है, अुसी तरह जमनालालजी भी हमेशा पारमार्थिक कामोंको अपनानेमें मुस्तैद रहा करते थे। अिसीलिअे अुन्होंने अपने कामोंमें नेत्रयज्ञकी योजनाको भी स्थान दे रखा था। परमार्थ या लोकसेवा ही आजकल अुनका पेशा बन गया था। अुनकी अिच्छा थी कि मध्यप्रांतमें अैसे नेत्रयज्ञ बार-बार हुआ करें। आशा है, अुनकी अिस अिच्छाकी पूर्ति बराबर होती रहेगी। डॉक्टर मथुरादास तो अैसे यज्ञोंके लिअे हमेशा तैयार ही रहते हैं।

कलकत्ता जाते हुअे, १७–२–'४२

हरिजनसेवक, २२–२–'४२

१५४

कड़ी परीक्षा

बाओीस वर्ष पहलेकी बात है। तीस सालका अेक नवयुवक मेरे पास आया और बोला: "मैं आपसे कुछ मांगना चाहता हूं।"

मैंने आश्चर्यके साथ कहा: "मांगो। चीज मेरे बसकी होगी तो मैं दूंगा।"

नवयुवकने कहा: "आप मुझे अपने देवदासकी तरह मानिये।"

मैंने कहा: "मान लिया! लेकिन अिसमें तुमने मांगा क्या? दरअसल तो तुमने दिया और मैंने कमाया।"

यह नवयुवक जमनालाल थे।

वह किस तरह मेरे पुत्र बनकर रहे, सो तो हिन्दुस्तानवालोंने कुछ-कुछ अपनी आंखों देखा है। जहां तक मैं जानता हूं, मैं कह सकता हूं कि अैसा पुत्र आज तक शायद किसीको नहीं मिला।

यों तो मेरे अनेक पुत्र और पुत्रियां हैं; क्योंकि वे सब पुत्र-वत् कुछ न कुछ काम करते हैं। लेकिन जमनालाल तो अपनी अिच्छासे पुत्र बने थे और अुन्होंने अपना सर्वस्व दे दिया था। मेरी अैसी अेक भी प्रवृत्ति नहीं थी, जिसमें अुन्होंने दिलसे पूरी पूरी सहायता न की हो। और वह सभी कीमती साबित हुआी, क्योंकि अुनके पास बुद्धिकी तीव्रता और व्यवहारकी चतुरता दोनोंका सुन्दर सुमेल था। धन तो कुबेरके भण्डार-सा था।

मेरे सब काम अच्छी तरह चलते हैं या नहीं, मेरा समय कोआी नष्ट तो नहीं करता, मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहता है या नहीं, मुझे आर्थिक सहायता बराबर मिलती है या नहीं, अिसकी फिक्र अुनको बराबर रहा करती थी। कार्यकर्ताओंको लाना भी अुन्हींका काम था। अब अैसा दूसरा पुत्र मैं कहांसे लाअूं? जिस रोज मरे अुसी रोज जानकीदेवीके साथ वह मेरे पास आनेवाले थे। कआी बातोंका निर्णय करना था, लेकिन भगवानको कुछ और ही मंजूर रहा। अैसे पुत्रके अुठ जानेसे बाप पंगु बनता ही है। यही हाल आज मेरा है। जो हाल

मगनलालके जानेसे हुअे थे, वे ही ओश्वरने अिस बार फिर मेरे किये हैं। अिसमें भी अुसकी कोओी छिपी कृपा ही है। वह मेरी और भी परीक्षा करना चाहता है। करे। अुत्तीर्ण होनेकी शक्ति भी वही देगा।

सेवाग्राम, १६–२–'४२
हरिजनसेवक, २२–२–'४२

१५५

प्रश्न-पिटारी

धनवान व गरीब

प्र० — धर्ममय अुपायोंसे लाखों रुपये कैसे कमाये जा सकते हैं? वणिक्-शिरोमणि स्व० श्री जमनालालजी कहा करते थे कि धन कमानेमें पाप तो होता ही है। धनिक कितना ही सज्जन क्यों न हो, वह अपने कमाये धनको अपनी असली जरूरतसे कुछ अधिक तो खर्च कर ही डालता है। यह भी पाप है। अिसलिअे ट्रस्टी बननेकी बात छोड़कर धनवान न बनने पर ही जोर क्यों न दिया जाय?

अु० — प्रश्न अच्छा है। अिससे पहले भी यह पूछा जा चुका है। जमनालालजीने जो यह कहा कि धन कमानेमें पाप तो है ही, सो ठीक वैसी ही बात है, जैसी गीतामें कही गअी है कि आरंभ-मात्र दोषपूर्ण है। मेरा यह विश्वास है कि जानबूझ कर पाप न करते हुअे भी धन कमाया जा सकता है। अुदाहरणके लिअे, अगर मुझे अपनी अेक अेकड़ जमीनमें सोनेकी कोओी खान मिल जाय, तो मैं धनवान बन जाअूंगा।

मगर धनवान न बनने पर तो मेरा जोर है ही। मैंने जो धन कमाना छोड़ दिया, अुसका मतलब ही यह है कि मैं दूसरोंसे भी छुड़ाना चाहता हूं। लेकिन जो धनकी आशा छोड़ना नहीं चाहते, अुनसे मैं क्या कहूं? अुन्हें तो मैं यही कह सकता हूं कि वे अपने धनका अुपयोग सेवाके लिअे करें। यह भी ठीक है कि धनवान अपने

भरसक कोशिश करने पर भी अक्सर अपने गरीब साथियोंके मुकाबले कुछ ज्यादा ही खर्च कर डालेगा। लेकिन यह कोअी नियम नहीं। आम तौर पर स्व० जमनालालजी मध्यम श्रेणीके अनेक लोगोंकी और अपने साथियोंकी तुलनामें कम ही खर्च करते थे। मैंने अैसे सैकड़ों धनवानोंको देखा है, जो अपने लिअे बड़े कंजूस होते हैं। वे जैसे तैसे अपना गुजारा करते हैं। यह भी नहीं कि अिसमें वे किसी तरहका गौरव अनुभव करते हों। अपने अूपर कम खर्च करनेका अुनका अेक स्वभाव ही बन जाता है।

धनवानोंके लड़कोंके बारेमें भी मुझे यही कहना है। मेरा आदर्श तो यह है कि धनवान लोग अपनी सन्तानके लिअे धनके रूपमें कुछ न छोड़ें। हां, अुनको अच्छी शिक्षा दें, रोजगार-धंधेके लिअे तैयार करें और स्वावलंबी बना दें। मगर दुःख तो यह है कि वे अैसा नहीं करते। अुनके लड़के-बाले पढ़ते तो हैं, गरीबीकी महिमा भी गाते हैं, लेकिन अपने लिअे वे अधिकसे अधिक धन चाहते हैं। अैसी हालतमें मैं अपनी व्यावहारिक बुद्धिका अुपयोग करके अुन्हें वही सलाह देता हूं, जो अुनके बसकी होती है। हम लोगोंको — जो गरीबीको पसन्द करते हैं, अुसे धर्म मानते हैं और आर्थिक समानताके हामी हैं — धनवानोंका द्वेष न करना चाहिये। यदि वे अपने धनका सदुपयोग करते हैं, तो अुससे हमें संतोष होना चाहिये। साथ ही, हमें यह श्रद्धा रखनी चाहिये कि अगर हम अपनी गरीबीमें सुखी और आनन्दित रहेंगे, तो धनवान लोग भी हमारी नकल करेंगे। सच तो यह है कि गरीबीमें धर्मका दर्शन करनेवाले और मिलने पर भी धनका त्याग करनेवाले तो अिनेगिने ही पाये जाते हैं। अिसलिअे हमें अपने जीवन द्वारा यह सिद्ध करके दिखाना होगा कि असलमें धर्मके रूपमें स्वीकार की गअी गरीबी ही सच्ची संपत्ति है।

संचालकका धर्म

प्र० — अेक संचालक अपनी संस्थाके साधारण सेवकोंसे अधिकसे अधिक त्यागकी अपेक्षा रखता है, मगर खुद अपने कमाये धनसे ही

क्यों न हो, अपने साथियोंके मुकाबले कहीं ज्यादा आरामसे रहता है। तो क्या आपकी रायमें अुसका यह व्यवहार ठीक है?

अु० — जो संचालक अपने साथियोंसे अपने त्यागसे भी अधिक त्यागकी आशा रखता है, अुसके सब प्रयत्न निष्फल होते हैं, अिसमें मुझे कोअी सन्देह नहीं। यह कथन सिर्फ अुन परोपकारी संस्थाओंके लिअे है, जिनके संचालक स्वयं त्यागी होते हैं।

वैयक्तिक गोपालनमें हिंसा क्यों?

प्र० — आपने लिखा है कि वैयक्तिक गोपालनमें हिंसा है और सामुदायिकमें अहिंसा। अिसे जरा और स्पष्ट करके समझाअिये।

अु० — यह तो अेक स्वयंसिद्ध-सी बात है कि वैयक्तिक गोपालनमें हिंसा है, क्योंकि व्यक्तिगत गोपालनकी प्रथाके कारण ही आज गाय बोझरूप बन गअी है। मैं यह कह चुका हूं कि वैयक्तिक गोपालनमें गायकी अच्छी देखभाल हो ही नहीं सकती। हर आदमी न तो अपना सांड़ रख सकता है, और न किफायतसे दूध-घी बेच सकता है। अगर हरअेक आदमी अपनी चिट्ठी अपने ही खर्च और प्रबंधसे भेजना चाहे, तो करोड़ोंके लिअे यह अेक नामुमकिन बात ही रहेगी। यही हाल गोपालनका है। सार्वजनिक डाकघरके जरिये क्या अमीर और क्या गरीब सभी समान रूपसे अपनी चिट्ठियां भेज सकते हैं। अिसी तरह अगर गोपालनको सफल होना है, तो वह सहयोगके सहारे ही सफल हो सकेगा। हर आदमी अपने आपमें गायका मालिक बनकर अकेला गोसेवा या गोपूजा नहीं कर सकता। यह कार्य तो सब मिल कर ही कर सकते हैं। मालिक तो मेरा अेक ही हो सकता है, मगर सेवा तो मेरी हजारों कर सकते हैं। अगर अेक ही आदमी मेरी सेवाका अधिकार लेकर बैठ जाय, तो सोचिये मेरी क्या दशा होगी? ठीक वही दशा आज गायकी हो रही है।

तनसे कैसे?

प्र० — आप कहते हैं कि हमें जमनालालजीकी विविध प्रवृत्तियोंकी सेवा तन, मन और धनसे करनी चाहिये। धनकी बात मैं समझता हूं। मनसे भी कुछ समझमें आता है। लेकिन तनसे कैसे?

अु० — सवाल कुछ अजीब-सा है, लेकिन जितना अजीब दिखाअी पड़ता है, दरअसल अुतना अजीब है नहीं। 'अ' का मन कहता है: चलो गोसेवा या खादीके काममें तनसे मदद करो। 'अ' के पास धन तो है नहीं। अुसे अपने गुजारेके लिअे कुछ काम-धंधा भी करना है। अैसी दशामें वह तनसे सेवा कैसे करे? जब अुसे अपने काम-धंधेसे फुरसत मिले, वह लोगोंके घर जाकर अुन्हें सदस्य बना सकता है। गोसेवा और खादी-संबंधी साहित्य बेच सकता है। प्रचारार्थ निकलनेवाली पत्रिकाओंको सेवाभावसे घर-घर पहुंचा सकता है। गायका शुद्ध घी या अहिंसक चप्पल या खादी बेच सकता है। अगर सर्वस्व देकर सेवा करना चाहता है, तो सिर्फ निर्वाह-मात्रका खर्च लेकर अिन संघोंकी सेवामें अपना सारा समय दे सकता है।

सेवाग्राम, २४–२–'४२
हरिजनसेवक, १–३–'४२

१५६
खादी-विद्यार्थी

आजके खादी-विद्यार्थीके बारेमें कुछ लिखनेके लिअे मुझे कहा गया है। मैंने कुछ-कुछ लिखा तो है ही, लेकिन अुसे जितना स्पष्ट किया जाय अुतना कम है। 'खादी-विद्या' का अर्थ केवल कताअी-धुनाअी आदि क्रियाओंका ज्ञान ही नहीं है; सिर्फ यही अर्थ होता तो अुसे खादीकी कारीगरी कहा जाता।

'खादी-विद्या' में खादी तैयार करनेके मर्मको जानना सबसे महत्त्वकी बात है। खादी भापसे चलनेवाले यंत्रोंके बजाय हाथके यंत्रोंसे ही क्यों बनाअी जाय? जो काम भाप आदिकी शक्तिकी मददसे अेक आदमी कर सकता है, वह अनेक आदमियोंसे हाथों द्वारा क्यों कराया जाय? हाथोंसे ही करना है, तो तकलीसे ही क्यों नहीं? तकलीमें भी बांसकी तकली क्यों नहीं? और जब अेक पत्थरकी

मददसे काता जा सकता है, तो बांसकी तकली भी क्यों? अैसे सवाल सहज ही पूछे जा सकते हैं। अिन सवालोंको हल करना 'खादी-विद्या' का आवश्यक अंग है। मैं यहां अिन सवालोंकी चर्चामें नहीं अुतरना चाहता। सिर्फ यही बतलाना चाहता हूं कि 'खादी-विद्या' मामूली चीज नहीं है।

आज हमारे पास अिस विद्याको सिखानेके आवश्यक साधन नहीं हैं। अिसलिअे शिक्षकोंको सिखाते-सिखाते खुद सीखना भी है, और सीखकर अपने ज्ञानको समृद्ध भी बनाना है। अिसी तरह विद्यार्थियोंको भी अपने प्रयत्नसे अपना ज्ञान बढ़ाना है। पुराने जमानेमें, यानी शास्त्रोंका निर्माण होनेसे पहले, विद्यार्थी स्वयं प्रयत्नपूर्वक अपने शिक्षकोंसे ज्ञान प्राप्त कर लिया करते थे। अपने समयके वे सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी सिद्ध हुअे हैं। आज हमारी भी कुछ अैसी ही स्थिति है।

सेवाग्राम, २२–२–'४२
हरिजनसेवक, ८–३–'४२

१५७

गृहस्थ-धर्म

अेक बहनने, जो अखण्ड कुमारिका रहना चाहती थी और जो अेक अच्छी सेविका है, योग्य साथी मिलने पर शादी कर ली है। लेकिन अब अुसे अिसका रंज होता है और वह अपनेको गिरी हुअी मानती है। मैंने अुसकी अिस भूलको सुधारकर यह गलत खयाल तो दूर कर दिया है; लेकिन मैं जानता हूं कि अैसी और भी बहुतसी बहनें हैं, जिनके लिअे अुक्त बहनको लिखे गये मेरे पत्रका सार यहां देना लाभदायी होगा।

अगर कोअी बहन अखण्ड कुमारिका रह सकती है तो अच्छा ही है; लेकिन अैसा तो लाखोंमें कुछ ही कर सकती हैं। शादी करना स्वाभाविक है। अुसमें शर्मकी कोअी बात नहीं हो सकती।

शादीको गिरी हुअी चीज माननेसे मन पर बुरा असर पड़ता है, और गिरनेके बाद अुठना प्रयत्नकी बात हो जाती है। अक्सर प्रयत्न निष्फल भी जाता है। अिससे बेहतर तो यह है कि शादीको धर्म समझा जाय और अुसमें संयमका पालन किया जाय। गृहस्थाश्रम भी चार आश्रमोंमें अेक है। बाकी तीनों अुसी पर टिके हुअे हैं। लेकिन आजकल विवाह भोग-विलासका ही साधन बन गया है, अिसलिअे अुसके परिणाम भी विपरीत हुअे हैं। और, वानप्रस्थ व संन्यास तो नाममात्रको रह गये हैं। ब्रह्मचर्याश्रम भी नहीं-सा हो गया है।

अुक्त बहनका और अुसके समान दूसरी सब बहनोंका धर्म तो यह है कि वे अपने गृहस्थ-जीवनको धर्म समझकर बितावें और अुसे ब्रह्मचर्य-जीवनसे भी अधिक सुशोभित करके दिखावें। अैसा करनेसे अुनकी सेवाशक्ति बहुत बढ़ेगी। सेवावृत्तिवाली बहन अपने लिअे सेवाभावी साथी ही पसन्द करेगी और दोनोंकी संगठित शक्तिसे देशको लाभ ही होगा।

आम तौर पर बहनोंको मातृधर्मकी शिक्षा नहीं मिलती। लेकिन अगर गृहस्थ-जीवन धर्म है, तो मातृ-जीवन भी धर्म ही है। माताका धर्म अेक कठिन धर्म है। पति-पत्नीको संयमसे रहकर संतान पैदा करनी है। माताको यह जान लेना चाहिये कि गर्भधारणके समयसे अुसका क्या-क्या कर्तव्य हो जाता है। जो स्त्री देशको तेजस्वी, आरोग्यवान और सुशिक्षित संतान भेंट करती है, वह भी सेवा ही करती है। जब बच्चे बड़े होंगे, तो वे भी सेवाके लिअे ही तैयार होंगे। अिसलिअे जिसके दिलमें सेवाकी अखण्ड जोत जलती है, वह तो हर हालतमें सेवा ही करेगी और जिस चीजसे सेवाधर्मका पालन नहीं हो पाता, अुसमें कभी न फंसेगी।

सेवाग्राम, ३-३-'४२
हरिजनसेवक, ८-३-'४२

१५८

धनुष-तकुआ

मेरा खयाल है कि रचनात्मक कार्यमें धनुष-तकुअेका बड़ा हिस्सा रहनेवाला है। आज मैं चरखेके मुकाबले धनुष-तकुअेके गुण-दोषोंकी छानबीनमें नहीं पडूंगा। मुझे विश्वास हो चुका है कि हम हजारोंकी संख्यामें चरखे तैयार नहीं कर सकते। अुन्हें तैयार करनेके लिअे काफी धन चाहिये, जो हमारे पास नहीं है। हर जगह वे तैयार भी नहीं किये जा सकते। अुन्हें अेक जगहसे दूसरी जगह ले जाना भी मुश्किल है।

अच्छा काम देनेवाली तकली भी हर जगह तैयार नहीं हो सकती। तकली पर हम तेजीके साथ कात भी नहीं सकते।

असिलिअे तमाम खादी-सेवकोंसे मेरी बिनती है कि वे धनुष-तकुअेका अभ्यास करें -- अुसे बनाना सीख लें और अुसका प्रचार करें।

नये चरखे बनाना आज मौकूफ रखा जाय। जो मौजूद हैं, वे भले जोरोंसे चलें। जो अपने-अपने स्थानोंमें चरखे बना सकते हैं या बनाना चाहते हैं, वे भले बनायें। लेकिन धनुष-तकुअेकी हवा पैदा करनेके लिअे तमाम नये कतवैयोंको धनुष-तकुआ ही दिया जाय।

हरिजनसेवक, ८-३-'४२

१५९

प्रश्न-पिटारो

भूखमरी

प्र० — ग्राम-संरक्षक दलोंके संगठनकी अपेक्षा अिस वक्त अनाजकी तंगी और महंगीका सवाल देहातोंमें ज्यादा महत्त्व रखता है। भूखकी अग्नि भाषणोंसे कैसे शांत होगी? देशमें न अितने पूंजीपति हैं, और न अुनकी त्याग-भावना ही अितनी तीव्र है कि वे अिस मामलेको सुधार सकें। कृपया मार्ग बतलाअिये।

अु० — मेरी दृष्टिसे तो संरक्षक-दलोंका भी यह काम है। कैसे भी हो, मैंने भूखमरीका अुपाय बताया तो है। आजसे अुसका अुपयोग होना चाहिये।

(१) शास्त्रीय दृष्टिसे खाना। अिससे अनाज बचता है।

(२) जो खाद्य फसल अिस ऋतुमें बोअी जा सकती है, बोना।

(३) जो जंगली भाजी अित्यादि खाद्य वस्तु बगैर प्रयत्नके अुगती है, अुसका संशोधन करना और अुपयोग करना।

(४) बेकारी मिटाना। कोअी मनुष्य बेकार न बैठे। मजदूरी न मिले तो अपने लिअे पैदा करे, जैसे कातना।

मुझे डर है कि यदि लड़ाअी शीघ्र बन्द न हुअी और जापानका प्रवेश हिन्दमें हुआ, तो खाद्य पदार्थ अेक जगहसे दूसरी जगह ले जाना मुश्किल हो जायगा; असम्भव भी हो सकता है। अिसलिअे जिस जगह आवश्यकतासे अधिक अनाज वगैरा है, अुसे आवश्यक जगह पहुंचाना चाहिये।

मैं जानता हूं कि अिन सब चीजोंका करना भी मुश्किल है, लेकिन अुसके सिवाय कोअी दूसरा अिलाज मैं नहीं पाता।

कारकून क्या करें?

प्र० — शहरोंसे देहातोंमें जानेवाले धनी लोगोंके कर्तव्य आपने कुछ बताये। लेकिन हजारों शहर छोड़नेवाले लोग अैसे हैं, जिनका

सारा जीवन कारकूनी करनमें बीता है। अुनके पास अपना धन तो है ही नहीं; और अुनमें से कअियोंके तो किसी जगह अपने बाप-दादोंका कोअी घर या गांव भी नहीं है। अुनके लिअे कुछ सलाह दीजियेगा।

अु० — सम्भव है, कारकून लोग अपने मालिकोंके साथ जायें। जो नहीं जायेंगे, अुनको देहातमें जाकर कुछ न कुछ करना होगा। अेक काम तो कातनेका है। आजसे ही तैयारी की जाय तो मौका आने पर हम तैयार रह सकेंगे।

सेवाग्राम, १६–३–'४२
हरिजनसेवक, २२–३–'४२

१६०

हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा

जिस हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका जिक्र मैंने 'हरिजनसेवक' में किया था, वह अब बनने जा रही है। अुसका कच्चा ढांचा बन गया है। वह कुछ मित्रोंके पास भेजा गया है। थोड़े ही दिनोंमें सभाकी योजना वगैरा जनताके सामने रखी जायगी। बाज लोगोंका यह खयाल बन गया है कि यह सभा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी विरोधिनी होगी। जिस सम्मेलनके साथ सन् १९१८ से मेरा सम्बन्ध बना हुआ है, अुसका विरोध में जान-बूझकर कैसे कर सकता हूं? विरोध करनेका कोअी मजबूत सबब भी तो होना चाहिये न? लेकिन वैसा कुछ है नहीं। हां, यह सही है कि अुर्दूके बारेमें मैं सम्मेलनके चन्द सदस्योंसे आगे जाता हूं। वे मानते हैं, मैं पीछे जा रहा हूं। अिसका फैसला तो वक्त ही करेगा।

यह स्पष्ट करनेके लिअे कि सम्मेलनके प्रति मेरे मनमें कोअी विरोधी भाव नहीं है, मैंने श्री पुरुषोत्तमदास टंडनसे पत्र-व्यवहार किया

था, जिसके फलस्वरूप सम्मेलनकी स्थायी समितिने नीचे लिखा निर्णय किया है :

"हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने प्रारम्भसे ही हिन्दीको राष्ट्रभाषा मानता आया और मानता है। अुर्दू हिन्दीसे अुत्पन्न अरबी-फारसी मिश्रित अेक विशेष साहित्यिक शैली है। सम्मेलन हिन्दीका प्रचार करता है। अुसका अुर्दूसे विरोध नहीं है।

"अिस समितिके विचारमें महात्मा गांधीकी प्रस्तावित हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके सदस्य हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और अुसकी अुपसमितियोंके सदस्य रह सकते हैं। किन्तु व्यावहारिक दृष्टिसे अुचित यह होगा कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके पदाधिकारी प्रस्तावित हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके पदाधिकारी न हों।"

मैं अिससे अधिक अुदारताकी आशा नहीं कर सकता था। मेरी यह राय रही है और अब भी है कि अगर पदाधिकारी अेक ही रह सकते, तो संघर्षका सवाल ही न अुठ पाता। अिसमें कुछ अुठ सकता है। लेकिन दोनों ओरसे सज्जनताका व्यवहार होने पर संघर्ष हो ही नहीं सकता। हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी सफलतासे राष्ट्रभाषाका सवाल राजनीतिके क्षेत्रसे बाहर निकल आयेगा। राजनीतिसे तो अुसका कभी सम्बन्ध होना ही न चाहिये था।

सेवाग्राम, २२–४–'४२
हरिजनसेवक, २६–४–'४२

१६१

खादी व ग्रामोद्योग

अेक प्रश्नका अुत्तर

प्र० —— आपने कअी बार कहा है कि खादी व अन्य ग्रामोद्योग अेक-दूसरेके पूरक हैं। परन्तु दोनोंके विकासकी दृष्टिसे अुनके विशेषज्ञोंका अलग-अलग मण्डल बनाकर काम करनेकी नीति आपने रखी है। नतीजा यह आया है कि खादीके कार्यकर्ता देहातमें जाने पर भी ग्रामोद्योगका काम क्वचित ही कर पाये हैं। खादी-अुत्पादनके कामसे अुन्हें अुतनी फुर्सत ही नहीं कि वे अन्य ग्रामोंमें हाथ बंटावें। अभी-अभी आपने खादी व ग्रामोद्योग दोनोंके सहकारी भण्डार चलानेकी सूचना दी है। अब समय पलटा खा रहा है। दूर-दूर माल भेजना या दूरसे माल मंगवाना दुश्वार हो गया है। क्या अिस दशामें खादी और ग्रामोद्योगके केन्द्रोंको अेक कर देना ठीक नहीं होगा? खादी-अुत्पादनमें लगे कार्यकर्ता दूर-दूर खादी बेचनेकी चिन्ता छोड़कर मर्यादित सीमाके लिअे ही खादी बनवावें और अुसी सीमाके लिअे ग्रामोद्योगोंका भी काम करें, यह क्या ज्यादा हितावह नहीं होगा?

खादी-कार्यकर्ताओंको यह कहा जाता है कि वे चरखेके साथ कारीगरोंके घरोंमें प्रवेश करें। कारीगरोंको शिक्षा दें। अुनमें ग्रामोद्योगी भावना जाग्रत करें। स्वच्छता, आरोग्य और अुनके रहन-सहनमें सुधार करें। पर संघकी नीतिके अनुसार कार्यकर्ताकी हालत तो यह है कि खादी-अुत्पादनके लेन-देन और हिसाब-किताबके कामसे अुसे फुरसत ही नहीं। रात-दिन तन-मनसे संघका काम करते हुअे यदि कारीगरोंके घरोंमें वह सुधारकका काम नहीं कर सका, तो अुसमें कार्यकर्ताको आप कितना दोष देंगे? वह क्या करे?

अु० —— प्रश्न अच्छा है। खादी-कार्यकर्ताका सारा समय यदि खादीमें ही जाता है, तो वह न दूसरे ग्रामोद्योगोंको संभाल सकेगा,

न ग्राम-सुधारको। तब तो दूसरे अुद्योगोंको देखनेवाला अन्य सेवक होगा और ग्राम-सुधारका तीसरा। मेरा कुछ खयाल है सही कि सुव्यवस्थित ग्राममें अेक ही सेवक तीनों काम देखेगा। जैसे खादी-कामके लिअे सामान बांटना, सूतका लेन-देन करना, खादी बेचना आदि। अिसमें दो घण्टेसे ज्यादा जाने नहीं चाहिये। ग्रामोद्योगोंमें अुससे भी कम। और बाकी समय तालीम और ग्राम-सुधारमें जायगा। अैसा होता नहीं है, क्योंकि खादी-सेवकोंका समय लोगोंको कातनेका काम समझानेमें और फालतू लेकिन खादीके ही कामोंमें जाता है। अैसे ही ग्रामोद्योगोंका। यह ठीक है कि अब समय आया है, जब खादीका बाजार वह जिधर पैदा होगी वहीं प्रायः होगा। और ग्रामोद्योगोंका भी अैसा ही होगा। तब तो खादी-सेवक खादीका, दूसरे ग्रामोद्योगोंका और सुधारका भी काम करेगा। आज तो अितना ही कहा जाय कि ये तीनों कार्य परस्पर-विरोधी कभी नहीं हैं। योग्यताके मुताबिक अेक-दूसरेके साथ अुन्हें मिल ही जाना है। यह काम कृत्रिमतासे नहीं होगा; स्वाभाविकतासे होगा। वस्तुस्थिति जैसी है, अुसके लिअे मैं किसीको दोष देना नहीं चाहता हूं। मेरे पास गुण-दोषकी तुलना करनेका सामान भी नहीं है। वर्तमान स्थिति स्वाभाविक-सी लगती है। हमारी बुद्धि जहां तक जा सकी है, गअी है। अुसके विकासके लिअे तो विद्यालय निकला है। अुसमें से पता चल जायगा कि सब प्रवृत्तियोंका सम्मिश्रण कैसे हो सकता है।

सेवाग्राम, १५–४–'४२
हरिजनसेवक, ३–५–'४२

१६२

सूत-मापका रहस्य

मैं देखता हूं कि सूत-मापके बारेमें अपनी कल्पना साथियोंको मैं पूरी तरह समझा नहीं सका हूं। यहां समझानेका प्रयत्न करता हूं। धातुके सिक्के या कागजके नोट सच्चा माप नहीं हैं, क्योंकि अुनकी कीमत कृत्रिम है। पांच रुपयेका नोट अेक पैसेका भी कागजका टुकड़ा नहीं है। अुस पर सरकारी मुहर है, अिसलिअे अुसकी कीमत है। फिर भी यह माप या अैसा माप बड़े पैमाने पर व्यापार करनेके लिअे आवश्यक है। खादी और अन्य ग्रामोद्योगोंके पीछे अुल्टी कल्पना है। हम बड़े पैमाने पर व्यापार नहीं चाहते हैं। हमारी दृष्टि-मर्यादामें सात लाख देहातोंमें से कोअी अेक गांव है। हम अुस देहातकी स्वतंत्रता अैसी चाहते हैं, जैसी सात लाखकी, और सारे जगतकी। अिसलिअे हमारे देहात कमसे कम खाने-पहननेमें यथासम्भव स्वावलम्बी होने चाहिये।

अैसे देहातमें पारस्परिक व्यवहारके लिअे धातुके या अन्य किसी कृत्रिम मापकी आवश्यकता नहीं हो सकती है। हमारा माप तो कोअी अैसी देहाती चीज होनी चाहिये, जिसे हर कोअी बना सकता है, जिसका आसानीसे संग्रह हो सकता है, और जिसका दाम हर रोज बदलता नहीं है। अैसी वस्तु क्या हो सकती है? साबुन नहीं, तेल नहीं, तरकारी नहीं। अिस तरह गिनते-गिनते खाली सूत रह जाता है। अुसे सब अुत्पन्न कर सकते हैं। अुसकी हमेशा जरूरत रहती है। अुसका संग्रह भलीभांति हो सकता है। अगर सूत-माप हम देहातोंमें दाखिल कर सकें तो देहातकी बहुत अुन्नति कर सकेंगे और वे शीघ्रतासे स्वावलम्बी बन सकेंगे। सूत-मापके सभी लाभ बतलानेका यह प्रयत्न नहीं है। अुसका अर्थ क्या है और वह कैसे काम करेगा, यही बताना है।

अिसके लिअे अेक दुकानकी आवश्यकता रहती है, जिसमें देहातियोंके नित्य अुपयोगकी चीजें मिल सकें। यह बात निरपवाद होनी

चाहिये कि देहाती अुस दुकानसे कोअी भी वस्तु सूत देकर ही खरीद सकें। अिसका परिणाम यह होगा कि अुक्त दुकानसे माल लेनेके लिअे लोगोंको सूत कातना ही होगा। दुकानमें अमुक जातिका ही और अमुक मापोंमें ही सूत लिया जायगा। अिसलिअे देहाती जो सूत कातेंगे, वह अच्छी तरहसे बांधा हुआ होगा। और क्योंकि सूतसे अनेक चीजें खरीदी जा सकती हैं, अिसलिअे सूतका अेक धागा भी वे व्यर्थ नहीं जाने देंगे। सूतकी प्रतिष्ठा अेकाअेक बढ़ जायगी। सूतके बदलेमें जो माल मिलेगा वह अच्छा होगा। महंगा नहीं होगा। अेक बच्चा भी अुस दुकानसे निर्भय होकर माल खरीद सकेगा; क्योंकि जैसा-वैसा सूत दुकानमें नहीं लिया जा सकेगा, अिसलिअे आरम्भमें अिस कामके लिअे अेक सूत-चौकसीकी आवश्यकता होगी, जिसका काम सूतका माप जांचनेका होगा। सूत मैला न हो जाय, अिसलिअे अुसे कागज या अन्य किसी वस्तुमें रखनेकी आवश्यकता होगी। चौकसीके कागजमें बन्द किया हुआ सूत दुकानवाले आंख मूंदकर ले लेंगे।

चौकसी और दुकानदारका सम्बन्ध चरखा-संघ जैसी संस्थाके साथ होने पर सूत नित्य संघके दफ्तरमें जायगा। वहांसे बुननेवालोंके हाथोंमें।

अैसी दुकानमें नुकसानकी गुंजाअिश नहीं है। वस्तुओंके दामोंमें बहुत घट-बढ़ होनेकी संभावना नहीं होगी। दुकानमें अैसी ही वस्तु करीब-करीब रखी जायगी जो देहातमें ही मिल सके। अैसी वस्तुओंका विस्तार रफ्ता-रफ्ता बढ़ता ही रहेगा।

अिस योजनामें प्रत्येक घर टकसाल बन जाता है, और जितने चाहिये अुतने पैसे (सूत) बना सकता है। साफ है कि अैसी दुकानोंमें मादक पदार्थ, विदेशी पदार्थ, नुकसानकारक पदार्थ नहीं बिक सकते हैं। अिसलिअे सूतका सम्बन्ध जहां तक बन सके पवित्र होगा।

सेवाग्राम, १७–४–'४२

हरिजनसेवक, ३–५–'४२

१६३

कत्तिनोंसे रकम काटनेकी मर्यादा क्या हो?

प्र० — कत्तिनोंको दी जानेवाली मजदूरीमें से अुन्हें खादी देनेके लिअे जो रकम काट ली जाती है, अुसका परिमाण कितना हो, अिस बारेमें कअी तरहके विचार प्रगट किये जाते हैं। कुछ अैसा मानते हैं कि कारीगरोंको खादी देनेका यह तरीका अेक प्रकारकी जबरदस्ती है। कारीगरोंको खादी पहननी चाहिये, अैसा प्रचार अवश्य किया जाय, मगर अुनकी कमाअीमें से कुछ हिस्सा काटकर जमा रखनेका तरीका ठीक नहीं है। कुछ यह कहते हैं कि चरखा-संघने कताअीकी दरें जान-बूझकर बढ़ाअी हैं, और यह दृष्टि रखकर बढ़ाअी हैं कि कारीगर लाजिमी तौर पर खादीधारी बनें। अिसलिअे निश्चित मर्यादा तक अिस प्रकारकी रकम काटकर खादी देना अनुचित नहीं समझना चाहिये।

यह मर्यादा कितनी हो अिस बारेमें फिर मतभेद है। कोअी कहता है कि यह मर्यादा कारीगरकी कमाअीके १२।। प्रतिशतसे ज्यादा न हो; कोअी कहता है २५ प्रतिशत हो, और कोअी कहता है कि कताअीके दाम अधिकसे अधिक कपड़के — खादीके — ही रूपमें चुकाये जायें। संघका मुख्य आदर्श वस्त्र-स्वावलंबन है। अुस तक पहुंचनेके लिअे अच्छा तो यही है कि संघ कताअीका काम यह समझकर करे कि वह रोटी देनेके लिअे नहीं, बल्कि कपड़ा देनेके लिअे ही है।

आजकल अनाजके दाम बढ़ते ही जा रहे हैं। कताअीकी दरें वही हैं, जो साल या दो साल पहले जारी थी। कत्तिनकी कमाअी तो बढ़ी नहीं, अेक अर्थमें तो वह घटी ही है। फिर भी खादीके लिअे की जानेवाली कटौती जारी ही है। अब तो पूंजी जमा करनेके लिअे कारीगरों पर और कटौती लादी गअी है। यह तो चरखा-संघके जीवन-वेतनके सिद्धान्तका मजाक हो रहा है, अैसा भी अेक खयाल है।

आपसे प्रार्थना है कि अिसमें नीति क्या हो, मर्यादा किस प्रकारसे जांची जाय, अिस बारेमें अपनी राय प्रकाशित करके खादीका काम करनेवालोंका मार्गदर्शन कीजिये।

अु० —असल बात यह है कि जब कत्तिनोंकी मजदूरी बढ़ाअी गअी, तब अेक ही खयाल रहा था कि जिनको कभी सच्ची मजदूरी नहीं मिली, अुनको वह मजदूरी देना चरखा-संघ जैसी पारमार्थिक संस्थाका धर्म होता है। चरखा-संघकी हस्ती खादी पहननेवालोंके लिअे नहीं, वस्त्र-स्वावलम्बन करनेवालोंके लिअे नहीं, लेकिन मजदूरीसे खादी बनानेवालोंके लिअे थी; अुनमें भी कत्तिनोंके लिअे। विचार-श्रेणी यह थी कि कातनेका काम करोड़ोंका है, और अुन्हें धन्धा मिले तो भूखमरी मिटनेमें कुछ मदद मिल सकती है।

अब अगर कत्तिनोंकी मजदूरी बढ़ानी है, तो यह मजदूरी तभी बढ़ सकती है जब कि सभी खादी पहनें; अन्यथा सबको कातनेका धन्धा नहीं मिल सकता। थोड़े ही लोगोंको मदद देनेके लिअे चरखा-संघ जैसी संस्थाकी आवश्यकता नहीं हो सकती थी। अगर सबको खादी पहननी है, तो कत्तिनोंको तो पहननी ही है। कत्तिनें खादी न पहनें और हम अुन्हें अुनकी मांगके सिवा भी ज्यादा मजदूरी देते रहें, तो वह केवल दान ही हो जायगा। दान चरखा-संघका ध्येय कभी नहीं था। अिसलिअे जैसे अेक तरफ कत्तिनोंको ज्यादा मजदूरी देना हमारा धर्म था, वैसे ही दूसरी तरफ अुन्हें और अुनके परिवारको खादी पहनानेका भी धर्म था। अिस दूसरे धर्मके पालनके लिअे हम कत्तिनोंसे अवश्य ही यह कह सकते हैं कि अुन्हें जो ज्यादा मजदूरी मिलती है, अुसका प्रथम अुपयोग तो वे खादीका खर्च निकालनेमें करें।

लेकिन हम अैसा करनेमें सफल नहीं हो सकते थे, अिसलिअे हमने मध्यम मार्ग ग्रहण किया। जितना आगे जा सकते थे, अुतना आगे बढ़े। हमारे पास किसीको मजबूर करनेका साधन नहीं था, न हमने रखा है, न भविष्यमें रखना है। चरखा-संघ अहिंसाका प्रतीक है, और अहिंसाका बड़ा प्रयोग है। अिसके मूलमें शुद्धतम न्यायबुद्धि है। जिनके साथ हमेशा ही अन्याय हुआ है, अुनको न्याय देनेकी चेष्टा

है। असलिअे हमारे सब निर्णयोंकी जड़में शुद्धतम न्यायबुद्धि होनी चाहिये।

अितना याद रखा जाय कि हमारा ध्येय तो हर कत्तिनको अेक घण्टेका अेक आना दिलानेका है। अुससे हम दूर पड़े हैं। वहां तक पहुंचनेकी हमारे पास सामग्री नहीं है। हमारे औजार अैसे नहीं हैं कि जिनसे कत्तिनोंको अेक घण्टेका अेक आना दिया जा सके।

महंगाअीके अिन दिनोंमें हम अगर कत्तिनोंको ज्यादा दे सकें तो देनेका धर्म होता है। अिसका निर्णय तो चरखा-शास्त्री और अनुभवी ही कर सकते हैं।

सब निर्णयोंमें विवेककी तो आवश्यकता है ही। अगर विवेक कहता है कि कत्तिनोंकी मजदूरीकी बढ़तीमें से अुन्हें अेकाअेक खादी पहनानेके लिअे हम पैसा नहीं काट सकते हैं तो हरगिज न काटें; कत्तिनोंको अपनी और अपने घरवालोंकी आवश्यकतासे अधिक खादी लेनी पड़े, अैसी कटौती हरगिज न की जाय। अर्थात्, कत्तिनोंको कुटुम्बीजन समझकर लेना है। अुनके अज्ञानका दुरुपयोग हम कभी न करें। अुनकी आवश्यकताओंको समझें और समझकर जैसा अुचित लगे, वैसा करें।

सेवाग्राम, २०–५–'४२
हरिजनसेवक, ३१–५–'४२

१६४

' सर्वोदय '

हिन्दी भाषा-प्रेमी जानते ही हैं कि 'सर्वोदय' मासिक वर्धासे निकलता है। अिसके संपादक श्री काका कालेलकर और श्री दादा धर्माधिकारी हैं। वैसे तो सचमुच तीन हैं, क्योंकि श्री किशोरलाल भी प्रायः प्रति अंकमें लिखते हैं। अिस मासिकका अुद्देश्य है, सत्याग्रह-शास्त्रकी तात्त्विक चर्चा करना और अुसके शुद्धतम रूपका प्रचार करना, जिससे सबका — जगतमात्रका — अुदय होवे। पिछले चार वर्षसे यह मासिक निकल रहा है, लेकिन प्रतिवर्ष करीब दोसे तीन हजारका घाटा रहता है। अिसलिअे अब यह प्रश्न अुठ खड़ा हुआ है कि क्या अितना घाटा सहकर भी यह मासिक चलाया जाय? कअी मित्रोंकी राय है कि घाटा अुठाकर भी 'सर्वोदय' जारी रखा जाय। कअी कहते हैं कि जब अुसकी कद्र अुसका खर्च निकलने जितनी भी नहीं है, तो फिर अुसे निकालनेसे फायदा क्या? अिन दोनों पक्षोंका समर्थन अेक हद तक हो सकता है। लेकिन अेक मध्यम मार्ग तो यह है कि ग्राहकोंसे पूछा जाय। ग्राहक अिस घाटेकी बात स्पष्ट रूपसे नहीं जानते हैं। अगर वे 'सर्वोदय' का निकलना आवश्यक समझते हैं, तो प्रत्येक ग्राहक कमसे कम अेक और ग्राहक बना दे तभी घाटा मिट सकता है। अभी करीब ९०० ग्राहक हैं। दो हजार होनेसे घाटा मिटेगा। जो ग्राहक नये ग्राहक नहीं बना सकते, वे अगर धनी हैं तो अेक या दो ग्राहकोंका चन्दा भेज सकते हैं। कुछ जिज्ञासु किन्तु मुफ्त मांगनेवाले लोग रहा ही करते हैं। वे चन्दा दे ही नहीं सकते। यदि अुनका चन्दा देनेवाले कुछ सज्जन मिल जायं, तो अुनको 'सर्वोदय' पहुंच सकता है। 'हरिजनसेवक' में अिस बातका खास अुल्लेख करनेका खास मतलब यह है कि अिससे 'सर्वोदय' के ग्राहकोंके अलावा दूसरोंको भी घाटेका पता चल सकेगा। 'सर्वोदय' की नीति बिलकुल 'हरिजन'

की ही है। लेकिन 'सर्वोदय' में 'हरिजन' की नीतिका शास्त्रीय विवेचन किया जाता है, और वह तटस्थताके साथ। अैसी कोअी बात नहीं है कि सम्पादकोंको 'हरिजन' की नीतिका अनुसरण करना ही चाहिये। जहां तक अुनकी बुद्धि जा सकती है, वहीं तक वे 'हरिजन' की नीतिका प्रचार करते हैं। और क्योंकि प्रायः वे 'सर्वोदय' को तथाकथित राजनीतिसे अलग रखनेकी चेष्टा करते हैं, असलिअे 'हरिजन' यदि खतरेमें पड़ जाय तो भी 'सर्वोदय' बच जाय और अुसके मारफत लोगोंको कुछ तो खुराक मिला करे, अैसा भी लोभ 'सर्वोदय' निकालनेमें रहता है।

सेवाग्राम, ४–७–'४२

हरिजनसेवक, १२–७–'४२

१६५

अेक चेतावनी

अेक चेतावनी देता हूं। बिकती पूनियां लेकर कातनेकी आदत खोटी है। अन्तमें यह खादीको नुकसान पहुंचायेगी। अब तो तुनाईकी शोधके बाद पूनी बना लेना आसान हो गया है। अिसे सब सीख लें।

हरिजनसेवक, २६–७–'४२

१६६

'खादी पैदा करो'

जैसे 'अनाज पैदा करो' की घोषणा हम चारों ओरसे सुनते हैं, अैसा ही खादीके बारेमें भी समझिये। अगर हम खादी पैदा न करेंगे तो करोड़ोंको नंगा रहना पड़ेगा; जैसे कि अगर हम अनाज पैदा न करेंगे तो करोड़ोंको भूखों मरना पड़ेगा — और अुनकी मृत्युसंख्या युद्धमें होनेवाली मृत्युसंख्यासे बहुत अधिक होगी। फर्क अितना ही होगा कि युद्धमें लोग जान-बूझकर मरते हैं, और वीर कहलाते हैं। भूखमे मरनेवालोंको कोअी याद तक न करेगा; और वे मरेंगे तो केवल हमारे अज्ञान और आलस्यके कारण।

कपड़ेके न मिलनेसे हम मरेंगे तो नहीं, लेकिन नंगा रहना भी तो हम पसन्द नहीं करेंगे। यह युद्ध आगे बढ़ा तो मिलें चलनेवाली नहीं। वे तो लड़ाअीका सामान पैदा करेंगी।

तब खादी कैसे पैदा हो? मैंने तो कहा है कि अिस वक्त पैसे देकर नहीं लेकिन घर-घर चरखे चलाकर सूत पैदा हो सकता है। प्रत्येक क्षणका हम हिसाब करें और अुसका सदुपयोग करें तो कपड़ोंका घाटा हो ही नहीं सकता है। चूंकि अैसे सूतके दानरूपमें प्राप्त होनेसे वह मजदूरीके सूतसे सस्ता ही होगा, अिसलिअे खादी भी अपेक्षाकृत सस्ती ही होगी।

हरिजनसेवक, २–८–'४२

१६७

चरखा-जयन्ती

गांधी-जयन्ती अेक बहाना है, सच्ची बात तो चरखा-जयन्ती ही है। चरखा न होता तो शायद जयन्ती ही न मनानी पड़ती। मनानी पड़ती भी, तो अुसका महत्त्व न होता। बगैर हेतुके, मनुष्योंकी जयन्ती मनानेमें तो मैं कुछ लाभ नहीं देखता, फिर वह भले ही रिश्तेदारों या मित्रवर्गका निर्दोष आनन्दोत्सव ही क्यों न हो। लेकिन गांधी-जयन्तीके बहानेसे चरखा-जयन्तीका सुयोग हुआ, तो अिसमें हेतुके बड़े और व्यापक होनेके कारण जयन्ती अुपयोगी वस्तु सिद्ध हुअी है।

चरखा-संघने जयन्ती मनानेका निर्णय कर लिया है। अुसका कार्य खादीके लिअे चन्दा अिकट्ठा करना, सूत कतवाना व सूत अिकट्ठा करना रहेगा। अिसके लिअे चरखा-संघके सामने नारणदास गांधीका अुदाहरण है ही। वे कअी वर्षोंसे सूत और चन्देकी रकम अिकट्ठा करनेकी प्रतिज्ञा करके कार्य कर रहे हैं। प्रति वर्ष अुन्हें अुत्तरोत्तर सफलता मिलती जा रही है। कोअी वजह नहीं कि अैसी ही सफलता चरखा-संघको न मिले। अगर दृढ़ संकल्पवाले कार्यकर्ता मिल सकें, तो सफलता अवश्य मिलनी चाहिये। खादीके बगैर लोगोंके लिअे नंगे रहनेका अवसर आ सकता है। अैसे अवसरको टालनेका कार्य अगर कोअी कर सकता है, तो वह चरखा-संघ ही है।

संघके अिस शुभ-साहसमें सब लोग मदद देंगे, अैसी मैं आशा करता हूं।

सेवाग्राम, २२–७–'४२

हरिजनसेवक, ९–८–'४२

१६८
नैसर्गिक अुपचार-गृह

पाठक जानते हैं कि डॉक्टर दीनशा महेताके 'क्लिनिक' में मैं भाअी जहांगीर पटेलके साथ ट्रस्टी बना हूं। अुसमें शर्त यह है कि अिस बरसकी जनवरीकी पहली तारीखसे वह संस्था धनिकोंकी मिटकर गरीबोंकी बने। अैसे पूरा-पूरा बना तो नहीं है। मैं बाहर रहा। कल्पना मेरी ही थी, अिसलिअे फेरफारका काम ठंडा रहा है। मुझे आशा तो है कि मैं अिस कामके लिअे अिस मासमें पूना जाअूंगा और कुछ तो कर सकूंगा। मेरी आशा यह रहेगी कि धनिक बीमार आवें, तो वे पैसे पेट भरकर दें। फिर भी गरीबोंके साथ अेक ही कमरेमें रहें। मुझे विश्वास है कि अैसा करनेसे वे ज्यादा लाभ अुठायेंगे। जो अिस तरह नहीं रहना चाहते हैं, अुनको पूना जानेकी आवश्यकता नहीं है। संस्थाके लिअे यह तो आवश्यक है ही। गरीबोंके आरोग्य-गृहमें अुनकी तबीयत अच्छी करनेकी कोशिश करनेके अलावा अुन्हें अच्छे कैसे रहना, सो भी बताया जायगा। आज माना जाता है कि नैसर्गिक अुपचारमें बहुत खर्च होता है। मामूली वैद्य या डॉक्टरकी दवाका खर्च अुससे कम होता है। अगर यह बात सही सिद्ध हो, तो मैं अपने प्रयत्नको व्यर्थ समझूंगा। लेकिन मेरा विश्वास अिससे अुलटा है और अनुभव भी जो कुछ है, अिससे अुलटा ही है। नैसर्गिक या कुदरती वैद्यका धर्म है कि वह दरदीके शरीरकी संभाल तो करे, मगर अितना ही काफी नहीं। देहमें जो देही है, अुसे भी पहचाने और अुसके लिअे भी अुपचार बतावे।

यह अुपचार तो रामनाम ही है। वह रामबाण दवा है। रामनामका क्या अर्थ है, अुसकी क्या विधि है, सो आज नहीं बता सकता। अितना ही कहूंगा कि गरीबोंको दवाकी बहुत फिकर नहीं रहती। वे यों ही मरते हैं। अज्ञानके वश जानते भी नहीं कि कुदरत क्या सिखाती है। अगर पूनामें यह प्रयोग अच्छी तरह चला, तो

कुदरती अिलाजोंकी अेक युनिर्वासिटी या विद्यापीठ कायम करनेका डॉक्टर दीनशाका स्वप्न सिद्ध हो सकेगा। अिस भगीरथ कार्यमें मैं हिन्दुस्तानके सच्चे कुदरती तबीबों (चिकित्सकों) की मदद चाहता हूं। अिसमें पैसेका लालच तो हो ही नहीं सकता। जरूरत है सेवाभावसे गरीबोंका अिलाज करनेकी। अैसे कुदरती तबीब काफी संख्यामें मिलें, तभी काम आगे बढ़ सकेगा। तबीब कहने मात्रसे कोअी तबीब नहीं बन सकता। वह सच्चा, मेहनती सेवक होना चाहिये। जिनको कुछ अनुभव-ज्ञान है, अुन्हें अपने ज्ञान अित्यादिकी फेहरिस्त भेजनी चाहिये। जिन खतोंको मैं निकम्मा मानूंगा अुनका अुत्तर नहीं दिया जायगा। पाठक समझें कि 'हरिजनसेवक' के निकलनेसे सेवाकार्यका क्षेत्र बढ़ा है। अिसलिअे व्यक्तियोंको खत लिखनेकी बहुत कम गुंजाअिश रहेगी।

वर्धा जाते हुअे रेलमें, ५–२–'४६

हरिजनसेवक १०–२–'४६

१६९

प्रदर्शनी कैसी हो ?

कांग्रेसका अधिवेशन दो तीन मासमें होनेका संभव है, अिसलिअे सामान्यतः यह प्रश्न अुठता है कि देहाती दृष्टिसे अुसे कैसा होना चाहिये ?

देहाती दृष्टि ही हिन्दुस्तानमें सही हो सकती है — अगर हम चाहते और मानते हैं कि देहातोंको सिर्फ जीना ही नहीं, बल्कि मजबूत और समृद्ध बनना है। अगर यह सही है, तो हमारी प्रदर्शनीमें शहरी चीजोंको और आडम्बर व जाहोजलालीको स्थान नहीं हो सकता है। शहरमें जो खेल-तमाशे होते हैं अुनकी जरूरत नहीं होनी चाहिये। प्रदर्शनी किसी हालतमें न तमाशा बननी चाहिये, न पैसे पैदा करनेका साधन; व्यापारियोंके लिअे जाहिरखबरके लिअे तो कभी नहीं। वहां बिक्रीका काम नहीं होना चाहिये। खादी तथा अन्य ग्रामोद्योगोंकी चीजें भी

नहीं बेचनी चाहिये। प्रदर्शनीको शिक्षा पानेका स्थान बनना चाहिये, रोचक होना चाहिये, देहातियोंके लिअे अैसा होना चाहिये कि जिससे देहाती घर लौटकर कुछ-न-कुछ अुद्योग सीखनेकी आवश्यकता समझने लगें। हिन्दुस्तानके सब देहातोंमें जो दोष हैं अुन्हें बतानेवाला तथा अुन दोषोंको कैसे दूर किया जाय यह बतानेवाला और ग्रामोंको आगे ले जानेकी प्रवृत्ति शुरू हुअी तबसे आज तक क्या प्रगति हुअी, सो बतानेवाला स्थान होना चाहिये। अिस प्रदर्शनीको देहातका जीवन कलामय कैसे बन सकता है, सो भी बतानेवाला स्थान होना चाहिये।

अब देखें कि अिन शर्तोंका पालन करनेवाली प्रदर्शनी कैसी होनी चाहिये :

१. दो देहातोंके नमूने होने चाहिये — अेक देहात आज है अैसा और दूसरा अुसमें सुधार होनेके बादका। सुधरे देहातमें स्वच्छता होगी; घरकी, रास्तेकी, देहातके आसपासकी और वहांके खेतोंकी। पशुओंकी हालत भी बतानी चाहिये। कौनसे धंधे किस प्रकारसे आमदनी बढ़ाते हैं अित्यादि बातें नकशों, चित्रों व पुस्तकोंसे बताअी जायं।

२. सब तरहके देहाती अुद्योग कैसे चलाये जायें, अुनके लिअे औजार कहां मिलते हैं, वे कैसे बनाये जाते हैं, यह सब बताना चाहिये। सब तरहके अुद्योगोंको चलते हुअे बताया जाय। साथ-साथ निम्न लिखित वस्तुअें भी बतानी चाहिये :

(अ) देहाती आदर्श खुराक
(आ) यंत्रोद्योग और हाथ-अुद्योगका मुकाबला
(अि) पशुपालन-विद्याका पदार्थपाठ
(अी) अच्छे पाखानोंके नमूने
(अु) कला-विभाग
(अू) वनस्पति-खाद विरुद्ध रासायनिक खाद
(अे) पशुकी खाल, हड्डी अित्यादिके अुपयोग
(अै) देहाती संगीत, देहाती वाद्य, देहाती नाट्यप्रयोग
(ओ) देहाती खेलकूद, देहाती अखाड़े व व्यायाम

(औ) नअी तालीम
(अं) देहाती औषध
(अः) देहाती प्रसूति-गृह

आरंभमें बताअी हुअी नीतिको खयालमें रखकर अिसमें जो वृद्धि हो सकती है, सो की जाय। जो मैंने बताया है, अुसे अुदाहरण-स्वरूप माना जाय। अिसमें मैंने चरखेसे आरंभ करके जितने देहाती अुद्योग हैं, अुन्हें जान-बूझकर नहीं बताया है। अुन सब अुद्योगोंके सिवा प्रदर्शनी निकम्मी मानी जाय।

मद्रास जाते हुअे ट्रेनमें, २०–१–'४६
हरिजनसेवक, १०–२–'४६

१७०

हिन्दुस्तानी बनाम अंग्रेजी

हिन्दुस्तानीसे किसी हिन्दवासीको नफरत कैसे हो सकती है? संस्कृतमयी भाषा चाहनेवाले डरते है कि अुनकी हिन्दीको नुकसान पहुंचेगा। अुर्दू बोलनेवाले डरते हैं कि फारसी-अरबीमय अुर्दूको। दोनोंका डर निकम्मा है। प्रचारसे भाषा नही फैलती। अैसा होता तो 'वोलापुक' या 'अेस्पेराण्टो' को जनतामें स्थान मिलता। लेकिन अैसा नहीं हुआ। चन्द लोगोंके आग्रहसे भी किसी भाषाको स्थान नहीं मिलता। लेकिन जो लोग शक्तिशाली, मेहनती, कलाशील, साहसिक, व्यापारी हैं, अुनकी भाषा चलती है और पराक्रमी बनती है। प्रयत्न करना हमारा काम है। लोग जिसे अपनावेंगे, वही अुनकी भाषा बन सकती है। गोकि अंग्रेजी तेजस्वी भाषा है तो भी वह राष्ट्रभाषा तो बन ही नहीं सकती। अगर अंग्रेजोंका राज्य जब तक सूरज और चांद हैं तब तक रहनेवाला है, तो वह अुनके अमलोंकी भाषा जरूर होगी, लेकिन आम जनताकी कभी नहीं। और चूंकि अमलदार लोग राज्य-

कर्ता होंगे और तालीमका काम अंग्रेजोंके हाथमें रहेगा, असलिअे प्रान्तोंकी भाषायें कंगाल बनती जायंगी। स्वर्गीय लोकमान्यने अेक दफा कहा था कि अंग्रेजोंने प्रान्तीय भाषाओंकी सेवा की है। यह बात सच्ची थी। अेक हद तक अुनको यह करना था। लेकिन प्रान्तीय भाषाओंकी तरक्की करना अुनका काम नहीं था, न वे कर सकते थे। यह काम तो लोकनायकोंका और लोगोंका ही है। अगर वे अपनी मातृभाषाको भूलें — जैसे कि भूल रहे थे और आज भी कुछ भूल रहे हैं — तो लोग कंगाल रहेंगे।

अब तो हम जानते हैं कि अंग्रेजी राज्य अखण्डित नहीं। शायद अिसी बरस वह खतम हो जायगा। वे खुद यह कहते हैं, हम भी मानते हैं। अैसी हालतमें हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीके सिवा और कोअी हो ही नहीं सकती।

आजकी हिन्दुस्तानीके दो रूप हैं: हिन्दी और अुर्दू। हिन्दी नागरी लिपिमें लिखी जाती है; अुर्दू अुर्दू लिपिमें। अेकका सिंचन होता है संस्कृतसे, दूसरीका अरबी-फारसीसे। असलिअे आज तो दोनोंको रहना है। दोनों मिलकर ही हिन्दुस्तानी बनेगी। आअिन्दा अुसकी क्या शकल होगी हम नहीं जानते, न कोअी कह सकता है। जाननेकी जरूरत ही नहीं। तेअीस करोड़से अधिक लोग आज हिन्दुस्तानी बोलते हैं। जब आबादी तीस करोड़की थी, तब हिन्दुस्तानी भाषा बोलनेवालोंकी संख्या २३ करोड़ थी। अगर हम चालीस करोड़ हुअे हैं, तो दोनों रूपोंमें बोलनेवाले अधिक होने चाहिये। सो कुछ भी हो, राष्ट्रभाषा अिसीमें है। दोनों बहनोंको आपसमें झगड़ा नहीं करना है। मुकाबला तो अंग्रेजीसे है। अुसमें मेहनत कम नहीं। हिन्दुस्तानीकी चढ़तीसे प्रान्तोंकी भाषाओंको बढ़ना ही है, क्योंकि हिन्दुस्तानी लोगोंकी भाषा है, मुट्ठीभर राज्यकर्ताओंकी नहीं। अिस राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिअे मैं दक्षिण गया था। वहां कल तक हिन्दी ही अिसका नाम रखा था। अब नाम हिन्दुस्तानी हुआ है। थोड़े ही महीनोंमें बहुतसे लड़के-लड़कियोंने दोनों लिपियां सीख ली हैं। अुनको मैंने प्रमाणपत्र भी दिये। वहां भी खटका तो लिपिका नहीं, लेकिन अंग्रेजीका है।

अिसमें राज्यकर्ताओंका दोष भी नहीं। हम ही अंग्रेजीका मोह नहीं छोड़ते। यह मोह हिन्दुस्तानी-नगरमें भी था। अब आशा रखी जाती है कि यह मिटेगा। कैसा भी हो, दक्षिणके प्रान्तोंमें काम जरूर हुआ है। लेकिन जिस जगह हमें पहुंचना है, अुसे देखते हुअे तो अभी और बहुत-कुछ करना होगा।

सेवाग्राम जाते हुअे रेलमें, ५–२–'४६

हरिजनसेवक, १०–२–'४६

१७१

पशु-पालन

वर्धामें जो केन्द्रीय गोसेवा-संघ चलता है, वह स्वर्गीय जमनालालजीकी अन्तिम कृति है। अुनकी लोकोपयोगी प्रवृत्तियां अनेक थी। वर्षोंसे धन कमानेका मोह अुन्होंने छोड़ रखा था। जो कुछ धन कमाते थे, सो लोकसेवामे लगानेके लिअे। ११ फरवरीको अुनकी पांचवी पुण्यतिथि थी। अुनके अनुयायियों और साथियोंने अिस पुण्यतिथिका समय जमनालालजीकी अन्तिम प्रवृत्तिका विचार करनेमें बिताया और अिस तरह तिथि मनाअी। सब जानते हैं कि अपने देहान्तके अेक घण्टे पूर्व भी वे कुछ-न-कुछ गोसेवाका कार्य कर रहे थे। गोपुरी नामका क्षेत्र भी अुन्होंने बनाया था। अुनकी समाधि गोपुरीमे ही है। और अुक्त सभा भी वहीं हुअी। 'गोसेवा' शब्दका प्रयोग विचार-पूर्वक हुआ है, और गोरक्षामें जो मुरब्बीपन रहा है, वह सेवा शब्दके स्वीकारसे नहीं रहता। गायको हिन्दूमात्र माता समझता है, और वह माता है भी। अेक अंग्रेज लेखकने अुसे मानव-समृद्धिकी माता माना है—'मदर ऑफ प्रॉस्पेरिटी' कहा है—और यह प्रयोग ठीक भी है। यह दूसरी बात है कि पश्चिममें लोग गायको खा जाते हैं। लेकिन वे भी मानते हैं कि मनुष्य-जीवनमें जो अनेक प्राणी हिस्सा लेते हैं, अुनमें गायका सबसे बड़ा स्थान है।

बगैर गायके दूधके मनुष्य-जीवनका चलना असंभव नहीं, तो मुश्किल अवश्य है। अिस गोसेवाके भीतर पशु-पालन रहा है। यह पशु-पालन हमारे हिन्दुस्तानमें बड़े महत्त्वका प्रश्न है। और यह दुःखकी बात है कि जिस मुल्कमें गायकी भक्ति होती है, अुसी मुल्कमें अुस पशुकी देखभाल नहीं की जाती। अुसको काटते नहीं हैं, तो निर्दयतासे सताते हैं। बात यहां तक पहुंच गअी है कि आज हिन्दुस्तानके करोड़ों पशु हिन्दुस्तानकी भूमिमें भाररूप माने जाते हैं, और अुनको हजारोंकी संख्यामें कतल करके भार कम करनेकी बात भी चलती है। अैसी हालतमें अेक जमनालालजी क्या कर सकते थे? लेकिन अब तो वे भी नहीं हैं।

पशु-पालन व्याख्यानसे नहीं हो सकता। अुसके लिअे गहरे ज्ञानकी, अभ्यासकी, त्यागकी आवश्यकता है। करोड़ों रुपया अिकट्ठा करनेमें वाणिज्य नहीं है, लेकिन पशु-पालन कैसे करना, अुसका शुद्ध ज्ञान हजारों लोगों तक कैसे पहुंचाना, और कैसे अुसका अमल करना, अिस सबकी छानबीनमें और अैसे कामोंमें द्रव्य खर्च करनेमें सच्चा वाणिज्य रहा है। आज होता है अुलटा। धनिकवर्ग धन किसी-न-किसी तरह कमा लेता है, और अुसमें से दो-चार कौड़ीका दान करके शास्त्रीय ज्ञान-विहीन लोगोंके मारफत नामकी गोशाला बनाकर अपने दिलको धोखा देता है कि पुण्यका काम कर लिया। अिन त्रुटियोंका दर्शन जमनालालजीने कर लिया था और अिन्हें दूर करनेके लिअे वे अेक योजनाका मनन कर रहे थे, अितनेमें यमदूतने अुनको बुला लिया।

स्वराज्य पानेके वास्ते जितनी शक्ति चाहिये, अिस कठिन समस्याको हल करनेके लिअे शायद अुससे भी अधिक शक्तिकी आवश्यकता है।

सेवाग्राम, ९–२–'४६
हरिजनसेवक, १७–२–'४६

१७२

सवाल-जवाब

स० — दूसरेसे बातचीत करते समय, मस्तिष्क द्वारा कठिन कार्य करते समय, अथवा अचानक घबड़ाहट आदिके समय भी क्या हृदयमें रामनामका जप हो सकता है? अगर अैसी दशामें भी लोग करते हैं, तो कैसे करते हैं?

ज० — अनुभव कहता है कि मनुष्य किसी भी हालतमें हो, सोता भी क्यों न हो, अगर आदत हो गअी है और नाम हृदयस्थ हो गया है, तो जब तक हृदय चलता है तब तक रामनाम हृदयमें चलता ही रहना चाहिये। अन्यथा यह कहा जाय कि मनुष्य जो रामनाम लेता है वह अुसके कण्ठसे ही निकलता है, अथवा कभी-कभी हृदय तक पहुंचता है; लेकिन हृदय पर नामका साम्राज्य स्थापित नहीं हुआ है। जब नामने हृदयका स्वामित्व पाया है तब जप कैसे करते हैं यह सवाल पूछा ही न जाय। क्योंकि जब नाम हृदयमें स्थान लेता है, तब अुच्चारणकी आवश्यकता ही नहीं है। यह कहना ठीक होगा कि अिस तरह रामनाम जिनको हृदयस्थ हुआ है, अैसे लोग कम होंगे। जो शक्ति रामनाममें मानी गअी है, अुसके बारेमें मुझे कोअी शक नहीं है।

हरअेक आदमी अिच्छामात्रसे ही रामनामको अपने हृदयमें अंकित नहीं कर सकेगा। अुसमें अनथक परिश्रमकी आवश्यकता है, धीरजकी भी है। पारसमणिको हासिल करनेके लिअे धीरज क्यों न हो? नाम तो अुससे भी अधिक है।

स० — क्या दिमागकी किसी कमजोरीके कारण मनको सन्देह नजर आते हैं, अथवा क्या निश्चल दशामें पहुंचनेसे पहले मनके लिअे अिन हालतोंमेंसे गुजरना लाजिमी है? जाग्रत दशामें भी शान्त मनमें स्वप्नके-से खेल क्यों होते हैं? अर्थात् जिन घटनाओंका प्रत्यक्ष जीवनकी याददाश्तके साथ कभी संबंध नहीं रहा, अुनका दिमागमें आगमन अथवा हृदयमें अुच्चारण क्यों होने लगता है?

ज० — निश्चल दशामें पहुंचनेके पहले जिसका बयान प्रश्नकर्ताने किया है, वह करीब-करीब सबको होना लाजिमी है। 'करीब-करीब' कहनेका मतलब है कि पूर्वजन्ममें जिन्होंने साधना की है, लेकिन जो सिद्धार्थ नहीं हुअे, अुनको अिस जन्ममें यातनासे गुजरना नही पड़ेगा। शांत मनमें स्वप्नके-से खेल होते हैं, अिसका अर्थ अितना ही है कि मन बाहरसे शान्त दीखता है, परंतु वास्तवमें वह शांत नहीं है। प्रत्यक्ष जीवनमें जिसका संबंध नही दीखता, मनमें अुसका संचरण होता है, अिसका अर्थ मेरी दृष्टिमें यह है कि याददाश्तके अलावा भी बहुतसी चीजें पड़ी हैं, जिनका संबंध रहता ही है।

स० — सेवाकार्यके कठिन अवसरों पर भगवद्-भक्तिके नित्य-नियम नही निभ पाते, तो क्या कोअी हर्ज होता है? दोनोंमें किसको प्रधानता दी जाय — सेवाकार्यको अथवा माला-जपको?

ज० — कठिन सेवाकार्य हो या अुससे भी कठिन अवसर हो, तो भी भगवद्-भक्ति यानी रामनाम बन्द हो ही नहीं सकता। अुसका बाह्य रूप प्रसंगवशात् बदलता रहेगा। माला छूटनेसे रामनाम, जो हृदयमें अंकित हो चुका है, थोड़े ही छूट सकता है?

सेवाग्राम, ९–२–'४६
हरिजनसेवक, १७–२–'४६

१७३

कुदरती अिलाज

कुदरती अिलाज या अुपचारका अर्थ है, अैसे अुपचार या अिलाज जो मनुष्यके लिअे योग्य हों। मनुष्य यानी मनुष्यमात्र। मनुष्यमें मनुष्यका शरीर तो है, लेकिन अुसमें मन और आत्मा भी है। अिसलिअे सच्चा कुदरती अिलाज तो रामनाम ही है। अिसीलिअे रामबाण शब्द निकला है। रामनाम ही रामबाण अिलाज है। मनुष्यके लिअे कुदरतने अुसीको योग्य माना है। कोअी भी व्याधि हो, अगर मनुष्य हृदयसे रामनाम ले तो व्याधि नष्ट होनी चाहिये। रामनाम यानी अीश्वर, खुदा, अल्लाह, गॉड। अीश्वरके अनेक नाम हैं, अुनमें से जो जिसे ठीक लगे अुसे वह ले; लेकिन अुसमें हार्दिक श्रद्धा हो, और श्रद्धाके साथ प्रयत्न हो।

वह कैसे?

तो जिस चीजका मनुष्य पुतला बना है, अुसीसे अिलाज ढूंढ़े। पुतला पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायुका बना है। अिन पांच तत्त्वोंसे जो मिल सके सो ले। अुसके साथ रामनाम चलता रहे। नतीजा यह आता है कि अितना होते हुअे भी शरीरका नाश हो, तो होने दे और हर्षपूर्वक शरीर छोड़ दे। दुनियामें अैसा कोअी अिलाज नहीं निकला है, जिससे शरीर अमर बन सके। अमर तो आत्मा ही है। अुसे कोअी मार नहीं सकता। अुसके लिअे शुद्ध शरीर पैदा करनेका प्रयत्न सब करें। अुसी प्रयत्नमें कुदरती अिलाज अपने आप मर्यादित हो जाता है। दुनियाके असंख्य लोग दूसरा कर भी नहीं सकते। और जिसे असंख्य नहीं कर सकते, अुसे थोड़े क्यों करें?

पूना, २४–२–'४६

हरिजनसेवक, ३–३–'४६

१७४
सवाल-जवाब

अेक खतका सारांश यह है:

स० — आप कहते हैं कि विवाह करनेवालोंमें से अेक पक्ष हरिजन होना चाहिये। आप यह तो नही कहते हैं न कि अेक पक्ष हरिजन ही हो? अर्थात् दूसरे विवाह निषिद्ध हैं, अैसा अर्थ तो आप नहीं निकालते हैं?

ज० — यह प्रश्न ठीक पूछा गया है। दूसरे विवाह मैं निषिद्ध नहीं मानता हूं। मैंने तो आदर्श बताया है, और अुसका अमल जितनी शीघ्रतासे हो सके अुतनी शीघ्रतासे करना मुनासिब समझता हूं।

पूना, २४–२–'४६
हरिजनसेवक, ३–३–'४६

१७५
कामके सुझाव

अेक सज्जन लिखते हैं:

"आप अिस वक्त पूनामें हैं। अखबारोंसे पता चला है कि आप आगाखान साहबके दोस्त हैं। अुनके पास पानी है, पैसे हैं, जमीन है। अिसी तरह गवर्नर साहबका गणेशखिडका मैदान भी बहुत बड़ा है। क्या अिन दोनों जगहोंमें अनाज नहीं पैदा हो सकता? क्या अुसे पैदा करनेकी प्रेरणा अुनको आप नहीं दे सकते?

"आपको अुपवासमें विश्वास है। आपने यह भी लिखा है कि अुपवास सिर्फ धर्मलाभके लिअे नहीं, बल्कि आरोग्यके लिअे भी किया जा सकता है। क्या जिनको हमेशा खाना-पीना मिलता है, अुनको आप हफ्तेमें अेक दिन या तो अेक या अधिक समयका खाना छोड़नेको नहीं कह सकते? और अिस तरहसे भी अनाज नहीं बचाया जा सकता?

कहा जाता है कि अंकुर फूटने तक अनाजको पानीमें भिगोकर कच्चा खाया जाय, तो थोड़े अनाजसे काफी पुष्टि मिलती है। क्या यह ठीक है?"

मेरे खयालमें ये तीनों सूचनाअें ठीक हैं, और अुन पर अमल आसानीसे हो सकता है। जिनके पास जमीन और पानी है, अुनके लिअे पहली सूचना है; दूसरी जो ठीक खाते हैं अुनके लिअे; तीसरी सबके लिअे है। अिसका निचोड़ यह है कि जो चीज कच्ची खायी जा सकती है, अुसे कच्ची ही खानेकी कोशिश करनी चाहिये। अैसा ज्ञानपूर्वक करनेसे बहुत थोड़ेमें हम निर्वाह कर सकते हैं, अितना ही नहीं, बल्कि अुससे लाभ होता है। अगर सब लोग आहारके नियम समझ लें और अुनके अनुसार चलें, तो बहुत बचत हो सकती है, अिसमें सन्देह नहीं।

पूना, १-३-'४६
हरिजनसेवक, १०-३-'४६

१७६
हिन्दू और मुसलमान चाय वगैरा

स्टेशनों पर हिन्दू चाय और मुसलमान चाय वगैरा चीजें अलग-अलग बिकती हैं। बाज दफा खानेकी जगह भी अलग रहती है। कअी बार हरिजनोंको जगह भी नहीं मिलती। यह सब हमारी दुर्दशाकी निशानी है और अंग्रेजी सल्तनत पर धब्बा है। सल्तनत धर्मके मामलोंमें दखल न दे, यह मैं समझ सकता हूं। लेकिन स्टेशन पर अलग-अलग धर्मियोंके लिअे अलग-अलग चाय, पानी वगैराका अिन्तजाम रखना तो अलगपन पर मुहर लगाने जैसा हुआ। रेलवे और रेलवे-स्टेशन तो लोगोंके अैब दूर करने, अुनमें अेकता फैलाने, समाजमें सभ्यताके साथ बरतने और सफाअी वगैरा कामोंको सिखानेके सुन्दर साधन बन सकते हैं। अुसके बदले अिन बातोंमें लापरवाही बरती जाती है और रेलगाड़ी बुरी आदतोंको मजबूत करनेका साधन बन जाती है। पहले और दूसरे

दर्जोंमें सफर करनेवालोंको मौज-मजा करनेकी आदतमें अिजाफा करना सिखाया जाता है। तीसरे दर्जेके मुसाफिरों पर रेलवे निर्भर है, मगर अुनको सुविधा तो क्या कष्ट ही रहता है। तिस पर भी जब हिन्दू, मुसलमान वगैराके बीच छूतछातका भेद रखा जाता है, तो रेलके अधिकारी अयोग्यताकी हद तक पहुंच जाते हैं। अगर कोअी मुसाफिर भेदभाव रखना चाहे तो वह भले भूख-प्यासको बरदाश्त करे। रेलवालोंसे भेदभावको टिकानेके प्रबंधकी कोअी आशा न रखे।

यह दूसरी बात है कि मांसाहारी और शाकाहारी लोगोंके लिअे अुनके अनुकूल खाना मिलनेका प्रबंध होना चाहिये। वह प्रबंध तो आज भी है ही।

पूना, ७–३–'४६
हरिजनसेवक, १७–३–'४६

१७७

कुदरती अिलाजमें क्यों फंसा?

अैसे सवाल पूछे जा रहे हैं: क्या मेरे पास काम कम था? क्या मैं बूढ़ा नहीं हो गया हूं? क्या कोअी नये कामकी मुझसे आशा कर सकते हैं? ये सब सवाल किये जाने लायक हैं। मेरे लिअे भी सोचने लायक हैं। लेकिन मुझे भीतरसे अेक ही जवाब मिलता है। भीतर बैठा हुआ अीश्वर कहता है: "दूसरे कुछ भी कहें, तुझे अुससे क्या? डॉ० दीनशा जैसा साथी मैंने तुझे दिया है। तुम दोनों अेक-दूसरेको पहचानते हो। तुझे अपनी ताकत पर अेतबार है। बरसों कुदरती अिलाज तेरा शौक रहा है। तेरे पास अितनी पूंजी है। अुसे छिपा कर तू चोर बनेगा क्या? तेरे लिअे यह अच्छा नहीं होगा। अीशोपनिषद्का पहला मंत्र याद कर। जो तेरे पास है, अुसे तू दे दे। तेरे पास तेरा है क्या? जो तू अपना समझता था वह तेरा था नहीं, और है नहीं। सब मेरा है। यह जो तेरे पास बाकी है वह भी तू मेरे लोगोंको दे दे। अैसा करनेसे तेरे दूसरे काममें हर्ज नहीं होगा। शर्त यह है कि तू सब कुछ अनासक्त हो कर करेगा। तूने १२५

वर्ष तक जिन्दा रहनेकी अिच्छा की है। अिच्छा पूरी हो या न हो, तुझे क्या? तुझको खुद ही अपना धर्म समझना है। अुसका पालन किया कर और जीवन आनन्दसे चलाता जा।" अैसी बात मेरे कानोंमें गूंज रही है। अिस देहातमें आज मेरा तीसरा दिन है। मरीज आते रहते हैं। बढ़ते जाते हैं। वे खुश रहते हैं। मैं भी अुनकी सेवा करके खुश रहता हूं। यहांके लोग साथ दे रहे हैं। मैं जानता हूं कि अगर लोगोंके हृदयमें मैं प्रवेश कर सकूंगा, तो दर्दका नाश होगा ही। अिस देहातको और देहातियोंको साफ बनाना है। अैसा कुछ न बन पाये तो मुझे क्या? मैं तो हाकिमके हुक्मका ताबेदार हूं।

अुरुली, २५–३–'४६

हरिजनसेवक, ३१–३–'४६

१७८

पूंजीपति और हड़ताल

जब मजदूर लोग हड़ताल करें, तो पूंजीपतियोंको क्या करना चाहिये?

यह अेक बड़ा सवाल है। अिसका अेक रास्ता तो, जिसे अमेरिकाका रास्ता कहते हैं, गुण्डेबाजीसे ही क्यों न हो मजदूरोंका दमन करना है। मेरे खयालसे यह रास्ता गलत और घातक है। दूसरा और सच्चा रास्ता यह है कि हरअेक हड़तालके गुण-दोष पर विचार करके मजदूरोंके साथ पूरा अिन्साफ किया जाय। अिन्साफका मतलब जिसे मालिक अिन्साफ कहें वह नहीं, बल्कि जिसे मजदूर अिन्साफ मानें और आम जनता भी कबूल करे वह अिन्साफ है।

अव्वल तो हड़ताल हो ही क्यों? पहलेसे खयाल रखा जाय तो अिसकी नौबत ही न आये। मालिक और मजदूरका शुरूसे ही अैसा अच्छा ताल्लुक क्यों न रहे? अेक पंच हो, जिसके सामने दोनों पक्ष अपनी अपनी मांगें रख दें, और वह जो फैसला दे तुरन्त दोनों पक्ष पाक दयानतदारीसे अुस पर अमल करें।

यह देखा गया है कि जैसे-जैसे वक्त बीतता जाता है, मजदूरोंकी मांगें बढ़ती जाती हैं और अुन्हें कबूल करानेके तरीके भी नये निकलते जाते हैं। अुन तरीकोंमें हिंसाकी पूरी छूट रहती है। मालिकका माल खराब करना, मशीन बिगाड़ देना, नये या पुराने मजदूरोंको जबरदस्ती काम पर आनेसे रोकना, वगैरा घटनायें हों तो मालिक क्या करें?

मेरी रायमें तो मालिक और मजदूर बराबरीके हिस्सेदार हैं। और अगर किसीका हिस्सा ज्यादा है भी तो वह मजदूरोंका। लेकिन आज अिसका अुलटा हो रहा है; क्योंकि पूंजीपतियोंके पास बुद्धि है, या यों कहिये कि वे काम पूंजीवाले बुद्धिमानोंको अपने साथ मिला लेते हैं। अिसके अलावा वे धन संग्रह करके अुसका अुपयोग करना जानते हैं। अकेले अेक रुपयेकी शक्ति नहींके बराबर होती है। लेकिन बहुतसे रुपये अिकट्ठा करनेसे अुनकी जो सामूहिक शक्ति बनती है, वह जितने रुपये बढ़े हैं अुतनी गुनी नहीं, बल्कि अुससे कअी गुनी ज्यादा होती है। अिसीको संघ-शक्ति कहते हैं।

मजदूर बेहाल हैं। बहुतसे यूनियन और फेडरेशन होते हुअे भी अुनकी संघ-शक्ति नहींके बराबर है। फिर, बुद्धि भी अुनके पास थोड़ी होती है। अेक यूनियन दूसरे यूनियनकी जड़ काटता है। कम अक्ल होनेकी वजहसे खुदगरज और तूफानी लोगोंके चढ़ाने पर वे तूफान करने लगते हैं। ये तूफान करनेवाले लोग अहिंसाकी ताकतको नहीं समझते। अिसका नतीजा यह होता है कि मजदूरोंको नुकसान अुठाना पड़ता है। अगर मजदूर अहिंसाकी ताकतको सीख जायं, तो मेरा तो अनुभव है कि अैसे जिन्दा अिन्सानोंकी संघ-शक्तिके सामने पूंजीपतियोंके हाथमें जमा धनकी शक्ति बिलकुल तुच्छ है।

अिसलिअे पूंजीपतियोंको मेरी यह सलाह है कि मजदूरोंको सच्चा मालिक बनानेके लिअे अुन्हें अुनकी बुद्धि और शक्ति बढ़ानी चाहिये। अुनका फर्ज है कि मजदूरोंको अच्छी-से-अच्छी तालीम देकर अुनकी संघ-शक्तिको मजबूत करें।

सारे पूंजीपति अिस कामको अेक दिनमें तो नहीं कर सकते। अिस बीच हड़तालोंसे अुनका जो नुकसान होता है, अुसके लिअे वे क्या करें? अिस बारेमें मैं तो बिना किसी हिचकके यही कहूंगा कि कारखानोंका पूरा अधिकार मजदूरोंको सौंप कर मालिक लोग तुरंत वहांसे निकल जायं। क्योंकि कारखानों पर हड़तालियोंका भी अुतना ही अधिकार है, जितना मालिकोंका। यह सब गुस्सेमें नहीं, बल्कि अपनी सच्चाअी दिखाते हुअे किया जाना चाहिये। अगर मजदूर लोग मालिकोंसे अिंजीनियरों या दूसरे कारीगरोंकी मदद मांगें, तो वह भी अुन्हें देनी चाहिये। अिसमें मालिकोंका कोअी नुकसान नहीं होनेवाला है। वे सब तरहके विरोधसे बच जायेंगे और मजदूर भी अुन्हें धन्यवाद देंगे। अपने धनका सदुपयोग करनेवालोंमें अुनकी गिनती होगी। मैं अिसे परमार्थ नहीं, शुद्ध बुद्धि और नेक बरताव कहूंगा।

अुरुली, २३-३-'४६

हरिजनसेवक, ३१-३-'४६

१७९

भंगी-बस्तीमें क्यों ?

हो सके तो भंगी-बस्तीमें रहनेका मैंने अिरादा किया है। अिस पर दोस्तोंको ताज्जुब क्यों होता है? ताज्जुब तो अिसलिअे होना चाहिये था कि मैं अितने दिनों तक हरिजन-बस्तीमें रहने क्यों नहीं गया? 'क्यों नहीं गया' अिसका जवाब किसी और वक्त दूंगा। आज तो अिरादा क्यों किया है, वह बता दूं। मैंने कहा है कि हम अपनेको भंगी यानी अतिशूद्र मानें और वैसा ही बरताव भी रखें। मैं अैसा मानता तो हूं, लेकिन चलता नहीं। शायद सब तरह तो अैसे चलना असंभव-सा हो। लेकिन जितना हो सके अुतना तो करूं। मनमें कअी दिनोंसे अिस तरहके विचार अुठ रहे थे। अिसी बीच, जैसा कि 'हरिजन' में दे चुका हूं, खबर मिली कि गुजरातमें हरिजनोंके लिअे अेक ही कुआं खुला है। अिसी तरह मंदिर भी अेक ही।

यह सही है या गलत, अिस पर विचार न किया जाय। अिसका मेरे मन पर जो असर हुआ, वही यहां समझनेकी बात है। दिलमें अिस बातका गुस्सा नहीं होना चाहिये। मैंने तुरन्त सोचा कि अगर मैं ही हरिजनोंसे अलग रहता हूं, तो दूसरे क्या करें? यह सवाल तो ठीक था ही, लेकिन सच्ची बात तो यह थी कि दूसरे कुछ भी करें, मुझे अपना फर्ज अदा करना चाहिये। यही अेक बात है जो मुझ पर सवारी किये हुअे है, और मुझसे कहती है कि जहां मैं जाअू वहां मुझे हरिजन-बस्तीमें ही रहना चाहिये।

अिसीलिअे मैंने सेठ रामेश्वरदास बिड़लासे कहा कि जब मैं बंबअी आअू तो मेरे रहनेका अिन्तजाम भंगियोंकी बस्तीमें करें और वहां संभव न हो, तो कहीं किसी हरिजन-बस्तीमें। सेठ घनश्यामदास बिड़लाको भी मैंने तार किया है कि वे दिल्लीमें भी अैसा ही अिन्तजाम करें। भाअी ब्रजकृष्ण चांदीवालेका तार मिला है कि वहां वैसा बन्दोबस्त हो रहा है। जाहिर है कि अगर हरिजन भाअी-बहन ही अपनी बस्तीमें मेरा रहना बरदाश्त न कर सकें, तो मैं वहां नहीं रह सकता। अुनका दिल दुखाकर मैं अुनकी बस्तीमें कैसे रह सकता हूं? मगर मुझे अैसा कोअी डर नहीं है।

कुछ लोग खुश हुअे हैं कि मैं अब बिड़ला-हाअुसमें नहीं रहूंगा। वे नहीं जानते कि बिड़ला भाअियोंके साथ मेरा क्या संबंध है? कितने ही सालोंसे मैं बिड़ला भाअियोंसे सेवा ले रहा हूं। अपने सार्वजनिक कामके लिअे मैंने अुनसे काफी रुपये भी लिये हैं और लेता रहता हूं। आम लोग क्या जानें कि अुनके जीवनमें कैसा परिवर्तन होता रहा है? जो होता है वह दिखावेके लिअे नहीं। यह सब होते हुअे भी अुनके जीवनमें और मेरे जीवनमें बड़ा अन्तर है। अुससे न दुःख होना चाहिये, न ताज्जुब। सच्चा परिवर्तन दिलसे होता है। किसीके दबावसे किया हुआ परिवर्तन निकम्मा होता है। मुझमें न अैसा अभिमान है, न अैसी मूर्खता कि मैं सबको अपने जैसा बनानेकी आशा तक रखूं। यह कौन कह सकता है कि जो मैं करता हूं वह ठीक है, या जो दूसरे करते हैं वह ठीक है? मैं

अपने रास्ते पर रहूं और दूसरे अपने पर। हम सब भगवानके ताबे रहें। जैसे वह चलावे वैसे चलें, और अपने-अपने रास्ते पर चलते हुअे सबसे मैत्री रखें।

अुरुली, २५–३–'४६
हरिजनसेवक, ३१–३–'४६

१८०

नेताजी जिन्दा हैं?

अेक समय था जब अखबारोंमें खबर आयी थी कि नेताजीका स्वर्गवास हो गया। मैंने अुसे मान लिया था। बादमें कहा गया कि वह खबर गलत थी। तबसे मुझे लगा कि जब तक अुनका स्वप्न सिद्ध नहीं होता है तब तक वे मर नहीं सकते। अिसके अलावा अुनके बारेमें मैंने मान रखा था कि अपने दुश्मनोंको और अपने कार्यके लिअे जगतको भी धोखा देनेकी अुनमें भारी शक्ति थी। अुन्हें जिन्दा माननेके लिअे सिर्फ यही कारण मेरे पास थे। मुझमें भविष्य जाननेकी कोअी कला नहीं। सिवाय सत्यके आग्रहके मुझमें कोअी और शक्ति नही। अहिंसा भी अुसी आग्रहसे निकलती है। स्वतंत्र सत्यको जाननेवाला अीश्वर ही है—या कहो, सत्य ही अीश्वर है। अिसलिअे यह नहीं कहा जा सकता कि मुझमें स्वतंत्र सत्य है।

अैसी हालतमें जब कि मेरे पास नेताजीकी हस्तीके बारेमें प्रेरणाके सिवाय और कोअी प्रमाण नही है, मेरी मान्यता पर किसीको अपनी मान्यता निर्भर न करनी चाहिये।

मेरी मान्यताके विरुद्ध सख्त प्रमाण हैं। ब्रिटिश सरकारकी तरफसे तो नेताजीकी मौतका समर्थन किया जाता है। कप्तान हबीबुर्रहमान नेताजीकी मौतके समय अुनके साथ थे। वह अुनकी जलकर काली हुअी घड़ी अपने साथ लाये हैं। नेताजीके साथी श्री अय्यर भी मुझसे मिल चुके हैं। वह कहते थे कि अगर मेरी प्रेरणाका कोअी दूसरा

आधार न हो, तो मुझे अुनके जिन्दा होनेकी अपनी मान्यताको छोड़ देना चाहिये। अिन प्रमाणों पर मेरी सबसे प्रार्थना है कि वे मेरे आग्रहको भूल जायं, और आज जो सबूत हमारे सामने हैं अुन पर विश्वास करके मान लें कि नेताजी हमको छोड़कर चले गये। यह भी समझ लें कि परमेश्वरके आगे अिन्सानकी कोअी भी हिकमत काम नहीं आती। वही अेक सत्य है, और सिवाय सत्यके कुछ चल ही नहीं सकता।

अुरुली, ३०–३–'४६
हरिजनसेवक, ७–४–'४६

१८१

हिन्दुस्तानी

मुझे अिसमें शक नहीं कि हिन्दुस्तानी यानी हिन्दी-अुर्दूका सही मिलाप ही राष्ट्रभाषा है। लेकिन मैंने अपनी बोलीमें अुसे अब तक साबित नहीं किया। अिसलिअे 'हरिजनसेवक' की भाषा पर कोअी गुस्सा न करें। शायद यह अच्छा ही हुआ कि राष्ट्रभाषाके कामको अेक कच्चा आदमी हाथमें ले बैठा है। आखिर लाखों आदमी तो कच्चे ही होंगे। अुनके जतनसे ही दोनों भाषाके जाननेवाले हिन्दी और अुर्दूका अच्छा और आसान मेल पैदा करेंगे।

'हरिजनसेवक' के पढ़नेवाले अगर भाषाकी भूलें बताते रहेंगे, तो अुसकी भाषाको ठीक करने और ठीक रखनेमें मदद मिलेगी। यह कोशिश जरूर रहेगी कि 'हरिजनसेवक' की भाषा कानोंको मीठी लगे और सब हिन्दुस्तानी अुसे आसानीसे समझ सकें। जिस जबानको सब लोग न समझ सकें, वह निकम्मी मानी जाय। जो भाषा काम नहीं दे सकती वह बनावटी है। अैसी जबान बनानेकी सब कोशिशें बेकार साबित हुअी हैं।

अुरुली, ३०–३–'४६
हरिजनसेवक, ७–४–'४६

१८२

सवाल-जवाब

रामनाम

स० — क्या दिलमें रामनाम रखना काफी नहीं? अुसे जबानसे बोलनेमें कुछ है?

ज० — रामनाम लेनेमें खूबी है, अैसा मैं मानता हूं। जो आदमी जानता है कि राम सचमुच अुसके दिलमें है, अुसे रामनामका अुच्चारण करनेकी जरूरत नहीं, यह मैं कबूल कर सकता हूं। लेकिन अैसे आदमीको मैं नहीं जानता। अिससे अुलटा मुझे जाती अनुभव है कि रामनामके रटनेमें कुछ चमत्कार है। वह क्यों और कैसे, यह जाननेकी जरूरत नहीं।

हरिजनके साथ भोजन

स० — निरामिषाहारी सवर्ण हिन्दू मांसाहारी हरिजनके घर रोटी कैसे खा सकता है?

ज० — निरामिषाहारी सवर्ण हरिजनके घरमें निरामिष आहार जरूर ले सकता है। भोजन-व्यवहारके मानी यह कभी नहीं हो सकते कि जो कुछ मिले सो खा लिया जाय। यह जरूरी है कि खाना व बरतन साफ हों, और खाना साफ हाथोंसे पकाया हुआ हो। यही नियम पानीके लिअे भी होना चाहिये। सहभोजनके यह भी मानी नहीं कि हम अेक थालीमें खायें या अेक ही गिलाससे बगैर अुसे साफ किये पानी पीयें।

नअी दिल्ली, ६–४–'४६
हरिजनसेवक, १४–४–'४६

१८३

सवाल-जवाब

स० — अिस बार कांग्रेसके बहुमतवाले प्रान्तोंमें मंत्रियोंकी वेतन-वृद्धि किन सिद्धान्तों पर की जा रही है? क्या करांचीवाला कांग्रेस-प्रस्ताव आजकी परिस्थितिमें मौजूं न होता? यदि महंगाअीके प्रभावमें आकर अैसा किया है, तो क्या प्रान्तोंके बजटमें अैसी गुंजाअिश संभव है कि प्रत्येक सरकारी नौकरका वेतन तिगुना किया जा सके? यदि नहीं, तो क्या यह अुचित है कि मंत्री ५०० के १५०० कर लें और अेक अध्यापक और चपरासीको यह अुपदेश दिया जाय कि वह अपना गुजर १२ रुपये और १५ रुपये माहवारमें करे और शासन-प्रबन्धमें कोअी अस्थिरता अुत्पन्न न करे, क्योंकि कांग्रेस शासन चला रही है?

ज० — बात बिलकुल ठीक है कि मंत्रियोंको ५०० रुपये क्यों और चपरासी या शिक्षकोंको १५ रुपये क्यों? लेकिन सवाल अुठानेसे ही वह हल नहीं हो जाता। अैसे अन्तरका सिलसिला सनातन-सा है। हाथीको मन क्यों और चींटीको कण क्यों? अिस सवालमें ही जवाब भरा है। जितनी जिसकी हाजत है, अीश्वर अुसे अुतना दे देता है। मनुष्यकी हाजत हाथी और चींटीकी-सी स्पष्ट हो सके, तो कोअी शंका ही न अुठे। अनुभव तो हमें यही बताता है कि सब मनुष्योंकी हाजत अेकसी नहीं हो सकती, जैसे सब चींटियोंकी या सब हाथियोंकी होती है। भिन्न-भिन्न लोगों और भिन्न-भिन्न कौमोंकी हाजतें अलग-अलग रहती हैं। अिसलिअे आज तो जो अंतर है, अुसे कम-से-कम करनेका शांतिसे आन्दोलन करें, लोकमत बनावें और अेक आदर्श सामने रखकर अुसकी ओर कूच करें। जबरदस्तीसे या सत्याग्रहके नामसे दुराग्रह करके परिवर्तन नहीं कर सकेंगे। मंत्रीगण लोगोंमें से हैं। मंत्री बननेसे पहले भी अुनकी हाजतें चपरासियों जैसी नहीं थीं। मैं चाहूंगा कि चपरासी मंत्रीपदके लायक बनें तो भी अपनी हाजतें चपरासी जितनी

रखें। अितना समझ लें कि कोअी मंत्री बंधी हुअी मर्यादा तक तनख्वाह लेनेके लिअे बंधा नहीं है।

प्रश्नकारकी अेक बात सोचने लायक अवश्य है। क्या चपरासी १५ रुपयेमें बिना रिश्वत लिये अपना और कुटुम्बका गुजारा कर सकता है? यदि नहीं, तो अुसको काफी मिलना ही चाहिये। अिलाज यह है कि यथासंभव हम सब अपने-अपने चपरासी बनें और अितने पर भी जो आवश्यक हों, अुनको अुनकी हाजतके मुताबिक तनख्वाह दें और अिस तरह मंत्री और चपरासीके जीवनमें जो बड़ा अन्तर है अुसे मिटावें।

मंत्रियोंकी तनख्वाह ५०० से १५०० रुपये क्यों हुअी, यह भिन्न प्रश्न है। लेकिन मूल प्रश्नके मुकाबलेमें छोटा है। मूल हल हो सके, तो छोटा अपने-आप हल होता है।

नअी दिल्ली, १४-४-'४६

हरिजनसेवक, २१-४-'४६

१८४
क्यों नहीं ?

अेक बहनको मेरा यह कहना चुभता है कि अगर असेम्बलीकी मेम्बर बहनें कस्तूरबा-निधि-मंडलकी अेजेण्ट बनें, तो वह देहातियोंके सामने अेक खराब मिसाल होगी। वह कहती हैं कि अगर यह बात मौजूदा धारासभाओंके लिअे है, तो ठीक हो सकती है। लेकिन जब हमारा शासन होगा, तब तो शकल बदल जायगी। असेम्बलीके मेम्बर पथ-प्रदर्शक होंगे। अिसलिअे वहां जाना फायदेमन्द ही होगा। जिस कामको करनेमें यूं ही बरसों लग जाते हैं, वह काम असेम्बलीके मारफत अेक ही बैठकमें हो जायगा।

अिस दलीलमें तीन गलतियां हैं। अव्वल तो अैसी बात ही नहीं है कि मैंने आजकी और अपने शासन-कालमें होनेवाली असेम्बलीमें कुछ भेद किया है। अैसा भेद अनावश्यक है।

दूसरे, यह मानना कि अैसे मेम्बर पथ-प्रदर्शक होंगे, भ्रममूलक है। मतदाता किसीको असेम्बलीमें अिसलिअे नहीं भेजते कि वह मार्ग-दर्शन करा सकेंगे, बल्कि अिसलिअे भेजते हैं कि हम अुनके लिअे जो रास्ता तय कर दें अुस पर चलनेकी वफादारी अुनमें है। पथ-प्रदर्शक तो हम हैं, मेम्बर नहीं। वे सेवक हैं, स्वामी नहीं। आजका यह भ्रम अिस शासनका पैदा किया हुआ है। जब यह भ्रम दूर हो जायगा, तो मेम्बर बननेवालोंकी भरमार बहुत कम हो जायगी। धर्म समझकर जानेवाले थोड़े ही होंगे। वे हमारी अिच्छासे वहां जायेंगे। असेम्बलीमें जानेकी कोअी जरूरत हो सकती है तो वह आज है, जब कि वहां जाकर लोक-शासनके लिअे लड़ना है। लेकिन आज तो कुछ हद तक हमने यह भी देख लिया है कि वहां पहुंचकर लोक-शासनके लिअे लड़ाअी कम होती है।

तीसरी गलती यह माननेमें है कि असेम्बली ही मार्गदर्शन करानेका सच्चा रास्ता है। अपने अिर्द-गिर्द देखनेसे पता चलता है कि दुनियाभरमें पथ-प्रदर्शक ज्यादातर तो असेम्बलियोंके बाहर रहनेवाले ही होते हैं। अगर अैसा न रहे, तो लोक-शासन सड़ जाय। क्योंकि मार्गदर्शन करानेका क्षेत्र तो बड़ा है और असेम्बलीका बहुत छोटा। लोक-जीवनकी धारा महासागर है, जब कि असेम्बली अेक बहुत छोटी नदी।

नअी दिल्ली, २०–४–'४६
हरिजनसेवक, २८–४–'४६

१८५

कातनेसे स्वराज्य कैसे ?

चरखा-संघके अेक सेवक लिखते हैं :

"जब कत्तिनोंको खादीधारी बनाना है, अुन्हें समझ-बूझकर कातना सिखाना है, तो व्यापारिक काम तो कम ही हो सकेगा। यह सब ठीक है। मैं नअी योजना या चरखा-संघकी नअी नीतिको बहुत पसन्द करता हूं। लेकिन यह खत लिख कर आपको अिसलिअे तकलीफ देता हूं कि आपने 'हरिजन' में जो लिखा है वह और ज्यादा साफ हो जाय। आप लिखते हैं: 'कातनेवालोंको अुनके पैरों पर खड़ा करना और अुनके कामोंके मारफत हिन्दुस्तानकी आजादी हासिल करना चरखा-संघका अुद्देश्य या मकसद है। . . . कातनेवालोंको कताअीसे पहले और बादकी सब क्रियायें सीख लेनी चाहिये — यह स्व-राज्यका रास्ता है।' यह ठीक है कि कातनेवाले खेतसे कपास चुननेसे लेकर तुनाअी, पुनाअी, पिंजाअी और बुनाअी वगैराकी सब क्रियायें सीख कर खुद ही अिन कामोंको करने लगें तो अुनकी मजदूरी बढ़ेगी और सूत और खादी अच्छी तैयार होगी। स्वावलम्बन बढ़ेगा। लेकिन अिससे आजादी कैसे हासिल होगी? स्वराज्य कैसे आवेगा? हमें अिस बारेमें कातनेवालोंको क्या-क्या समझाना होगा? कृपाकर अिन तमाम बातोंको खोल कर समझाअिये, जिससे काम करनेवाले खुद समझ सकें और कातनेवालोंको समझा सकें।"

मान लीजिये कि सब कत्तिनें अूपर जो कुछ कहा गया है वह सब जबरदस्तीसे नहीं, बल्कि समझकर करती हैं, तो हिन्दुस्तानकी हालत कैसी होगी? करोड़ों कत्तिनोंके खड़े होनेका मतलब है लाखों जुलाहोंका तैयार होना। अिस जागृतिको पैदा करनेके लिअे कितने सेवकों और सेविकाओंकी जरूरत होगी? अगर अुस वक्त हिन्दुस्तानमें मिलें चलती होंगी, तो वे दूसरे देशों पर निर्भर करेंगी। गरीब

देहातियों और शहरियों पर भी अुनका आज जैसा साम्राज्य चल नहीं सकेगा। हिन्दू-मुसलमान अेक हो जायेंगे। सब सच्चे बनेंगे। किसीको खद्दर पहननेके लिअे कहना नहीं पड़ेगा। सिवा खद्दरके दूसरे कोअी कपड़े देखनेमें नहीं आयेंगे। अितनी भारी तबदीलीमें स्वराज्य तो छिपा ही है। यह सबके लिअे स्वयं-सिद्ध होना चाहिये। प्रश्नमें ही अिसको असम्भव-सा माना गया है; यानी प्रश्न पूछनेवालेने अपनी कल्पना-शक्तिका अभाव दिखाया है। अुनका यह पूछना ठीक है कि अैसी तालीम किस तरह दी जाय, जिससे कत्तिनें बताये हुअे तरीके पर काम करें। अिस जवाबकी खोज करना ही चरखा-संघका खास काम है। अब तक अैसी खोज नहीं हो पायी है। चरखा-संघमें जितने सेवक हैं, अुनका तो यह धर्म है। अब तो काफी सूबोंमें कांग्रेसी लोगोंके हाथोंमें हुकूमत भी आ गअी है। सब सेवक खोज करें और अपने क्षेत्रमें विजयी बनें। चरखा-संघके दफ्तरकी तरफ देखनेसे सफलता नहीं मिल सकती।

नअी दिल्ली, २६–४–'४६
हरिजनसेवक, ५–५–'४६

१८६

बन्दरोंकी शरारत

बन्दरोंकी शरारतसे लोग थक जाते हैं। दिलमें तो खुद भी अुनको मारते हैं और कोअी मारे तो खुश होते हैं। लेकिन तो भी जब कोअी अुनको मारता है, तो वे ही लोग अुसका विरोध करते हैं। अेक भाअी, जो शास्त्रादिके अभ्यासी हैं, लिखते हैं कि बन्दर कैसे रसोअी बिगाड़ते हैं, चीजें अुठा ले जाते हैं, फलमात्र खा और बिगाड़ जाते हैं, यहां तक कि बच्चोंको भी अुठा ले जाते हैं। दिन-दिन अुनकी बढ़ोतरी होती है। वह मुझसे पूछते हैं, 'अुनके लिअे अहिंसा क्या कहती है?'

मेरी अहिंसा मेरी ही है। जीवदयाका जो अर्थ किया जाता है, अुसे मैं हजम नहीं कर सकता। जो जीव मनुष्यको खा जायें या अुसका नुकसान करें, अुन्हें बचानेकी दया मुझमें नहीं है। अुनकी बढ़ोतरीमें हिस्सा लेना मैं पाप समझता हूं। अिसलिअे मैं चींटियों, बन्दरों और कुत्तोंको खाना नहीं खिलाअूंगा। अुन जीवोंको बचानेके लिअे किसी मनुष्यको मैं कभी नहीं मारूंगा।

अिस तरह विचार करते हुअे मैं अिस नतीजे पर आया हूं कि बन्दर जिस जगह अुपद्रव-रूप हो गये हैं, अुस जगह अुनको मारनेमें जो हिंसा होती है वह क्षम्य है। अैसी हिंसा धर्म होती है।

यह सवाल अुठ सकता है कि मनुष्यके लिअे भी यही नियम क्यों न लगाया जाय? मनुष्यके लिअे यह नहीं लग सकता, क्योंकि वह हमारे जैसा ही है। ओश्वरने मनुष्यको बुद्धि दी है, जो मनुष्येतर प्राणीको नहीं दी।

नअी दिल्ली, २६–४–'४६

हरिजनसेवक, ५–५–'४६

१८७

सफेदपोशों पर आरोप

"मैं स्त्री हूं, पर . . . विषयमें आपको लिखना अुचित समझती हूं। लगभग तीन मास हुअे . . . का नौकर . . . में . . . के पास ठहरा था। कांग्रेसी लोगोंके बारेमें मेरे विचार बड़े पवित्र थे, अिसलिअे . . . के संपर्कमें मैं आ गअी। मैं रोज चरखा कातती थी। वह दुष्ट भी रोज आया करता था और मुझे बेटी कहकर पुकारता था। मैं भी अुसको चाचाजी कहा करती थी। अेक दिन शामको अेक मोटर कार आअी। दुष्ट . . . ने मुझे कहा: 'बेटी, कभी मोटर कारमें भी बैठी हो? अगर नहीं बैठी हो तो आओ, आज तुमको बैठाकर सैर करा लावें।' मुझे अुस पर किसी प्रकारका सन्देह न हुआ

और मैं अुसके साथ मोटर कारमें बैठ गअी। कारमें मुझे सीधा . . . लाया गया। और मेरे मुंहमें कपड़ा ठूंस दिया गया, जिससे मैं बोल न सकूं। अुसके बाद मैं . . . लाअी गअी और मेरे धर्मको बिगाड़नेका कुछ दिन तक प्रयत्न किया गया। कअी बार भागना चाहा पर भाग न सकी। पिस्तौलका डर दिखाया जाता था और मैं डर जाया करती थी। जानका मोह हरअेकको होता है। अेक सेठ . . . हैं, जो कि . . . के बड़े धनी सेठ हैं और सुना है कांग्रेसके बड़े नेता हैं। अेक दिन वे मेरे पास आये। अुन्होंने कहा : 'मेरे साथ . . . चली चलो, हम दोनों बड़े मजे अुड़ायेंगे।' दुष्ट . . . मेरी ओर देखकर हंस रहा था। सच कहती हूं महात्माजी, जैसा बरताव अिस चाण्डाल सेठने मेरे साथ किया वह वर्णनके बाहर है। और भी बहुतसे लोग हैं जिनके नाम मैं नहीं जानती। पर अिस सेठने अुस बुढ़ियाको ५०० रुपये दिये थे। बुढ़ियाने मुझको यह बतलाया कि यह बड़ा धनी सेठ है, अिसके साथ चली जा, मजेमें रहेगी। अेक दिन शामको . . . की सहायतासे मुझे अिस नरककुण्डसे निकाल लिया गया।"

मुझे अैसे काफी खत मिले हैं। अुनमें कांग्रेसके नामी लोगों पर व्यभिचारका आरोप है। सब खत बनावटी हैं, अैसा मानकर बैठे रहना अुचित नहीं लगता। यह किसीने कभी दावा नहीं किया है कि सब कांग्रेसी अच्छे हैं। यह अभिमानकी बात है कि 'कांग्रेसमें कुछ भी अैब नहीं होना चाहिये' अैसी मान्यता रहती है। व्यभिचारादि हर किस्मके लोगोंमें चलता है। मेरा कर्तव्य अितना है कि अगर यह अिलजाम किसीको भी लागू होता है, तो अुसे दुरुस्त किया जाय। व्यभिचार करनेमें भी कुछ मर्यादा तो रहती है। अगर मुझे लिखनेवालोंने सब झूठी बातें नहीं लिखी हैं, तो यहा निर्दोष लड़कियोंको फुसलाने तक बात चली गअी है।

नअी दिल्ली, २८–४–'४६

हरिजनसेवक, ५–५–'४६

१८८

धनिकोंका दान

अेक सज्जन लिखते हैं। अुसका निचोड़ यह है:

"आप धनिकोंसे काफी दान लेते हैं। अुसका सदुपयोग ही होता होगा अिसमें शक नहीं। सवाल तो यह है कि क्या अैसा दान किसी भी काममें ला सकते हैं? क्या अुससे दानियोंकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती? अिसमें तो ब्लैक मार्केटवाले भी आते हैं। अिस दानसे गरीबोंको कुछ भी लाभ हो सकता है?"

अिसकी तहमें सवाल तो यह आता है कि दानमात्र दूषित है। है, अिसमें भी मेरे मनमें शक नहीं है। लेकिन दुनिया अिस तरह चलती नहीं। गीताकारने तो कहा है कि सब आरम्भ दूषित होते हैं। अिसलिअे सब कार्य अनासक्तिसे ही करो। 'ओशोपनिषद्' कहता है, सब ओिश्वरार्पण करके ही करो। अगर सब लोग दान लेना ही बन्द कर दें, तो भी हमें मानना पड़ेगा कि धनिक धन अिकट्ठा करना नहीं छोड़ेंगे। हम यह भी जानते हैं कि चन्द धनिक अैसे कंजूस होते हैं कि कुछ दान ही नहीं देते। चन्द दुरुपयोगी दान देते हैं। अिसलिअे अितना ही कहा जा सकता है कि दान लेनेमें हम मर्यादा रखें, स्वार्थलाभके लिअे अेक कौड़ी भी न लें। जो कुछ लें, अुसमें ओिश्वरको साक्षी समझें।

हां, अितना कहूंगा सही कि अगर हम किसी वर्गके या व्यक्तिके प्रति कटु भाव रखते हों, तो हमें अुसका दान नही लेना चाहिये। जिनके मनमें नीति-अनीतिका भाव पैदा होता है अुनके लिअे ही अैसी चर्चा हो सकती है।

शिमला, ५–५–'४६

हरिजनसेवक, १२–५–'४६

१८९

शिमलाके वाल्मीकि

वाल्मीकिके मानी भंगी हैं, सो तो पाठक जानते ही होंगे। अुनके रहनेके घर बहुत ही खराब जगहमें हैं। अुनकी ओर कोअी ध्यान नहीं देते हैं। राजकुमारीजीने मेहनत की है, लेकिन अकेली वे क्या कर सकती हैं? मैं तो वहां तक जा नहीं सका हूं। बादशाहखान, जो मेरे साथ रहते हैं, अुनको जानेकी बिनती की थी। अुनका अहवाल बताता है कि अिन भाओ-बहनोंको बुरी तरह रखा जाता है। अुन भाअियोंमें से कअी मेरे पास आ गये थे। अपने दूसरे दुःखोंकी कथा भी अुन्होंने सुनाअी। मेरा खयाल है कि अगर अुनकी रहनेकी हालतमें दुरुस्ती हो जाय, तो बाकी सुधार हो ही जायगा। शिमलाके लोगोंका और म्युनिसिपैलिटीका धर्म है कि अिस गन्दगीके बारेमें जो हो सकता है, सो जल्दी ही करें।

हम अुतने ही शुद्ध हो सकते हैं, जितने हममें से छोटे-से-छोटे शुद्ध हैं।

शिमला, १३–५–’४६

हरिजनसेवक, १९–५–’४६

१९०

सवाल-जवाब

स० — कांग्रेसके विधानमें ‘हाथ-कती हाथ-बुनी’ खादी चुनावमें खड़े होनेवालोंके लिअे आदतन् पहनना जरूरी रखा गया है। क्या अिसके यह मानी नहीं हैं कि वह खादी अखिल भारत चरखा-संघसे प्रमाणित होनी चाहिये?

ज० — मेरी दृष्टिमें तो चरखा-संघसे प्रमाणित खादी ही खादी हो सकती है।

स० — क्या अप्रमाणित खादीका व्यापार करनेवाला कांग्रेस-कमेटीके ओहदेदारोंके चुनावमें खड़ा हो सकता है?

ज० — मेरी समझमें आ ही नहीं पाता कि अप्रमाणित खादीका व्यापार करनेवाला कोअी कांग्रेसमैन कैसे हो सकता है या ओहदेदारोंके चुनावमें कैसे आ सकता है ?

स० — आप कहते हैं कि अप्रमाणित खादीका व्यापार करने-वाला कांग्रेसी कैसे हो सकता है ? ओहदेदार बननेकी तो बात ही क्या ? लेकिन जो लोग मिलोंके कपड़ेका व्यापार करते हैं और विदेशी कपड़ा भी बेचते हैं पर खादी पहन लेते हैं, वे कांग्रेसके ओहदेदार बने हुअे हैं। अुनका क्या ?

ज० — मैं तो अैसे लोगोंके लिअे भी यही कहूंगा । अैसे ही कारणोंसे मैंने अिस हफ्तेके 'हरिजन' में सलाह दी है कि कांग्रेसके विधानसे खादीकी धारा ही हटा दी जाय, क्योंकि अनुभव हमें सिखाता है कि हम अिस शर्तका पालन करनेमें असमर्थ हैं।

शिमला, ८–५–'४६
हरिजनसेवक, १९–५–'४६

१९१
हिंसा कैसे रोकें ?

स० — कुछ दिन पहले मैं पूनामें अेक अंग्रेज मिलिटरी अफसरसे मिला था। वह विलायत जा रहे थे। अुन्होंने मुझसे कहा कि अब हिन्दु-स्तानमें हिंसा बढ़ रही है और आगे और भी बढ़ेगी। लोग अहिंसाके रास्तेको छोड़ते जा रहे हैं। अुन्होंने यह भी कहा : "हम लोग हिंसामें मानते हैं। हिंसासे हमारा जीवन बंधा पड़ा है। कअी गुलाम देशोंने हिंसाके जरिये अपनी आजादी हासिल की है, और आजकल वे सुखसे दिन बिता रहे हैं। हमने हिंसाको रोकनेके लिअे अणु-गोला भी निकाला। दुनिया जानती है कि किस तरह थोड़े वक्तके अंदर ही हमने खूंखार लड़ाअीको अणु-गोलेकी मददसे बन्द कर दिया।"

साहब बहादुर और कहने लगे : "हिन्दुस्तानमें महात्मा गांधीने लोगोंको अहिंसाका रास्ता बताया है । लेकिन क्या गांधीजीने अणु-

गोले जैसी कोअी चीज निकाली है, जिसका अिस्तेमाल करनेसे लोग फौरन अहिंसाके रास्ते आ जायं और देशमें शांतिका राज्य कायम हो जाय? क्या अब गांधीजीका अणु-गोला देशको हिंसाके रास्ते जानेसे रोक नहीं सकता?"

फिर वह मुझसे बोले: "आप अपने गांधीजीसे क्यों नहीं कहते कि वे अिस वक्त देश पर अपनी शक्ति छोड़ें, जिससे लोग हिंसाके रास्तेको तर्क कर दें और फिरसे सब मिलकर अहिंसा अख्तियार कर लें? मैं तो कहता हूं कि अगर गांधीजी अिस भीषण हिंसाको, जो आज सारे हिन्दुस्तानमें फैल रही है, अभीसे नहीं रोकेंगे, तो बादमें अुनको बहुत ही दुःखी होना पड़ेगा और अुनका अितने दिनोंका काम बरबाद हो जायगा।"

आशा है, आप कृपाकर अिन अंग्रेज अफसरकी शंकाका जवाब देंगे।

ज० — अिस सवालमें काफी विचारदोष पाता हूं। अणु-गोलेने हिंसाको नहीं रोका है। लोगोंके मनमें तो हिंसा भरी ही है, और तीसरी लड़ाअीकी तैयारियां होती दिखाअी पड़ती हैं। यह कहना फजूल है कि हिंसासे किसीको सुख-चैन मिला है। फिर भी यह कोअी नहीं कहता कि हिंसासे कुछ हो ही नही सकता।

मैं हिंसाको रोक न सकूं तो मुझे पछताना पड़ेगा, अैसी कोअी बात अहिंसामें हो ही नहीं सकती। कोअी भी आदमी हिंसाको रोक नहीं सकता। अीश्वर ही हिंसाको रोक सकता है। मनुष्यको तो वह निमित्तमात्र बनाता है। हिंसा किसी बाहरी प्रयोगसे रोकी नहीं जा सकती। लेकिन अिसका यह मतलब नहीं कि कोअी बाहरी प्रयोग हो नहीं सकता या होता नहीं। बाहरी अुपायोंके होते हुअे भी वह रुकी तो अीश्वरकी कृपासे ही रुकेगी। हां, अितना कहूंगा कि 'अीश्वरकी कृपा' रूढ़ प्रयोग है। अीश्वर अपने कानूनके मुताबिक ही चलता है। अिसलिअे हिंसा अुस कानूनके मुताबिक ही रुकेगी। हम अीश्वरके सब कानूनोंको जानते नहीं हैं, न कभी पूरे-पूरे जानेंगे। अिसलिअे जो प्रयत्न हमसे बन सके, सो हम करते रहें। अितना और भी कह दूं कि

मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तानमें अहिंसाका प्रयोग काफी हद तक सफल हुआ है। मैं मानता हूं कि सवालमें जो निराशा जाहिर की गअी है अुसकी कोअी गुंजाअिश नहीं है। आखिर अहिंसा जगतका अेक महान सिद्धान्त है। अुसे कोअी मिटा नहीं सकता। मेरे जैसे हजारोंके अुस पर अमल करते-करते मर जानेसे भी वह सिद्धान्त मिट नहीं सकता। मरकर ही अहिंसाका प्रचार बढ़ेगा।

शिमला, ९–५–'४६

हरिजनसेवक, १९–५–'४६

१९२

अंग्रेजी भाषाका प्रभाव

"आप हिन्दुस्तानीके प्रचारके लिअे अनथक प्रयत्न कर रहे हैं। आपको यह भी अच्छा नहीं लगता कि कोअी भारतवासी अपने प्रान्तकी भाषा या हिन्दुस्तानी भाषाके अतिरिक्त विदेशी भाषामें बोलें या लिखें। लेकिन हमारे कहे जानेवाले कौमी अखबारोंका, जो अंग्रेजीमें निकलते हैं और साथ ही हिन्दुस्तानी या प्रान्तीय भाषाका अखबार भी निकालते हैं, कौमी भाषाके प्रचारकी ओर जो बरताव है, अुसकी तरफ मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं और पूछना चाहता हूं कि अिस तरह कौमी भाषाको कैसे प्रोत्साहन मिल सकता है? आप किसी अंग्रेजी भाषाके कौमी अखबारके खर्चका और अुसी जगहसे निकलनेवाले देशी भाषाके अखबारके खर्चका मुकाबला करें। आप देखेंगे कि जो वेतन अंग्रेजी अखबारके महकमेको दिया जाता है, अुसका १० वां हिस्सा भी देशी भाषाके महकमेवालोंको नहीं दिया जाता। अंग्रेजी अखबारका संपादक २,००० रुपये माहवार पाता है, और हिन्दी अखबारका संपादक २०० रुपये माहवार भी नहीं

पाता। अंग्रेजी भाषावालोंको सब सहूलियतें मौजूद हैं। खबरें सीधी टेलिप्रिण्टर पर आती हैं और अुन्हें कंपोज कर दिया जाता है। हिन्दीवालोंको तरजुमा करना पड़ता है। दुगुनी मेहनत करनी पड़ती है। फिर भी न अुनकी कदर है, न अुनको कोअी प्रोत्साहन है। फिर वे क्यों अपनी भाषाके लिअे सरमारी करें, जब कि वे देखते हैं कि अंग्रेजीवालोंकी ही सब जगह कदर है, और अुनको कम मेहनत करने पर भी खूब पैसे दिये जाते हैं? यह भी देखनेकी बात है कि देशी भाषाके अखबारोंकी बिक्री अंग्रेजी अखबारोंसे कुछ कम नहीं है, बल्कि ज्यादा ही होगी। मगर जैसे रेलवेवाले तीसरे दरजेके मुसाफिरोंसे सबसे ज्यादा पैसा कमाते हैं और अुनके आरामकी तरफ ध्यान न देकर दूसरे और पहले दरजेके मुसाफिरोंकी तरफ ही ध्यान रखते हैं, वैसा ही बरताव ये अंग्रेजी अखबारवाले हिन्दुस्तानी या प्रान्तीय भाषाके जानकारोंके साथ कर रहे हैं। अपनी बहुत दिनोंकी यह शिकायत 'हरिजनसेवक' के जरिये जवाब पानेके लिअे मैंने आपके सामने रखी है।"

यह खत अेक मेहनती सेवकने लिखा है। अुसने जो लिखा है, अुसे वह जानता है। लेखककी यह शिकायत सारे हिन्दुस्तानको जाहिर है। बात तो यह है कि अंग्रेजीका प्रभाव और मोह कैसे मिटे? अुसे मिटाना स्वराज्यकी लड़ाअीका बड़ा हिस्सा है। नहीं है, तो स्वराज्यके मानी बदलने होंगे। गुलामीमें गुलामको अपने सरदारकी रहन-सहनकी नकल करनी पड़ती है। अुसे सरदारका लिबास, सरदारकी भाषा वगैराकी नकल करनी होगी, यहां तक कि रफ्ता-रफ्ता वह और कुछ पसन्द ही नहीं करेगा। जब स्वराज्य आयेगा, जब अंग्रेजी हुकूमत अुठ जायेगी, तब अंग्रेजीका प्रभाव भी अुठ जायेगा। अिस बीच जिनके दिलमें अंग्रेजीका प्रभाव मुल्कके लिअे हानिकर सिद्ध हुआ है, वे सिर्फ राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीका या अपनी मातृभाषाका ही प्रयोग करेंगे।

अंग्रेजी जाननेवाले राष्ट्रभाषा जाननेवालोंसे १० गुना ज्यादा कमाते हैं सो सही है। अिसका अुपाय भी हमारे हाथोंमें है।

अैसे लोगोंका दाम तो अंग्रेजी सल्तनतके जानेसे अेकदम गिरना चाहिये। असलमें तो अैसा कभी होना ही न चाहिये था, क्योंकि आज अंग्रेजी जाननेवाले जितना लेते हैं अुतना देने लायक यह मुल्क हरगिज नहीं है। हम गरीब मुल्कके हैं और जब तक गरीब-से-गरीब भी आगे नहीं बढ़ते हैं तब तक बड़ी तनख्वाह लेनेका हमें कोअी हक नहीं है। सही बात तो यह है कि राष्ट्रभाषामें या मातृभाषामें जो अखबार निकलते हैं अुन्हें पढ़नेवाले अुनकी कीमत घटा या बढ़ा सकते हैं। अगर हम अंग्रेजी अखबारोंको धर्मपुस्तक समझना छोड़ दें और जो अखबार हमारे प्रान्त या राष्ट्रकी भाषामें निकलते हैं अुन्हींका आदर बढ़ा दें, तो अखबारवाले समझ जायेंगे कि अब अंग्रेजी अखबारकी कीमत नहीं रही है। अैसा कुछ हो भी रहा है। अेक जमाना था कि जब मातृभाषामें या राष्ट्रकी भाषामें निकलनेवाले अखबार कम पढ़े जाते थे। अब तो अैसे अखबारोंकी संख्या बढ़ गअी है, ग्राहकोंकी संख्या भी बढ़ रही है।

लेकिन जैसे जनताका धर्म रहा है, वैसे ही भाषाप्रेमी अखबारवालोंका भी कुछ धर्म है। यह दुःखकी बात है कि राष्ट्रभाषामें या प्रान्तोंकी भाषामें या कहिये कि मादरी जबानमें जो अखबार निकलते हैं अुन्हें चलानेवाले भाषाका गौरव बढ़ाते नहीं। और अुनमें छपनेवाले लेखोंमें मौलिकता कम रहती है। अिन दोषोंको दूर करना अखबारवालोंका ही काम है।

नअी दिल्ली, २१–५–'४६

हरिजनसेवक, २६–५–'४६

१९३

अुरुलीकांचनमें कुदरती अुपचार

हिन्दुस्तानके देहातमें कुदरती अुपचार कैसे चल सकता है, कांचन गांव अुसका अेक नमूना बन सकेगा, अिस अुम्मीदसे और कांचननिवासियोंके कहनेसे मैं वहां चला गया और काम शुरू किया। ग्रामवासियोंने मदद की। वहां जो जमीन मिलनेवाली थी और मकान बननेवाले थे, सो तो कुछ हो नहीं सका है। देहातियोंने पैसे तो दिये हैं, लेकिन पैसे देनेसे काम नहीं निपटता है। लोगोंको जमीन ढूंढ़नी चाहिये, मकान बनानेमें मदद करनी चाहिये। लोगोंका अिस काममें रस लेना पैसे देनेसे ज्यादा जरूरी है।

लेकिन जो मैं लिखना चाहता हूं सो तो दूसरी चीज है। वहांके सेवक मुझे लिखते हैं कि कांचनवासी कुदरती अुपचारको समझने लगे हैं और अुसकी कदर करते हैं। सेवकोंको अितना भरोसा हो गया है कि मैं जून महीने तक भी कांचन गांवमें न पहुंचूं तो कोअी फिकर नहीं। वे कहते हैं कि कांचन गांवमें लोगोंकी तरफसे अैसा सुन्दर साथ मिल रहा है कि मैं पंचगनी-महाबलेश्वरसे अुतरकर ही कांचन जाअूं, तो भी कोअी हर्ज नहीं। यह सब सुनकर मुझे अच्छा लगता है, और अिससे अैसा अनुमान किया जा सकता है कि दूसरे देहात भी कुदरती अुपचारकी कदर करेंगे।

कुदरती अुपचारके दो पहलू हैं: अेक, अीश्वरकी शक्ति यानी रामनामसे दर्द मिटाना; और दूसरे, अैसे अुपाय करना कि दर्द पैदा ही न हो सके। मेरे साथी लिखते हैं कि कांचन गांवके लोग गांवको साफ रखनेमें मदद देते हैं। जिस जगह शरीर-सफाअी, घर-सफाअी और ग्राम-सफाअी हो, युक्ताहार हो और योग्य व्यायाम हो, वहां कम-से-कम बीमारी होती है। और अगर चित्तशुद्धि भी हो, तो कहा जा सकता है कि बीमारी असम्भव हो जाती है। रामनामके बिना चित्तशुद्धि

नहीं हो सकती। अगर देहातवाले अितनी बात समझ जायं तो वैद्य, हकीम या डॉक्टरकी जरूरत न रह जाय।

कांचन गांवमें गायें नामको ही हैं। अिसे मैं कमनसीबी मानता हूं। कुछ भैंसें हैं, लेकिन मेरे पास जितने प्रमाण हैं वे बताते हैं कि गाय सबसे ज्यादा अुपयोगी प्राणी है। गायका दूध भी खानेमें आरोग्य-प्रद है और गायका जो अुपयोग किया जा सकता है वह भैंसका कभी नहीं किया जा सकता। मरीजोंके लिअे तो वैद्य लोग गायके दूधका ही अुपयोग बतलाते हैं। अिसलिअे मैं अुम्मीद रखूंगा कि कांचनवासी अुरुलीमें गायोंका अेक जूथ रखेंगे, जिससे सब लोगोंको गायका ताजा और साफ दूध मिल सके। सेहत अच्छी रखनेके लिअे दूधकी बहुत ज्यादा जरूरत रहती है।

मकान जितने जल्दी बन सकें अुतना ही अच्छा है। अेक बात तो यह है कि श्री दातारके बंगलेका अुपयोग कहां तक करना ठीक होगा, और दूसरी व ज्यादा महत्त्वकी बात यह है कि जब तक मकान नहीं बनता तब तक सब अुपचार आसानीसे किये नहीं जा सकते। कभी-कभी मरीजोंको अुपचार-गृहमें रखना भी जरूरी हो जाता है। मैं आशा यह रखूंगा कि कांचन ग्राम सब तरहसे आदर्श गांव बने। कुदरती अुपचारके गर्भमें यह बात रही है कि मानव-जीवनकी आदर्श रचनामें देहातकी या शहरकी आदर्श रचना आ ही जाती है और अुसका मध्यबिन्दु तो अीश्वर ही हो सकता है।

नअी दिल्ली, २१–५–'४६

हरिजनसेवक, २६–५–'४६

१९४

गरीबोंके लिअे कुदरती अिलाज

स० — जब आप गरीब आदमियोंसे जुवारकी 'भाखरी' छोड़कर मोसम्बीका रस या दूसरे फल और दूध लेनेको कहते हैं, तो यह गरीबीका अुपहास करने जैसा लगता है। मैंने देखा है कि गरीब देहाती अपनी तंगदस्तीको छिपानेके लिअे 'भाखरी' खाकर भी हमसे कहते थे कि अुन्होंने दूध पिया है। अिन गरीब आदमियोंके लिअे तो जीवनका मतलब दिन-रात काममें जुटे रहकर किसी तरह अपने बच्चोंका और अपना पेट भर लेना ही है। अुन्हें अपनी जानकी अितनी परवाह नहीं होती जितनी अपने खेत और बच्चोंकी। कअी देहातियोंने मुझे बतलाया है कि वे जमीदार और साहूकारके नौकरोंकी गाली और लात-घूंसे सहनेके बनिस्बत बुखारसे मर जाना ज्यादा पसन्द करते हैं। देहातियोंकी आजकी माली हालतको देखकर मैं कह सकता हूं कि कुदरती अिलाज सिर्फ अुन लोगोंके लिअे है, जिनके पास पैसा है और वक्त है; अुन गरीबोंके लिअे नहीं, जो अेक घण्टेकी भी देर कर दें तो अुन्हें मजदूरी न मिले और अुनको व अुनके बाल-बच्चोंको फाका करना पड़ जाय।

अगर वाकअी आप कुदरती अिलाजके जरिये गरीब देहातियोंकी सेवा करना चाहते हैं, तो आपको अैसे अुपचार-गृह खोलने चाहिये, जहां रोगियोंके रहनेकी व्यवस्था हो, अुन्हें खाने-पीनेको रस और दूध मिल सके और ओढ़ने-बिछानेको साफ कपड़े मिलें। यही नहीं, बल्कि अगर रोगी कमानेवाला आदमी है, तो जितना वह रोज कमाता है, कम-से-कम अुतने पैसे भी अुसके घरवालोंको मिलने चाहिये।

जैसा कि आप कहते हैं, कुदरती अिलाज जीवन बितानेका अेक नया ढंग है। तो क्या अिलाजके साथ ही वैसा जीवन बितानेकी तालीम और अुसको अमलमें लानेके साधन भी अुन्हें देनेकी जरूरत नहीं है?

ज० — यह शंका अुठाकर सवाल पूछनेवाले अपना अज्ञान जाहिर करते हैं। मैंने जो लिखा है, अुसे विचारपूर्वक पढ़नेकी कोशिश

तक नहीं की गअी है। कुदरती अुपचारके गर्भमें यह बात रही है कि अुसमें कम-से-कम खर्च और कम-से-कम व्यवसाय होना चाहिये। कुदरती अुपचारका आदर्श ही यह है कि जहां तक संभव हो अुसके साधन अैसे होने चाहिये कि अुपचार देहातमें ही हो सके। जो साधन नहीं हैं, वे पैदा किये जाने चाहिये। कुदरती अुपचारमें जीवन-परिवर्तनकी बात आती है। यह कोअी वैद्यकी दी हुअी पुड़िया लेनेकी बात नहीं है, और न अस्पताल जाकर मुफ्त दवा लेने या अुसमें रहनेकी ही बात है। जो मुफ्त दवा लेता है, वह भिक्षुक बनता है। जो कुदरती अुपचार करता है, वह कभी भी भिक्षुक नहीं बनता। वह अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाता है और अच्छा बननेका अुपाय खुद ही कर लेता है। वह अपने शरीरमें से जहर निकालकर अैसी कोशिश करता है कि जिससे दुबारा बीमार न पड़ सके।

और कुदरती अिलाजमें मध्यबिन्दु तो रामनाम ही है न? रामनामसे आदमी सुरक्षित बनता है। शर्त यह है कि नाम भीतरसे निकलना चाहिये। और, रामनामके भीतरसे निकलनेके लिअे नियम-पालन जरूरी हो जाता है। अुस हालतमें मनुष्य रोग-रहित होता है। अिसमें न कष्टकी बात है, न खर्चकी।

मोसम्बी खाना अुपचारका अनिवार्य अंग नहीं। पथ्य खाना — युक्ताहार लेना — अवश्य अनिवार्य अंग है। हमारे देहात हमारी तरह ही कंगाल हैं। देहातमें साग-सब्जी, फल, दूध वगैरा पैदा करना कुदरती अिलाजका खास अंग है। अिसमें जो वक्त खर्च होता है वह व्यर्थ तो है ही नहीं; बल्कि अुससे सभी देहातियोंको और आखिरकार सारे हिन्दुस्तानको लाभ होता है। यह बात ठीक है कि देहातमें और शहरोंमें भी अैसे अुपचार-गृह होने चाहिये। अीश्वरकी कृपा होगी तो सब हो जायगा। हरअेक व्यक्तिका काम तो यह है कि वह अपना फर्ज अदा करे और फल अीश्वर पर छोड़ दे।

नअी दिल्ली, २५–५–'४६

हरिजनसेवक, २–६–'४६

१९५

रामनामका मजाक

स० — आप जानते हैं कि आज हम अितने जाहिल हो गये हैं कि जो चीज हमें अच्छी लगती है या जिस महापुरुषको हम मानते हैं, अुसकी आत्माको — अुसके सिद्धान्तोंको — न लेकर हम अुसके भौतिक शरीरकी पूजा करने लगते हैं। रामलीला, कृष्णलीला और हालमें ही बना गांधी-मंदिर अिसके जिन्दा प्रमाण हैं। बनारसका राम-नाम बैंक और रामनाम छपा कपड़ा पहनना या शरीर पर रामनाम लिखकर घूमना 'रामनाम' का मजाक और हमारा पतन नहीं है तो क्या है? अैसी हालतमें 'रामनाम' का प्रचार करके क्या आप अिन ढोंगियोंके हाथमें पत्थर नहीं दे रहे हैं? अन्तर-प्रेरणासे निकला हुआ 'रामनाम' ही रामबाण हो सकता है। और मैं मानता हूं कि अैसी अन्तर-प्रेरणा सच्ची धार्मिक शिक्षासे ही मिलेगी।

ज० — यह ठीक कहा है। आजकल हमारे अन्दर अितना वहम फैला हुआ है और अितना दंभ चलता है कि सही चीज करनेसे भी डरना पड़ता है। लेकिन अिस तरह डरते रहनेसे तो सचको भी छिपाना पड़ सकता है। अिसलिअे सुनहला कानून तो यही है कि जिसे हम सही समझें, अुसे निडर होकर करें। दंभ और झूठ तो जगतमें चलता ही रहेगा। हमारे सही चीज करनेसे वह कुछ कम ही होगा, बढ़ कभी नहीं सकता। यह ध्यान रहे कि जब चारों ओर झूठ चलता हो, तब हम भी अुसीमें फंसकर अपनेको धोखा न दें। अपनी शिथिलताके कारण हम अनजाने भी अैसी गलती न करें। हर हालतमें सावधान रहना तो कर्तव्य ही है। सत्यका पुजारी दूसरा कुछ कर ही नहीं सकता। रामनाम जैसी रामबाण औषध लेनेमें सतत जागृति न हो, तो रामनाम फोकट जाय और हम बहुतसे वहमोंमें अेक और वहम बढ़ा दें।

नअी दिल्ली, २५–५–'४६

हरिजनसेवक, २–६–'४६

१९६

सवाल-जवाब

राम कौन?

स० — आप कहा करते हैं कि प्रार्थनामें प्रयुक्त 'राम' का आशय दशरथके पुत्र रामसे नहीं। आपका आशय 'जगन्नियंता' से होता है। हमने भलीभांति देखा है कि 'रामधुन' में 'राजाराम, सीताराम' 'राजाराम, सीताराम' का कीर्तन होता है। और जयकार भी 'सियापति रामचन्द्रकी जय' का लगता है। मैं विनम्र भावसे पूछता हूं कि यह सियापति राम कौन है? यह राजाराम कौन है? क्या ये दशरथके सुपुत्र राम नहीं हैं? अूपरकी पंक्तियोंका अर्थ तो स्पष्टतया यही लगता है कि प्रार्थनामें आराध्य जानकी-पति दशरथ-पुत्र राम ही हैं।

ज० — अैसे प्रश्नका अुत्तर मैं दे चुका हूं, मगर अिसमें कुछ नया भी है, जो अुत्तरकी अपेक्षा रखता है। रामधुनमें 'राजाराम', 'सीताराम' रटा जाता है, वह दशरथ-नन्दन राम नहीं तो कौन हैं? तुलसीदासजीने तो अिसका अुत्तर दिया ही है, तो भी मुझे कहना चाहिये कि मेरी राय कैसे बनी है। रामसे रामनाम बड़ा है। हिन्दूधर्म महासागर है। अुसमें अनेक रत्न भरे हैं। जितने गहरे पानीमें जाओ, अुतने ज्यादा रत्न मिलते हैं। हिन्दूधर्ममें अीश्वरके अनेक नाम हैं। सैकड़ों लोग राम-कृष्णको अैतिहासिक व्यक्ति मानते हैं, और मानते हैं कि जो राम दशरथके पुत्र माने जाते हैं, वही अीश्वरके रूपमें पृथ्वी पर आये, और यह कि अुनकी पूजासे आदमी मुक्ति पाता है। अैसा ही कृष्णके लिअे है। अितिहास, कल्पना और शुद्ध सत्य आपसमें अितने ओतप्रोत हैं कि अुन्हें अलग करना करीब-करीब असंभव है। मैंने अपने लिअे सब संज्ञाअें रखी हैं। और अुन सबमें मैं निराकार, सर्वस्थ रामको ही देखता हूं। मेरे लिअे मेरा राम सीतापति

दशरथ-नंदन कहलाते हुअे भी वह सर्वशक्तिमान अीश्वर ही है, जिसका नाम हृदयमें होनेसे सब दुःखोंका नाश हो जाता है।

नअी दिल्ली, २६–५–'४६
हरिजनसेवक, २–६–'४६

१९७
अुरुलीकांचन

कांचन गांवसे मेरे साथी मुझे खबर देते हैं कि वहां दूर-दूरसे लोग अिलाजके लिअे जा रहे हैं। मैंने 'हरिजनसेसक' में लिखा तो है कि अब तक वहां जगहका भी ठिकाना नहीं है। अब खबर आअी है कि थोड़ी जमीन मिल गअी है, लेकिन अुस पर मकान वगैरा बनाना अभी बाकी है; और, वहां अैसा कोअी मकान भी नहीं है, जिसमें मरीजोंको रखा जा सके। बाहरके मरीजोंको लेनेका प्रबंध तो वहां हो ही नहीं सकेगा। यह देहातको शहर बनानेका साहस नहीं। ध्येय तो यह है कि हर देहातमें जैसे पाठशाला होनी चाहिये, वैसे ही वहां अेक नैसर्गिक अुपचार-गृह भी बने। वह देहातकी शोभा बनेगा। अिसके पढ़नेवाले याद रखें कि अुरुलीकांचन गांवमें रहनेवाले मेरे साथी पत्रव्यवहारसे भी मरीजोंको सलाह देनेमें, अुनकी रहनुमाअी करनेमें, असमर्थ हैं। दूरवाले समझें कि वे अपने लिअे कुदरती अिलाज खुद ही कर सकते हैं। रामनाम कौन नहीं ले सकता? या कटि-स्नान कौन नहीं कर सकता?

मसूरी, २–६–'४६
हरिजनसेवक, ९–६–'४६

१९८

खादीके बारेमें संवाद

अेक खादी-सेवक लिखते हैं:

"अेक खादी-भंडारके संचालक और ग्राहकोंके बीच हुआी हालकी अेक बातचीत नीचे देता हूं। कृपया लिखें कि क्या अिन ग्राहकोंको खादी बेची जा सकती है?

सवाल-जवाब यों हैं:

स० — क्या यह सूत आपने खुद काता है?

ज० — नहीं, मैं १० रुपयेकी ८ गुण्डी खरीदकर लाया हूं।

स० — दूसरेसे पूछा: क्या आप यह सारा सूत कात लेते हैं?

ज० — नहीं, अिसे मेरी लड़कीने काता है। हम तो बारह आनेकी अेक गुण्डीके हिसाबसे बेचते भी हैं।

स० — तीसरेसे कहा: यदि आपके पास सूत नहीं है, तो आपको खादी नहीं मिलेगी।

ज० — कोआी परवाह नहीं। जब तक मुझे सूत नहीं मिलता, मैं अप्रमाणित खादी ही पहनूंगा।

स० — चौथेसे पूछा गया: आप खादी क्यों खरीदते हैं?

ज० — क्योंकि वह आसानीसे मिल जाती है।

स० — पांचवेंसे बात हुआी: आप तो खादीधारी नहीं, फिर अिस खादीका क्या होगा?

ज० — आजकल कुछ खादी पहनना भी फैशनमें शरीक है।

स० — छठेसे कहा: आप तो कातते ही नहीं, फिर यह सूत कहांसे लाये?

ज० — मेरे अेक भले दोस्त हमेशा सूत देते रहते हैं।

स० — सातवेंसे पूछा: आप हमेशा रेशमी या अूनी खादी ही क्यों पहनते हैं?

ज० — क्योंकि अिसके लिअे सूत नहीं देना पड़ता।

स० — आठवेंने बहुतसी खादी खरीदी। अुनसे पूछा गया: अितनी सारी खादी खरीदकर क्या करेंगे?

ज० — अिकट्ठा करके रखूंगा। दो-तीन साल चलेगी। फिर मिले या न मिले।"

ये सब सवाल-जवाब बहुत सूचक हैं। अगर खादीकी नअी नीति सही है और सब ग्राहक अिस प्रकारके हैं, तो वे खादीको कांग्रेसके विधानसे निकाल देनेकी आवश्यकता सिद्ध करते हैं। याद रहे कि अिस सवाल-जवाबमें खादीके आठ ग्राहक आ जाते हैं। अिनमें से अेकके लिअे भी चरखा-संघके खादी-भंडारको आवश्यकता सिद्ध नहीं होती। चरखा-संघकी हस्ती ही गरीबोंके लिअे है। जो खादी पहनते हैं, वे या तो गरीबोंके लिअे पहनते हैं या स्वराज्यके लिअे। अिन आठ महाशयोंको न स्वराज्यकी पड़ी है, न गरीबोंकी। खादीकी जड़में जो कल्पना रखी गअी है, यदि अुसे साबित करके दिखाना है तो चरखा-संघवालोंको अपनी नीति पर अिस हद तक कायम रहना पड़ेगा कि वे खादी बेचनेके भण्डारोंको बन्द करनेमें भी न डरें। जो गलती हमने की है, अुसके लिअे सब सहनेकी तैयारी हममें होनी चाहिये। अिन सवाल-जवाबोंका अेक सार यह भी है कि खादी-भंडारोंके संचालक जाग्रत रहें। वे खादी-शास्त्रका भलीभांति पठन करें और सब ग्राहकोंको विनय और धीरजसे खादीका रहस्य समझा दें। अिसमें जो थोड़ा समय जायेगा, अुसकी परवाह न करें। अगर हमें खादीकी शक्तिमें विश्वास है, तो मुझे कोअी शक नहीं कि हमारे दृढ़ रहनेसे सब लोग अुसे समझ जायेंगे। अगर हममें ही विश्वास नहीं है, तो हमारा दावा अपने-आप खतम हो जायगा।

मैंने यह मान लिया है कि संवाद जैसा हुआ है, वैसा ही खादी-सेवकने दिया है।

मसूरी, १–६–'४६

हरिजनसेवक, ९–६–'४६

१९९

अुर्दू दोनोंकी भाषा ?

अेक विद्वान हिन्दी-प्रेमी लिखते है :

१. "जिस प्रकार आप अुद्योग कर रहे हैं कि भारतवासी, विशेषकर हिन्दू — क्योंकि आपके दैनिक संपर्कमें हिन्दू ही अधिक आते है — अुर्दू सीख लें, अुसी प्रकार क्या कोअी सज्जन मुसलमानोंको भी हिन्दी सिखानेका अुद्योग कर रहे हैं? यदि अैसा नहीं है तो आप ही के अुद्योगके कारण अुर्दू हिन्दू-मुसलमान दोनोंकी भाषा हो जायगी और हिन्दी केवल हिन्दुओंकी भाषा रह जायगी। क्या अिसमें हिन्दीकी सेवा होगी?

२. "आपके यहांके लेखोंमें हिन्दी शब्दोंके अुर्दू पर्याय कोष्ठकमें दिये जाते हैं, परन्तु अुर्दू शब्दोंके हिन्दी पर्याय नहीं दिये होते। क्या यह हिन्दी-भाषियोंको जबरदस्ती अुर्दू पढ़ानेकी चेष्टा नहीं है?

३. "आपके प्रकाशनोंमें फारसी, अरबी शब्दोंकी भरमार रहती है। क्या आपके विचारमें ये शब्द अैसे हैं, जिन्हें भारतकी साधारण जनता समझती है? अुदाहरणके लिअे — 'अदब', 'आदाब', 'अेतकाद'।

४. "यदि हिन्दुस्तानी अेक भाषा है, तो आपकी शिक्षा-योजनाकी पाठ्यपुस्तकोंके हिन्दी-अुर्दू संस्करणोंमें अितना अन्तर क्यों रखना पड़ता है?

५. "मेरा नम्र निवेदन है कि अभी तक जो लाखों दक्षिणी हिन्दी सीखते हैं, अुनमें से अधिकांश अुर्दू लिपिके डरसे दोनोंमें से अेक लिपि भी नहीं सीखेंगे और हिन्दी-प्रचारका आज तकका कार्य मलिया-मेट हो जायगा।"

१. कोशिश तो की जा रही है कि जो अुर्दू ही जानते हैं, वे हिन्दी रूप सीख लें। हिन्दी जाननेवाले अुर्दू रूप सीख लें। यह बात सच है कि मुझे हिन्दी जाननेवाले हिन्दू ही ज्यादा मिलते हैं। अिससे

मुझे कोअी कष्ट नहीं। हिन्दू हिन्दी भूलनेवाले नहीं है। अुर्दूके ज्ञानसे अुनकी हिन्दी बढ़ेगी ही। भारतवर्षमें जो लोग हैं, वे हिन्दू हों या मुसलमान, अुनमें ज्यादा हिस्सा तो अपने प्रान्तकी ही भाषा जाननेवाले हैं। वे हिन्दी रूप तो भूल ही नहीं सकते, क्योंकि हिन्दीमें और प्रान्तीय भाषाओंमें अधिक शब्द संस्कृतके ही हैं। और माना कि मेरे प्रयत्नका नतीजा यह आवे कि सब अुर्दू रूप ही सीख जायं, तो भी मुझे अुसका न तो कोअी डर है, न वैसी कोअी आशा ही। जो स्वाभाविक होगा, वही होनेवाला है। दोनों रूपोंको मिलानेके साहसको मैं सब पहलुओंसे अच्छा ही मानता हूं।

२. मैंने हिन्दुस्तानी-प्रचारके सब प्रकाशन पढ़े नहीं हैं। अगर अुनमें हिन्दी शब्दोंके अुर्दू शब्द भी दिये हैं, तो अुसमें फायदा ही है। अुसका अर्थ तो यह होगा कि पुस्तकके लेखककी नजरमें हिन्दीके अुर्दू शब्द पाठक लोग नहीं जानते होंगे। अुर्दूके हिन्दी नहीं दिये जाते हैं, तो अर्थ यह हुआ कि वे शब्द हिन्दीमें चालू हो गये हैं। समझमें नहीं आता कि अैसी सीधी बातमें भी विद्वान लेखक शक क्यों करते हैं? अैसा शक लाना विद्याका भूषण नहीं है।

३. यह बात सही नहीं है। अगर सही भी हो, तो अुसमें हानि क्या हो सकती है? भाषामें अैसे शब्द दाखिल होनेसे भाषाका गौरव बढ़ेगा। नॉर्मन हमलेके बाद अंग्रेजीमें फ्रेन्च भाषाके मारफत जो शब्द दाखिल हुअे, अुनसे अंग्रेजी भाषाका जोर बढ़ा, कम नहीं हुआ। जितना आडम्बर था या अतिशयता थी, वह निकल गअी। जो अुदाहरण लेखकने दिये हैं, अुन्हें अुत्तरके सभी हिन्दी-प्रेमी जानते हैं। अुन्होंने हिन्दी बोलीमें अपनी जगह बना ली है। दक्षिणकी हिन्दीके लिअे वे नये हैं सही। अुसके लिअे अुनके संस्कृत शब्द देनेकी जरूरत रहेगी। और अैसी मदद दी भी जाती है। बात यह है कि हिन्दुस्तानी-प्रचारमें न अेकका द्वेष है, न दूसरीका पक्षपात। दोनों रूप मौजूद हैं और रहेंगे। अुसमें आपत्ति न होनी चाहिये। अगर दोनों पक्षोंमें द्वेषभाव ही रहा, तो हिन्दुस्तानी नहीं बनेगी। अैसा हुआ, तो वह हिन्दुस्तानके लिअे बुरा होगा।

४. हिन्दुस्तानी अेक जमानेमें थी। अब तो बहुत देखनेमें नहीं आती। अिसीलिअे यत्न हो रहा है कि जो भाषा दोनोंके मेलरूप हिन्दुस्तानी शकलमें थी, वह अब भी बने और बढ़े। अिससे न हिन्दी-वाले दुःख मानें, न अुर्दूवाले। हिन्दी और अुर्दू दोनों बहनें हैं। बहनोंके मिलनेसे क्या नुकसान होनेवाला है? अिस संधि-युगमें दोनों रूपमें हिन्दुस्तानी-प्रचारकी पुस्तकोंमें अन्तर रहता है, तो कोअी ताज्जुबकी बात नहीं है।

५. मेरा अनुभव लेखकसे अुलटा है। दोनों लिपि सीखनेके डरसे किसीने दोनोंको छोड़ दिया हो, अैसा अेक भी नमूना मेरे ध्यानमें नहीं आया है। मुझे अैसा होनेका कोअी डर भी नहीं है।

लेखकसे मेरी विनय है कि वे अपना संकुचित दृष्टि छोड़ दें।

मसूरी, ३–६–'४६
हरिजनसेवक, १६–६–'४६

२००

अुर्दू 'हरिजन' का मजाक

भाअी जीवणजीने मुझको हिन्दी और अुर्दू अखबारोंसे कड़ी टीकाके कुछ नमूने भेजे हैं। सबमें काफी मजाक अुड़ाया गया है। हिन्दीवाले कहते हैं, अुर्दू 'हरिजन' में चुन-चुनकर अुर्दू शब्द भरे जाते हैं; अुर्दूवाले कहते हैं, अैसे संस्कृत शब्द भरे हैं, जिन्हें मुसलमान नहीं समझते। मुझे तो दोनों तरहकी टीकायें अच्छी लगती हैं। हरिजन 'सेवक' क्यों, 'खिदमतगार' क्यों नहीं? 'संपादक' क्यों, 'अेडीटर' या 'मुदीर' क्यों नहीं? अुर्दूवाले मानते हैं कि हिन्दुस्तानी और अुर्दू अेक ही हैं; हिन्दीवाले मानते हैं कि लिपि अुर्दू होने पर भी हिन्दुस्तानी हिन्दी ही है, और अैसा ही है तो मैं हारकर अुर्दू लिपि छोड़ दूंगा। मैं हार जाअूं, अैसी आशा तो निराशा ही होनी चाहिये। और, न हिन्दी हिन्दुस्तानी है, न अुर्दू हिन्दुस्तानी। हिन्दुस्तानी बीचकी बोली है।

यह सही है कि आज अुसका चलन नहीं है। अगर अखबारवाले और दूसरे टीका करनेवाले धीरज रखेंगे, तो दोनों देखेंगे कि वे हिन्दुस्तानी आसानीसे समझ सकते हैं। मैं कबूल करता हूं कि आज हम सब 'हरिजन' वाले तैयार नहीं हो पाये हैं, मनसूबा तैयार होनेका है। आज 'हरिजनसेवक' की हिन्दुस्तानी खिचड़ी-सी लगेगी, भद्दी लगेगी, अुसके लिअे माफ करें। अगर अीश्वर मुझे जिन्दा रखेगा, तो अिसी अखबारको पढ़नेवाले देखेंगे कि हिन्दुस्तानी बोली वैसी ही मीठी होगी, जैसी हिन्दी या अुर्दू है। आज दोनोंके बीच कुछ होड़-सी मालूम पड़ती है। कल दोनों बहनें बन जायेंगी और दोनोंका सहारा लेकर हिन्दुस्तानी अैसी बोली बनेगी, जो करोड़ोंको पूरा काम देगी और कम-से-कम भाषाका झगड़ा मिट जायगा। दरमियान टीकाकार गलतियां दिखाते रहें। अुन्हें मुहब्बतके साथ समझनेसे 'हरिजनसेवक' की भाषामें दुरुस्ती होती रहेगी।

मसूरी, ५–६–'४६
हरिजनसेवक, १६–६–'४६

२०१

आजादीके विधानकी भाषा

अेक सज्जन लिखते हैं:

"आप यह जानते हैं कि संसारके सभी देशोंमें जो विधान बने हैं, वे अुन देशोंकी भाषाओंमें ही बने हैं। फ्रान्स, जर्मनी, आयर्लैण्ड, अिजिप्त, जापान वगैराकी मिसालें हमारे सामने हैं।

"हमारे देशका जो विधान विधान बनानेवाली सभा बनायेगी, वह देशकी भाषामें ही बनना चाहिये। अिसके लिअे हिन्दी या हिन्दुस्तानी अुपयुक्त भाषा है। हमारी कठिनाअी यह है कि अदालतोंके, जैसे हाअीकोर्टों और फेडरल कोर्टोंके, जजोंमें शायद ही कोअी हिन्दी जाननेवाला हो। अिनके लिअे

विधानका अंग्रेजी अनुवाद होगा, जिससे ये काम ले सकेंगे। कुछ दिनों बाद ये हिन्दुस्तानीका ज्ञान प्राप्त कर ही लेंगे। यदि आप 'हरिजन' में अिस विषय पर प्रकाश डालेंगे, तो मुझे और दूसरोंको भी अिससे लाभ होगा।

"दूसरा प्रश्न यह भी अुपस्थित होता है कि जो विधान-निर्मात्री-सभा बनाओी जाय, अुसके सदस्य अितनी हिन्दुस्तानी जाननेवाले हों कि सभामें होनेवाली बातचीतके सारको समझ सकें।"

मुझे तो यह खत अच्छा लगता है। हमारा विधान अंग्रेजीमें क्यों हो? लोगोंके समझनेकी बोली तो हिन्दुस्तानकी ही होनी चाहिये। मेरी निगाहमें वह हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। करोड़ों हिन्दुस्तानी अुसको आसानीसे पढ़ सकेंगे, और साथ-ही-साथ लोगों पर अिस कामका असर अच्छा होगा। आजकी हालतमें यह ठीक है कि विधानका तरजुमा विधान बनानेवाली सभाकी तरफसे अंग्रेजीमें भी निकले। यों तो प्रान्तोंकी भाषाओंमें भी अुसका तरजुमा करना ही होगा।

दूसरी बात भी है तो ठीक, लेकिन अुस पर अमल तो अलग-अलग असेम्बलियोंके चुनाव करनेवाले सदस्य ही करेंगे। अिस दरख्वास्त पर अमल तभी हो सकता है, जब वे हिन्दुस्तानी समझनेवालोंको ही चुनें।

मसूरी, ४–६–'४६

हरिजनसेवक, १६–६–'४६

२०२

सही है, लेकिन नया नहीं

लखनअूके मौलवी हामिदुल्ला 'अफसर' साहब मुझसे मसूरीमें मिले, और अपने दो परचे मुझे दे गये। दोनोंका मतलब अेक ही है कि मदरसोंमें हाअीस्कूल तक सब लड़कों-लड़कियोंके लिअे हिन्दी और अुर्दू बोलियां और दोनों लिपियां लाजिमी हों। मुझे तो यह बहुत पसन्द है। मेरा निजी यत्न तो हमेशासे यही रहा है। अेक जमाना था, जब मौलाना हसरत मोहानी और बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन अिसकी कोशिश कर रहे थे, लेकिन हम कामयाब नहीं हुअे। फिर भी न तो मैंने अपना विश्वास छोड़ा और न यत्न ही छोड़ा। नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा बनी। अिसलिअे मौलवी साहब जो दरखास्त करते हैं, वह मेरे लिअे नअी नहीं। अगर यू० पी० की सरकार सबकी रायसे हिन्दी और अुर्दू बोलीको हाअीस्कूल तक लाजिमी कर सके, तो वह अुसका अेक बड़ा काम होगा। मैं तो कहूंगा कि जिस सूबेकी जबान हिन्दी या अुर्दू है, वहां दोनों बोलियां लाजिमी हों। मुझे अिसमें कोअी शक नहीं कि अगर अैसा कदम अुठाया गया, तो दोनों बोलियोंके मिलनसे हिन्दुस्तानी कुदरती तौर पर चल निकलेगी और हिन्दी-अुर्दूका झगड़ा हमेशाके लिअे बन्द हो जायगा। दूसरा फायदा यह होगा कि हाअीस्कूल तककी पढ़ाअी हिन्दी-अुर्दूमें बड़ी आसानीसे होगी।

मसूरी, ६–६–'४६

हरिजनसेवक, १६–६–'४६

२०३

दिलकी बातका दिखावा क्यों?

अेक सज्जन लिखते हैं कि मैं अुनको हरिजन जाहिर कर दूं। वे सेन्ससमें भी अपना नाम सवर्णोंमें से निकलवा डालेंगे। मैं कहता हूं कि सब हिन्दू अतिशूद्र बन जायं। अिसी परसे अिन ब्राह्मण भाअीने मुझे अूपरके मतलबका खत लिखा है। लेकिन जो बात दिलकी है, अुसे दिखाना क्या? हां, यह ठीक है कि हरअेक हिन्दूको अपने हर बरतावमें यह साबित करना है कि वह हरिजन यानी भंगी बन गया है। अिसलिअे वह भंगियोंसे मिलकर रहेगा, अुनके जीवनमें पूरा हिस्सा लेगा। हो सके तो किसी भंगीके साथ रहेगा या किसी भंगीको अपने साथ रखेगा, और अपने बालबच्चोंकी शादियां हरिजनोंके साथ करेगा। और जब कोअी पूछेगा तो कहेगा कि वह अपनी अिच्छासे हरिजन बन गया है। सेन्ससमें वह अपना नाम हरिजनोंमें या भंगियोंमें देगा। मगर अैसा करते हुअे वह कभी हरिजनोंके हक नहीं मांगेगा। मसलन्, वह हरिजन वोटरोंमें अपना नाम नहीं लिखायेगा। मतलब यह कि वह हरिजनोंके धर्मका पालन करेगा, मगर अुनके अधिकारकी आशा नहीं रखेगा।

नअी दिल्ली, ९–६–'४६
हरिजनसेवक, १६–६–'४६

२०४

बलि

अेक भाअी मैसूरसे लिखते हैं:

"मैसूरके हरिजन मंदिरोंमें पशुओंकी बलि दिया करते हैं। मैसूर जिलेके कृष्णराजनगर ताल्लुकेमें बारी-बारीसे अेक-अेक क्षेत्रकी यात्रा हर साल चला करती है। अिस साल यह यात्रा ३ जनवरीसे २५ जनवरी तक चली थी, जिसमें हर रोज तीन-चार बकरोंकी बलि दी जाती थी।

"दूसरी बलि सावन महीनेमें हर शनीचरको दी जाती है। अिस मौके पर हरिजन ही नहीं, बल्कि हिन्दूधर्मके अूंचे ठेकेदार भी बलि दिया करते हैं। अिसके साथ वे मदिरा-पान भी करते हैं।

"सबसे ज्यादा दुःखकी बात तो यह है कि वे गोमांस भी खाते हैं। मेरे लिअे ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुओंके लिअे यह अेक शर्मकी बात है कि भगवान रामके मंदिरके सामने भी बकरों वगैराका वध होता है।"

अगर यह बात सही है, तो अेक दृष्टिसे ठीक ही सारे हिन्दुओंके लिअे शर्मकी बात है। लेकिन सिर्फ अितना कह देनेसे पाप थोड़े ही धुल जाता है? सबका कह देनेसे अेककी जिम्मेदारी मिट नहीं सकती। अिसलिअे मेरा कहना है कि पहला काम लेखकका है, बादमें जिस जगह बलि दी जाती है वहांवालोंका है, फिर मैसूरके राजा और वहांकी प्रजाका और अिसी तरह सिलसिलेवार कर्नाटक, मद्रास प्रांत और हिन्दुस्तानका। अिस तरीकेसे चलने पर ही कामयाबी हो सकती है। अैसा काम अहिंसासे ही किया जा सकता है। तभी अेक जमानेसे चलते आये पापका नाश हो सकता है। अिसलिअे लेखकसे ही काम शुरू हो सकता है। सो कैसे हो? अिस बारेमें काफी लिख चुका हूं।

नअी दिल्ली, १५–६–'४६

हरिजनसेवक, २३–६–'४६

२०५
खामखाह क्यों मारें?

अलीगढ़से यह सूचना आओी है:

"९ जूनके 'हरिजनसेवक' में चौथे पृष्ठ पर आप लिखते हैं कि 'बन्दरों, परिन्दों और अैसे जन्तुओंको, जो फसल खा जाते हैं, खुद मारना होगा, या कोओी अैसा आदमी रखना होगा जो अुन्हें मारे।' अिस संबंधमें मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि अगर फसलको खा जानेवाले जानवरोंको मारे बगैर ही फसलकी रक्षा आसानीसे हो सकती हो, तो अुन्हें मारना जरूरी नहीं होना चाहिये। मिसालके लिअ, मैं आपको सूचना देना चाहता हूं कि मेरे चाचाने रातको बैटरीकी रोशनी बन्दरोंकी ओर फेंक-फेंककर अुन्हें अपने खेत छोड़नेके लिअे मजबूर कर दिया। अिसलिअे बन्दरोंको मारनेके बजाय अुनको बैटरीके प्रयोगसे भगानेका मार्ग आप क्यों न स्वीकार करें और पेश करें?"

यह सूचना पहले विचारसे तो अच्छी लगती है। लेकिन दूर तक विचार करनेसे लगता है कि बैटरीसे काम नहीं चल सकेगा। अुससे मेरे खेतकी कुछ रक्षा हो सकेगी, मगर अिर्द-गिर्दकी नहीं। स्वार्थी बनकर दूसरोंका नुकसान करना तो मेरे लिअे ठीक नहीं होगा। वह भी हिंसा होगी। अहिंसाके नाम पर अैसी हिंसा करनेमें हम झिझकते नहीं, जैसे कि हम अपने आंगनसे दूसरोंके आंगनमें सांप फेंकते हैं, कचरा डालते हैं। शुद्ध अहिंसा बताती है कि अगर बन्दर वगैरासे बचना और समाजको बचाना आवश्यक है, तो अुनको मार डालना आवश्यक हो जाता है। सामान्य नियम तो यही है कि जितनी हिंसासे हम बच सकें, अुतनीसे बचना हमारा धर्म है। सामाजिक अहिंसा ही समाजके लिअे हो सकती है। व्यक्तिको, जहां तक वह जा सकता है, जाना होगा। हर समय हर कदम पर ध्यानसे

विचार करना सबका परम कर्तव्य है। बगैर विचारे रूढ़ धर्म पर चलनेसे हमारी गति रुक जाती है।

३०-६-'४६

हरिजनसेवक, ७-७-'४६

२०६

हिन्दी और अुर्दूका अन्तर

भाओ रामनरेश त्रिपाठीको मैं काफी जानता हूं। अेक रोज वे मसूरीमें मिलने आये थे। मुझे डर था कि हिन्दुस्तानीके प्रचारके लिअे वे मुझे डांटेंगे। लेकिन बातें करनेसे मैंने अुलटा ही पाया। वे मुझसे कहने लगे कि अगर मैं हिन्दी और अुर्दूके मेलसे सच्ची हिन्दुस्तानीकी अुम्मीद रखता हूं, तो मुझे अुर्दूसे ज्यादा मदद मिलेगी। शर्त यह है कि अुर्दूको नया जामा पहनाकर बिगाड़नेकी जो कोशिश हो रही है, अुसे मैं अुसी तरह समझ लूं, जिस तरह हिन्दीको बिगाड़नेकी कोशिशको समझता हूं। अुस हालतमें हिन्दुस्तानी अपने-आप फिर जिन्दा हो जायगी। अिस पर मैंने अुनसे कहा कि वे मुझको कुछ मिसालें दें, जिससे मैं समझ सकूं कि अुनके कहनेका मतलब क्या है। सोचने लगे तो कुछ दिक्कत मालूम हुआी। तब मैंने कहा कि मुझको कुछ लिखकर समझावें। अुसका नतीजा यह है कि अुन्होंने मुझे नीचेका खत भेजा है:

"पूज्य बापू,

"हिन्दी और अुर्दूके ढांचेका अन्तर आपने मांगा था। पर ढांचा तो मुझे अनुभवगम्य-सा जान पड़ता है। अुसकी कोअी अलग रूपरेखा खींचकर नहीं दिखा सकता हूं। हां, अेक सुझाव दे सकता हूं। 'हरिजन' के किसी अेक पैरेग्राफका अनुवाद हिन्दी और अुर्दूके किन्हीं दो योग्य लेखकोंसे कराकर देख लीजिये। ढांचोंका अन्तर दिखाअी पड़ने लगेगा।

"मैंने अुस दिन कहा था कि अुर्दू हिन्दीसे अधिक परिमार्जित है। अिसका अेक अुदाहरण लिखता हूं। हिन्दीके अेक प्रसिद्ध लेखकका यह वाक्य है: 'समझमें न आनेसे घबराहट-सी लगने लगती है।' अुर्दूमें घबराहट 'लगती' नहीं, 'होती है' या 'पैदा होती है'। अुर्दूका कोअी प्रसिद्ध लेखक कभी गलत मुहावरा नहीं लिखेगा। और अगर लिख देगा, तो अुसको जबरदस्त मोरचा लेना पड़ेगा। हिन्दीमें भाषाके संशोधनका आन्दोलन ही नहीं है। कोअी आन्दोलन कायम करनेकी अपेक्षा अुर्दू भाषाकी पुस्तकें या लेख हिन्दी अक्षरोंमें छपने लगें, तो हिन्दी भाषाका बड़ा अुपकार होगा। अुर्दू भाषाके सुधारने और संवारनेमें अुर्दूके शायरों और लेखकोंने पिछले कअी सौ बरसोंमें जो हाथापाअी की है, अुसका लाभ हिन्दी भाषाको सहज ही मिल जायगा। और अिस प्रयोगसे वह आपसे-आप हिन्दुस्तानी बन भी जायगी।"

यह खत विचार करनेके लायक है। मैं भाषाका प्रेमी हूं, भाषाका शास्त्री नहीं हूं। हिन्दीका मेरा ज्ञान अैसा ही है। मैंने कोअी पुस्तक पढ़कर हिन्दी सीखी नहीं। अिसके लिअे समय ही नहीं मिला। मेरा लड़का देवदास, जो मेरे प्रोत्साहनसे और आशीर्वादसे हिन्दी सीखनेके लिअे मद्रास चला गया था, मुझसे बहुत ज्यादा हिन्दी जानता है। अैसे दूसरे भी हैं, जिनके नाम मैं दे सकता हूं। अुर्दूका ज्ञान मुझे हिन्दीसे भी बहुत कम है। नागरी लिपि बचपनसे जानता हूं। फारसी लिपि तो मेहनत करके सीखा हूं। लेकिन अुसका मुहावरा न होनेसे अुसे थोड़ी मुश्किलसे पढ़ पाता हूं। जैसे-तैसे लिख भी लेता हूं। अिस तरह अुर्दूका ज्ञान तो बहुत ही कम है। जो है, सो प्रेम है; और किसीका पक्षपात नहीं है। अिसलिअे अगर भगवानकी कृपा हुअी, और भाषा-शास्त्रियोंकी मदद मिली, तो मेरा यह साहस सफल होगा। अिसी खयालसे त्रिपाठीजीका यह खत मैंने छापा है, जिससे वे अिस काममें मदद दें और दूसरे भी हाथ बंटायें।

अेक दूसरे हिन्दी भाषा-प्रेमाने भी मुझे यह बताया है कि अुर्दूमें भाषा पर जो मेहनत हुअी है, वह हिन्दीमें शायद ही हुअी हो। अब अगर दोनों खींचातानीमें न पड़ें और समझ लें कि दोनों भाषाओंकी जड़ अेक ही है, और जिसे करोड़ों देहाती बोलते हैं अुसीके लिअे शास्त्रियों और शायरोंको मेहनत करनी है, तो हम जल्दीसे आगे कूच कर सकते हैं।

पूना, ३-७-'४६
हरिजनसेवक, १४-७-'४६

२०७

कस्तूरबा-स्मारक-निधि

कुछ लोगोंकी शिकायत है कि अिस निधिके पैसे जितनी शीघ्रतासे खरचे जाने चाहिये, अुतनी शीघ्रतामें खरचे नहीं जाते, और जिस तरह खरचे जाते हैं, अुनका कुछ पता नहीं चलता। लेकिन ये दोनों अिलजाम बेबुनियाद हैं। अिसमें अेक बात यह है कि अगरचे जितना दान आया है, वह सब करीब-करीब शहरोंसे ही आया है, तो भी अुसका हेतु यह रहा है कि वह देहाती स्त्रियों और अुनके बाल-बच्चोंके लिअे, और सो भी देहातमें ही, खर्च किया जाय। अिस तरह अिस काम पर देहातमें जो खर्च होता है, अुसका पता अुन लोगोंको नहीं लग सकता, जो खर्चका हिसाब नहीं देखते। क्योंकि टीका करनेवाले तो सब शहरोंमें रहते हैं। देहातके लोग अखबार नहीं पढ़ते, और अुन्हें अिसकी पड़ी भी नहीं कि पैसा किस तरह खरचा जाता है। अगर अपने देहातमें कुछ होता है, तो वे अुसे अपनी आंखों देख सकते हैं। शहरोंके लिअे कोअी काम होता है, तो अुसका ढिंढोरा पीटा जाता है। अगर कोअी अिमारत या पुतला बनाया जाता है, तो वह कैसे बन रहा है, अिसकी चर्चा अखबारोंमें की जाती है; और जब

बन चुकता है तो अुसे खोलनेकी रस्म धूमधामसे अदा की जाती है, ताकि सब लोगोंको पता लग जाय कि जिस कामके लिअे पैसा अिकट्ठा किया गया था वह पूरा हुआ। देहातकी बहनोंके लिअे गांवोंमें जो काम चल रहा है, अुसके लिअे अैसा दिखावा हो ही नहीं सकता। अिसलिअे जो कुछ हो रहा है, वह किनके मारफत हो रहा है, अितना जानकर ही फिलहाल अखबार पढ़नेवालोंको संतुष्ट रहना पड़ेगा। जब सात लाख देहातमें से चन्द हजार देहातमें कुछ काम होगा, वहांकी औरतें और वहांके बच्चे तैयार होंगे, तब तो अिसकी जानकारी सबको मिल ही जायगी। अेक ही मिसाल लीजिये। देहाती औरतोंमें दाअियोंको तालीम देनेका काम हो रहा है। देहातमें काम करनेवाली नर्सें तैयार की जाती हैं। अगर अितनी जानकारी भी काफी न हो, तो अिससे ज्यादा खबर क्या दी जा सकती है?

अिस बार जब पूनामें कस्तूरबा-स्मारक-निधिकी कार्यकारिणीकी बैठक हुअी, तो २१ प्रान्तोंमें से काफी प्रान्तोंके लिअे देहातमें काम करनेवालोंके वास्ते तालीमी छावनियां चलानेके बजट मंजूर किये गये। लेकिन अिस तरह जो बहनें तैयार होंगी अुन्हें तो देहातमें जाना है। शहरवालोंको तो अिसका पता तभी चल सकता है, जब वहां अिनका प्रदर्शन किया जाय। लेकिन अैसा करनेका न अिरादा है, और न अैसा करना मुनासिब ही होगा। अेक बात और है। देहातमें जो काम होनेवाला है, वह नये ढंगका और नये सिरेसे ही हो सकता है। अिसलिअे वह आहिस्ता-आहिस्ता ही चलेगा, जैसा कि खादीका चला और चल रहा है, और दूसरे ग्रामोद्योगोंका चलता है। देहातकी तरफ हमारा ध्यान ही कम गया है। आज भी कम जाता है। जब शहरियोंका मन खुद देहातकी तरफ जायगा, तब दूसरी सूरत निकलेगी। जब तक अैसा नहीं होता, तब तक अिस तरहका काम करनेवाली संस्थाकी तरफ न तो अखबारोंका ध्यान जायगा, और न शहरी लोग ही अिसमें ज्यादा दिलचस्पी लेंगे।

बाज दफा अैसा भी होता है, और होना भी चाहिये कि ज्यों ही पैसे जमा हुअे, त्यों ही अुनको खर्च कर डालनेमें कोअी खूबी नहीं

होती। मगर देखभाल करके आहिस्ता-आहिस्ता खर्च करनेमें खूबी रहती है, जैसा कि अिस निधिके मामलेमें हुआ है। देनेवाले हजार, दो हजार या दस-बीस हजार हो सकते हैं, लेकिन खर्च करनेका क्षेत्र लंबाओमें अुन्नीस सौ मील है, और अुसका फैलाव भी चालीस करोड़में करना है। वहां काम किस तरह करना, कहां करना, अिसे सोचनेमें थोड़ा समय जाना चाहिये था। काम करनेवालोंको ढूढ़नेके लिअे भी समय चाहिये था। और अब अुनके मिल जानेके बाद अुन्हें तैयार करनेमें वक्त जा रहा है। अिसलिअे जिन्होंने पैसे दिये हैं, अुन्हें विश्वास रखना चाहिये कि जो लोग ट्रस्टी बने हैं, वे निकम्मा खर्च नहीं करेंगे और आलसी बनकर जरूरी खर्च रोकेंगे भी नहीं।

जबसे काम करनेवाली कमेटियां शुरू हुआीं, तभीसे शिकायत आ रही है कि जिन्होंने दान दिया, अुन्हींमें से कमेटियां नहीं बनाओी गओीं; और जहां कमेटियोंमें दानियोंको लिया गया है, वहां अुनकी तादाद बहुत कम है। सच तो यह है कि जो दान देते हैं, वे हमेशा ही यह नहीं जानते कि अुनका दिया दान किस तरह और किस काममें खर्च होता है। मसलन्, फर्ज कीजिये कि कओी दानियोंने मिलकर दस करोड़ रुपये अेक बड़ा तालाब बनवानेके लिअे दिये। अिसके बाद वे अिस बारेमें क्या कर सकते हैं? अुनका दिया रुपया तो अुन लोगोंके हाथमें ही जायगा, जो तालाब बनानेका ज्ञान रखते हैं। अैसे लोग ही अेक कमेटी बनायेंगे और खर्च भी करेंगे। अैसे बहुत अुदाहरण दिये जा सकते हैं। ट्रस्टियोंने जो कमेटियां बनाओीं, वे शुरूमें अिसी तरह बनीं। आगे अनुभवसे यह भी देखा गया कि जितना काम औरतोंके मारफत हो सकता है, अुतना अुन्हींसे करवाना चाहिये, और सो भी अुनकी कमेटियां बनाकर नहीं, बल्कि अेजेण्टोंके मारफत। अैसा करनेमे ही औरतोंको तालीम मिलेगी और सारी संस्था औरतोंके हाथमें चली जायगी। अिस तरह जिम्मेवारीका काम अुनके हाथमें पहुंचेगा। अिसकी कोशिश हो रही है। अुसमें देर तो लगने ही वाली थी और अब भी लगेगी। मुश्किलें काफी हैं, लेकिन अुम्मीद की जाती है कि

आखिर काम बढ़ जायगा, और औरतें भी तैयार हो जायेंगी। नतीजा अनुभवसे ही देखा जायगा।

पंचगनी, १४–७–'४६
हरिजनसेवक, २१–७–'४६

२०८

'क्रान्तिकारी चरखा'

अिस नामकी अेक पुस्तिका भाअी धीरेन्द्र मजूमदारने लिखी है। है तो वह सिर्फ ४० छोटे पन्नोंकी, लेकिन अुतनेमें नअी योजनाके बारेमें सब कुछ कह दिया गया है। अिस पुस्तिकामें बताया गया है कि अिस योजनाकी सफलतामें सच्चा स्वराज्य छिपा है, अुसमें सच्ची क्रान्ति है। सच्ची क्रान्ति भी लेखमें ही रह जाती है, अगर अुसे काम करके साबित न किया जाय। अिसलिअे अुसे साबित करनेका तरीका बताना और वैसा करना बहुत जरूरी है। आज तो शहरोंमें सब जगह खलबली मची है, क्योंकि खूब दाम देते हुअे भी शहरियोंको खादी नहीं मिलती। अैसा पहले भी हो चुका है। अुस वक्त में कह सका था कि खादी जल्दी मिल जायगी, क्योंकि अुसमें पैसोंका काम था। अब काम अैसा नहीं है, जो पैसोंसे हो सके। सच्ची क्रान्ति पैसोंसे नहीं होती। जमानों-की आदत बदलना, आलस्य दूर करना, बिगाड़नेके बदले बनाना मुश्किल है। ट्रेन लूटकर १० हजार रुपया अिकट्ठा करना आसान है। अपने पसीनेसे १० हजार कमाना कठिन है। शेयर बाजारमें अेक दिनमें १ लाख पैदा कर लेना रोजमर्राकी बात है, मगर अेक दिनमें निजी मेहनतसे १ लाख रुपया अिकट्ठा करना असंभव है। लॉटरीमें भिखारी धनी बनते सुने जाते हैं, मगर कोअी भिखारी अेक दिनमें अपनी मेहनतसे धनवान नहीं बनता। अुसे तो बाजार दाम ही मिलेगा। यह ८ आना भी हो सकता है, और शायद २ आना भी। खादी पैदा करना अेक बात है। मिलमें कपड़ा पैदा करना दूसरी बात है। स्वराज्य

यंत्रसे नहीं मिल सकता। लेकिन अगर २० करोड़ आदमी समझ-बूझकर अपनी मेहनतसे खादी बनावें और पहनें, तो हिन्दुस्तानकी शकल बदल जायगी। यह कहना कि ४० करोड़में से २० करोड़ अपने लिअे कपड़ा बनानेकी तकलीफ नहीं अुठायेंगे, अेक अलग बात है। मैं अैसा कभी नहीं कह सकता।

पंचगनी, १७–७–'४६
हरिजनसेवक, २८–७–'४६

२०९
पहले खुद कूदो

अहमदाबादकी खूंरेजीके बारेमें अेक भाअीने जो खत लिखा है, अुसमें से आवश्यक भाग नीचे देता हूं:

"हुल्लड़के अवसरों पर क्या अुपाय किया जाय, अिस बाबत मैं लिखना चाहता हूं। आजसे ठीक दो मास पहले 'हरिजन' में आपने अहिंसक सेवादल पर अेक लेख लिखा था। मगर आजकलकी हालतको देखते हुअे अितनेसे काम नहीं चल सकता। जिस तरह आपने सरकारसे लड़नेका रास्ता हमें दिखा दिया है, अुसी तरह अैसे अवसरों पर आप किसी अेक जगह पहुंचकर अहिंसक रीतिसे हुल्लड़को शान्त करके हमारे सामने नमूना रख दें। अगर आप अिस अवसर पर अहमदाबादमें हों और स्वयं-सेवकोंके साथ अिस कामके लिअे शहरमें निकल पड़ें, तो जरूर आपको स्वयंसेवकोंकी कमी न रहे। यहांके दो कांग्रेसी कार्य-कर्ता श्री वसंतराव और रज्जबअली लोगोंको समझानेके लिअे गये और दोनों गुण्डोंके छुरोंकी भेंट हुअे। बादमें किसीकी जानेकी हिम्मत न हुअी। अुन दोनोंने अपने आदर्शके लिअे जान दे दी, और वे धन्य हैं! यह ठीक है कि दूसरे लोगोंमें अितना आत्म-विश्वास नहीं। अगर सबमें हो तो हुल्लड़ ही क्यों हो? और अगर कभी हो भी तो वह आजकलके हुल्लड़ोंकी शकल तो

ले ही नहीं। मगर यह तो अुस स्थितिकी बात हुअी, जो सिर्फ कल्पनामें ही है।

"आपकी रहनुमाअी मेरे-जैसे बहुतसे लोगोंमें साहस पैदा कर सकती है। और आपके रास्ता दिखानेके बाद दूसरे स्थानीय नेता अवसर पड़ने पर अपनी-अपनी जगह अुस रास्ते पर चल सकेंगे। मुझे महसूस होता है कि प्रत्यक्ष रास्ता दिखाये बिना आपके लेख और बयान लोगोंको—पक्के कांग्रेसियोंको—सामाजिक रक्षणके खयालसे अुपयोगी साबित न होंगे।"

मुझे अूपरकी सूचना जंचती है। मैंने अंग्रेजी सल्तनतका सामना करनेका जो रास्ता बताया वह चला, क्योंकि सब लोग अुसका सामना करना चाहते थे। मैं स्वीकार करता हूं कि वह अहिंसा लाचारीकी थी, अिसलिअे वह दुर्बलोंका ही साधन बनी। और, अिसी कारण आज हम नेताजी सुभाषबाबूकी और आजाद हिन्द फौजकी पूजा करते हैं। लेकिन यह बात हम भूल जाते हैं कि खुद सुभाषबाबूने ही अपने फौजियोंसे कहा और फौजियोंके सरदारोंने ही मुझे सुनाया कि हिन्दुस्तानके भीतर तो अुन फौजियोंको अहिंसाका रास्ता ही लेना चाहिये। अिस विवेक-बुद्धिका हम अुपयोग नहीं करते। वह तो तभी होगा, जब आजाद हिन्द फौजके आदमी, जो हिन्दुस्तानमें आये हैं, अहिंसाका रास्ता अख्तियार करके नेताजीके आदेशको अपने जीवनमें सफल करके बता दें। अैसे हिंसाके वायुमण्डलमें अहिंसाको माननेवालोंका काम जरूर मुश्किल हो जाता है। लेकिन सच्ची अहिंसाका काम हमेशा ही मुश्किल रहनेवाला है, क्योंकि अहिंसामें ज्यादा बहादुरीकी गरज रहती है, और अैसी अहिंसा आज तक स्पष्ट रूपमें हम दिखा नहीं सके। हम दावेके साथ यह कह सकते हैं कि गणेशशंकर विद्यार्थी, वसंतराव और रज्जबअली वगैराकी अहिंसा अैसी थी। लेकिन जब कौमी अुभार आ जाता है, तब हम प्रत्यक्ष रूपमें कुछ फल नहीं बता सकते। अैसा फल बतानेके लिअे अनेक 'विद्यार्थियों' को बलिदान देना होगा। वसंतराव और रज्जबअलीने जो नमूना पेश किया, अुस पर अहमदाबादमें दूसरे अमल नहीं कर सके। यही बताता है कि हममें अब तक सचमुच प्राणोंकी बलि दे

देनेका माद्दा नहीं आया है। अैसी हालतमें यह ठीक कहा गया है कि मुझे ही कुछ करके दिखाना होगा, फिर कोअी मेरा साथ दे या न दे। मैं घरमें बैठकर दूसरोंको मरनेके लिअे भेजता रहूं, यह मेरे लिअे शरमकी बात होगी। मेरा यह काम कभी अहिंसाकी निशानी नहीं बन सकता। मेरा खयाल है कि अैसा मौका मुझे कभी मिला नहीं। या कोअी अैसा भी कह सकते हैं कि अगर मौका नहीं मिला तो अिसकी वजह मेरी कायरता या डरपोकपन होना चाहिये। जो कुछ भी हो, अीश्वरकी कृपा होगी तो वही मुझे अैसा अवसर देगा; अैसी किसी आगमें मुझे झोंक कर शुद्ध करेगा और अहिंसाका रास्ता बिलकुल साफ करेगा। अिसका मतलब कोअी यह न समझे कि मेरे अैसे बलिदानसे हिंसा रुक ही जायगी। आजकल अितनी घोर हिंसा चल रही है कि अुसमें से अहिंसा प्रगट होनेके लिअे मेरे-जैसे अनेकोंके बलिदानकी आवश्यकता रह जायगी। अिसी कारण 'प्रीतम' ने गाया है:

'हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं कायरनुं काम जोने.'

और, हरिका मार्ग ही अहिंसाका मार्ग है।

पंचगनी, २५–७–'४६

हरिजनसेवक, ४–८–'४६

२१०

नैसर्गिक अुपचारका अर्थ

काफी लोग नैसर्गिक अुपचार सीखनेके लिअे अुरुलीकांचन आना चाहते हैं। मैं अुन्हें रोक देता हूं। अुरुलीकांचनमें ट्रस्टकी तरफसे जो संस्था काम कर रही है, वह ग्रामवासियोंके लिअे है। अुसके तीन ट्रस्टियोंमें डॉ० दिनशा महेता, जहांगीरजी पटेल और मैं हूं। डॉ० दिनशाको नैसर्गिक अुपचारका अनुभव तो काफी है, मगर वह सब शहरमें मिला है। जब वे अपनी ही तरफसे पूनामें नैसर्गिक अुपचार-गृह चलाते थे, तो अुसमें गरीबोंको भी लेते तो थे, मगर अुनका अिलाज भी धनिकों जैसा ही होता था। देहातियोंके लिअे मेरी कल्पनाके

नैसर्गिक अुपचारका मतलब यह है कि वह देहातमें जितने देहाती साधन मिल सकें, अुनसे बिजली और बरफकी मददके बिना जितना किया जा सके अुतना ही किया जाय। यह अुपचार यहीं तक महदूद यानी मर्यादित है।

यह काम तो मेरे-जैसेका ही हो सकता है, जो देहाती बन गया है और जिसकी देह शहरोंमें रहते हुअे भी जी देहातमें रहता है। अिसलिअे ट्रस्टियोंने यह काम मेरे सिपुर्द किया है। मैंने काम शुरू तो किया है, लेकिन मेरे पास तैयार आदमी तो हैं नहीं। यह दूसरी बात है कि जब जरूरत होती है, तब डॉ० दिनशाजीकी मदद ले लेता हूं। अेक डॉ० भागवत मिल गये हैं, जिनका मन बिलकुल देहातमें रहता है और जो खुद बड़ी सादगीसे रहते हैं। डॉक्टर होते हुअे भी वे नैसर्गिक अुपचारको ही मानते हैं, किसी किस्मकी मजदूरीसे नफरत नहीं करते, न कभी कामसे थकते हैं। दूसरे जो यहां हैं, वे सब अिस कामके लिअे नये हैं, लेकिन अुनमें काफी सेवाभाव है। मेरे लिअे भी काम नया है। श्री दातारने अपना मकान यों ही बरतनेको दे दिया है। वे अुसका किराया नहीं लेते, अिसलिअे काम निभता है, चल रहा है। लेकिन अुसमें अितनी गुंजाअिश नहीं कि दूसरे नये विद्यार्थियोंको रखा जा सके। मैं खुद अुरुलीकांचनमें हमेशा रह नहीं सकता। अीश्वरकी कृपा होगी, तो सालमें छह महीने पूनाकी तरफ और छह महीने सेवाग्राममें रहूंगा। अिसलिअे जो नैसर्गिक अुपचार सीखना चाहते हैं, वे जान लें कि आजकी हालतमें किसीके लिअे भी अुरुलीकांचनमें सीखनेके लिअे रहना नामुमकिन है।

अब अपनी कल्पनाके नैसर्गिक अुपचारके बारेमें थोड़ा-सा कह दूं। पिछले अंकोंमें अिस पर थोड़ा-थोड़ा लिख चुका हूं। मगर चूंकि अिस विचारका विकास हो रहा है, अिसलिअे यहां यह बता दूं कि अुरुलीकांचनमें अुपचारकी मर्यादा क्या है। देहातकी या कहिये कि शहरकी भी व्याधि यानी बीमारी तीन किस्मकी होती है — शरीरकी, मनकी और आत्माकी। और, जैसा अेकका, वैसा ही अनेकका यानी समाजका। अुरुलीकांचनमें ज्यादातर व्यापारी लोग रहते

हैं। अेक तरफ मांग रहते हैं, दूसरी तरफ महार और तीसरी तरफ कांचन जातके लोग। कांचन जातके लोगोंके कारण ही अिस गांवका नाम अुरुलीकांचन पड़ा है। यहां गारुड़ी (मदारी) कौमके लोग भी रहते हैं, जिन्हें कानूनन् जरायमपेशा माना जाता है। मांग लोग रस्सी वगैरा बनानेका धंधा करते हैं। लड़ाअीके दरमियान अिनका धन्धा अच्छा चलता था। अब अिनका धंधा गिर गया है, अिसलिअे ये बहुत तंगीमें रहते हैं। नैसर्गिक अुपचारवालोंके सामने सवाल यह पेश है कि मांग लोगोंकी अिस बीमारीका, जो छोटी बीमारी नहीं है, क्या करें? समाजके व्यापारी लोगोंको अुनका यह रोग मिटाना चाहिये। अिसमें दवाखानेकी कोअी दवा या अिलाज काम नहीं दे सकता। फिर भी यह बीमारी कॉलेरा या हैजेकी बीमारीसे कम नहीं। अुनके चन्द मकान अैसे हैं जिन्हें जलाना ही चाहिये। लेकिन जलानेसे अुनके लिअे नये मकान तो नहीं बन जाते। वे बारिशसे कैसे बचें? ठण्डसे कैसे बचें? अपना सामान कहां रखें? ये सब सवाल पैदा होते हैं। नैसर्गिक अुपचारक अपनी आंखें बन्द नहीं कर सकता। गारुड़ी लोगोंका क्या किया जाय? वे जान-बूझकर शौकके खातिर तो गुनाह नहीं करते। जमानोंकी पुरानी अुनकी यह आदत हो गअी है। अिसलिअे अुनको अुर्दूमें जरायमपेशा कहते हैं। अिस आदतको छुड़वानेका काम अुरुलीकांचनवालोंका है। नैसर्गिक अुपचारक अिस कामको छोड़ नहीं सकता। नैसर्गिक अुपचारकके सामने अैसी-अैसी कअी समस्यायें पैदा हो जाती हैं। अिस तरह विचार करने पर हम देख सकते हैं कि नैसर्गिक अुपचारकका काम शुद्ध स्वराज्यका काम बन जाता है, और अुसका क्षेत्र भी बहुत विशाल हो जाता है। अीश्वरकी दयासे अिसमें सफलता मिल सकती है, बशर्ते कि अुरुली-कांचनमें रहनेवाले और काम करनेवाले हम सब सच्चे और आग्रही रहें।

अुरुलीकांचन, ३–८–'४६

हरिजनसेवक, ११–८–'४६

२११

नअी तालीममें डॉक्टरीकी जगह

श्री आशादेवी अपने कामोंमें लगी रहती हैं और मेरा वक्त बचा लेना चाहती हैं। फिर भी अेक रोज अुन्होंने मुझसे पांच मिनट मांगे। अुनका कहना था कि नअी तालीमवालोंको थोड़ा डॉक्टरी. ज्ञान देना चाहिये। अिसलिअे क्या वे खुद चार-पांच साल डॉक्टरी सीखनेमें दें?

मैं समझ गया कि बहुत कोशिश करने पर भी पुरानी तालीमका असर अभी तक जड़से गया नहीं है। आखिर अुन्होंने अेम० अे० की डिग्री अंग्रेजोंकी बनाअी हुअी युनिवर्सिटीसे ली है न? मेरे पास तो कोअी डिग्री नहीं है। जो थोड़ा ज्ञान हाअीस्कूलमें पाया था, मेरी नजरमें अुसकी कोअी कीमत न थी। किसी जमानेमें कुछ थी भी, सो बरसों पहले खतम हो गअी। और कुदरती अिलाजका रस तो मैंने काफी पिया है। मैंने कहा: "आप कहती हैं, हमारे बच्चोंकी पहली तालीम अपनी तन्दुरुस्ती कायम रखना और सब किस्मकी सफाअीकी तालीम पाना है। मैं कहता हूं, अिसीमें हमारी सब डॉक्टरी आ जाती है। हमारी तालीम करोड़ों देहातियोंके लिअे है, अुनके कामकी है। वे कुदरतके नजदीक रहते हैं, फिर भी कुदरती जीवनके कानून नहीं जानते। जो जानते हैं, वे अुनका पालन नहीं करते। अुनका अैसा जीवन देखकर ही हमने नअी तालीम चलाअी है। अुसका ज्ञान हमको किताबोंसे कम ही मिलता है। जो मिलता है, सो तो कुदरती किताबसे मिलता है। ठीक अिसी तरह हमें कुदरतसे डॉक्टरी भी सीखनी है। अिसका निचोड़ यह निकला कि अगर हम सफाअीके नियम जानें, अुनका पालन करें और सही खुराक लें, तो हम खुद अपने डॉक्टर बन जायं। जो आदमी जीनेके लिअे खाता है, जो पांच महाभूतोंका यानी मिट्टी, पानी, आकाश, सूरज और

हवाका दोस्त बनकर रहता है, जो अुनको बनानेवाले अीश्वरका दास बनकर जीता है, वह कभी बीमार न पड़ेगा। पड़ा भी तो अीश्वरके भरोसे रहता हुआ शान्तिसे मर जायगा। वह अपने गांवके मैदानों या खेतोंमें मिलनेवाली जड़ी-बूटी या औषधि लेकर ही सन्तोष मानेगा। करोड़ों लोग अिसी तरह जीते और मरते हैं। अुन्होंने तो डॉक्टरका नाम तक नहीं सुना। वे अुसका मुंह कहांसे देखें? हम भी ठीक अैसे ही बन जायं, और हमारे पास जो देहाती लड़के और अुनके बड़े आते हैं अुनको भी अिसी तरह रहना सिखा दें। डॉक्टर लोग कहते हैं कि १००में से ९९ रोग गन्दगीसे, न खानेका खानेसे और खाने लायक चीजोंके न मिलने और न खानेसे होते हैं। अगर हम अिन ९९ लोगोंको जीनेकी कला सिखा दें, तो बाकी अेकको हम भूल जा सकते हैं। अुसके लिअे डॉक्टर सुशीला नय्यर जैसा कोअी डॉक्टर मिल जायगा। हम अुसकी फिक्र न करें। आज हमें न तो अच्छा पानी मिलता है, न अच्छी मिट्टी और न साफ हवा मिलती है। हम सूरजसे छिप-छिपकर रहते हैं। अगर हम अिन सब बातोंको सोचें और सही खुराक सही तरीकेसे लें, तो समझिये कि हमने जमानोंका काम कर लिया। अिसका ज्ञान पानेके लिअे न तो हमें कोअी डिग्री चाहिये और न करोड़ों रुपये। जरूरत सिर्फ अिस बातकी है कि हममें अीश्वर पर श्रद्धा हो, सेवाकी लगन हो, पांच महाभूतोंका कुछ परिचय हो, और हो सही भोजनका ज्ञान। अितना तो हम स्कूल और कॉलेजकी शिक्षाके बनिस्बत खुद ही थोड़ी मेहनतसे और थोड़े समयमें हासिल कर सकते हैं।"

दिल्ली जाते हुअे रेलमें, २६–८–'४६

हरिजनसेवक, १–९–'४६

२१२

कांग्रेसी मंत्री और अहिंसा

श्री शंकरराव देव लिखते हैं :

"लोगोंकी समझमें यह बात नहीं आ रही कि जो लोग अपनेको सत्याग्रही कहते थे वे वजीर बनते ही फौज और पुलिसका अिस्तेमाल क्यों करते हैं? लोग मानते हैं कि धर्म या व्यवहारके रूपमें मानी हुअी अहिंसाका यह भंग है, और अूपरी खयालसे यह राच भी मालूम होता है। कांग्रेससी मंत्रियोंके विचारोंमें और बरतावमें यह जो विरोध दिखाअी देता है, अुसका समर्थन करना आसान न होनेके कारण हमारे कार्यकर्ता अुलझनमें पड़ जाते हैं, और अिस विसंगतिसे — बेमेल चीजसे — लाभ अुठानेवाले कांग्रेसी या गैरकांग्रेसी प्रचारकोंका मुकाबला करना अुनके लिअे मुश्किल हो जाता है।

"आम तौर पर कांग्रेसियोंकी अहिंसा कमजोरोंकी अहिंसा ही रही है। हिन्दुस्तानकी मौजूदा हालतमें यही हो सकता था, अिसे तो आप भी जानते हैं। आप कहते हैं कि ताकतवरकी अहिंसामें तेज होता है; फिर भी कमजोरको तगड़ा बनानेके लिअे आपने अहिंसाका अिस्तेमाल करना मंजूर किया। यही नहीं, बल्कि आप अुसके नेता भी बने। अिस तरह दुर्बल होते हुअे भी आज अुसके हाथमें सत्ता या हुकूमत आअी है। यह असम्भव है कि जो लोग अंग्रेजी हुकूमतके खिलाफ अहिंसासे लड़े, वे ही अब अपने हाथमें ताकत लेकर मुल्कमें दंगा-फसादके वक्त भी अहिंसाका अिस्तेमाल करके अुसे मिटानेको तैयार हों। अगर वे अैसी कोशिश करें भी, तो न वे अुसमें कामयाब होंगे और न अिस काममें अुन्हें आम लोगोंकी हमदर्दी ही मिलेगी।

"मैंने आपसे पूछा था कि क्या सत्याग्रही अपने हाथमें हुकूमतकी बागडोर ले सकता है? अगर ले सकता है, तो अुस

हुकूमतके जरिये वह अहिंसाको कैसे आगे बढ़ा सकता है? मेहरबानी करके आप अिस पर थोड़ी रोशनी डालिये। जिसने अहिंसाको धर्म माना है, वह कभी हुकूमतमें शामिल होना पसन्द न करेगा। और, मेरी राय है कि अुसे अैसा करना भी न चाहिये। लेकिन मैं मानता हूं कि जिन्होंने अहिंसाको सिर्फ नीति या व्यवहारकी दृष्टिसे अपनाया है, अुनके लिअे ओहदा लेनेमें कोअी दिक्कत न होनी चाहिये। बहुतेरे कांग्रेसियोंने ओहदे संभाले हैं, और अिसके लिअे आपने अुन्हें अिजाजत दी है। अैसी हालतमें सवाल यह अुठता है कि अुन मंत्रियोंसे जो अहिंसामें मानते हैं, आपका यह अुम्मीद रखना कि कम-से-कम वे खुद तो दंगा-फसादके मौकों पर अहिंसाका अिस्तेमाल करें, कहां तक मुनासिब है? अहिंसाके जरिये हुकूमत हासिल करनेके बाद अुसका अिस्तेमाल किस तरह किया जाय, जिससे हुकूमत ही गैरजरूरी हो जाय? अगर अैसा कोअी रास्ता आप न सुझायेंगे, तो हमारे अपने मकसद तक पहुंचनेके लिअे सत्याग्रह अेक अधूरा साधन माना जायगा।"

मेरे खयालमें अिसका जवाब आसान है। कुछ अरसेसे मैंने यह कहना शुरू कर दिया है कि कांग्रेसके विधानसे 'सत्य और अहिंसा' को हटा देना चाहिये। अगर हम यह मानकर चलें कि कांग्रेसके विधानसे ये दोनों हटें या न हटें, फिर भी हम तो अिनसे हट ही गये हैं, तो स्वतंत्र रूपसे हम यह समझ सकेंगे कि कोअी काम सही है या नहीं।

मैं मानता हूं कि जब तक लौकिक राज-कारबारमें फौज या पुलिसका अिस्तेमाल होगा, तब तक हम अंग्रेजी सल्तनतके या दूसरी किसी परदेशी सल्तनतके मातहत ही रहेंगे — फिर चाहे देशका कारबार कांग्रेसवालोंके हाथमें हो या दूसरोंके। फर्ज कीजिये कि कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलोंको अहिंसामें विश्वास नहीं है। यह भी मान लीजिये कि लोग यानी हिन्दू, मुसलमान और दूसरे हिन्दुस्तानी फौज और पुलिसका सहारा चाहते हैं। अगर अैसा है, तो वह अुन्हें मिलता रहेगा।

जो कांग्रेसी प्रधान (मंत्री) अहिंसामें पूरा विश्वास रखते हैं, अुन्हें फौज या पुलिसकी मदद लेना अच्छा न लगेगा। अिसलिअे वे अिस्तीफा दे सकते हैं। अिसके मानी यह हुअे कि जब तक लोगोंमें आपसमें फैसला कर लेनेकी ताकत नहीं आती, तब तक हुल्लड़बाजी होती रहेगी और हममें अहिंसाका सच्चा बल पैदा ही न होगा।

अब सवाल यह रहा कि अैसा अहिंसक बल किस तरह पैदा हो सकता है? अिस सवालका जवाब अहमदाबादसे आये हुअे अेक खतके जवाबमें ता० ४ अगस्तको मैं दे चुका हूं। जब तक हममें बहादुरी और मुहब्बतके साथ मरनेकी ताकत पैदा नहीं होती, तब तक हममें वीरोंकी अहिंसाका बल नहीं आ सकता।

अब सवाल यह है कि आदर्श समाजमें कोअी राजसत्ता रहेगी या वह अेक बिलकुल अराजक समाज बनेगा? मेरे खयालमें अैसा सवाल पूछनेसे कुछ भी फायदा नहीं हो सकता। अगर हम अैसे समाजके लिअे मेहनत करते रहें, तो वह किसी हद तक बनता रहेगा, और अुस हद तक लोगोंको अुससे फायदा पहुंचेगा। युक्लिडने कहा है कि लाअिन वही हो सकती है, जिसमें चौड़ाअी न हो। लेकिन अैसी लाअिन या लकीर न तो आज तक कोअी बना पाया, न बना पायेगा। फिर भी अैसी लाअिनको खयालमें रखनेसे ही प्रगति हो सकती है। और, हरअेक आदर्शके बारेमें यही सच है।

हां, अितना याद रखना चाहिये कि आज दुनियामें कहीं भी अराजक समाज मौजूद नहीं है। अगर कभी कहीं बन सकता है, तो अुसका आरम्भ हिन्दुस्तानमें ही हो सकता है। क्योंकि हिन्दुस्तानमें अैसा समाज बनानेकी कोशिश की गअी है। आज तक हम आखिरी दरजेकी बहादुरी नहीं दिखा सके; मगर अुसे दिखानेका अेक ही रास्ता है, और वह यह है कि जो लोग अुसमें मानते हैं, वे अुसे दिखायें।

नअी दिल्ली, ६–९–'४६

हरिजनसेवक, १५–९–'४६

२१३

खद्दर

'हरिजनसेवक' के पाठक कह सकते हैं कि जब मुल्कमें अंधा-धुन्धी चल रही है, तब खद्दरकी बात भद्दी-सी लगती है, क्योंकि अुनमेंसे बहुतेरे तो शहरोंमें रहनेवाले हैं। और, अब तो औश्वरकी कृपासे दंगा-फसाद शहरों तक ही महदूद है। बात यह है कि शहरोंमें भी सब लोग थोड़े ही दंगा-फसादमें शामिल होते हैं? और, खादीके खयालके साथ तो शांति या अमनका खयाल आता ही है। आखिर, या तो करोड़ोंको खादी अपनानी है या फिर अहिंसक स्वराज्यको भूल जाना है। अिसलिअे लोग कितने ही तूफानमें क्यों न फंसे रहें, फिर भी जिनको शांतिमें विश्वास है, वे न चरखेको भूलेंगे, न खादीको। अगर हम खाना भूलें या छोड़ें, तो शायद चरखेको भी भूल सकें। अिस दृष्टिसे चरखा-संघकी तरफसे और दूसरे खादी-प्रेमियोंकी तरफसे चरखा-जयंतीके बारेमें कुछ निवेदन या बयान निकले हैं। जो लोग अुसे अिस निगाहसे देखनेवाले हैं, वे तो चरखा-जयंतीके लिअे सूत कातते ही रहेंगे और चरखा-संघके नीचे लिखे प्रस्ताव पर अमल करते रहेंगे :

> "चरखा-संघके ट्रस्टी मंडलकी यह सभा संघकी शाखाओं और खादी-प्रेमियोंसे निवेदन करती है कि भरसक कोशिश करके आगामी ७८ वीं चरखा-जयंती तक कम-से-कम ७८,००० साधारण सहयोगी बनावें, जिनमें कम-से-कम आधे वस्त्र-स्वावलंबी हों।
>
> "साधारण सहयोगीसे मतलब वह व्यक्ति है, जो संपूर्ण आदतन् खादीधारी होते हुअे चरखा-संघको अपना खुदका काता हुआ कम-से-कम ६ गुण्डी सूत सालाना दे।
>
> "वस्त्र-स्वावलंबीसे मतलब अुस व्यक्तिसे है, जो संपूर्ण आदतन् खादीधारी रहते हुअे, अस्वास्थ्यके या अैसे कुछ कारणोंके, जिन पर अुसका काबू न हो, समयको छोड़कर बाकी समयमें अपने या अपने परिवारके अिस्तेमालके या दानके हेतुसे हर महीने नियमपूर्वक कमसे कम केवल कताअीकी साढ़े सात गुण्डी

या संयुक्त कताओ (कपासकी ओटाओसे सूतकी कताओ तक)की पांच गुण्डी सूत कातता हो।

"चरखा-संघने यह भी अेक प्रस्ताव पास किया है कि जितने क्षेत्रमें खादी पैदा करनेके लिअे चरखा चलता है, अुतने क्षेत्रकी आबादीके हिसाबसे कमसे कम फी आदमी अेक वर्गगज खादीकी स्थानिक या मुकामी खपत जल्दी ही होने लग जानी चाहिये।"

नअी दिल्ली, ४–९–'४६

हरिजनसेवक, १५–९–'४६

२१४

गरीब गाय

अेक विदुषी बहन पूछती हैं:

"जो गायें या भैंसें गाभिन होती हैं, अुन्हें छोड़कर बाकी दूध देनेवाली या दूध न देनेवाली गायों और भैंसोंको हलमें जोता जाय, तो अुससे किसानको आर्थिक लाभ हो सकता है; लेकिन आज समाज अिस चीजको सहन नहीं करता। अिसके बारेमें आपका क्या मत है?

"हिन्दुस्तानमें चरागाहोंकी बहुत कमी है। आजके किसानके लिअे अुपयोगी पशुओंके चारे-दानेका अिन्तजाम करना भी मुश्किल हो गया है, अैसी हालतमें बेकार और कमजोर गाय वगैरा पशुओंके कत्लको कानूनन् बन्द करवाना आपके खयालसे ठीक होगा क्या?"

पहला सवाल सन् १९१५ में मेरे सामने आया था। अुस वक्त भी मुझे लगा था कि अगर हम अैसी गायोंको हलमें जोतें, तो अुससे अुन्हें कोअी नुकसान न पहुंचेगा, बल्कि वे हट्टी-कट्टी और मजबूत बनेंगी और ज्यादा दूध देंगी। लेकिन अिसमें अेक शर्त यह है कि गायसे बेरहमीके साथ नहीं, बल्कि अुसे अपना मित्र समझकर काम

लिया जाय। और अेक गाय ही नहीं, बल्कि सभी पशुओंसे रहम-दिलीके साथ काम लिया जाना चाहिये। अपनी-अपनी मर्यादा या हदमें रह कर सभी जानदारोंको मेहनत तो करनी ही है। मेहनत करनेसे वे अूपर ही अुठते हैं, कभी नीचे नहीं गिरते।

दूसरे सवालका जवाब भी मैं तो बहुत पहले दे चुका हूं। गोवध कानूनकी मददसे बन्द नहीं हो सकता। वह तो ज्ञानसे, तालीमसे और मित्रभावसे ही बन्द हो सकता है। जो पशु धरतीके लिअे भाररूप हैं, वे बच ही नहीं सकते।

जो मनुष्य भाररूप है, वह भी नहीं बच सकता।

नअी दिल्ली, ६–९–'४६
हरिजनसेवक, १५–९–'४६

२१५
हरिजन और कुअें

श्री हरदेव सहाय लिखते हैं :

"कल शामके अपने प्रवचनमें हरिजनोंकी तकलीफोंकी ओर ध्यान दिलाते हुअे आपने यह कहा था कि अुनको कुओंसे पानी नहीं भरने दिया जाता। पिछले २५ बरसोंकी लगातार कोशिशोंके बावजूद हरिजनोंका यह कष्ट अभी तक दूर नहीं हो सका है। हरिजनोंके कष्टोंको आपसे अधिक जाननेवाला दूसरा कोअी नहीं।

"सेवककी नाकिस रायमें अब कांग्रेसी सरकारोंको हरिजनोंके सम्बन्धमें अपनी नीति शीघ्र ही घोषित करके अिस तरहके कष्टोंको कानूनन् दूर करना चाहिये। सेवक आपका ध्यान अिस सम्बन्धमें पंजाबके हरिजनोंकी ओर दिलाना चाहता है। वहां कुओंसे पानी भरना तो दूर रहा, कुअें बनानेके लिअे जमीन भी नहीं मिलती। अिसलिअे आपसे निवेदन है कि पंजाब सरकार द्वारा हरिजनोंको यह अधिकार मिलना चाहिये कि जहां

अुनको सार्वजनिक कुओंसे पानी भरनेकी मुमानियत हो, जैसी कि है, वहां सरकार अपने खरचेसे हरिजनोंकी आबादीके लिहाजसे कुअें बनवा दे, या कम-से-कम हरिजनोंको अपने कुअें बनानेके लिअे जमीन दिलाने या देनेका नियम बनावे। बहुतेरे गांव अैसे हैं जहां चाहते हुअे भी हरिजन अपने ही खरचेसे कुअें नहीं बना सकते।

"कहीं-कहीं सरकारने हरिजनोंके लिअे कुअें बनाने शुरू भी किये हैं, पर वे बहुत नाकाफी हैं। हरअेक प्रान्तीय सरकारका यह फर्ज होना चाहिये कि वह पीनेके पानीका अिन्तजाम जरूर करे।"

अिन भाअीने जो लिखा है, वह ठीक ही है। हरिजनोंके लिअे पानीका अिन्तजाम सरकारकी तरफसे होना ही चाहिये। अिसके लिअे सिर्फ कुअें खोदनेकी जगह देना काफी नहीं, अुसमें कुअें खुदवा देना भी जरूरी है।

नअी दिल्ली, ६–९–'४६
हरिजनसेवक, १५–९–'४६

२१६
हिन्दुस्तानीके बारेमें

बिहारके अेक सज्जन लिखते हैं :

"आपके नेतृत्वमें हिन्दुस्तानी-प्रचारका जो बड़ा और सराहनीय काम चल रहा है, अुसके जरिये देशकी तरक्की और आजादी हासिल करनेमें बड़ी मदद मिल रही है। जिस देशकी अपनी भाषा नहीं, अुसे जीनेका अधिकार ही क्या हो सकता है? अिस मुल्ककी भी यही बदकिस्मती है। सब-कुछ जानते हुअे भी हमारे नेताओंका ध्यान अिस ओर पूरी तरहसे नहीं गया है। आपके अितनी कोशिश करने पर भी कांग्रेसी कार्य-कर्ताओंने पूरा-पूरा अमल नहीं किया है। यह बात भी आपसे

कुछ छिपी नहीं कि अंग्रेजीकी बू गअी नहीं है, और आज भी अखिल भारत कांग्रेस-कमेटीके अजलासमें और असेम्बलियोंमें अक्सर वे लोग भी, जिनकी मातृभाषा हिन्दुस्तानी (हिन्दी या अुर्दू) है, अंग्रेजीमें बोलना ज्यादा पसंद करते हैं। क्या यह मुमकिन नहीं कि जिस तरह कांग्रेसी मेम्बरके लिअे खादी पहनना अनिवार्य है, अुसी तरह कांग्रेस यह भी नियम बना दे कि कांग्रेसी सदस्योंको (फिर वे किसी भी असेम्बली या संस्थामें हों) हिन्दुस्तानीमें ही अपने खयालातका अिजहार करना होगा? हां, अुन लोगोंके लिअे, जो हिन्दुस्तानी बिलकुल नहीं जानते, कुछ रियायत की जा सकती है। मगर अुन्हें भी निश्चित समयके भीतर ही हिन्दुस्तानी सीख लेनी होगी। मुझे यह अनुभव हुआ है कि अुस असेम्बलीमें भी, जहां सभी लोग अच्छी तरह हिन्दुस्तानी जानते हैं, चाहे अुनमें अंग्रेज भी क्यों न हों, हमारे जिम्मेदार कांग्रेसी सदस्य अंग्रेजीमें ही बोलना पसन्द करते हैं। अिसको तो बन्द ही करना होगा। बगैर अैसा किये देशका कायापलट नहीं हो सकता, अैसा हमारा खयाल है। कांग्रेस आज बहुत बड़ी जिम्मेदारी ले रही है। कांग्रेसी सदस्योंको वहां भी हिन्दुस्तानीमें ही काम शुरू करना चाहिये।"

अिस खतके लेखकने ठीक ही लिखा है। अंग्रेजी भाषाका मोह अभी तक हमारे दिलसे दूर नहीं हुआ है। जब तक वह न छूटेगा, हमारी भाषायें कंगाल रहेंगी। काश, हमारी बड़ी सरकार, जो लोगोंके प्रति जिम्मेदार है, अपना कारबार हिन्दुस्तानीमें या प्रान्तोंकी भाषाओंमें करे! अिस कामके लिअे अुसके अमला-फैलामें, कर्मचारियोंमें, सब सूबोंकी भाषाके जानकार होने चाहिये। साथ ही, लोगोंको अपने सूबेकी भाषामें या राष्ट्रीय भाषामें लिखनेका बढ़ावा देना जरूरी है। अैसा होनेसे हम बहुतसे खर्चसे बच जायंगे, और अिसमें शक नहीं कि अिससे लोगोंको भी सुभीता होगा।

नअी दिल्ली, ७–९–'४६

हरिजनसेवक, १५–९–'४६

२१७

दशरथ-नन्दन राम

अेक आर्यसमाजी भाअी लिखते हैं :

"जिन अविनाशी रामको आप अीश्वर-स्वरूप मानते हैं, वे दशरथ-नन्दन सीतापति राम कैसे हो सकते हैं? अिस दुविधाका मारा मैं आपकी प्रार्थनामें बैठता तो हूं, लेकिन रामधुनमें हिस्सा नहीं लेता। यह मुझे चुभता है। क्योंकि आपका कहना तो यह है कि सब हिस्सा लें, और यह ठीक भी है। तो क्या आप अैसा कुछ नहीं कर सकते, जिससे सब हिस्सा ले सकें?"

'सब' के मानी मैं बता चुका हूं। जो लोग दिलसे हिस्सा ले सकें, जो अेक सुरमें गा सकें, वे ही हिस्सा लें, बाकी शान्त रहें। लेकिन यह तो छोटी बात हुअी। बड़ी बात तो यह है कि दशरथ-नन्दन अविनाशी कैसे हो सकते हैं? यह सवाल खुद तुलसीदासजीने अुठाया था और अुन्होंने अिसका जवाब भी दिया था। अैसे सवालोंका जवाब बुद्धिसे नहीं दिया जा सकता — बुद्धिको भी नहीं। यह दिलकी बात है। दिलकी बात दिल ही जाने। शुरूमें मैंने रामको सीतापतिके रूपमें पाया। लेकिन जैसे-जैसे मेरा ज्ञान और अनुभव बढ़ता गया, वैसे-वैसे मेरा राम अविनाशी और सर्वव्यापी बना है, और है। अिसका मतलब यह कि वह सीतापति बना रहा, और साथ ही सीतापतिके माने भी बढ़ गये। संसार अैसे ही चलता है। जिसका राम दशरथ राजाका कुमार ही रहा, अुसका राम सर्वव्यापी नहीं हो सकता; लेकिन सर्वव्यापी रामका बाप दशरथ भी सर्वव्यापी बन जाता है। कहा जा सकता है कि यह सब मनमानी है — 'जैसी जिसकी भावना, वैसा अुसको होय'। दूसरा कोअी चारा मुझे नजर नहीं आता। अगर आखिरकार सब धर्म अेक हैं, तो हमें सबका अेकीकरण करना है। अलग तो पड़े ही हैं, और अलग मानकर हम अेक-दूसरेसे लड़ते हैं। और, जब

थक जाते हैं, तो नास्तिक बन जाते हैं, और फिर सिवा 'हम' के न अीश्वर रहता है, न कुछ और! लेकिन जब समझ जाते हैं, तो हम कुछ नहीं रह जाते, अीश्वर ही सब कुछ बन जाता है — वह दशरथ-नन्दन, सीतापति, भरत व लक्ष्मणका भाअी है भी और नहीं भी। जो दशरथ-नन्दन रामको न मानते हुअे भी सबके साथ प्रार्थनामें बैठते हैं, अुनकी बलिहारी है! यह बुद्धिवाद नहीं। यहां में यह बता रहा हूं कि मैं क्या करता हूं, और क्या मानता हूं।

नअी दिल्ली, १६–९–'४६
हरिजनसेवक, २२–९–'४६

२१८

कांग्रेसी मंत्री साहब लोग नहीं

अेक कांग्रेस-सेवक पूछते हैं:

"क्या कांग्रेसी प्रधान अुसी साहबी ठाठसे रह सकते हैं, जिस ठाठसे अंग्रेज रहते थे? क्या वे अपने घरेलू कामोंके लिअे भी सरकारी मोटरों वगैराका अिस्तेमाल कर सकते हैं?"

मेरी दृष्टिसे तो दोनों सवालोंका अेक ही अुत्तर हो सकता है। अगर कांग्रेसको लोक-सेवकोंकी ही संस्था रहना है, तो प्रधान वर्ग साहब लोगोंकी तरह नहीं रह सकता, और न सरकारी साधनोंका अुपयोग घरेलू कामोंके लिअे कर सकता है।

नअी दिल्ली, २०–९–'४६
हरिजनसेवक, २९–९–'४६

२१९

दो घोड़ोंकी सवारी

अुत्कल या अुड़ीसामें तांती लोग काफी तादादमें रहते हैं। वे कानूनन् हरिजन माने जाते हैं, और पान-तांतीके नामसे मशहूर हैं। अुनमें से कअी अपने पेटके लिअे सिंहभूम जिलेके कोल्हन तालुकेमें रहते हैं। वे अपनेको पान-तांती नहीं कहते। सिर्फ तांतीके नामसे अपनी पहचान देते हैं। नतीजा अिसका यह हुआ है कि बिहारमें अुनकी गिनती हरिजनोंमें नहीं होती। अुनके अगुआ भी अपनेको हरिजन कहकर दफ्तरोंमें दाखिल नहीं होते। मेरे ख्यालमें अुनका यह तरीका ठीक ही है। अपनेको हरिजन या अछूत कहलानेका मोह क्यों रखा जाय? अुससे फायदा क्या? यही न कि अुसकी वजहसे वोट मिलेंगे, सरकारी मदद मिलेगी, और हरिजन-सेवक-संघसे तालीमके लिअे वजीफा वगैरा मिलेगा? क्या अिस तरहकी मदद पानेके लिअे हम घृणित बनें? यह विचार ही हमें गिरानेवाला है। क्या रोटीके लिअे हम अपनेको पतित बनायें?

तांतियोंको पान-तांती बननेकी जरूरत नहीं। अब तो लोगोंकी सरकार काम कर रही है। सरकारका धर्म है कि वह पिछड़ी हुअी जातियोंके साथ भी वैसा ही बरताव करे, जैसा हरिजनोंके साथ करती है — यानी अुनके लिअे तालीम वगैराका अिन्तजाम करे।

अछूतोंका अेक अलग विभाग कायम करनेका तरीका अंग्रेज सरकारका अपना तरीका था। लोगोंकी सरकारके नजदीक तो क्या गरीब, और क्या अनपढ़, सब अेक ही हैं — होने चाहिये। अुसके नजदीक न कोअी अूंच है, न नीच, और न किसी तरहका कोअी धार्मिक भेद है। अुसके लिअे तो सभी हिन्दुस्तानी हैं।

तांतियोंको चाहिये कि वे हरिजन बननेकी कोशिश हरगिज न करें। अुन्हें सरकारी नौकरीका लालच भी न होना चाहिये। जो हाल

करोड़ोंका होगा, वही तांतियोंका और दूसरे पेशेदारोंका भी होगा। चुनांचे तांतियोंको में यह सलाह दूंगा कि वे अपनी हालत सुधारनेके लिअे सीधी कोशिश करें, और दूसरे अुन्हें मदद दें।

नअी दिल्ली, २८–९–'४६
हरिजनसेवक, ६–१०–'४६

२२०
ग्राम-विद्यापीठ

डॉक्टर किनी मैसूरमें महकमे तालीमके मंत्री थे। अुन्होंने 'हरिजन' के लिअे अेक लम्बा लेख लिखा है। अुनका मतलब यह है कि हिन्दुस्तान अिसलिअे गरीब रहा है कि राजसत्ताने गरीब देहातको सही तालीमसे दूर रखा है। वे मानते हैं कि हमारे शहरोंमें जो विद्यापीठ या युनिवर्सिटियां हैं, अुनसे देहातकी सेवा नहीं हो सकेगी, क्योंकि अिन विद्यापीठोंमें अंग्रेजी सल्तनतने पढ़ाअीका जो अिन्तजाम किया है, वह सब पश्चिमको बढ़ानेके लिअे है, और अिन विद्यापीठोंमें देहातके लायक तालीम दाखिल करना मुश्किल है।

डॉ० किनी कहते हैं कि देहातके लिअे देहाती विद्यापीठ होने चाहिये, जिनमें बड़ी अुमरके लोग भी सीख सकें।

किनी महाशय लिखते हैं कि ग्रामीण विद्यापीठोंमें खेतीविद्या, फलविद्या, रेशमविद्या, गोविद्या, मुर्गीविद्या, मधुविद्या, मछलीविद्या, खद्दरविद्या, ग्रामीण स्वच्छता, ग्रामीण विद्युत्-विद्या, ग्रामीण रास्ते, ग्रामीण गृहविद्या, ग्रामीण कुम्हारविद्या, ग्रामीण अर्थशास्त्र, ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्राम-रचना, ग्रामीण व्यापार, और ग्रामीण सराफा व साहूकारी-विद्या वगैरा सिखानेका अिन्तजाम होना चाहिये। अगर हिन्दुस्तानके देहातमें ये सब चीजें शास्त्रके रूपमें सिखाअी जायं, तो लेखक कहते हैं कि देहातका चेहरा बदल जायगा और देहातको शहरोंकी

ओर नहीं देखना पड़ेगा, बल्कि अुलटे शहरियोंको देहातकी ओर देखना पड़ेगा।

डॉ० किनीके लेखका मैंने तो सार ही दिया है। अगर केन्द्रीय कैबिनेट और सूबोंकी कैबिनेटें अिसे अपना लें, तो बड़ा काम हो सकता है। अुसको रूप देनेके लिअे किनी महोदयको डॉ० जाकिर-हुसेन और आर्यनायकम् दम्पतिसे मशविरा करना चाहिये। मैं तो मानता हूं कि शहरके विद्यापीठ भी बदल सकते हैं।

नअी दिल्ली, १५–९–'४६
हरिजनसेवक, १३–१०–'४६

२२१
डोला-पालकी

गढ़वाल जिलेमें हिन्दू लोग अितने अनजान हैं कि वे हरिजन वरराजा (दूल्हा) को डोला-पालकीमें या दूसरी किसी सवारी पर बैठकर मंदिरों, चौराहों या अपनेको अूंचा माननेवाले हिन्दुओंके मोहल्लोंसे नहीं जाने देते। अब तो अैसा बुरा रिवाज बरदाश्त नहीं किया जाना चाहिये। अेक भाअीने मुझे कानूनका मसविदा भी भेजा है, जिसे पास करने पर शायद वे अनजान लोग समझ जायं। और अैसा करना ही चाहिये। हर हालतमें, जब कभी अैसा 'वरघोड़ा' यानी बरातका जुलूस निकाला जाय, तो अुसके साथ अिन गरीब लोगोंकी हिफाजतके लिअे अेक पुलिस-पार्टी रहनी चाहिये। सरकारकी तरफसे अिश्तहार भी बांटे जाने चाहिये कि डोला-पालकी या दूसरी किसी सवारी पर बैठनेसे किसीको रोका न जाय — रुकावट डालने-डलवाने-वालोंको सजा दी जायगी।

नअी दिल्ली, ६–१०–'४६
हरिजनसेवक, १३–१०–'४६

२२२

'वनस्पति'का खतरा

"ता० १४–४–'४६ के 'हरिजन' में आपने वनस्पतिके बारेमें सरदार दातारसिंहजीके लेखका समर्थन किया था। अुस लेखमें कअी अुपाय भी बताये गये थे, जिन पर अमल करनेसे यह बुराअी दूर हो सकती है। लेकिन बुराअी बढ़ ही रही है। पंजाब, अकोला, शेगांव, और कर्नूलमें वनस्पतिके नये कारखाने खोलनेकी अिजाजत भी दी जा रही है। कम-से-कम यह तो बन्द होना चाहिये। पंजाब-जैसे सूबेमें वनस्पतिको रंगकर बेचनेका नियम भी नहीं बनाया गया।"

यह अेक खतका निचोड़ है। 'वनस्पति' शब्द मैंने अवतरणमें रखा है। अुसका पूरा नाम 'वनस्पति घी' है। वनस्पति तो हमेशा अच्छी होती है। वनस्पति यानी फल, फूल, भाजीकी पत्तियां वगैरा। लेकिन जब वह दूसरी वस्तुकी जगह लेती है, तब जहर बन जाती है। वह घी नहीं है, न हो सकती है। जब होगी तब मैं ही जोरोंसे कहूंगा कि घीकी कोअी जरूरत नहीं। किसी प्राणी या जानवरके दूधमें से जो चिकना पदार्थ पैदा होता है, वह घी या मक्खन है। अुस घीके नामसे जो वनस्पति तेल, घी या मक्खनकी शकलमें या अुसके नामसे बेचा जाता है, वह हिन्दुस्तानके साथ किया जानेवाला अेक बड़ा धोखा है, दगा है। हिन्दुस्तानके बेपारियोंका धर्म है कि वे किसी भी शकलमें घीके नामसे अैसा दिखावा करके कोअी तेल या पदार्थ न बेचें। किसी सरकारको तो अैसा हरगिज करना चाहिये।

हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंको न दूध मिलता है, न छाछ, न घी या मक्खन। नतीजा यह होता है कि लोग मरते जाते हैं, निस्तेज बनते हैं। अैसा लगता है कि मनुष्यके शरीरको मांस या दूध और दूधसे बनी हुअी चीजें जैसे दही, छाछ, घी, मक्खन वगैराकी जरूरत है।

अिस बारेमें जो धोखा देता है या जो अिसे दरगुजर करता है, वह हिन्दुस्तानका दुश्मन बनता है।

नअी दिल्ली, ६–१०–'४६
हरिजनसेवक, १३–१०–'४६

२२३

सवाल-जवाब

कर्म पूजा नहीं?

स० — मनुष्य अीश्वर-भजनमें जितना समय लगाता है, अगर अपना अुतना ही समय वह किसी गरीबकी सेवामें लगावे, तो क्या यह भजनसे अच्छा न होगा?

जो मनुष्य अैसा करता है, क्या अुसके लिअे अीश्वर-भक्ति जरूरी है?

ज० — अैसे सवालमें मुझे आलस्यकी बू आती है। नास्तिकताकी भी। बड़े कर्मयोगी कभी भजन या भक्ति नहीं छोड़ते। हां, सिद्धान्त-रूपसे यह कहा जा सकता है कि पारमार्थिक कर्म ही भक्ति है, और अैसे लोगोंको भजनकी जरूरत नहीं। मगर हकीकतमें भजन वगैरा अैसे कर्मके सहायक बनते हैं, और अीश्वरकी याद ताजा रखते हैं।

अछूतपनका नाश कैसे हो?

मद्रासके अेक हरिजन भाअी लिखते हैं:

स० — हरिजनोंको तालीम देना, अुन्हें आम कुओंसे पानी भरने देना, मंदिरोंमें जाने देना वगैरा अच्छा तो है, लेकिन सच्ची बात यह है कि हरिजनोंके लिअे बस्ती या चेरी जैसी अलग जगहें नहीं होनी चाहियें। तभी अस्पृश्यताका नाम-निशान मिट सकेगा।

ज० — यह कहना अच्छा लगता है कि हरिजनोंके लिअे अलग बस्तियोंका न रहना अछूतपनके नाशकी निशानी होगी। आज भी,

जहां तक मुझे अिल्म है, अैसा कोअी आम कानून नहीं, जिससे हरिजनोंको अपने लिअे बनी बस्तियोंमें ही रहना पड़ता हो। दुष्ट रिवाजने अैसी हालत पैदा कर रखी है। यह रिवाज नाबूद हो रहा है, लेकिन बहुत धीरे-धीरे। सबका धर्म है कि वे अिस रिवाजको तोड़ें। यह लोगोंके दिलोंको हिलानेकी बात है। अैसा काम बड़ी तपश्चर्यासे ही हो सकता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

"तपबल रचअि प्रपंच बिधाता।
तपबल बिष्णु सकल-जग-त्राता॥
तप-अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाअि तप अस जिय जानी॥"

जब कोअी अैसी ताकत रखनेवाला पैदा होगा, तब काम आसान हो जायगा। धर्म बच जायगा।

क्या रामनाम और जंतर-मंतर अेक हैं?

स० — मेरा भतीजा बीमार था। अुसके लिअे रिश्तेदारोंने दवा-दारू नहीं की। ओझों और पण्डोंको बुलाया और जंतर-मंतर करवाये। यह नहीं कहा जा सकता कि अुससे कुछ फायदा हुआ। शायद आपकी माताने भी आपके लिअे अैसा ही किया होगा। अब आप रामनामकी बात करते हैं। जंतर-मंतर और रामनाम अेक तो नहीं हैं न?

ज० — अिस शंकाका जवाब किसी-न-किसी शकलमें मैंने दिया तो है, फिर भी कुछ और कहना अच्छा होगा। मुझे खयाल है कि मेरी मांने दवाअी तो कराअी थी। वह जंतर-मंतरमें अवश्य मानती थीं। मैं नहीं मान सकता। मेरे कुछ ज्ञानी मित्र हैं, जो मानते हैं। मगर मेरी आस्था नहीं जमती। अिसलिअे मैं निडर होकर कह सकता हूं कि मेरे रामनामका जंतर-मंतरसे कोअी वास्ता नहीं। मैंने कहा है कि रामनाम अथवा किसी भी रूपमें हृदयसे अीश्वरका नाम लेना अेक महान् शक्तिका सहारा लेना है। वह जो कर सकती है, सो दूसरी कोअी शक्ति नहीं कर पाती। अुसके मुकाबले अणुबम कोअी चीज

नहीं। अुससे सब दर्द दूर होते हैं। हां, यह सही है कि हृदयसे नाम लेनेकी बात कहना आसान है, करना कठिन है। सो वह कितना भी कठिन क्यों न हो, वही सर्वोपरि वस्तु है।

नअी दिल्ली, ५–१०–'४६

हरिजनसेवक, १३–१०–'४६

२२४

मालवीयजी महाराज

अंग्रेजीमें अेक कहावत है — "राजा गया, राजा हमेशा जिये!" ठीक यही भारत-भूषण मालवीयजी महाराजके लिअे कहा जा सकता है — "मालवीयजी गये, मालवीयजी अमर हों!" मालवीयजी हिन्दुस्तानके लिअे पैदा हुअे और हिन्दुस्तानके लिअे किये गये अपने कामोंमें जीते हैं। अुनके काम बहुत हैं। बहुत बड़े हैं। अुनमें सबसे बड़ा हिन्दू-विश्व-विद्यालय है। गलतीसे अुसे हम बनारस हिन्दू युनिवर्सिटीके नामसे पहचानते हैं। अुस नामके लिअे दोष मालवीयजी महाराजका नहीं, अुनके पैरोकारोंका रहा है। मालवीयजी महाराज दासानुदास थे। दास लोग जैसा करते थे, वैसा वे करने देते थे। मुझे पता है कि यह अनुकूलता अुनके स्वभावमें भरी थी। यहां तक कि बाज दफा वह दोषका रूप ले लेती थी। लेकिन 'समरथको नहीं दोष गुसाअीं' वाली बात मालवीयजी महाराजके बारेमें भी कही जा सकती है। अुनका प्रिय नाम तो हिन्दू-विश्व-विद्यालय ही था। और यह सुधार तो अब भी करने लायक है; अिस विश्व-विद्यालयका हरअेक पत्थर शुद्ध हिन्दूधर्मका प्रतिबिम्ब होना चाहिये। अेक भी मकान पश्चिमके जड़वादकी निशानी न हो, बल्कि आध्यात्मिक निशानी हो। और, जैसे मकान हों वैसे ही शिक्षक और विद्यार्थी भी हों। आज हैं? प्रत्येक विद्यार्थी शुद्ध धर्मकी जीवित प्रतिमा है? नहीं है, तो क्यों

नहीं है? अिस विश्व-विद्यालयकी परीक्षा विद्यार्थियोंकी संख्यासे नहीं, बल्कि अुनके हिन्दूधर्मकी प्रतिमा होनेसे ही हो सकती है, फिर भले वे थोड़े ही क्यों न हों।

मैं जानता हूं कि यह काम कठिन है। लेकिन यही अिस विद्यालयकी जड़ है। अगर यह अैसा नहीं है, तो कुछ नहीं है। अिसलिअे स्वर्गीय मालवीयजीके पुत्रोंका और अुनके अनुयायियोंका धर्म स्पष्ट है। जगतमें हिन्दूधर्मका क्या स्थान है? अुसमें आज क्या दोष हैं? वे कैसे दूर किये जा सकते हैं? मालवीयजी महाराजके भक्तोंका कर्तव्य है कि वे अिन प्रश्नोंको हल करें। मालवीयजी अपनी स्मृति छोड़ गये हैं। अुसको स्थायीरूप देना और अुसका विकास करना अुनका श्रेष्ठ स्मृति-स्तम्भ होगा।

विश्व-विद्यालयके लिअे स्व० मालवीयजीने काफी द्रव्य अिकट्ठा किया था, लेकिन बाकी भी काफी रहा है। अिस काममें तो हरअेक आदमी हाथ बंटा सकता है।

यह तो हुअी अुनकी बाह्य प्रवृत्ति। अुनका अन्दरूनी जीवन विशुद्ध था। वे दयाके भण्डार थे। अुनका शास्त्रीय ज्ञान बड़ा था। भागवत अुनकी प्रिय पुस्तक थी। वे बाहोश कथाकार थे। अुनकी स्मरण-शक्ति तेजस्विनी थी। जीवन शुद्ध था, सादा था।

अुनकी राजनीतिको और दूसरी अनेक प्रवृत्तियोंको छोड़ देता हूं। जिन्होंने अपना सारा जीवन सेवाको अर्पित किया था, और जो अनेक विभूतियां रखते थे, अुनकी प्रवृत्तिकी मर्यादा हो नहीं सकती। मैंने तो अुनमें से चिरस्थायी चीजें ही देनेका संकल्प किया था। जो लोग विश्व-विद्यालयको शुद्ध बनानेमें मदद देना चाहते हैं, वे मालवीयजी महाराजके आन्तर-जीवनका मनन और अनुसरण करनेकी कोशिश करें।

श्रीरामपुर, २३–११–'४६
हरिजनसेवक, ८–१२–'४६

२२५

सवाल-जवाब

हिंसाका मुकाबला कैसे किया जाय?

स० — लीगके नेता और अुसके अनुयायी अपनी मुराद हासिल करनेके लिअे अहिंसामें अेतबार नहीं करते हैं। अिस हालतमें यह किस प्रकार संभव है कि लीगवालोंका हृदय जीता जाय, या अुन्हें अिस बातका विश्वास दिलाया जाय कि हिंसात्मक साधन बुरा है?

ज० — हिंसाका सही प्रतिकार अहिंसासे ही हो सकता है, यह सनातन सत्य है। जिन भाअीने सवाल किया है, अुनका अेतबार अहिंसा पर नहीं हो सकता है। क्योंकि अिस अहिंसा-रूपी शस्त्रके आगे हिंसक शस्त्र, चाहे वह अेटम-बम ही क्यों न हो, बेकार होता है। यह बिलकुल दूसरी बात है कि अैसे बुलन्द शस्त्र जाननेवाले लोग बहुत कम होते हैं। अुस (अहिंसक) शस्त्रके अुपयोगमें ज्ञान और दिलकी ताकतकी काफी दरकार रहती है। अुसमें मिलिटरी स्कूल-कॉलेजोंमें बरसों तालीम लेनेकी बात नहीं होती, लेकिन दिल साफ रखनेकी जरूरत होती है। जितनी मुसीबत हमको हिंसाका सामना करनेमें आती है, वह सब हमारे दिलकी कमजोरीकी निशानी है। दूसरी बात यह भी है कि अब तो कायदे आजम जिन्नाने अैसी बुलन्द बात कही है कि अपने हकोंको पानेके लिअे यानी पाकिस्तान पानेके लिअे हिंसाका अिस्तेमाल करना मुनासिब नहीं है। यह बात अुन्होंने सरहदी सूबेसे जो लोग अुन्हें मिलने गये थे, अुनसे साफ-साफ लफ्जोंमें कही है। अुसे हम न भूलें।

स० — बहुतसे लोगोंका अैसा खयाल होता जा रहा है कि पाकिस्तानके समर्थकोंके साथ संघर्ष — शायद हिंसात्मक ढंगका — होना अनिवार्य है। अगर राष्ट्रवादी अैसा समझें कि जब तक लीग पंजाब और बंगालके बंटवारेके लिअे सहमत नहीं हो जाती, तब तक पाकिस्तानकी मांग ठीक नहीं है, तो कांग्रेसी किस साधनका अवलंबन करें?

ज० —— अगर पहले सवालका जवाब ठीक समझमें आ गया है, तो दूसरा सवाल अुठ ही नहीं सकता। फिर भी बात साफ करनेके कारण में जवाब दे रहा हूं। अगर जिन्ना साहबका कहना सब मुसलमान या लीगी मुसलमान मान लें, तब तो हिंसात्मक ढंगका झगड़ा हो ही नहीं सकता। और, हिन्दू बड़ी तादादमें अहिंसाका सहारा लें, तो मुसलमान कितनी भी हिंसा करें, वह हिंसा बेकार होगी। अेक बात और भी समझ लेनी चाहिये। जो लोग अहिंसाके पुजारी हैं, वे गैर-मुनासिब खयाल तक भी न करें; अैसा काम तो कर ही नहीं सकते। अिसलिअे अगर पाकिस्तान ठीक नहीं है, तो बंगाल और पंजाबके टुकड़े भी ठीक नहीं हैं।

स० —— अधिकतर समाजवादियोंका यह विश्वास है कि सामाजिक क्रान्ति होनेसे हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा पीछे पड़ जायगा, और आर्थिक सवाल सामने आ जायेंगे। क्या आपकी समझसे यह अच्छा होगा कि अैसी क्रान्ति हो? क्या अिससे राम-राज्य कायम होनेमें मदद मिलेगी?

ज० —— सामाजिक क्रान्तिसे हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा कुछ हद तक तो ढीला पड़ेगा। अितना तो हम सबको साफ होना चाहिये कि झगड़ोंके बहुतसे कारण होते हैं। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा मिट जानेसे सब झगड़े मिट जाते हैं, अैसा तो नहीं कह सकते। अितना ही कहा जाय कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेने अेक भयंकर रूप ले रखा है। छोटे-मोटे दूसरे झगड़े मिट जानेसे अिस भयंकरताका रूप कम हो जायगा, अिसमें शक नहीं है।

जब गुलामी मिटकर आजादी आती है, तब समाजकी सारी व्याधियां (बुराअियां) अूपर आ जाती हैं। अिससे भड़कनेका मैं कोअी कारण नहीं पाता। अगर अैसे मौके पर हमारा मन स्थिर रहे, तो सब साफ हो जाता है। हर हालतमें आर्थिक सवालको हल होना ही है।

आज आर्थिक असमानता है। समाजवादकी जड़में आर्थिक समानता है। थोड़ोंको करोड़ और बाकी लोगोंको सूखी रोटी भी नहीं,

अैसी भयानक असमानतामें राम-राज्यका दर्शन करनेकी आशा कभी न रखी जाय।

अिसलिअे मैंने दक्षिण अफ्रीकामें ही समाजवादको स्वीकार किया था। मेरा समाजवादियों और दूसरोंसे यही विरोध रहा है कि सब सुधारोंके लिअे सत्य और अहिंसा ही सर्वोपरि साधन है।

स०—आप कहते हैं कि राजा, जमींदार और पूंजीपति संरक्षक (ट्रस्टी) बनकर रहें। आपके खयालसे क्या अैसे राजा, जमींदार या पूंजीपति अभी मौजूद हैं? या वर्तमान राजा वगैरामें से किन्हींके अिस प्रकार बदल जानेकी अुम्मीद है?

ज०—मेरे खयालसे अैसे राजा, जमींदार और पूंजीपति अभी हैं। अिसका मतलब यह नहीं है कि वे पूरे-पूरे संरक्षक बन चुके हैं। लेकिन अुनकी गति अुस ओर है।

मौजूदा राजा वगैराके संरक्षक बननेकी अुम्मीद रखी जाती है या नहीं, यह सवाल पूछने लायक है।

मेरी दृष्टिसे यह अुम्मीद जरूर रखी जाय। वे लोग अपने आप संरक्षक न बनेंगे, तो समय अुन्हें बनावेगा अथवा अुनका नाश हो जायगा। जब पंचायत-राज बनेगा, तब लोकमत सब कुछ करवा लेगा।

जमींदारी, पूंजी अथवा राजसत्ताकी ताकत तब तक ही कायम रह सकती है, जब तक आम लोगोंमें अपनी ताकतकी समझ नहीं होती। लोग रूठें तो राजा, पूंजीपति या जमींदार क्या कर सकता है? पंचायत-राजमें पंचका ही चलनेवाला है और पंच अपना काम कानूनसे कर लेता है। अगर पंचका कारोबार अहिंसासे चलेगा, तो तीनों मालिक कानूनसे संरक्षक बनेंगे और हिंसासे चलेगा तो अुनकी मालिकी बुझ जायगी।

नअी दिल्ली, २५-५-'४७

हरिजनसेवक, १-६-'४७

२२६

जिन्दा दफनाया ?

अेक हैदराबादी भाअी लिखते है:

“**गांधीको जिन्दा दफनाया जा रहा है।**

गांधीजीके माने गांधीके अुसूल। अिन्हीं अुसूलोंसे हम अिस दरजे पर पहुंचे हैं। लेकिन जिस सीढ़ीसे हम अूपर अुठे, अुसीको तोड़-ताड़कर फेंक दिया जा रहा है। यह काम वे लोग कर रहे हैं, जो गांधीजीके सबसे बड़े अनुयायी भी कहलाते हैं। हिन्दू-मुस्लिम-अेकता, हिन्दुस्तानी, खद्दर, ग्रामोद्योग — ये सब खतम कर दिये गये हैं। फिर भी जो अिनकी बातें करते हैं, वे या तो धोखेमें हैं, या जान-बूझकर धोखा दे रहे हैं।”

मुझे जिन्दा दफनानेका यह तरीका सबसे अच्छा है। ‘दफनाया गया’ अैसा तो मैं कैसे कबूल करूं? मेरे सबसे बड़े अनुयायी कौन, और सबसे छोटे कौन? मेरा तो अेक ही अनुयायी है — वह मैं या सब हिन्दी। मेरे अनुयायी वे हैं, जो अूपरकी बातें मानते हैं। मेरी अुम्मीद तो अब भी रहती है कि करोड़ों देहाती ये चारों चीजें मानते हैं। फिर भी अिस अिलजाममें काफी सत्य है। लेकिन अब मैं देख रहा हूं कि मुस्लिम लीगी भाअी यह कहने लगे हैं कि हम सब भाअी-भाअी हैं। अब तो यह भी तय हो गया है कि हम सब दोनों हिस्सोंके शहरी हैं। पासपोर्टकी जरूरत आज तो नहीं मानी जायगी। कोअी अेक हुकूमत शुरू करे, तब ही अैसा हो सकता है। हम आशा रखें और अैसा बरताव करें, जिससे पासपोर्टकी जरूरत ही न रहे। यह भी आशा रखें कि दोनोंमें से कोअी भी खद्दर नहीं छोड़ेंगे; देहाती अुद्योग-धंधोंको नुकसान नहीं पहुंचायेंगे। हिन्दुस्तानीके बारेमें मैं लिख चुका हूं। अुसे कैसे छोड़ा जाय? मुसलमान, जिनकी

मादरी जबान अुर्दू है, अुर्दू कैसे छोड़ें? अुन्हें अपनी अुर्दू आसान करनी होगी और हिन्दुओंको, जो अुर्दू नहीं जानते, अपनी हिन्दी आसान करनी होगी। तभी दोनों अेक-दूसरेको समझ सकेंगे। सबसे बड़ी बात तो लेखकने छोड़ ही दी है। हिन्दुओंको अस्पृश्यता और जात-पांत छोड़कर शुद्ध बनना होगा। मुसलमानोंको हिन्दुओंकी नफरत छोड़कर साफ होना होगा।

श्रीनगर, ३–८–'४७
हरिजनसेवक, १७–८–'४७

२२७
तिरंगा झंडा

जिन हैदराबादी भाअीने यह लिखा है कि 'गांधीको जिन्दा दफनाया जा रहा है' वे ही आगे चलकर झंडेके बारेमें लिखते हैं—"तिरंगा झंडा हमारे आन्दोलनका प्रतीक था। अुससे चरखा हटाकर सबसे बड़ा अपराध किया गया है। नये चक्रका या पुराने अशोकके चक्रका गांधीके चरखेसे कोअी संबंध नहीं है, बल्कि वे परस्पर-विरोधी हैं। गांधीका चरखा धर्मसे, मजहबसे परे है, मगर नया चक्र हिन्दू धर्मका प्रतीक है। गांधीका चरखा 'अहिंसक परिश्रम' का प्रतीक है, मगर नया चक्र 'सुदर्शन चक्र' का प्रतीक है (अैसा मुन्शीजी अपने भाषणमें कहते हैं।) सुदर्शन चक्र हिंसाका प्रतीक है। अिस प्रकार नये झंडेसे हिन्दू धर्मके नाम पर राष्ट्रकी हिंसा-वृत्तिको अुत्तेजन मिलेगा। अुस दिशामें यह जान-बूझकर प्रयत्न किया जा रहा है। यह पाकिस्तानको मिलानेका नहीं, बल्कि पाकिस्तानको पक्का करनेका तरीका है।"

मुन्शीजीने जो कहा, अुसे मैंने पढ़ा नहीं है। अगर झंडेका वही अर्थ है जो अूपर बताया गया है, तो राष्ट्रीय झंडा गया। अशोकका चक्र किसी भी हालतमें हिंसाका प्रतीक नहीं बन सकता। महाराज अशोक

बौद्ध थे, अहिंसाके पुजारी थे। सुदर्शन चक्रका तो झंडेके चक्रके साथ ताल्लुक नहीं हो सकता। सुदर्शन चक्र मेरी दृष्टिसे अहिंसाकी निशानी है। लेकिन यह मेरी ही बात हुअी। साधारण रूपसे सुदर्शन चक्र हिंसाका साधन माना जाता है। अिसमें शक नहीं कि नये झंडेसे और अुस पर जो बहस हुअी है, अुससे यह कहा जा सकता है कि अगरचे चरखेका मूल्य गया नहीं है, फिर भी कम तो जरूर हुआ है। अशोकचक्र और सूत कातनेका चरखा अेक हैं या नहीं, यह तो आखिरकार लोगोंके आचार पर निर्भर रहेगा।

श्रीनगर, ३–८–'४७
हरिजनसेवक, १७–८–'४७

२२८

हिन्दुस्तानी

काकासाहब कालेलकर अेक खतमें लिखते हैं :

"यूनियनके मुसलमान यूनियनके वफादार रहेंगे, तो क्या वे हिन्दुस्तानी भाषाको राष्ट्रभाषा मानेंगे और हिन्दी-अुर्दू दोनों लिपियां सीखेंगे? अिस बारेमें अगर आप अपनी राय नहीं बतावेंगे, तो हिन्दुस्तानी-प्रचारका काम बहुत मुश्किल हो जायगा। मौलाना आजाद क्या अपने खयालात नहीं बता सकते?"

काकासाहब जो कहना चाहते हैं, वह नअी बात नहीं है। लेकिन आजाद हिन्दमें यह बात यूनियनको ज्यादा जोरोंसे लागू होती है। अगर यूनियनके मुसलमान हिन्दुस्तानकी तरफ वफादारी रखते हैं और हिन्दुस्तानमें खुशीसे रहना चाहते हैं, तो अुनको दोनों लिपियां सीखनी चाहिये।

हिन्दुओंकी तरफसे कहा जाता है कि अुनके लिअे पाकिस्तानमें जगह नहीं, सिर्फ हिन्दुस्तानमें है। अगर कहीं अैसा मौका आवे कि

पाकिस्तान और हिन्दुस्तानके बीच लड़ाअी छिड़ जाय, तो हिन्दुस्तानके मुसलमानोंको पाकिस्तानसे लड़ना होगा। यह ठीक है कि लड़ाअीका मौका नहीं आना चाहिये। आखिरमें दोनों हुकूमतोंको अेक-दूसरीसे मिल-जुलकर काम करना होगा। अेक-दूसरीके प्रति दोस्ती होनी चाहिये। दो हुकूमतें होते हुअे भी काफी चीजें दोनोंके बीच अेक ही हैं। अगर वे दुश्मन बन जायं, तब तो कोअी भी चीज अेक नहीं हो सकती। दोनोंमें दिलकी दोस्ती रहे, तब तो प्रजा दोनोंकी तरफ वफादार रह सकती है। यों तो दोनों राज अेक ही संस्थाके मेम्बर हैं। अुनमें दुश्मनी हो ही कैसे सकती है? लेकिन अिस चर्चामें पड़नेकी यहां कोअी जरूरत नहीं।

हिन्दुस्तानमें सबकी बोली अेक ही हो सकती है। मैं तो अेक कदम आगे बढ़कर कहता हूं कि अगर दोनों राज अेक-दूसरेके दुश्मन नहीं बल्कि दिलसे दोस्त बनते हैं, तो दोनों तरफ सब नागरी और अुर्दू लिपिमें लिखेंगे। अिसका मतलब यह नहीं कि अुर्दू जबान या हिन्दी जबान रह ही नहीं सकती। लेकिन अगर दोनोंको या सब धर्मियोंको दोस्त बनना है, तो सबको हिन्दी और अुर्दूके संगमसे जो आम बोली बन सकती है अुसमें ही बोलना है। और, अुसी बोलीको अुर्दू या नागरी लिपिमें लिखना है। कम-से-कम हिन्दुस्तानमें रहनेवाले मुसल-मानोंका अिम्तहान तो अिसमें हो जाता है, और यही बात हिन्दू, सिक्ख वगैराको भी लागू होती है। लेकिन मैं अैसा नहीं कहूंगा कि मुसलमान अगर दोनों लिपियां नहीं सीखते, तो अुर्दू और हिन्दीके मेलसे बननेवाली सबकी बोली राष्ट्रभाषा हो ही नहीं सकती। मुसलमान दोनों लिपियां सीखें या न सीखें, तो भी हिन्दू तथा हिन्दुस्तानके दूसरे धर्मियोंको दोनों लिपियां सीखनी चाहिये। आजकी जहरीली हवामें यह सादी-सी बात भी शायद लोग नहीं समझ सकेंगे। अुर्दू लिपिका और अुर्दू लफ्जोंका हिन्दू जान-बूझकर बहिष्कार करना चाहें तो कर तो सकते हैं, लेकिन अुससे हम बहुत कुछ खोयेंगे। अिसलिअे जिन लोगोंने हिन्दुस्तानी-प्रचारका काम हाथमें लिया है, फिर वे दो-चार हों या करोड़ों, वे अिस सीधी-सादी बातको छोड़ नहीं सकते।

मैं अिसमें भी सहमत हूं कि मौलाना अबुलकलाम आजाद साहब और हिन्दुस्तानके दूसरे अैसे मुसलमानोंको अैसी चीजोंमें नमूना बनना चाहिये। अगर वे न बनें तो कौन बनेगा? हमारे सामने बहुत मुश्किल वक्त आया है। अीश्वर हमको सन्मति दे!

नअी दिल्ली, २७–९–'४७
हरिजनसेवक, ५–१०–'४७

२२९

'अकर्ममें कर्म'

अेक भाअी लिखते हैं:

"आपने 'मेरा धर्म' लेखमें लिखा है, 'अकर्ममें कर्म' देखनेकी हालतको मैं पहुंचा नहीं हूं। अिस वचनके मानी कुछ विस्तारसे बतायें तो अच्छा होगा।"

अेक स्थिति अैसी होती है, जब आदमीको विचार जाहिर करनेकी जरूरत नहीं रहती। अुसके विचार ही कर्म बन जाते हैं। वह संकल्पसे कर्म कर लेता है। अैसी स्थिति जब आती है, तब आदमी अकर्ममें कर्म देखता है; यानी अकर्मसे कर्म होता है अैसे कहा जा सकता है। मेरे कहनेका यही मतलब था। मैं अैसी स्थितिसे दूर हूं। अुस स्थिति तक पहुंचना चाहता हूं। अुस ओर मेरा प्रयत्न रहता है।

नअी दिल्ली, १६–१०–'४७
हरिजनसेवक, २६–१०–'४७

२३०

प्रौढ़-शिक्षणका नमूना

चरखा-जयन्तीके बारेमें सैकड़ों तार और खत मेरे पास आये थे। अुनमें से नीचेके खतने, जो अिन्दौरकी प्रौढ़-शिक्षण संस्थाकी तरफसे मिला है, मेरा ध्यान खींचा है :

"आजके शुभ अवसर पर हजारों बड़ी-बड़ी कीमती भेंटें, मुबारकबादीके तार और खत आपकी खिदमतमें पहुंचे होंगे। हिन्दुस्तानके कोने-कोनेमें आपकी जन्मतिथि खुशीसे मनाअी जा रही है। हर जगहका खुशी मनानेका ढंग जरूर कुछ-न-कुछ निराला होगा। हरअेक यह कोशिश कर रहा होगा कि दूसरोंसे बढ़ जाय; जशन मनानेमें जीत अुसीकी हो। अिन सब बातोंको देखते हुअे हमारी यह हिम्मत नहीं पड़ती कि किसी तरहकी भेंट यहांके प्रौढ़-साक्षरता-प्रचारके कार्यकर्ताओंकी तरफसे आपकी सेवामें पेश की जाय। लेकिन फिर भी अिस शुभ अवसरको जिस तरहसे यहां मनाया गया है अुसे लिखे बिना नहीं रहा जा सकता। आशा है कि हमारे अिस कार्यको ही भेंट समझकर आप कबूल फरमावेंगे।

"ता० २–१०–'४७ से ता० ८–१०–'४७ तक जयन्ती मनानेकी योजना अिस तरह रखी गअी है कि अिन सात दिनोंमें ८० गांवोंके लोग मिलकर आधाशीशीके झाड़ोंको जड़से अुखाड़कर नष्ट कर देंगे। अिन झाड़ोंने सारे जंगलको घेरकर पशुओंके चारेका नाश कर दिया है। अुनको अुखाड़कर पशुओंके जीवनको बचानेके लिअे, बिना किसी भेदभावके, अिस अवसरसे फायदा अुठाते हुअे अेक बुरी चीजको यहांसे दूर कर दें। अिस योजनाके मुताबिक २ तारीखको छोटे-छोटे बच्चोंसे लेकर ६०-७० सालके बूढ़ोंने, अेक मामूली गरीबसे लेकर सबसे अूंचे धनवानने और अेक अदने

नौकरसे लेकर बड़े-से-बड़े सर्कलके आफिसरने अिस कामको अपनाया और दोपहरसे पहले आधाशीशीके बड़े-बड़े खेतोंके पौधोंको अुखाड़कर साफ कर दिया। अिससे चारेका बचाव, आधाशीशीके आगे बढ़नेकी रोक और अुसका खात्मा हफ्तेके खतम होनेके पहले हो जायगा। बजाय जुलूस निकालनेके यहांकी जनताके दिलमें प्रौढ़-शिक्षा द्वारा यह बैठाया जा रहा है कि अैसे अवसर पर कोअी अैसा काम करना चाहिये, जो किसी भी जीवनके लिअे लाभदायी हो। किसी भी किस्मकी बुराअीके बीजको जड़मूलसे खोदनेका प्रयत्न प्रौढ़-शिक्षाकी तरफसे किया जा रहा है।

"अूपरकी जो भेंट खिदमतमें पेश की जा रही है, अुस पर लोग चाहे हंस लें, लेकिन हम पूरे दिलसे यह विश्वास करते हैं कि आप हमें निराश न करेंगे और अिसे जरूर कबूल फरमावेंगे।"

मैं चरखा-जयन्ती मनानेका यह अेक अच्छा नमूना समझता हूं। सूत निकालनेके अर्थमें चरखा भले ही न चला। लेकिन चरखेमें जो चीजें आ जाती हैं, अुनमें आधाशीशीके पेड़ोंको जड़से अुखाड़ डालना अवश्य आता है। अुसमें परमार्थ है। अैसे कामोंमें सहयोग होता है और अैसे काम सब छोटे-बड़े निरन्तर करते रहें, तो सच्चा शिक्षण मिलता है और सुन्दर परिणाम पैदा होते हैं।

नअी दिल्ली, १८–१०–'४७
हरिजनसेवक, २६–१०–'४७

२३१

दोनों लिपियां क्यों ?

रैहाना बहन तैयबजी लिखती हैं :

"१५ अगस्तके बाद दो लिपिके बारेमें मेरे खयाल बिलकुल बदल गये और अब पक्के हो गये हैं। मेरे खयालसे अब वक्त आ गया है कि अिस दो लिपिके सवाल पर खुल्लमखुल्ला और आम तौरसे साफ साफ चर्चा हो। अिसलिअे अगर आप ठीक समझें, तो अिस खतको 'हरिजनसेवक' में छापकर अुस पर चर्चा करें।

जब तक हिन्दुस्तान अखंड था और अुसे अखंड रखनेकी अुम्मीद थी, तब तक नागरी लिपिके साथ अुर्दू लिपिको चलाना मैं अुचित — बल्कि जरूरी — मानती थी। आज हिन्दुस्तान, पाकिस्तान दो जुदे राज्य बन गये हैं (मुसलमानोंकी निगाहमें तो दो जुदे राष्ट्र)। हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा : नागरी हिन्दुस्तानकी खास और मान्य लिपि — फिर नागरीके साथ अुर्दूके गठबंधनकी क्या जरूरत है? अिस सवाल पर मैं बराबर विचार करती रही हूं और अब मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि हिन्दुस्तानी पर अुर्दू लिपि लादनेमें अितना ही नहीं कि कोअी फायदा नहीं, बल्कि सख्त नुकसान है। मैं मानती हूं कि :

१. हिन्दू-मुस्लिम अैक्य और मैत्री भाषा या लिपिसे नहीं हो सकती — सिर्फ सामाजिक मेलजोलसे हो सकती है। यह चीज मैं जीवनभर देखती आअी हूं। मुसलमान खुद यही कहते आये हैं और अब भी कहते हैं। साथ मिलने-जुलने, रहने-सहने, खाने-पीने, खेलने-कूदने, कामकाज करनेसे ही अैक्य बढ़ सकता है। अुर्दू लिपि सामाजिक मेलजोलकी जगह कभी नहीं ले सकती।

२. मुसलमानोंको अगर आप वफादार हिन्दुस्तानी बनाना चाहते हैं, तो अुनमें और बाकीके हिन्दुस्तानियोंमें अब कोअी

फर्क नहीं करना चाहिये। अगर वे हिन्दुस्तानमें रहना चाहते हैं, तो और हिन्दुस्तानियोंकी तरह रहें। हिन्दुस्तानी सीखें, नागरी सीखें। अगर अुर्दूका आग्रह हो, तो बेशक अुन्हें अुर्दू सीखनेकी सहूलियतें दी जायं। मगर अुन्हें खुश करनेके खातिर हिन्दुस्तानकी सारी जनता पर अुर्दू लिपि क्यों लादी जाय? अिसमें मुझे सख्त अन्याय नजर आता है और मैं अिसके बिलकुल खिलाफ हूं। गैर-मुसलमानों पर यह अन्याय कि अुन्हें फिजूल अेक अितनी मुश्किल, दोषपूर्ण और हिन्दुस्तानीके लिअे निकम्मी — (अुर्दू लिपिमें साहित्यिक हिन्दुस्तानी लिखना महा कठिन है; क्योंकि संस्कृत शब्दोंकी बड़ी तोड़-मरोड़ करनी पड़ती है।) — लिपि सीखनेमें अपनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है; और मुसलमानों पर यह अन्याय कि अुन्हें अपना दुराग्रह छोड़नेका आप कोअी मौका ही नहीं देते! अुनकी बेजा मांग पूरी करके आप अुनमें और अन्य अल्पसंख्यकोंमें अेक कृत्रिम फर्क पैदा कर देते हैं। अिससे गैर-मुसलमानोंको चिढ़नेका हक मिलता है, और मुसलमानोंको अपनी अलग-थलग जमात बनाकर बैठ जानेका मौका मिलता है। (अिस चीजका सबूत मेरा अपना खानदान देता है।) अगर आपने अुर्दू लिपि भी चलाअी, तो मुसलमान सदा हिन्दमें परदेशी बनकर रहेंगे और कामचलाअू नागरीसे सन्तोष मानकर अपना सारा ही व्यवहार अुर्दूमें चलायेंगे। यह मेरा अनुभव-जन्य, अिसलिअे, दृढ़ विश्वास है। बापूजी! गुस्ताखी माफ — आप लोग मुसलमानोंसे अितने अलग रहे हैं कि आपको अुनके मानसकी बिलकुल खबर नहीं। यही वजह है कि पाकिस्तान हो गया। और मुझे यकीन है कि अगर आपने नागरीके साथ अुर्दूको भी राष्ट्रलिपि बना लिया, तो आप हिन्दुस्तानके भीतर अेक दूसरा पाकिस्तान खड़ा कर देंगे।

३. मैं मानती हूं कि जो शक्ति आप लोगोंको अुर्दू लिपिके प्रचारमें, हर किताबकी द्विलिपि बनानेकी तजवीजोंमें, कातिब, ब्लॉक्स, और छपाअीकी हजामतोंमें खर्च करनी पड़ती है, सो

अब खरे महत्त्वके कामोंमें लगानी चाहिये। हमें हिन्दुस्तानी भाषा बनानी है, कोष तैयार करने हैं, साहित्य खड़ा करना है। अुर्दू लिपिके आग्रहसे हमारा बोझ चौगुना हो जाता है, काममें रुकावटें पैदा होती हैं और वक्त फिज़ूल बिगड़ता है। अिसमें शक नहीं कि अुर्दू-हिन्दी दोनों जाने बिना हिन्दुस्तानी बनाना अशक्य है। लिहाजा, प्रचारकोंको, लेखकोंको, हमारे प्रचारक-मदरसाओंमें नागरी-अुर्दूका ज्ञान होना जरूरी है। लेकिन आम जनताको अुर्दू लिपिसे क्या गरज? अुसकी जबान हिन्दुस्तानी हो तो बिलकुल काफी है। पूज्य प्यारे बापूजी, मैंने आप लोगोंकी सारी दलीलें बड़े ध्यानसे सुनी हैं—और अेक भी गले नहीं अुतरती। अिसलिअे आज यह चर्चा कर रही हूं। हम हिन्दु-स्तानियोंका यही सूत्र रहे—हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, हमारी राष्ट्रलिपि नागरी। बस!

४. अब अेक मुस्लिम हिन्दुस्तानीकी हैसियतसे मेरी बिनती है—खुदाके लिअे आप मुसलमान हिन्दुस्तानियोंको अपने ही मुल्कमें परदेशियोंकी तरह रहनेका प्रोत्साहन न दीजिये! वे तो यही चाहते हैं। आप ब्रिटेन और पाकिस्तानका खेल खेलते रहें, और मुसलमान हर जगह बाजियां जीतते रहें। बापू, मैं बहुत घबराअी हुअी हूं। मैं मुसलमान समाजसे वाकिफ हूं। अुनकी महत्त्वाकांक्षाअें मैं जानती हूं—भले आप जानने या माननेसे अिनकार करें। खुदाके लिअे मेरी बात पर ध्यान दीजिये।

आम तौरसे हिन्दवासी मुसलमानोंकी 'हिन्दुस्तानी' यानी 'अुर्दू'। वे कोअी और 'हिन्दुस्तानी' न जानते हैं, न मानते हैं। आकाशवाणी (रेडियो)की भाषा पर मुसलमानोंकी कड़ुअी टीका यह है कि, "भअी, अिस जबानको तो हम नहीं समझ सकते। कितने संस्कृत अल्फाज हैं?" 'समाज', 'भाषा', 'निर्णय', 'निश्चय' जैसे प्रचलित शब्द भी हमारे वफादार मुसलमान हिन्दुस्तानियोंके लिअे हराम हैं। अगर सारी जनता

अुर्दू सीख गअी, तो क्या आप मानते हैं कि मुसलमान अुर्दूके सिवा कुछ भी लिखेंगे-पढ़ेंगे? मैं नहीं मानती। और, मेरे अ-विश्वासके पीछे हिन्दवासी मुसलमानोंका सारा अितिहास पड़ा हुआ है।

बापू! हाथ जोड़कर अर्ज है — सज्जनताके साथ क्या सत्य-दर्शन (realism) नहीं रह सकता ?"

यह खत सोचनेके काबिल है। रैहाना बहनके दिलमें हिन्दू-मुस्लिमका भेद नहीं है। दोनों अेक हैं अैसा वह मानती हैं और वैसे ही बरतती हैं। मैं भी दोनोंमें भेद नहीं करता। हम दोनों मानते हैं कि हिन्दू और मुसलमानमें आचार-भेद है। पर वह भेद दोनोंको अलग नहीं रखता। धर्म दो हैं, फिर भी दोनोंकी जड़ अेक है।

तब भी रैहाना बहनकी बातमें मैं भूल देखता हूं। हम दो लोग (नेशन) नहीं हैं। दो लोग माननेमें हम हिन्दुस्तानको बड़ा नुकसान पहुंचावेंगे। कायदे आजम भले दो लोग मानें और अैसे माननेवाले भले हिन्दू भी हों। लेकिन सारी दुनिया गलतीमें फंसे, तो क्या हम भी फंसे? अैसा कभी नहीं हो सकता।

अगर राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी है, तो अुसे दोनों लिपियोंमें लिखनेकी छूट होनी चाहिये। अगर हम हिन्दूको या मुसलमानको अेक ही लिपिमें लिखनेके लिअे मजबूर करें, तो हम अुसके साथ गैर-अिन्साफी करेंगे और जब यह गैर-अिन्साफी अल्पमत पर अुतरती है, तब बहुमतका गुनाह दुगुना माना जाय।

मैं नहीं कहता कि हिन्दुस्तानके चालीस करोड़को दोनों लिपियां सीखना है! अैसा अवश्य है कि जो सारे मुल्कमें फिरता है, जिसको अपने सूबेकी ही नहीं, बल्कि सारे मुल्ककी सेवा करनी है, अुसे दो लिपियां सीखनी ही चाहिये, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान।

अगर हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनना है तो लिपि नागरी ही होगी; अगर अुर्दूको बनना है तो लिपि अुर्दू ही होगी। अगर हिन्दी-अुर्दूके संगमके जरिये हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषा बनना है, तो दोनों लिपियां

जरूरी हैं। याद रखना चाहिये कि आज सचमुच अुर्दू लिपि या अुर्दू भाषा सिर्फ मुसलमानोंकी नहीं है। अैसे असंख्य हिन्दू हैं, जिनकी मादरी जबान अुर्दू है और वे अुसे अुर्दू लिपिमें ही लिखते हैं। यह भी याद रखना चाहिये कि दो लिपियोंकी बात आजकी नहीं है। मैं जब हिन्दुस्तानमें आया, तबसे यह बात चली है। यही विचार मैंने अिन्दौरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सामने रखे थे। अुस वक्त अगर कोअी विरोध हुआ था, तो नहींके बराबर था। अुसका मुझे स्मरण भी नहीं है। हां, नाम मैंने हिन्दी ही कायम रखा था; व्याख्या वही की थी, जो आज करता हूं। मेरे खयालसे आज जब विचारोंकी अुथल-पुथल हो रही है, तब हमारी पतवार सिर्फ अेक और मजबूत होनी चाहिये।

जब तक अुर्दू लिपिका सम्बन्ध मुसलमानोंसे माना जाता है, तब तक हमारा फर्ज है कि हम हिन्दुस्तानीके नाम पर और दोनों लिपियों पर कायम रहें। यह बात सबको साफ समझमें आने जैसी है। किसी भी कारणसे हो, हमने कअी जगह यूनियनमें मुसलमानों पर ज्यादतियां की हैं। पाकिस्तानमें हिन्दुओं और सिक्खों पर ज्यादतियां शुरू हुअीं, अिसलिअे यूनियनमें हिन्दुओं और सिक्खोंने मुसलमानों पर कीं, अैसा जवाब हमारी तरफसे ज्यादतियोंके समर्थनमें हो नहीं सकता। अैसे मौके पर कहना कि हिन्दुस्तानमें राष्ट्रलिपि अेक नागरी ही होगी, अिसे मैं मुस्लिम भाअियों पर नागरीको 'लादना' कहूंगा। हां, अगर मुसलमान अुर्दू लिपिमें ही लिखें और अुर्दू व हिन्दुस्तानीमें कोअी फर्क ही न समझें, तो मैं अुसे मुस्लिम भाअियोंकी हठ कहूंगा। शायद अैसा भी माना जायगा कि अुनका दिल हिन्दुस्तानमें नहीं है।

रैहाना बहनका यह कहना कि अुर्दू लिपिको नागरीके साथ रखनेमें मुसलमानोंको राजी रखनेकी या अुनकी खुशामद करनेकी बात होगी, यह गैर-समझकी बात है। राजी रखना कभी फर्ज होता है और किसी वक्त गुनाह भी होता है। भाअीका अपने भाअीको राजी रखनेके लिअे अुत्तरमें जानेके बदले कभी दक्खिनमें जाना फर्ज हो सकता है, लेकिन शराब पीना गुनाह होगा। अिस तरह तो वह अपना और अपने भाअीका बुरा करेगा। मुसलमान भाअीको राजी रखनेके लिअे

में कलमा नहीं पढ़ सकता, न वह मुझे राजी रखनेके लिअे गायत्री पढ़ सकता है। कलमा और गायत्री दोनों अेक ही चीजें हैं, अैसा मानकर ही दोनों अेक-दूसरेको समझ सकते हैं। लेकिन यह दूसरी बात है, और अैसा होना भी चाहिये। अिसीलिअे तो अेकादश व्रतमें सर्वधर्म-समानताको जगह दी गअी है।

निचोड़ यह आया कि सबको राजी रखनेमें दोष ही है, अैसा नहीं कह सकते। बल्कि बाज दफा वही फर्ज होता है।

बहन फिर लिखती हैं कि नागरी लिपि प्रमाणमें पूर्ण है, अुर्दू प्रमाणमें अपूर्ण। अुर्दू पढ़नेमें मुश्किल है और संस्कृतके शब्द अुर्दूमें लिखे ही नहीं जाते। अिस कथनमें थोड़ा वजूद है सही। अिसका अर्थ यह हुआ कि नागरी लिपि पूर्ण होते हुअे भी सुधार मांगती है; वैसे ही अुर्दू लिपि अपूर्ण होनेके कारण सुधार मांगती है। संस्कृत शब्द अुर्दू लिपिमें लिखे ही नहीं जाते, अैसा कहना ठीक नहीं है। मेरे पास सारी गीता अुर्दू लिपिमें लिखी पड़ी है। लिपियोंमें सुधार तब हो सकता है, जब वे गिरोहबन्दी और जनूनका कारण नहीं रहतीं। सिंधी लिपि अुर्दूका सुधार ही है न?

अन्तमें रैहाना बहनसे मैं प्रार्थना करूंगा कि अुनका खत हिन्दुस्तानीका अेक नमूना है। अुसमें अरबी शब्द हैं, तो संस्कृत भी हैं। हिन्दुस्तानीकी खूबी ही यह है कि अुसे न संस्कृतसे वैर है, न अरबी-फारसीसे। हिन्दुस्तानी तो ताकतवर तब बनेगी, जब वह अपनी मिठासको कायम रखकर दुनियाकी सब भाषाओंका सहारा लेगी। लेकिन अुसका व्याकरण तो हमेशा हिन्दी ही रहेगा। 'हिन्दू' का बहुवचन 'हिन्दुओं' है, 'हनूद' नहीं। रैहाना बहन अुर्दू अच्छी जानती हैं और हिन्दी भी। दोनों लिपियोंमें लिख भी सकती हैं। जब मैं यरवडा जेलमें था, तब वह और जोहरा बहन अन्सारी मुझे अुर्दूके पाठ खतोंके मारफत सिखाती थीं। मेरी सलाह है कि वह अपना वक्त हिन्दुस्तानीको बढ़ानेमें और दोनों लिपियां आसानीसे सिखानेमें दें। यह काम वह तभी कर सकती हैं, जब अुनका अपना अज्ञान दूर हो। अगर वह जो मानने लगी हैं सो ठीक है, तो मुझे

कुछ कहनेको नहीं रह जाता। तब तो मुझे अेक नया पाठ सीखना होगा और अुर्दू लिपिको जो जगह में देता हूं, अुसे भूलना होगा।

नअी दिल्ली, १–११–'४७

हरिजनसेवक, ९–११–'४७

२३२

भाषावार विभाग

आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल लिखते हैं :

"नअी नअी विद्यापीठें खोलनेके बारेमें आपका लेख 'हरिजन' में पढ़ा। मैं यह मानता हूं कि भाषावार प्रान्तोंकी रचनाके पहले नअी विद्यापीठें स्थापित करनेमें कठिनाअी होगी। लेकिन प्रान्तोंको भाषाके आधार पर बनानेमें कांग्रेसकी ओरसे अितनी ढिलाअी क्यों हो रही है, यह मैं समझ नहीं सका हूं। कांग्रेस सन् १९२० से ही यह मानती आअी है कि प्रान्तोंकी पुनर्रचना विविध भाषाओंके अनुसार हो। लेकिन मौका आने पर अब अिस कामको लम्बानेकी या टालनेकी कोशिश की जा रही है, अैसा मेरा खयाल है। विधान-परिषद्में भी अिस विषयको स्थगित-सा कर दिया गया है। यह बात मुझे अुचित नहीं जान पड़ती। बिना भाषावार प्रान्त-रचना हुअे न तो शिक्षाका माध्यम मातृभाषाको बनाना आसान होगा और न अंग्रेजीको राजभाषाके स्थानसे हटाना सरल होगा। बम्बअी, मद्रास और मध्यप्रांत-बरार जैसे बेढंगे और बहुभाषी प्रान्तोंका हमारे नये विधानमें स्थान ही नहीं होना चाहिये। और अगर हमने अिस प्रश्नको टालनेकी कोशिश की, तो अेक ही प्रान्तके विभिन्न भाषा बोलने-वालोंका पारस्परिक विद्वेष अधिक बढ़ता जायगा। बहुभाषी प्रान्त रखनेसे भाषा-द्वेष कम नहीं होगा, बल्कि दिन-दिन बढ़ेगा, यह

स्पष्ट है। आज देशके सामने हिन्दू-मुस्लिम समस्याने भयंकर रूप धारण किया है और हमारे नेताओंकी शक्तियां अुसी ओर अधिक लगी हैं, यह ठीक है। लेकिन अगर देशका बंटवारा करना ही था, तो कअी साल पहले ही कर लेना था। अुस हालतमें अितनी खून-खराबी न होती। अिसी तरह अगर हमें प्रान्तोंका बंटवारा भाषावार करना है, तो देरी करनेसे कोअी फायदा नहीं होगा। नुकसान ही होगा, क्योंकि कटुता बढ़ती जायगी।"

मुझे कबूल है कि जो अुचित है, अुसे अब करना चाहिये। बगैर कारणके रुकना ठीक नहीं। अिससे नुकसान भी हो सकता है। पापके साथ हमारा कोअी सरोकार नही हो सकता।

फिर भी भाषावार सूबोंके विभागमें देर होती है, अुसका सबब है। अुसका कारण आजका बिगड़ा हुआ वायुमण्डल है। आज हरअेक आदमी अपना ही देखता है, मुल्कका कोअी नहीं। मुल्ककी ओर जानेवाले, अुसका भला सोचनेवाले लोग हैं जरूर, लेकिन अुनकी सुने कौन? अपनी ओर खींचनेवाले लोग शोर मचाते हैं, अिसीलिअे अुनकी बात सब सुनते हैं। दुनिया अैसी ही है न?

आज भाषावार सूबोंका विभाग करनेमें झगड़ेका डर रहता है। अुड़िया भाषाको ही लीजिये। अुड़ीसा अलग सूबा बन गया है, फिर भी कुछ-न-कुछ खींचतान रही ही है। अेक ओर आंध्र, दूसरी ओर बिहार और तीसरी ओर बंगाल है। कांग्रेसने तो भाषावार विभाग सन् १९२० में किया। बाकानून तो अुड़िया बोलनेवाले सूबेका ही हुआ। मद्रासके चार विभाग कैसे हों? बम्बअीके कैसे? आपसमें मिलकर सब सूबे आवें और अपनी हद बना लें, तो बाकानून विभाग आज बन सकते हैं। आज हुकूमत यह बोझ अुठा सकती है? कांग्रेसकी जो ताकत १९२० में थी, वह आज है? आज अुसकी चलती है?

आज तो दूसरे हकदार भी पैदा हो गये हैं। अैसे मौके पर हिन्दुस्तान बेहाल-सा लगता है। आज तो संप (मेल) के बदले कुसंप (फूट) है, अुन्नतिके बदले अवनति है, जीवनके बदले मौत है! जब

कौमी झगड़े बन्द होंगे, तब हम समझ सकेंगे कि सब ठीक हुआ है। अैसी हालतमें भाषावार विभाग लोग आपसमें मिलकर कर लें, तो कानून आसान होगा, अन्यथा शायद नहीं।

नअी दिल्ली, २४–११–'४७
हरिजनसेवक, ३०–११–'४७

२३३
गहरी जड़ें

अेक भाअी लिखते हैं :

"आजादी मिल जानेके बाद भी शहरके लोगों परसे अंग्रेजी भाषाका असर कम हुआ दिखाअी नहीं देता। बम्बअीकी अुद्योग-धन्धों और खेतीकी नुमाअिशकी ही मिसाल लीजिये। जिन्होंने नुमाअिश खोली, अुन्होंने भी अंग्रेजीमें ही तकरीर की। दुकानोंके तख्ते अंग्रेजीमें थे। चिट्ठी-पत्री भी ज्यादातर अंग्रेजीमें ही हुअी। राशन कार्ड अंग्रेजीमें होते हैं, जिससे अंग्रेजी न पढ़ सकनेवाली आम जनताको बड़ी दिक्कत होती है। हमारे नेता गरीब जनताका बिलकुल खयाल न करते हुअे यही समझते हैं कि अुनके खास खास बयान और अैलान अंग्रेजीमें ही होने चाहिये।"

यह शिकायत सच्ची लगती है। अिसे तुरन्त दूर करना चाहिये। अिस अितने बड़े मामलेमें तब तक कोअी खासी तबदीली सुधारकी तरफ दिखाअी नहीं देगी, जब तक हम अपनी सुस्ती न छोड़ेंगे। यह सुस्ती ही हमारी बदकिस्मती है।

नअी दिल्ली, १०–१२–'४७
हरिजनसेवक, २१–१२–'४७

२३४

प्रान्तीय गवर्नर कौन हो?

आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल लिखते हैं :

"अेक सवाल है, जो मेरे खयालसे महत्त्वका है और जिसके बारेमें मैं आपकी राय जानना चाहता हूं। हिन्दका जो नया विधान बनाया जा रहा है, अुसमें प्रान्तोंके गवर्नर चुननेके नियम रखे गये हैं। प्रान्तका गवर्नर अुस सूबेके सभी बालिगोंके मतसे चुना जायगा। अिसलिअे यह साफ जाहिर है कि जिसे कांग्रेसका पार्लमेंटरी बोर्ड चुनेगा, अुसे ही आम तौरसे प्रान्तकी जनता गवर्नर चुन लेगी। प्रान्तका प्रधान मंत्री भी कांग्रेस पार्टीका ही होगा। प्रान्तका गवर्नर अैसा ही होना चाहिये, जो अुस सूबेकी पार्टीबाजीसे अलग रहे। लेकिन अगर प्रान्तका गवर्नर आम तौरसे कांग्रेसी होगा और अुसी प्रान्तका होगा, तो वह कांग्रेसदलकी पार्टीबाजियोंसे अलग नहीं रह सकेगा। या तो वह कांग्रेसी प्रधान मंत्रीके अिशारों पर चलेगा या फिर गवर्नर और प्रधान मंत्रीके बीच कुछ न कुछ खींचातानी रहेगी।

"मेरे खयालसे तो प्रान्तोंमें अब गवर्नरोंकी जरूरत ही नहीं है। प्रधान मंत्री ही सब कामकाज चला सकता है। जनताका ५५०० रु० महीना गवर्नरकी तनखाह पर फजूल ही क्यों खर्च किया जाय? फिर भी अगर प्रान्तोंमें गवर्नर रखने ही हैं, तो वे अुसी प्रान्तके नहीं होने चाहिये। बालिग मतसे अुन्हें चुननेमें भी बेकारका खर्च और परेशानी होगी। यही अच्छा होगा कि यूनियनका प्रेसिडेण्ट हर प्रान्तमें दूसरे किसी प्रान्तका अैसा अिज्जतदार कांग्रेसी सज्जन भेजे, जो अुस प्रान्तकी पार्टी-बाजीसे अलग रहकर वहांके सार्वजनिक और राजनीतिक जीवनको अूंचा अुठा सके। आज जो प्रान्तोंके गवर्नर केन्द्रीय सरकारने

नियुक्त किये हैं, वे करीब करीब अिन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार चुने गये हैं, अैसा लगता है। और अिसलिअे प्रान्तोंका राजनीतिक जीवन भी ठीक ही चल रहा है। अगर आजाद हिन्दके आगेके विधानमें अुसी प्रान्तका आदमी बालिग मतसे चुननेका कायदा रखा गया, तो मुझे डर है कि प्रान्तोंका राजनीतिक जीवन अूंचा नहीं रह सकेगा।

"अुस विधानमें गांव-पंचायतोंका और राजनीतिक सत्ताको छोटी अिकाअियोंमें बांट देनेका किसी तरहका जिक्र नहीं किया गया है। लेकिन मेरा अुद्देश्य अपने पूज्य नेताओंकी जरा भी टीका करना नहीं है। जो चीज मुझे बहुत खटकती है, अुस पर मैं आपकी राय 'हरिजन' में चाहता हूं।"

आचार्यजीने प्रान्तीय गवर्नरोंके बारेमें जो कहा है, अुसके समर्थनमें कहनेको तो बहुत है, लेकिन मुझे कबूल करना होगा कि मैं विधान-परिषद्‌की सब कार्रवाअी नहीं देख सका हूं। मुझे अितना भी मालूम नहीं है कि गवर्नरके चुनावकी तजवीज किस तरह पैदा हुअी। अिसको न जानते हुअे भी मुझे आचार्यजीकी दलील मजबूत लगती है। अुसमें यह चीज मुझे चुभती है कि बड़े वजीरको गवर्नर समझना और किसी दूसरेको गवर्नर नहीं बनाना; अिसके बावजूद कि लोगोंकी तिजोरीकी कौड़ी कौड़ीको बचाना मुझे बहुत पसन्द है। पैसेकी बचतके लिअे प्रान्तकी गवर्नरीसे बचना सही अर्थशास्त्र नहीं होगा। गवर्नरोंको दखल देनेका बहुत अधिकार देना ठीक नहीं है। वैसे ही अुनको सिर्फ शोभाके लिअे पुतला बना देना भी ठीक नहीं होगा। वजीरोंके कामको दुरस्त करनेका अधिकार अुन्हें होना चाहिये। सूबेकी खटपटसे अलग होनेके कारण भी वे सूबेका कारबार ठीक तरह देख सकेंगे और वजीरोंको गलतियोंसे बचा सकेंगे। गवर्नर लोग अपने अपने सूबोंकी नीतिके रक्षक होने चाहिये। आचार्यजी जैसा बताते हैं, अगर विधानमें गांव-पंचायत और सत्ताको छोटी अिकाअियोंमें बांटने (विकेन्द्रीकरण)के बारेमें अिशारा तक नहीं है, तो यह गलती दूर होनी चाहिये। अगर आम राय ही हमारे लिअे सब कुछ है,

तो पंचोंका अधिकार जितना ज्यादा हो, अुतना लोगोंके लिअे अच्छा है। पंचोंकी कार्रवाअी और असर फायदेमन्द हों, अिसके लिअे लोगोंकी सही तालीम बहुत आगे बढ़नी चाहिये। यह लोगोंकी फौजी ताकतकी बात नहीं है, बल्कि नैतिक ताकतकी बात है। अिसलिअे मेरे मनमें तो तालीमसे नअी तालीमका ही मतलब है।

नअी दिल्ली, १४–१२–'४७
हरिजनसेवक, २१–१२–'४७

२३५

कुछ सवाल

शिलांगसे श्री रमेशचंद्रजी पूछते हैं :

१. "राष्ट्रभाषाको 'हिन्दी' कहिये या 'हिन्दुस्तानी', यह कोअी खास विवादका सवाल नहीं है। रोजमर्राकी बातचीतमें तो चालू हिन्दुस्तानी काममें आयेगी ही। अूंचे साहित्य, विज्ञान व अैसे दूसरे विषयोंके लिअे नये शब्दोंका कोष संस्कृत भाषासे ही बनेगा, अिससे भी शायद ही कोअी अिनकार करेगा। यह बात साफ साफ सबको बतलाअी जाय तो क्या हर्ज है?"

अिस सवालका पहला हिस्सा तो ठीक है। अगर अेक नामके सब अेक ही मानी करें, तो झंझट रहती ही नहीं। झगड़ा नामका नहीं है, कामका है। काम अेक हो तो अनेक नामका विरोध वितंडावाद होगा।

अूंचे साहित्य और विज्ञानके शब्द संस्कृतसे ही क्यों हों? अिस बारेमें कोअी आग्रह होना ही नहीं चाहिये। अेक छोटीसी समिति अैसे शब्दोंका कोष बना सकती है। अिसमें बात होगी चालू शब्दोंको अिकट्ठा करनेकी। मान लीजिये कि अेक अंग्रेजी शब्द हिन्दुस्तानीमें चल पड़ा है। अुसे निकालकर हम क्यों खास संस्कृत शब्द बनावें?

अैसे ही अगर अंग्रेजीका चलता शब्द ले लें तो अुर्दूका क्यों नहीं? 'कुरसी' शब्दके लिअे 'चतुष्पाद-पीठिका' लें कि बिना रोकटोकके 'कुरसी' लें? अैसी मिसालें और भी निकल सकती हैं।

२. "जो मसला है, सो लिपिका है। दो लिपि चालू होते हुअे भी यह सवाल (और ठीक सवाल) सभी करते हैं कि दो लिपिका चलन राष्ट्रके कामको चलानेमें बेकार बोझ साबित होगा। तब दो लिपिके बदले अेक लिपि, जो सभी प्रान्तोंके लिअे सहज और आसान है, क्यों न मानी जाय?

"दो लिपि माननेके मानी भी मैं समझना चाहता हूं। क्या अुसका यह मतलब होगा कि केन्द्रीय सरकारकी सब जाहिरात दोनों लिपियोंमें छापी जायेंगी?

"फिर, तार-घर वगैरासे जो तार आदि निकलेंगे, वे तो किसी अेक ही लिपिमें लिखे जायेंगे। दूसरी लिपिका अुपयोग अिन जगहोंमें किस तरह हो सकेगा, यह भी मैं जानना चाहता हूं।

"मैं यह माननेको तैयार नहीं हूं (हालांकि बहुतेरे लोग अैसा कहते हैं) कि दूसरी लिपि मुसलमान भाअियोंको खुश करनेके लिअे रखी गअी है। हमें तो यह देखना चाहिये कि किसी पर भी अन्याय किये बिना राष्ट्रका भला किस लिपिके चलनेमें होगा। नागरीके चलनेसे मुसलमान भाअियोंको नुकसान होगा, अैसा मानना तो ठीक नहीं है।

"जहां तक मैं समझा हूं, दोनों लिपियोंका चलन थोड़े अर्सेके लिअे ही जरूरी है; जिससे कि वे लोग जो अिन लिपियोंके जानकार नहीं हैं, धीरे धीरे जान जायं। आखिरमें सभी अेक लिपिको अपनावेंगे, अिसमें कैसे सन्देहको हो सकता है?"

दो लिपिको रखते हुअे जो आखिरमें आसान होगी वही चलेगी। यहां बात अितनी ही है कि अुर्दूका बहिष्कार न हो। अिस बहिष्कारमें द्वेष है। अिस झगड़ेकी जड़में द्वेष था, आज वह बढ़ गया है। अैसे मौके पर हम, जो अेक हिन्दुस्तान चाहते हैं, और वह हथियारोंकी

लड़ाअीसे नहीं, अुनका फर्ज होता है कि दोनों लिपियोंको जगह दें। हम यह भी न भूलें कि बहुतेरे हिन्दू व सिक्ख पड़े हैं, जो नागरी लिपि जानते ही नहीं। मुझे अिसका तजरबा हमेशा होता है।

करोड़ोंको दोनों लिपि सिखानेकी बात नहीं है। जिनको अपने सूबेसे बाहर काम करना है, अुन्हें वे सीखनी चाहिये। केन्द्रके दफ्तरमें सब कुछ दोनों लिपियोंमें छापनेकी बात भी नहीं है। जो अिश्तहार सबके लिअे हों, अुन्हें दोनों लिपियोंमें छापना जरूरी है। जब दोनों कौमोंके बीच जहर फैल गया है, तब अुर्दू लिपिका बहिष्कार लोकवाद (जमहूरियत) का विरोध ही बताता है।

तार आदि जब रोमन लिपिमें नहीं लिखे जायेंगे, तब शायद अुर्दू या नागरी लिपिमें लिखे जायेंगे। अिसे मैं छोटा सवाल मानता हूं। जब हम अंग्रेजीका और रोमन लिपिका मोह छोड़ेंगे, तब हमारा दिल और दिमाग अैसा साफ हो जायगा कि हम अिस झगड़ेके लिअे शरमायेंगे।

किसीको राजी रखनेके लिअे कोअी बेजा काम हम कभी न करें। पर राजी रखना हर हालतमें गुनाह नहीं है।

अेक ही लिपिको सब खुशीसे अपनावें तो अच्छा ही है। अैसा होनेके लिअे भी दो लिपियोंका चलना आज जरूरी है।

नअी दिल्ली, ४–१–'४८
हरिजनसेवक, ११–१–'४८

२३६
खादीके मारफत

अेक सज्जन लिखते हैं :

"सारे हिन्दुस्तानकी कपड़ेकी कमी ६ माहमें दूर हो सकती है। अुसके लिअे दो शर्तें हैं — १. गांव गांवमें सूत-कताअी और बुनाअी कराना प्रान्तीय सरकारों और हिन्द सरकारकी नीति हो, और अिस काममें सरकारी नौकरोंसे मदद मिले। २. अपने प्रान्त व देशके बडे नेता अिधर अधिक ध्यान देकर अिसका काफी प्रचार करें।'

कपड़ोंकी कमी पूरी करनेके लिअे ये शर्तें आसान लगनी चाहियें। दोनों शर्तोंका पालन कांग्रेसी हुकूमतका धर्म है। जितनी ढिलाअी है, सब धर्म-पालनकी कमी साबित करती है। ढिलाअी आअी है, अिसमें शक नहीं है। अुसे मिटानेका आज सबसे अच्छा मौका है, क्योंकि कपड़ेके दाम बहुत बढ़ गये हैं। अिसका सबब हमारी नादानी ही है। अब यह कैसे मिटे? जिनका खादीमें अटल विश्वास है, अुनके व्यवहारसे, अुनकी बुद्धिके तेजसे और तजरबेसे। जब हुकूमतकी नीति खादीके अनुकूल होगी, तब कपड़े आदि पर अंकुशकी बात अपने आप छूट जायगी। अिस बीच आज कपड़े पर जो अंकुश है, वह गरीबोंके लिअे तो भी जल्द-से-जल्द जाना चाहिये।

नअी दिल्ली, ५–१–'४८
हरिजनसेवक, ११–१–'४८

२३७

प्रमाणित अप्रमाणितका फर्क

नीचेके सवाल आज अुठ सकते हैं। यह जमानेके बदलनेकी निशानी है:

"आजादी मिलनेके बाद शुद्ध खादी, अप्रमाणित खादी, मिलके कपड़े और विलायती कपड़ेमें बहुत फर्क नहीं रह जाता। जितनी जरूरत हो अुतना खुद ही कातकर और बुनकर पहनें, तो जरूर फर्क हो जाता है। क्योंकि अिससे अेक खास विचार-धाराका पता चलता है। पर जितना कपड़ा चाहिये, अुतना सूत तो कातना होता नहीं। खादी तो खादी-भंडारसे ही खरीदते हैं। अुसके लिअे भी जितना सूत देना पड़ता है, खुद नहीं काता जाता है। शुद्ध खादीमें कोअी सुधार नहीं दिखाअी देता। अप्रमाणित खादीमें बहुत तरहके कामके कपड़े आते हैं। अिसका कारण यह दिखाअी देता है कि शुद्ध खादीवालोंको सुधारमें कोअी रस नहीं है। आजकल मजदूरी अितनी ज्यादा हो गअी है कि जीवन-वेतनका भी सवाल नहीं रहता। फिर जरूरत हो तो अप्रमाणित खादी लेनेमें क्या हर्ज है?

"सारे देशमें कपड़ेकी कमी है। राष्ट्रीय सरकार खुद विलायती कपड़ा मंगाती है। विलायती कपड़ा मंगाना न मंगाना सरकारके हाथमें है। फिर भी वह कपड़ा मंगाती है। तो फिर खरीदनेमें क्या बुराअी है?"

प्रमाणित खादी ही प्रमाण हो सकती है। यहां 'प्रमाणित' शब्दसे असली मतलब पूरी तरह जाहिर नहीं होता। प्रमाणितका असली मतलब है — वह खादी जिसमें सूत पूरे पूरे दाम देकर खरीदा गया है, जिसे ठीक दाम देकर हाथसे बुनवाया गया है, और खादीका दाम नफाखोरीके लिअे नहीं बल्कि लोक-लाभके लिअे ही रखा गया है।

स्वावलंबी यानी अपनी बनाअी खादीके सिवा बाकी अैसी खादी बाजारसे लेनी पड़ती है। अुस खादीके लिअे कुछ प्रमाण जनताके लिअे जरूरी है। अैसा प्रमाण देनेवाली अेक ही संस्था हो सकती है। वह है चरखा-संघ। असलिअे चरखा-संघ जिसे प्रमाण दे, वही प्रमाणित खादी।

अुसे छोड़कर जो खादी मिले, वह अप्रमाणित हो जाती है। प्रमाणपत्र न लेनेमें कुछ-न-कुछ दोष तो होना ही चाहिये। दोषवाली खादी हम क्यों लें? दोषवाली और बेदोषकी खादीमें फर्क है, असमें शकके लिअे गुंजाअिश ही नहीं हो सकती।

यह सवाल किया जा सकता है कि प्रमाणपत्रकी शर्तमें ही दोष हो सकता है। अगर दोष है तो अुसे बताना जनताका धर्म है। आलसके कारण दोष बतानेके बदले अप्रमाणित और प्रमाणितका फर्क अुड़ा देना किसी हालतमें ठीक नहीं। हो सकता है कि हममें कुचाल अितनी बढ़ गअी है कि हम ठीक चाल जनतामें चल ही नहीं सकते, या जिसे हम ठीक चाल मानते हैं, वह धोखा ही है। अिस हद तक जाना जनताके प्रतिनिधिका काम है ही नहीं।

खादी, स्वदेशी मिलके कपड़े और विदेशी कपड़ेमें फर्क है, अिस बातमें शक ही कैसे पैदा हो सकता है? परदेशी राज गया, असलिअे परदेशी कपड़ा लाना ठीक बात कैसे हो सकती है? अैसा खयाल करना ही बताता है कि हम परदेशी राजके विरोधका असली कारण ही भूलते हैं। परदेशी राज होनेसे मुल्कको बड़ा माली नुकसान होता था। अिस माली नुकसानको मिटाना ही स्वराजका पहला काम होना चाहिये।

निचोड़ यह हुआ कि स्वराजमें शुद्ध खादीकी ही जगह है। अुसीमें लोक-कल्याण है। अुसीसे बराबरी पैदा हो सकती है।

नअी दिल्ली, ५-१-'४८

हरिजनसेवक, ११-१-'४८

क्रोध नहीं, मोह नहीं

अेक भाअी लिखते हैं:

"अुर्दू 'हरिजन' के बारेमें आपका लेख देखा। यदि वह आपका लिखा न होता, तो मैं यही समझता कि किसीने बहुत ही क्रोधमें लिखा है। जीवणजीभाअीने जो कुछ लिखा है, अुससे सिर्फ यही साबित होता है कि लोगोंको अुर्दू लिपिमें 'हरिजन' की जरूरत नहीं है। पर आप अुसके कारण नागरी 'हरिजनसेवक' को क्यों बन्द करें? क्या आप समझते हैं कि पहले हिन्दी 'नवजीवन' निकालते थे (अुर्दू नहीं), तब कोअी गुनाह करते थे? अुसके बाद भी नागरी 'हरिजनसेवक' निकलता रहा, पर आपने अुर्दू 'हरिजन' अुस समय नहीं निकाला।

"अगर आपने अुर्दू और नागरी 'हरिजन' केवल हिन्दुस्तानीका प्रचार करनेके लिअे निकाले होते तो बात ठीक थी। पर नागरी 'हरिजनसेवक' पहलेसे ही निकल रहा है। अुसमें घाटा हो तो आप भले ही बन्द करें। आपने जो चेतावनी नागरी 'हरिजनसेवक' बन्द करनेकी दी है, अुसमें मुझे अेक प्रकारका बलात्कार लगता है।

"क्या अंग्रेजी 'हरिजन' से भी ज्यादा नागरी 'हरिजनसेवक' ने गुनाह किया है? सच बात तो यह है कि पहले अंग्रेजीका 'हरिजन' बन्द हो जाना चाहिये। पर होता यह है कि अंग्रेजी 'हरिजन' को जितना महत्त्व मिलता है, अुतना दूसरे संस्करणोंको नहीं।

"यह कितने बड़े दुःखकी बात है कि आप अपने प्रार्थना-प्रवचन हिन्दुस्तानीमें देते हैं। अुसका सारांश आपके दफ्तरमें अंग्रेजीमें होता रहा है और फिर अुसका अुल्था नागरी और अुर्दू 'हरिजन' में छपता था, यह कहकर कि 'अंग्रेजीसे'। अब तो

यह नहीं लिखा रहता। शायद अब सीधा हिन्दुस्तानीमें ही लिखा जाता हो।

"आपने कअी वर्ष पहले लिखा था कि जहां तक संभव होगा, आप केवल गुजराती या हिन्दुस्तानीमें ही लिखेंगे और अुसका अुल्था अंग्रेजीमें आवेगा। पहले अैसा चला भी, लेकिन बादमें यह सिलसिला शिथिल हो गया।

"मैं फिर आपसे अनुरोध करता हूं कि आप अंग्रेजी 'हरिजन' बन्द कर दें और दूसरे संस्करण जारी रखें।"

जो बात वाकअी सही है, वह अगर कही जाय तो अुसे क्रोध मानना शब्दका सही प्रयोग नहीं होगा। क्रोधमें आदमी बेतुका काम कर लेता है। अगर अुर्दू 'हरिजन' बन्द करना पड़ा तो साथ साथ नागरी भी बन्द करना लाजमी यानी आवश्यक हो जाता है। लाजमी बात करनेमें क्रोध कैसा? जिसे मैं लाजमी समझूं, अुसे दूसरे न भी समझें, जैसे कि अिस पत्रके लेखक। अुससे मुझे क्या? हम जिसे लाजमी मानें, वही सारा जगत भी माने अैसा हो तो अच्छा है। लेकिन अैसा होता नहीं है। हर चीजके कम-से-कम दो पहलू होते ही हैं।

अब यह बतानेका रहा कि अेकको छोड़ूं या दोनोंको। यह ठीक है कि जब मैंने नागरीमें 'नवजीवन' निकाला और 'हरिजन' निकालना शुरू किया, तब दोनों लिपिकी चर्चा नहीं थी। अगर थी तो मुझे अुसका पता नहीं था।

बीचमें स्व० भाअी जमनालालजीकी अिच्छासे हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा कायम हुअी। अिससे अुर्दू रिसाला निकालना लाजमी हो गया। अब माना कि अुर्दू रिसाला बन्द हो और नागरी निकलता रहे, तो यह मेरी निगाहमें बड़ा ही अनुचित होगा। क्योंकि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके हिन्दुस्तानीके मानी यह हैं कि वह जैसे नागरी लिपिमें लिखी जाती है, वैसे ही अुर्दू लिपिमें भी लिखी जा सकती है।

अिसलिअे जो अखबार दोनों लिपिमें निकलता था, अुसे अैसे ही निकलना चाहिये। वह भी अेक अैसे मौके पर जब कि हिन्दके

लोग चारों ओरसे कह रहे हैं कि राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है और वह नागरी लिपिमें ही लिखी जाय। यह विचार ठीक नहीं है, यह बताना मेरा काम हो जाता है। यह दलील अगर ठीक है, तो मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मैं नागरी लिपिके साथ अुर्दू लिपिको भी रखूं और न रख सकूं तो मुझे अुर्दू 'हरिजनसेवक' के साथ नागरी 'हरिजन-सेवक' का भी त्याग करना चाहिये।

लिपियोंमें मैं सबसे आला दरजेकी लिपि नागरीको ही मानता हूं। यह कोअी छिपी बात नहीं है। यहां तक कि मैंने दक्षिण अफ्रीकासे गुजराती लिपिके बदलेमें नागरी लिपिमें गुजराती खत लिखना शुरू किया था। अिसे मैं समय न मिलनेके कारण आज तक पूरा न कर सका। नागरी लिपिमें भी सुधारके लिअे गुंजाअिश है, जैसे कि करीब करीब सब लिपियोंमें है। लेकिन यह दूसरा विषय हो जाता है। यह अिशारा जो मैंने किया है सो यह बतानेके लिअे कि नागरी लिपिका विरोध मेरे मनमें जरा भी नहीं है। लेकिन जब नागरीके पक्षपाती अुर्दू लिपिका विरोध करते हैं, तब अुसमें मुझे द्वेषकी और असहिष्णुताकी बू आती है। विरोधियोंमें अितना भी आत्म-विश्वास नहीं है कि नागरी लिपि यदि संपूर्ण है — दूसरी लिपियोंके मुकाबलेमें पूर्ण है, तो अुसीका साम्राज्य अन्तमें होगा। अिस निगाहसे देखा जाय तो मेरा फैसला निर्दोष लगना चाहिये और जरूरी भी।

हिन्दुस्तानीके बारेमें मेरा पक्षपात है सही। मैं मानता हूं कि नागरी और अुर्दू लिपिके बीच अन्तमें जीत नागरी लिपिकी ही होगी। अिसी तरह लिपिका खयाल छोड़कर भाषाका ही खयाल करें, तो जीत हिन्दुस्तानीकी ही होगी। क्योंकि संस्कृतमयी हिन्दी बिलकुल बनावटी है और हिन्दुस्तानी बिलकुल स्वाभाविक। अुसी तरह फारसी-मयी अुर्दू अस्वाभाविक और बनावटी है। मेरी हिन्दुस्तानीमें फारसी लफ्ज बहुत कम आते हैं, तो भी मेरे मुसलमान दोस्तों और पंजाबी और अुत्तरके हिन्दुओंने मुझे सुनाया है कि मेरी हिन्दुस्तानी समझनेमें अुनको दिक्कत नहीं होती। हिन्दीके पक्षमें मैं तो बहुत कम दलील पाता हूं। खूबी यह है कि पहले-पहल जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें मैंने

हिन्दीकी व्याख्या दी, तब अुसका विरोध नहीं के बराबर था। विरोध कैसे शुरू हुआ अिसका अितिहास बड़ा करुणाजनक है। मैं अुसे याद भी नहीं रखना चाहता। मैंने यहां तक बताया था कि 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' नाम ही राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिअे सूचक नहीं था, न आज भी है।

लेकिन मैं साहित्यके प्रचारकी दृष्टिसे सदर नहीं बना था। स्व० भाअी जमनालालजी और दूसरे अनेक मित्रोंने मुझे बताया था कि नाम चाहे कुछ भी हो, अुन लोगोंका मन साहित्यमें नहीं था; अुनका दिल राष्ट्रभाषामें ही था। और अिसलिअे मैंने दक्षिणमें राष्ट्रभाषाका प्रचार बड़े जोरोंसे किया।

प्रातःकालमें अुपवासके छठे दिन प्रार्थनाके बाद लेटे लेटे मैं यह लिखा रहा हूं। कितने ही दुःखदायी स्मरण ताजा होते हैं, पर अुन्हें और बढ़ाना मुझे अच्छा नहीं लगता है।

नामका झगड़ा मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है। नाम कुछ भी हो लेकिन काम अैसा हो कि जिससे सारे राष्ट्रका — मुल्कका — देशका कल्याण हो। अुसमें किसी भी नामका द्वेष होना ही नहीं चाहिये।

'सारे जहांसे अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' — अिकबालके अिस वचनको सुनकर किस हिन्दुस्तानीका दिल नहीं अुछलेगा? अगर न अुछले तो मैं अुसे कमनसीब समझूंगा। अिकबालके अिस वचनको मैं हिन्दी कहूं, हिन्दुस्तानी कहूं, या अुर्दू? कौन कह सकता है कि अिसमें राष्ट्रभाषा नहीं भरी है, अिसमें मिठास नहीं है, विचारकी बुजुर्गी नहीं है? भले ही अिस विचारके साथ आज मैं अकेला होअूं, यह साफ है कि जीत कभी संस्कृतमयी हिन्दीकी होनेवाली नहीं है, न फारसी-मयी अुर्दूकी। जीत तो हिन्दुस्तानीकी ही हो सकती है। जब हम अन्दरूनी द्वेषभावको भूलेंगे, तब ही हम अिस बनावटी झगड़ेको भूल जायेंगे, अुससे शरमिन्दा होंगे।

अब रही अंग्रेजी 'हरिजन' की बात। अिसे मैं छोटी बात मानता हूं। अंग्रेजी 'हरिजन' को मैं छोड़ नहीं सकता। क्योंकि अंग्रेज लोग और अंग्रेजीके विद्वान हिन्दुस्तानी लोग मानते हैं कि मेरी अंग्रेजीमें

कुछ खूबी है। पश्चिमके साथका मेरा संबंध भी बढ़ रहा है। मुझमें अंग्रेजोंका या दूसरे पश्चिमी लोगोंका द्वेष न कभी था, न आज है। अुनका कल्याण मुझे अुतना ही प्रिय है जितना कि हमारे देशका। अिसलिअे मेरे छोटेसे ज्ञान-भंडारमें से अंग्रेजी भाषाका बहिष्कार कभी नहीं होगा। मैं अुस भाषाको भूलना नहीं चाहता, न चाहता हूं कि सारे हिन्दुस्तानी अंग्रेजी भाषाको छोड़ें या भूलें। मेरा आग्रह हमेशा अंग्रेजीको अुसकी योग्य जगहसे बाहर न ले जानेका रहा है। वह कभी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती और न हमारी तालीमका जरिया। अैसा करके हमने अपनी भाषाओंको कंगाल बना रखा है। विद्यार्थियों पर हमने बड़ा बोझ डाला है। यह करुण दृश्य, जहां तक मुझे अिल्म है, सिर्फ हिन्दुस्तानमें ही देखा जाता है। अिस भाषाकी गुलामीने हमारे करोड़ों लोगोंको बहुतेरे ज्ञानसे बरसों तक वंचित रखा है। अिसकी हमें न समझ है, न शरम, न पछतावा! यह कैसी बात? यह सब साफ साफ जानते हुअे भी मैं अंग्रेजी भाषाका बहिष्कार नहीं सह सकता। जैसे तामिल आदि सूबाअी भाषाअें हैं और हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा, ठीक अिसी तरह अंग्रेजी विश्वभाषा है — जगतकी भाषा है, अिससे कौन अिनकार कर सकता है? अंग्रेजोंका साम्राज्य जायगा, क्योंकि वह दूषित था और है; लेकिन अंग्रेजी भाषाका साम्राज्य कभी नहीं जा सकता।

मुझे अैसा लगता है कि गुजराती भाषामें या अंग्रेजी भाषामें मैं कुछ भी लिखूं, तो भी अंग्रेजी 'हरिजन' और गुजराती 'हरिजन-बन्धु' अपने पैरों पर खड़े रहेंगे।

नअी दिल्ली, १८–१–'४८

(सुबह ५ बजकर ४५ मिनट)

हरिजनसेवक, २५–१–'४८

२३९

कस्तूरबा-पक्ष

कस्तूरबा-निधिके कामको बढ़ानेकी दृष्टिसे प्रान्तीय प्रतिनिधियोंकी सिफारिश पर कार्यकारिणी समितिने यह तय किया है कि अगली २२ फरवरीसे ९ मार्च तक कस्तूरबा-पक्ष मनाया जाय, जिसमें हम

१. देहातोंमें ट्रस्टके अुद्देश्य और कार्यको समझावें।

२. अभी तकके अपने कार्यकी जानकारी दें।

३. मिड-वाअिफरी, बुनियादी तालीम और ग्रामसेविका-तालीमके लिअे देहातोंसे बहनें प्राप्त करनेका विशेष प्रयत्न करें।

४. १९४८ सालके मंजूरशुदा बजटके अनुसार असली ट्रस्ट फण्डके अलावा ग्रामसेवा-केन्द्रोंके लिअे जिले या प्रान्तसे खर्चका जो आवश्यक हिस्सा स्थानीय साधनोंसे पूरा करना है, अुसे अिकट्ठा करें।

अंग्रेजी तारीखके मुताबिक कस्तूरबाकी मृत्युतिथि २२ फरवरी, १९४४ थी। विक्रम संवतके मुताबिक यह तिथि ९ मार्च तक जाती है। देखा जाता है कि अिस कामकी न कोअी जाहिरात होती है और न कोअी प्रचार-पुस्तिका छपी है या छपती है। मुझे तो अिस बारेमें मोह नहीं है। देहाती काम अिस तरह हो भी नहीं सकता। जो अिस काममें दिलचस्पी लेते हैं, अुन्हें वार्षिक विवरणसे पता चल सकता है। फिर भी प्रतिनिधियोंका दुःख समझने लायक तो है ही। कस्तूरबा-पक्षके लिअे जो कामकी फेहरिस्त बनी है, सो ठीक ही है। कामको अंजाम देनेके लिअे सबसे बड़ी बात तो यह है कि जो कार्यकर्ता अिस कामको करनेके लिअे चुने जायं, वे दिलचस्पी लेनेवाले हों और देहातोंका कुछ परिचय रखते हों। अैसे कार्यकर्ता देखेंगे

कि जो काम आज हो रहा है अुसके सिवा दूसरा क्या क्या हो सकता है, सो देहातकी बहनों और भाअियोंसे समझ लें। संभव है कि देहातियोंको अपने सुधारके बारेमें कुछ पड़ी भी नहीं होती। अगर अैसा ही हो, तो भी स्वयंसेविकायें अपने अपने विवरणमें अुसकी नोंध करेंगी। हमने अब तक तो कुछ शिविर चलाये हैं, कुछ जच्चा-घर निकाले हैं और बाल-मंदिर चलाये हैं। अिसमें कोअी ताज्जुब नहीं कि यह काम बिलकुल नया है। अिसलिअे हमें आहिस्ता आहिस्ता चलना है। देहातकी औरतोंमें और देहातके बच्चोंमें कौनसे रोजगार-धंधे दाखिल हो सकते हैं, जिससे अुनकी आय बढ़ सकती है, अुनका ज्ञान बढ़ सकता है, अुनकी तन्दुरुस्ती बढ़ सकती है? यों तो हम जानते हैं कि क्या करना चाहिये। यहां प्रश्न यह है कि देहाती बहनें अिस दिशामें कुछ करेंगी या नहीं?

नअी दिल्ली, २०–१–'४८

हरिजनसेवक, १–२–'४८

परिशिष्ट

विवाह-विधि

[अिस पुस्तकके पृष्ठ ६५ पर 'विवाह और वेद' नामक लेख छपा है। अुसके सन्दर्भमें गांधीजीकी 'विवाह-विधि' पढ़ना दिलचस्प होगा। यह विधि गांधीजीने श्री तेंडुलकर और श्री अिन्दुमती गुणाजीके विवाहके अवसर पर हिन्दीमें तैयार की थी। अिसमें गांधीजीने 'सप्तपदी' की जगह 'सप्तयज्ञ' बताये हैं, जिनका पालन करके ही मनुष्य विवाहका अधिकार प्राप्त करता है।

'सप्तयज्ञ' का भाग अुन्होंने अंग्रेजीमें लिखा था।]

गणपत नारायण महादेव तेंडुलकर और अिन्दुमती नागेश वासुदेव गुणाजीकी विवाह-विधि होती है, अुसे मैं अीश्वरको दरम्यान समझकर करता हूं। आप दोनों भी अैसा करें। अिस विधिमें आप जो साक्षी बने हैं अपने मन पवित्र रखें और विवाहाकांक्षीकी पवित्र अिच्छाके सहायभूत हों।

अब मैं अीश्वरको धन्यवाद देनेवाला भजन गाता हूं, सो ध्यानसे सुनें। (भजन 'आज मिलकर गीत गाओ')

*　　*　　*

१. प्रश्न — आप दोनों स्वस्थचित्त हैं?

अुत्तर — (दोनों कहें) जी हां।

२. प्रश्न — आपने कल सात यज्ञ जैसा बताया गया था किये?

अुत्तर — जी हां।

३. प्रश्न — आप लोग जानते हैं न कि यह सम्बन्ध विषय-सुखके लिअे और भोगके लिअे नहीं है?

अुत्तर — जी हां।

४. प्रश्न — अिस (गृहस्थ) आश्रममें आप धर्मभावसे, त्यागभावसे और सेवाभावसे प्रवेश करते हैं?

अुत्तर — जी हां।

५. प्रश्न — अिस कारण दोनों अेक-दूसरेके सेवाकार्यमें विक्षेप नहीं डालेंगे, लेकिन अेक-दूसरेको मदद करेंगे?

अुत्तर — जी हां।

६. प्रश्न — अेक-दूसरेके प्रति मन, वचन, कर्मसे हमेशा वफादार रहेंगे?

अुत्तर — जी हां।

७. प्रश्न — हिन्दुस्तान जब तक स्वतन्त्र नहीं होगा, तब तक आप प्रजोत्पत्तिके काममें नहीं लगनेका भरसक प्रयत्न करेंगे?

अुत्तर — जी हां।

८. प्रश्न — जो अस्पृश्य माने जाते हैं अुनके साथ रोटी-बेटीका व्यवहार करने-करानेमें मानते हैं न?

अुत्तर — जी हां।

९. प्रश्न — स्त्री-पुरुषके समान अधिकार हैं अैसा मानते हैं न?

अुत्तर — जी हां।

१०. प्रश्न — आप लोग अेक-दूसरेके मित्र हैं। दास-दासी कभी नहीं। यह भी ठीक है न?

अुत्तर — जी हां।

११. प्रश्न — दूसरे प्रश्नमें बताये सात यज्ञ सप्तपदीका स्थान लेते हैं, वह भी आप समझते हैं न?

अुत्तर — जी हां।

अब मैं आपको अपने हाथसे काते हुअे सूतके मारफत अिस बन्धनमें डालता हूं। आप लोग अिस सूत-हारको जतनसे रखें और याद रखें कि आपका यह बन्धन कभी आप नहीं तोड़ेंगे और आपने जो प्रतिज्ञा यहां की है अुसके पालनमें आप अिस धर्मक्रियाको याद करके भगवानसे मांगें कि सर्वशक्तिमान परमात्मा आपकी सहाय करे।

अब हम साथ मिलकर राम-धुन गायेंगे।

१८–८–’४५

[अिन्दुबहनको]

. . . त्रिया शायद प्रभाकर करेगा। वह हरिजन मां-बापका लड़का है। मां-बाप ख्रिस्ती बन गये थे। मैं यह भी मान लेता हूं कि यह विवाह भोगके लिअे नहीं होगा। लेकिन सेवादृष्टिसे ही। मैं यह भी मान लूं कि जब तक सच्ची आजादी नहीं मिली है तब तक तुम संभोग-कार्यमें नहीं पड़ोगे। मैं यह तो मानता ही हूं कि तुम संततिको रोकनेके अुपायोंमें कभी नहीं फंसोगे।

अितना कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि यह सब चीज सख्त लगे तो यहीं [गांधी आश्रममें] विवाह करनेकी आवश्यकता न मानना।

यदि अैसा विवाह पसन्द करते हैं तो रोज कातो, रोज गीताके १२ वें अध्यायका रागपूर्वक पाठ करो और आश्रम-कार्यमें लगे रहो और पारमार्थिक विचार ही करो।

अिस विधिमें मैंने कानूनका कुछ भी खयाल नहीं किया है।

[तेंडुलकरजीको]

I believe in one man one wife and vice versa for all time.

Instructions for the marriage day

Saptapadi replaced by the following seven yagnas :

(1) Both should fast till the marriage tie is formed (fruits may be taken).

(2) You will both read 12th ch. of Gita and contemplate its meaning.

(3) Each will clean up separate plots of ground with trees on.

(4) Each will tend cows in the Gowshala.

(5) Each will clean up the well-sides.

(6) Each will clean a closet well.

(7) Each will spin daily and do all these with the intention so far as possible of carrying out these yagnas daily.

Bapu

सूची

हमारे कुछ महत्त्वके हिन्दी प्रकाशन

	रु० आ०
सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा	१–८
गांधीजीकी संक्षिप्त आत्मकथा	०-१२
अहिंसक समाजवादकी ओर	२–०
आरोग्यकी कुंजी	०–७
खादी	२–०
खुराककी कमी और खेती	२–८
गोसेवा	१–८
दिल्ली-डायरी	३–०
नअी तालीमकी ओर	१–०
बापूके पत्र : सरदार वल्लभभाअीके नाम	३–८
बापूके पत्र मीराके नाम	४–०
बुनियादी शिक्षा	१–८
रामनाम	०-१०
विद्यार्थियोंसे	२–०
सच्ची शिक्षा	२–०
सत्य ही अीश्वर है	८० नये पैसे
सर्वोदय	२–८
हमारे गांवोंका पुनर्निर्माण	१–८
विवेक और साधना	४–०
विचार-दर्शन	१–८
भूदान-यज्ञ	१–४
महादेवभाअीकी डायरी — १	५–०
महादेवभाअीकी डायरी — २	५–०
महादेवभाअीकी डायरी — ३	६–०

सरदार पटेलके भाषण	५–०
सरदार वल्लभभाअी — १	६–०
सरदार वल्लभभाअी — २	५–०
अुस पारके पड़ोसी	३–८
स्मरण-यात्रा	३–८
हिमालयकी यात्रा	२–०
गांधी और साम्यवाद	१–४
जीवनशोधन	३–०
तालीमकी बुनियादें	२–०
शिक्षाका विकास	१–४
शिक्षामें विवेक	१–८
संसार और धर्म	२–८
स्त्री-पुरुष-मर्यादा	१-१२
अेकला चलो रे	२–०
बा और बापूकी शीतल छायामें	२–८
आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा — १	१–८
गांधीजी	०-१२
ग्रामसेवाके दस कार्यक्रम	१–४
बापूकी छायामें	२–८
हमारी बा	२–०
बापू : मैंने क्या देखा, क्या समझा?	३–०
शराबबंदी क्यों?	०-१०
गांधीजीके पावन प्रसंग	०–६
जीवनकी सुवास	०–६
सर्वोदयका सिद्धान्त	०-१०
मरुकुंज	१–४

नवजीवन कार्यालय
पो० नवजीवन
अहमदाबाद – १४